शिवपूजन-रचनावली

['बिहार का विहार', 'विभूति' और 'देहाती दुनिया']

(पहला खण्ड)

श्रीशिवपूजन सहाय

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना

प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना—३

नवीन संस्करण, माघ विक्रम-सं० २०१२, फरवरी १९५६ ई०

मूल्य ७॥) : सजिल्द ८॥)

मुद्रक
ज्ञानपीठ लिमिटेड,
पटना—४

वक्तव्य

'रचनावली' के प्रस्तुत पहले खण्ड में हमारी तीन पुस्तकें सम्मिलित हैं—
(१) 'बिहार का विहार' (पुराने बिहारोत्कल प्रान्त का ऐतिहासिक, प्राकृतिक और भौगोलिक परिचय), (२) 'विभूति' (सोलह ललित कहानियों का संग्रह) और (३) 'देहाती दुनिया' (ठेठ देहात का औपन्यासिक चित्र)।

पहली पुस्तक में प्रथम संस्करण की भूमिका और प्रस्तावना के साथ बिहार-सम्बन्धी नवीनतम उपलब्ध आँकड़े भी दे दिये गये हैं। यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार आधुनिक बातों का भी उल्लेख पाद-टिप्पणियों में कर दिया गया है। पुराने प्रथम संस्करण में जो छपाई की भूलें थीं, उनको सुधारने के सिवा कहीं भी अनावश्यक परिवर्त्तन अथवा संशोधन नहीं किया गया है।

दूसरी और तीसरी पुस्तक के प्रथम संस्करण में जो भूमिका छपी थी, वह भी परिशिष्ट में दे दी गई है। बाद के संस्करणों में छपे वक्तव्य भी पहली भूमिका के साथ ही हैं। कहानियों का रचनाकाल भी जैसा पहले छप चुका था, वैसा ही परिशिष्ट में दे दिया गया है।

अध्ययनशील पाठकों की सुविधा के लिए यह आवश्यक प्रतीत हुआ। आशा है, इन रचनाओं को पढ़ते समय कृपालु पाठक रचनाकाल पर अवश्य ध्यान रखेंगे।

पुस्तक का नाम ग्रन्थावली के बदले रचनावली इसलिए रखा गया है कि इसमें कोई ग्रन्थ नहीं है, केवल तीन रचनाएँ ही हैं। रचनाओं में भी कुछ ऐसा महत्त्व है या नहीं कि उनका संग्रह हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित किया जाय, यह बात हमारे कहने की नहीं है, इसकी जाँच स्वयं सुधी पाठक और समीक्षक ही कर सकते हैं।

परिषद् से आधुनिक कथासाहित्य का प्रकाशन नहीं होता। किन्तु यह सर्वविदित है कि हमारी लम्बी बीमारी में चिकित्सा के निमित बिहार-सरकार ने हमें आर्थिक सहायता देने की कृपा की थी। उसी के साथ पुनः यह भी आदेश देने की उदारता दिखाई थी कि हमारी सभी रचनाओं को परिषद् के नियमानुसार प्रकाशित करके उसके पुरस्कार की धनराशि हमें पेशगी दे दी जाय। परिषद् से इन रचनाओं के प्रकाशित होने का यही कारण है। अतः बिहार-सरकार के प्रति हम वस्तुतः बहुत कृतज्ञ हैं।

इस रचनावली का दूसरा और तीसरा खण्ड भी छप रहा है। संभवतः यह चौथे खण्ड में पूरी हो सकेगी। इसके लिए बिहार-सरकार ने पृथक् धनराशि ही स्वीकृत कर दी है। सरकारी सहायता की सुविधा पाकर हमारा स्वस्थ होना और हमारी रचनाओं का अप्रत्याशित महत्त्व पाना प्रत्यक्ष ही ईश्वरीय वरदान के समान है।

वसन्तपंचमी, संवत् २०१२ }

शिवपूजन सहाय
(परिषद् मंत्री)

★

विषय-सूची

बिहार का विहार

विभूति

(कहानी-संग्रह)

शिवपूजन-रचनावली

बिहार का बिहार

ऐतिहासिक परिचय

भौगोलिक विवरण

जिस प्रदेश में सरयू, गंडक, शोणभद्र, कर्म्मनाशा, फल्गु, कोशी आदि प्रसिद्ध नदियाँ गंगा से मिली हैं; जिस प्रदेश की पूर्वी सीमा पर पूरब की ओर बहनेवाली गंगा का मुँह दक्षिण-दिशा में फेर देनेवाली 'राजमहल पहाड़ी' विराजमान है; जिस प्रदेश के बीचोबीच बहनेवाली गंगा उत्तर-भाग को 'मिथिला' और दक्षिण-भाग को 'मगध' नाम से बाँट देती है; जहाँ जनकपुर, गया, वैद्यनाथ, हरिहरक्षेत्र आदि भारत-प्रसिद्ध हिन्दूतीर्थ हैं; जहाँ पाटलिपुत्र (पटना), मुद्गलपुरम् (मुँगेर), व्याघ्रसर (बक्सर), सहस्रारम (ससराम), बिहार शरीफ, भोजपुर, चम्पानगर (भागलपुर के निकट), भगदत्तपुर (भागलपुर), राजगृह, वैशाली (हाजीपुर के निकट), नालंदा (बिहार शरीफ के पास) आदि प्राचीन गौरवशाली ऐतिहासिक नगर जहाँ-तहाँ जैसी-तैसी अवस्था में सुशोभित हैं; जहाँ प्राचीन भूतत्त्व-विद्या का सुप्रसिद्ध विद्यापीठ 'राजमहल की पहाड़ी', प्राचीन बौद्धकाल और मौर्य्यसाम्राज्य-काल के अनेक उत्कृष्ट चिह्नों से गौरवान्वित 'राजगिर' (राजगृह) और 'बराबर' पहाड़, रोहिताश्वगढ़[1] और शेरगढ़[2] के सुदृढ दुर्गों (मजबूत किलों) से विभूषित 'कैमूर की पहाड़ी' आदि प्रधान एवं प्रसिद्ध पहाड़-पहाड़ियाँ विद्यमान हैं; जहाँ दो-दो ढाई-ढाई हजार वर्ष की पुरानी चीजों (मूर्त्तियों, सिक्कों, स्तम्भों, शिलालेखों, बर्तनों आदि) को अपने अतलगर्भ से पैदा करनेवाले कुम्हरार, बड़गाँव आदि पुराने खँडहर मौजूद हैं; उसी प्रदेश का नाम 'बिहार' है।

---

१ रोहताश्वगढ़ का किला मुगल-बादशाहों के समय से बहुत मशहूर हुआ, चूँकि यह उससे भी बहुत पहले का बना हुआ है और समुद्र से इसकी ऊँचाई १४९० फुट कूती गयी है।

२ शेरशाह ने १५४०-४५ ई० में शेरगढ़ का किला बनवाया था।

जिस प्रदेश की दक्षिणी सीमा की ओर महानदी लहरा रही है और पूर्वी सीमा बंगोपसागर की ऊँची-ऊँची तरंगों से टकराती रहती है ; जहाँ चार सौ वर्गमील में बाईस कोस लंबी 'चिल्का' झील है तथा श्रीजगन्नाथजी का विश्वविख्यात सुविशाल मंदिर अपने बनानेवाले चतुर कारीगरों की कारीगरी और हाथों की सफाई का परिचय दे रहा है ; जहाँ के 'अस्सी गिरि' (अस्सिया पहाड़ी) की ऊँची-ऊँची चिकनी चट्टानों पर बहुत से पुराने मन्दिरों, मठों और देवालयों के ध्वसांश (टूटे-फूटे हिस्से) तथा प्राचीन भारतीय शिल्प-कला-कौशल के अनेक उत्तमोत्तम नमूने विद्यमान हैं ; जहाँ भुवनेश्वर के मंदिर की विचित्र कारीगरी आज भी असंख्य दर्शकों को आश्चर्य में डाल रही है ; जहाँ 'पुरी' के पास ही उदयगिरि तथा खंडगिरि नामक पहाड़ियों में दो-दो हजार वर्ष की सुन्दर गुफाएँ आज भी अपनी विलक्षण बनावट दिखलाकर जैनियों की प्राचीन महत्ता का बोध करा रही हैं, वही प्राचीन 'उत्कल' प्रदेश अब 'उड़ीसा' नाम से प्रसिद्ध— बिहार के दक्षिण में—वर्त्तमान है।

उक्त दोनों—बिहार और उड़ीसा—प्रदेशों के बीच में छोटानागपुर नामक एक छोटा-सा प्रांत है। इसी प्रांत में पारसनाथ की वह प्रसिद्ध पहाड़ी है, जिसपर जैनियों के चौबीसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथजी ने तपस्या कर सिद्धि और निर्वाण प्राप्त किया था।

'बिहार' नाम पड़ने का कारण

"विदेशियों के इतिहास में बिहार के नाम एनाकाक, परासी, मुवाद, मकियातो मगत्कफ तथा अतूखोख आदि हैं। बौद्ध तथा जैनी इसे 'पाली-देश' और 'सौवीर' कहते हैं।

—हिंदी-मासिक 'मनोरंजन' (आरा) का विशेषांक।

"इस प्रदेश की बासंती शोभा पर मुग्ध होकर और इसे ऋतुराज वसंत की बिहार-भूमि समझकर मुसलमान बादशाहों ने इसका 'बिहार' नाम रक्खा।"

—एक अँगरेज विद्वान्।

किन्तु, इतिहास से तो यही पता लगता है कि इसमें बौद्धों के बहुत-से मठ होने के कारण इसका नाम 'बिहार' पड़ा ; क्योंकि संस्कृत में 'विहार' शब्द का अर्थ 'मठ' है।

आज भी 'बिहार' नामक प्राचीन नगर में अनेक बौद्ध मठों के खँडहर दीख पड़ते हैं। 'बिहार' शहर का नाम बिहारशरीफ भी है।

उड़ीसा-निवासियों में 'उड़िया'-भाषा बोलनेवालों की संख्या बहुत अधिक होने से ही शायद 'उत्कल' प्रान्त का प्रचलित नमा 'उड़ीसा' प्रसिद्ध हुआ।

छोटानागपुर के विषय में एक अँगरेज विद्वान् की राय है कि राँची के पास जो 'चुटिया' नामक एक छोटा-सा गाँव है, जो किसी समय मध्यभारत की अधित्यका पर सिक्का जमानेवाले नागवंशी राजाओं का प्रधान वासस्थान था, उसी के नाम (चुटिया नागपुर) के आधार पर क्रमशः सारे प्रान्त का नाम छोटानागपुर हो गया।

प्राचीन इतिहास

हिन्दुओं के पुराणानुसार अत्यन्त प्राचीन युगों में मिथिला (उत्तर-बिहार वा तिरहुत) में बिदेह जनक का राज्य था। पुराणों और इतिहासों में लिखा है कि महाराज 'निमि' ही विदेह-वंश के प्रथम राजा और उस वंश की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले हुए। निमि के पुत्र मिथि हुए, जिनके कारण 'मिथिला' प्रदेश प्रसिद्ध हुआ। मिथिलाधिपति राजर्षि जनक बड़े ज्ञानी, ध्यानी, योगी, यशस्वी और शान्त प्रकृति के राजा थे। उस पुण्यश्लोक नृपति की प्रसिद्ध राज-सभा में बड़ी-बड़ी दूर से आनेवाले जिज्ञासु विद्वान् जुटते थे।

मई १९१५ ई० की 'सरस्वती'[१] में डाक्टर गंगानाथ झा, एम० ए० ने लिखा था कि "सन् ४७६ से सन् ७२२ वैशाख शुक्ल षष्ठी पर्यन्त कार्णाट क्षत्रिय नान्यपदेव के वंश के राजाओं ने मिथिला में राज्य किया। इसके अनन्तर ३४ वर्ष तक मिथिला में कोई राजा न था। फिर सन् ७५६ में ओइनबार-मैथिल-ब्राह्मण-कुल के राजा हुए। इसके अनन्तर १० वर्ष मिथिला-प्रान्त बिना राजा का रहा। तदनन्तर खण्डवलाकुलकमलदिवाकर नैयायिक महामहोपाध्याय महेश ठाकुर ने अकबर बादशाह के हाथ से मिथिला-राज्य पाया। इस वंश के राजा अभी तक मिथिला (दरभंगा) के राजा हैं।"

किन्तु मिथिला का मध्यकाल का इतिहास अन्धकार के गर्भ में छिपा मालूम होता है।

दक्षिण-बिहार में भी, किसी बहुत ही पुराने समय में, जरासन्ध नामक अतिशय बलिष्ठ, रणधीर, वीर, महापराक्रमी और परम प्रतापी राजा राज्य करता था। पुराणों और इतिहासों से पता चलता है कि "महाराज जरासन्ध के पश्चात् उसके वंश के २३ राजा मगध के सिंहासन पर बैठे थे। २३वें राजा का नाम रिपुञ्जय

१. प्रयाग के इण्डियन प्रेस से प्रकाशित मासिक पत्रिका।

था। इस रिपुञ्जय का संहार इसके मंत्री (शनक) ने किया……। परन्तु इस राज्य को उसने स्वयं न भोगा ; अपने पुत्र को उस अधर्मप्राप्त सिंहासन पर आरूढ़ कराके वह संसार से विदा हो गया। राजघाती 'शनक' के पुत्र से लेकर उसके पाँच वंशधरों ने मगध की गद्दी का अभिषेक प्राप्त किया था।……इन पाँच राजाओं ने १३८ वर्ष तक राज किया था।"

फिर वे ही उपर्युक्त ग्रन्थ बतलाते हैं कि "(राजघाती शनक के राजवंश का नाश होने पर) उसी काल में शिशुनाग नामक एक विजयी राजा प्रचंड बल के साथ भारतभूमि में आया, और जरासंध के सिंहासन को अपने अधिकार में किया। शिशुनाग से लेकर उसके वंश के…दस राजा मगध के सिंहासन पर बैठे थे।…दस राजाओं ने ३६० वर्ष तक राज किया।"

जनवरी १६१७ की 'सरस्वती' के एक महत्त्वपूर्ण लेख से विदित होता है कि "प्राचीन मगध का शैशु-नाग-वंश पहला राजवंश है। ईसवी सन् के पूर्व छठी शताब्दी में इस वंश का पाँचवाँ राजा बिम्बसार हुआ।……उसने 'राजगृह' की नींव डाली और 'अंग' देश जीतकर उसे अपने राज्य में मिलाया।……बिम्बसार की दूसरी रानी—अर्थात् लिच्छवियों की राजकन्या—से बौद्ध-इतिहास-प्रसिद्ध 'आजातशत्रु' उत्पन्न हुआ, जो अपने पिता की हत्या करके गद्दी पर बैठा और जिसने लिच्छवियों का देश (आधुनिक तिरहुत) जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।"

इससे यह सिद्ध हुआ कि[1] "ईसा के छः सौ वर्ष पहले शिशुनागवंशीय राजाओं का राज्य बिहार में था। उनमें बिम्बसार और आजातशत्रु बड़े वीर थे"।[2] शिशुनागवंशी राजाओं के पश्चात् कितने ही शूद्र राजा मगध के राजसिंहासन पर बैठे थे। शिशुनाग का वंश-लोप होते-होते मौर्य्यवंश ने मगध के वंश पर अधिकार कर लिया।…इस मौर्य्यवंश में सब दस राजा हुए थे। इन दस राजाओं ने १३७ वर्ष तक राज किया था।

जब से मगध मौर्य्य-साम्राज्य की छत्रच्छाया में सुख-शान्ति का उपभोग करने लगा तब से बिहार के विश्वसनीय इतिहास का पता चलता है, अर्थात् ईसा के देहान्त के पूर्व की छठी शताब्दी से बिहार का ऐतिहासिक वृत्तान्त विश्वस्त सूत्र से जाना जाता है।

शिशुनाग-राजवंश के बाद जिस शूद्र-वंश का ऊपर उल्लेख है, शायद उसी वंश के प्रसिद्ध सम्राट् महानन्द थे, जिनके समय में सिकन्दर ने भारत पर चढ़ाई की थी। महाराज महानन्द ही जगज्जेता सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) से सामना करने को

१. आरा का हिन्दी-मासिक 'मनोरंजन' (विशेषांक)।
२. राजस्थान-इतिहास।

दलबल के साथ तैयार हुए थे। इसी नन्द-वंश के पराभव के उपरान्त मौर्य्य वंश का प्रादुर्भाव हुआ।

जिस समय बिहार में शिशुनागों का बोलबाला था, उसी समय बिहार में बौद्ध धर्म और जैन धर्म का सूत्रपात हुआ था। बिम्बसार के राजत्वकाल में बौद्धधर्म का अभ्युदय, प्रचार और उत्थान हुआ तथा उसके सिद्धान्त बद्ध-मूल हुए। कहते हैं कि शिशुनागों के अधिकार में ही लिच्छवि-जाति के लोग थे, जिनके कुल में जैनमत प्रवर्त्तक श्री महावीर स्वामी आविर्भूत हुए थे।

हिमालय की ओर से आकर तिरहुत में अड्डा जमानेवाले तूरानी जाति के लुटेरों से, देश की रक्षा करने के अभिप्राय से, उक्त महाराज अजातशत्रु ने 'पाटलिपुत्र' नगर की प्रतिष्ठा की थी। पुनः बहुत दिनों के बाद, मौर्यसाम्राज्य के संस्थापक भारत-सम्राट् महाराज चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र को अपनी राजधानी बनाया। उस समय यह नगर अपनी उन्नतावस्था की चरमसीमा तक पहुँचा हुआ था। इसी नगर में, यूनानी भारतयात्री मैगस्थनीज (मेघस्तन), चन्द्रगुप्त की राज-सभा में, आया था। चन्द्रगुप्त ने ही यूनानी सेनानी सिल्यूकस को जीता था और उसकी परम सुन्दरी युवती कन्या का पाणिग्रहण किया था [१]।

नंदवंशीय मगधराज को हराकर ईसवी-सन् के ३२२ वर्ष पहले चन्द्रगुप्त सिंहासनासीन हुए; किन्तु, केवल २४ वर्ष तक राज्य शासन करने के बाद ही ईसवी-सन् के २९२ वर्ष पहले उनका देहावसान हो गया। उनके पौत्र सम्राट् अशोक की उज्ज्वल कीर्त्ति तो भारत के अनेक प्रान्तों के शासनस्तम्भों द्वारा प्रसिद्ध ही है। यह बात पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध हो चुकी है कि [२] "भारत में सब-से पहले पटना (पाटलिपुत्र) नगर में ही म्युनिसिपैलिटी स्थापित हुई थी और महाराज अशोक के राजत्वकाल में ही उसकी स्थापना हुई थी।"

नवम्बर १९०८ ई० की 'सरस्वती' के एक लेख से प्रकट होता है कि "राजधानी पाटलिपुत्र का शासन बहुत अच्छी तरह होता था। युद्ध-विभाग की तरह नागरिक प्रबन्ध (म्युनिसिपैलिटी) के लिए भी तीस राजपुरुष नियुक्त थे और पाँच-पाँच सभ्यों की पृथक्-पृथक् छः पंचायतें (सभाएँ) थीं। पहली सभा का काम देशी कारीगरी

---

१. जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकन्दर की चली,
वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली।
जिससे कि सिल्यूकस समर में हार तो था ले गया;
कान्धार आदिक देश दे कर निज सुता था दे गया॥ १२८॥
—(भारत-भारती)

२. आरा के मनोरञ्जन (हिन्दी मासिकपत्र) का विशेषाङ्क।

का देख-भाल करना था। दूसरी सभा के ऊपर विदेशियों की चालचलन पर दृष्टि रखने का भार था। तीसरी सभा शहर में आदमियों के मरने तथा जन्म लेने का लेखा रखती थी। वाणिज्य-व्यवसाय का प्रबन्ध चौथी सभा के जिम्मे था। पाँचवीं सभा का काम दस्तकारी की उन्नति करना था। माल बिक्री होने पर कर वसूल करने का काम छठी सभा के हाथ में था।"

बौद्ध-सम्राट् अशोक के शासन-काल में बौद्ध मत भारत का राष्ट्र-धर्म हो गया था। उनके साम्राज्य भर में दया, अहिंसा, सत्य, दान, न्याय, सच्चरित्रता, सद्भाव, विद्या आदि सद्गुण मूर्तिमान होकर स्वच्छन्द विचरण करते थे[1]। "उन्होंने मनुष्य-मात्र के ही लिए नहीं; किन्तु पशुओं और पक्षियों के लिए भी औषधिशालाएँ बनवायी थीं। अनेक तड़ाग तथा कूप भी उन्होंने खुदवाये थे। सड़कों के दोनों तरफ, प्रचण्ड मार्त्तण्ड की प्रखर किरणों से पीड़ितों और श्रान्त पथिकों के सुखार्थ, वृक्ष लगवाये थे। प्रजा की शिक्षा के लिए उन्होंने बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया था। प्रजा का चरित्र सुधारने की भी उन्होंने यथासाध्य चेष्टा की थी।"[2]

भागलपुर के पड़ोस का अंग-राज्य और उड़ीसा का कलिंग-राज्य दोनों ही बहुत पुराने राज्य हैं। इसी कलिंग-राज्य पर, जो बंगोपसागर के किनारे लम्बायमान विस्तृत था, अशोक ने बड़ी भयंकर चढ़ाई की थी। यद्यपि विजय-लक्ष्मी ने सम्राट् अशोक के ही गले में जयमाला पहनायी, तथापि भीषण रक्तपात और घोर शस्त्राघात द्वारा भयानक नर-वध-लीला का रोमाञ्चकारी दृश्य देखते ही उन्होंने अहिंसा-धर्म-विशिष्ट बौद्धमत का अवलम्बन कर लिया।

अंगराज्य के विषय में एक भागलपुरी विद्वान् ने अनुसंधानपूर्वक लिखा है— "कभी स्वतंत्र राज्य के समान और कभी मगध के अन्तर्गत होकर अंग-राज्य भी धीरे-धीरे उन्नति करता गया। आखिर क्रमशः उत्कर्ष-लाभ करता हुआ यह एक स्वतंत्र राज्य हो गया, जब कि मगधनरेश जरासंध ने अंगराज्य पांडवों के अर्द्ध-भ्राता कर्ण को दे डाला। उनकी वीरता पर मुग्ध होकर जरासंध ने उन्हें यह राज्य दिया था। यह राज्य गंगा-नदी के दक्षिणी किनारे पर था, पश्चिम में मुँगेर और पूर्व में राजमहल तक फैला हुआ था। इसकी राजधानी चम्पापुर-मालती

१. सरस्वती (प्रयाग), मई १९१७ ई०।

२. था सार्वभौम अशोक का कैसा प्रताप बढ़ा-चढ़ा,
बिस्तार जिसके राज्य का था अन्य देशों तक बढ़ा।
थे गुप्तवंशी नृप, न धर्म्मद्वेष जिनको इष्ट था,
तात्पर्य तब भी भूमि पर भारत बहुत उत्कृष्ट था॥ २०७॥
(भारत-भारती)

(वर्त्तमान चम्पानगर) थी। वायुपुराण से सिद्ध होता है कि अंग की पश्चिमी सीमा पर मगध था और 'किउल' नदी दोनों प्रान्तों को विभक्त करती थी। खड्गपुर की वर्त्तमान पर्वतमाला इसकी दक्षिणी सीमा थी। राजमहल के निकट, जहाँ गंगा मुड़ी है, अंगराज्य की पूर्वीय सीमा थी। ईसा के १७०-२०० वर्ष पूर्व तक 'अंग' मगध के अधीन रहा। मगध का विख्यात राजा बिम्बसार 'अंग' का भी राजा था[१]।"

पाँचवीं शताब्दी में फाहियान नामक चीनी यात्री बिहार में भ्रमण करने आया था। उस समय एक ओर तो सम्राट् अशोक के स्वर्गारोहण के उपरान्त मौर्य-साम्राज्य का दीप-निर्वाण हो रहा था और दूसरी ओर बिहार पर धीरे-धीरे गुप्तवंशी राजाओं की धाक जम रही थी।

'टाडराजस्थान' इतिहास में तो न जाने क्यों ऐसा लिखा हुआ है कि "मौर्यवंश के पिछले राजा महाराज बृहद्रथ को राज्य से अलग करके अष्टमित्र नामक एक राजा ने बलात् मगध के सिंहासन पर अपना अधिकार किया। इसके वंश में आठ राजा हुए। ये आठों राजा ११४ वर्ष तक मगध के सिंहासन पर रहे थे। भूमित्र नामक एक वीर कण्व देश से चढ़ाई करने के लिए मगध देश में आया, और शीघ्र ही.... वहाँ के सिंहासन पर अपना अधिकार किया। उस सिंहासन पर क्रमानुसार उसके २३ वंशधर राज्य कर गये।"

जनवरी १६१७ की 'सरस्वती' के एक लेख से यह ज्ञात होता है कि "सन् ३०६ या उसके आसपास गुप्तवंश के चन्द्रगुप्त (प्रथम) ने लिच्छवियों की राजकुमारी कुमारदेवी का पाणिग्रहण किया। ···जिस समय यह विवाह हुआ था, उस समय मगध का आधिपत्य लिच्छवियों के हाथ में था; किन्तु इस विवाह-सम्बन्ध से वह राजशक्ति···चन्द्रगुप्त (प्रथम) के हाथ में चली गयी···गुप्तकाल के राजाओं के समय में, विशेष करके भारतवर्ष में, लिच्छविवंश का क्या हाल हुआ, यह इतिहास के गर्भ में छिपा हुआ है।"

रमेशचन्द्रदत्त भारतीय इतिहास के एक प्रधान आचार्य माने जाते हैं। वे अपने इतिहास में लिखते हैं कि "सम्राट् अशोक के बाद छः राजाओं ने चालीस वर्ष तक राज किया। उसके बाद मगध पर दाक्षिणात्य के आन्ध्रवंशी राजाओं का प्रभुत्व स्थापित हुआ। किन्तु कन्नौज के प्रतापी गुप्तवंशी राजाओं ने बलपूर्वक मगध को अपना लिया। इस वंश का पहला प्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (प्रथम) हुआ, जो विक्रमादित्य के नाम से भी प्रसिद्ध हो चुका था। उसका पुत्र समुद्रगुप्त ही उसका उत्तराधिकारी हुआ। यहाँ तक कि इसी समुद्रगुप्त ने काञ्ची (काञ्जीवरम्), केरल

१, आरा के हिन्दी-मासिक 'मनोरंजन' का विशेषांक।

(श्रावङ्कर) आदि देशों पर विजय-प्राप्त किया था। बंगाल, आसाम, नैपाल, फारस, सिंहल आदि देशों के राजा भी उसकी आज्ञा शिरोधार्य्य करते थे। वह बड़ा भारी विद्वान था, अतएव कविराज की पदवी से भूषित था। उसी का पौत्र कुमारगुप्त बड़ा वीर और पराक्रमी राजा था।"

अप्रैल १९१८ की 'प्रतिभा' [1] में श्रीमान् पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने एक लेख में लिखते हैं—"गुप्तवंशीय कुमारगुप्त भारतवर्ष का चक्रवर्त्ती राजा था। इसके विषय में शिलालेख में लिखा है—

चतुःसमुद्रान्तविलोलमेखलां, सुमेरु कैलास-बृहत्पयोधरान्।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनीं, कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति॥

इसके पुत्र स्कन्दगुप्त की भी बड़ी प्रसिद्धि है। चौथी और पाँचवीं शताब्दी में भारत पर आक्रमण करते रहनेवाले हूण-जाति के अनर्थकारी उपद्रवियों को स्कन्द-गुप्त ने ही हिन्दुस्तान से मार भगाया था। हूणों का वहिष्कार होने से देश में शान्ति का अटल साम्राज्य छा गया; पर गुप्तवंश का चिराग भी ठण्ढा हो चला।"

"गुप्तवंशीय नरेशों के समय में—विशेष करके सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (विक्रमादित्य) के समय में—देश की यथेष्ट उन्नति हुई थी[2]। विद्या, विज्ञान और विविध प्रकार की कलाओं का खूब प्रचार था। संसार-विख्यात महाकवि कालिदास इसी समय हो गये हैं। गुप्तवंशीय नरेशों के समय में शिल्पकला, चित्रणकला, भवननिर्माणकला, संगीतविद्या, संस्कृत-भाषा आदि की यथेष्ट उन्नति हुई थी। धार्मिक मानसिक और व्यापारिक उन्नति का खूब विकास हुआ था।"

चीनी यात्री ह्वेनसंग ने सातवीं शताब्दी में बिहार में आकर देखा था कि यहाँ बौद्धधर्म और हिन्दूधर्म प्रतिद्वन्द्विता के पथ पर साथ-ही-साथ अग्रसर हो रहे हैं। जनवरी १९१७ की 'सरस्वती' में एक ठौर लिखा है कि "कोई आश्चर्य नहीं यदि चीनी यात्री ह्वेनसंग अपनी भारतयात्रा के वर्णन में यह लिखता है कि ईसा की सातवीं शताब्दी में वैशाली में बौद्ध-धर्म अपनी क्षीण दशा में था और हिन्दू-धर्म का प्रचार बढ़ रहा था।"

जब उज्जयिनी के विक्रमशाली अधीश्वर भारत-सम्राट् विक्रमादित्य का सौभाग्यसूर्य्य अस्त हो चला तब कन्नौज के राजा धर्मप्राण, दानवीर, विद्वच्चक्रचूड़ामणि श्री महाराज हर्षवर्द्धन का प्रतापचंद्र उदित हुआ। इन सम्राटों की छत्रच्छाया में बिहार को थोड़े ही दिनों तक सुख की नींद सोने का सुअवसर मिला। परन्तु जब महाराज श्रीहर्ष गोलोकवासी हो गये तब बिहारोत्कल-प्रदेश को भी नैपालियों और

---

१. मुरादाबाद की मासिक पत्रिका
२. 'सरस्वती' (अगस्त १९१७ ई०)

तिब्बतियों (पहाड़ी डाकुओं) के भीषण आकस्मिक आक्रमणों के धक्के सहन करने पड़े थे। कुछ दिनों तक तो यहाँ की प्रजा सर्वथा अनाथ ही रही।

उड़ीसा को तो जब से अशोक ने जीता तब से वहाँ बौद्ध-मतानुयायी राजाओं का ही प्रबल प्रभाव बना रहा। ईसा के बाद की पाँचवीं शताब्दी में बौद्धराज्यों का उड़ीसा में पतन हुआ और हिन्दू-धर्म जड़ पकड़ने लगा।

'ययाति केशरी' नामक एक उड़िया राजा के वंशधर भुवनेश्वर में राज करते थे। उन्हीं केशरीवंशी राजाओं ने भुवनेश्वर का अपूर्व सूर्य्य-मन्दिर बनवाया। नृप केशरी ने ही शायद 'कटक' नगर बसाया था।

केशरी-वंश की इतिश्री होते ही वैष्णवधर्मावलम्बी गंग-वंश उठ खड़ा हुआ। इस वंश के राजाओं ने १२ वीं शताब्दी से सोलहवीं तक राज्य-शासन किया। इसी वंश में जगन्नाथजी के प्रसिद्ध मन्दिर के प्रतिष्ठापक अनंगभीम राजा हुए थे। इस वंश का अन्तिम राजा पुरुषोत्तम था, जो पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक राज करता रहा। उसने दक्षिणापथ पर चढ़ाई की थी और काञ्ची के राजा को परास्त कर उसकी कन्या से विवाह कर लिया था। इसी का उत्तराधिकारी प्रतापरुद्र था, जिसके समय में भगवान् चैतन्यदेव-सरीखे प्रातःस्मरणीय महात्मा उड़ीसा-प्रान्त को पवित्र और धन्य बनाने गये थे।

गंगवंश की समाप्ति होते ही उड़ीसा का इतिहास बिलकुल गड़बड़ाध्याय में पड़ गया। अन्ततोगत्वा सोलहवीं शताब्दी में 'काला पहाड़' ने उड़ीसा को जीतकर इसपर मुसलमानी राज्य का आवरण डाल दिया।[१]

नवीं शताब्दी में पालवंशी राजाओं ने 'बहार' नामक (पुराने) नगर में अपनी राजधानी स्थापित करके अनेक भव्य और विशाल भवन बनवाये थे। ये लोग राजपूत (क्षत्रिय) थे और समस्त भारत में इनकी बड़ी ख्याति थी।

"इन राजाओं के नामों के अन्त में 'पाल' शब्द मिलता है[२]। यद्यपि बंगाल, मगध और कामरूप पर इनका प्रभुत्व था, तथापि कुछ दिनों के लिए इनका राज्य पूर्वोक्त देशों के सिवा उड़ीसा, मिथिला और कन्नौज के पश्चिम तक भी फैल गया था। पालवंशी राजा बौद्ध-धर्मावलम्बी होने पर भी ब्राह्मणों का सत्कार किया करते थे। ब्राह्मण ही उनके मंत्री होते थे...उनके समय में शिल्प और विद्या पूर्ण उन्नति पर थी।"

जिस समय राज्यपाल समूचे आर्य्यावर्त्त-मण्डल पर एकच्छत्र राज्य करता था, उसी समय सुलतान महमूद गजनी भारत पर आक्रमण करके कन्नौज तक चढ़

१. सर रमेशचन्द्र दत्त के भारतीय इतिहास से सङ्कलित।
२. 'सरस्वती' (नवम्बर १९१७ ई०)

आया। इस पालवंश का अन्तिम राजा महिपाल हुआ, जिसका राज्य उड़ीसा के दक्षिणी सीमान्त तक पसरा हुआ था। इसने ५२ वर्ष के लगभग राज्य शासन करके इस वंश का नाममात्र शेष कर दिया।

फिर बारहवीं शताब्दी में यहाँ सेनवंशी राजाओं का झंडा गड़ा; किन्तु बहुत थोड़े ही समय तक सेन-राज्य का झंडा बिहार की भूमि में गड़ने पाया। सेनवंशी राजा बड़े कट्टर हिन्दू और संस्कृत-विद्यानुरागी थे। उन्हीं की राज-सभा में 'गीत-गोविन्द'-सदृश सुललित काव्य के रचयिता कविवर जयदेव शोभा पाते थे।

नवम्बर १९१७ की 'सरस्वती' में एक विद्वान् महाशय ने लिखा है कि "सेन-वंशियों ने बंगाल का बड़ा हिस्सा और मिथिला-प्रान्त (ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी में) पालवंशियों से छीन लिया था, जिससे उनका राज्य केवल दक्षिणी बिहार में रह गया था। इस वंश का अन्तिम राजा गोविन्दपाल था। उसे सन ११९७ ई० (विक्रम-संवत् १२५४) के निकट बख्तियार-खिलजी ने हराया···। ···जितने बौद्ध भिक्षु (साधु) वहाँ के 'बिहार' में थे, उन सबको भी उसने मरवा डाला"।

सर रमेशचन्द्रदत्त के अनुसार लक्ष्मणसेन, माधवसेन और केशवसेन लगातार सिंहासनारूढ होते आये; परन्तु बल्लालसेन इस वंश का सर्वापेक्षा प्रसिद्ध राजा हुआ था। खैर, अन्तिम राजा लक्ष्मणसेन बारहवीं शताब्दी के बीच में हुए। इन्होंने लगभग साठ वर्ष तक बड़ी शान्ति से राज्य किया। इनके अन्तिम दिनों में, अर्थात् १२ वीं शताब्दी का अन्त होते ही, यहाँ मुसलमानों ने अपनी विजय-पताका फहरायी।

बारहवीं शताब्दी बीतते-बीतते हिन्दू-राज्य का दीपक टिमटिमाने लगा। विदेशी यवनों के दुर्दमनीय आक्रमणों की जबरदस्त आँधी ने हिन्दू-राज्य-प्रदीप की क्षीण ज्योति बुझा दी। तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण के उषःकाल में ही हिन्दू-नरेशों के शान्तिपूर्ण शासन का अवसान हो गया।

राजस्थान-इतिहास कहता है कि "हाय! एक समय जिस मगधदेश का शासन दण्डवीर जरासन्ध के प्रचण्ड प्रताप से प्रकाशित हुआ था, वही वंश उस महाराज के वंश-लोप होने के साथ-ही-साथ क्रमानुसार छः वंशों के द्वारा चलायमान होकर अन्त में केवल शून्य नाम से शेष रह गया!"

बिहारोत्कल-प्रदेशों में जब हिन्दू-राज्यों का विध्वंस हो गया तब मुसलमानी सलतनत का दौर-दौरा हुआ। जमाने ने बेतरह पलटा खाया। बिहारोत्कल की वास्तविक अवस्था बिल्कुल बदल गयी। सबसे पहले मगध:पर मुहम्मद गोरी के प्रतिनिधि बख्तियार खिलजी ने सन् ११९८ में बड़ी भारी चढ़ाई करके विजय पायी थी। बिहार और उड़ीसा के क्रमशः पश्चिमीय और दक्षिणीय अंश पर सन् १३९७ तक जौनपुर

के बादशाहों का राजत्व स्थापित था। सन् १३६८ के तैमूरलंग के भारत आक्रमण के बहुत दिनों बाद, सैयद-बादशाह अलाउद्दीन और हुसेनशाह, अपनी सेना साथ लेकर, बिहार-उड़ीसा पर चढ़ाई करने के मनसूबे से टूट पड़े। किन्तु लोदी-वंश के बादशाहों ने बिहार के शासन की बागडोर अपने ही हाथों में थाम ली। सन् १५२६ में प्रथम मुगल-सम्राट् 'बाबर' विजय-पताका लेकर भारत में उतरा और १५२६ में ही उसने लोदी-वंश के पठान-बादशाहों को बिहार से बहिष्कृत करके अपनी दुहाई फेर दी।

शेरशाह और हुमायूँ से बक्सर के पास चौसा (ई० आर०) में लड़ाई छिड़ी; पर हुमायूँ परास्त हुआ और किसी तरह भागकर अपनी जान बचा सका। अन्ततः बिहार शेरशाह के ही हाथ लगा। इस अफगान शासक के नेतृत्व में बिहार ने कई स्थायी और सराहनीय कार्यों का मुँह देखा। बंगाल से पंजाब तक खूब पुख्ता पक्की सड़क बनी। सहसराम में, एक सुविशाल सरोवर के मध्यभाग में एक भव्य समाधि-मंदिर की रचना हुई, जिसके गुम्बद की चोटी नींव से एक सौ फुट ऊँची है और जल-तल से जिसकी ऊँचाई डेढ़ सौ फुट पड़ती है। शेरगढ़-जैसे दुर्गम दुर्गों का निर्माण हुआ। बटोहियों की सुविधा के लिए मुख्य-मुख्य स्थानों पर सराएँ बनीं।

शेर के बाद फिर हुमायूँ पहुँचा। दाऊद खाँ बिहार का अन्तिम पठान-बादशाह था, जिसे हुमायूँ के उत्तराधिकारी पुत्र मुगलसम्राट् अकबर की सेना ने राजमहल में घेरकर मार डाला। तदुपरान्त बिहारोत्कल-प्रदेश पर मुगल-साम्राज्य की छत्रच्छाया पड़ी। अकबर ने बिहार और उड़ीसा दोनों ही सूबों का शासन-भार दो प्रान्तीय शासकों के पुष्ट कन्धों पर रक्खा। इसी प्रकार मुगलों के शासन-काल में बिहारोत्कल-प्रदेश अधिकार-प्राप्त सूबेदारों द्वारा शासित होता रहा।

इसी बीच में अँग्रेज सौदागरों के बिहार में प्रवेश करने का वृत्तान्त भी सुना जाता है। जहाँगीर के राजत्व-काल में (१६२० ई० में) दो अंगरेज सौदागर, जमीन के रास्ते से, पटना में तिजारत करने आये; पर उनका सारा उद्योग व्यर्थ ही हुआ। शाहजहाँ के समय (१६३२) में भी फिर पटना में ही इनका उद्यम निष्फल हो गया। पुनः सन् १६३३ में आठ अँगरेज सौदागरों ने पहले-पहल आकर उड़ीसा के 'कटक'-जिले के 'हरिहरपुर' में और बाद 'बालेश्वर' में कारखाना खोला।

औरंगजेब के अन्तिम दिनों सन् १७०४ में 'मुर्शीदकुली खाँ' बिहार-उड़ीसा का नवाब-नाजिम बन बैठा। मुगलों का भाग्य-सूर्य्य अब निस्तेज और अस्त हो चला। मुगल-साम्राज्य की अन्धकारमयी सन्ध्या के बाद नवाबी सलतनत की चैती चाँदनी उगी।

मुर्शीद के वंशधरों ने लगभग ३६ वर्ष तक नवाबी गद्दी को सुशोभित किया। सन् १७४० में 'अलीवर्दी खाँ' ने विहार को अधिकृत किया। जबतक इसका नवाबी शासन रहा तबतक महरठों के लगातार आक्रमणों और नाना भाँति के भयानक उत्पातों से चारों ओर घोर अशान्ति छायी रही। उसकी सोलह साल की ही सलतनत बड़ी-बड़ी आफतों और मुसीबतों में फँसी रही।

इसी अली का पौत्र, मिर्जा मुहम्मद, जो 'सिराजुदौला' नाम से विख्यात था, सन् १७५६ में नवाबी गद्दी पर विराजमान हुआ। इसकी साल भर की नवाबी बस अँगरेजों के साथ लड़ते-झगड़ते ही बीत गयी। इसका प्रधान सेनाध्यक्ष 'मीरजाफर' नवाबी गद्दी का अधिकारी बनाया गया और सन् १७५७ में ही पलासी की प्रसिद्ध लड़ाई का सूत्रपात हुआ।

लड़ाई का अन्त होते-होते 'जाफर' के बेटे ने 'सिराज' को पकड़ उसका बध कर डाला। उसके बाद तीन वर्ष तक बिहार-उड़ीसा पर मीरजाफर की नवाबी छत्रच्छाया घनी बनी रही।

सन् १७६० में जाफर को सिंहासन-च्युत करके उसका जामाता 'मीर कासिम' नवाब बनाया गया, जिसने मुँगेर को अपनी अस्थायी राजाधानी बनायी। "पूर्व समय में पाल-राजाओं के बनाये हुए मुँगेर के किले को बंगाल के 'हुसेन शाह' ने नया चोला पिन्हाया था और मीर कासिम ने उसका जीर्णोद्धार किया[१]"।

बंगाल पर स्वाधिकार स्थापित कर लेनेवाले अँगरेजों के हाथ में कठपुतली बनकर नवाबी की गुलगुल गद्दी की गुदगुदी का सुख अनुभव करना 'कासिम' को नहीं रुचा। अन्त में लड़ाई-भिड़ाई हो ही गयी।

अँगरेजों की कूटनीति से ऊबकर पटना में कासिम ने लगभग दो सौ अँगरेजों का बध करवा दिया। इस भीषण हत्याकाण्ड के बाद कासिम को कई जगह हार खाकर, अन्त में, दिल्लीश्वर 'शाह आलम' की सहायता से, सन् १७६४ में, बक्सर की लड़ाई लड़नी पड़ी, जिसमें विजयी होने से फिर कासिम की गयी हुई नवाबी लौट आयी; पर एक ही वर्ष के लिए।

इसके बाद अब मुसलमानी सलतनत का चिराग ठण्ढा हो गया; अँगरेजी राज्य का अंकुर पनपने लगा। क्रमशः यह विदेशी राज्यवृक्ष मूलबद्ध होकर पल्लवित और कुसुमित हुआ।

शनैः-शनैः इस वृक्ष की सघन छाया में आर्य्यावर्त्त के पूर्वीय प्रदेश की प्रजा सुख से विश्राम करने लगी। बिहार के शासन का भार तो विषय-विलासी नवाबों

---

१. हिन्दी-मासिक 'मनोरंजन'-विशेषाङ्क।

ने ही अँगरेजों को सौंप दिया था ; उड़ीसा में भी महरठों की शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ जाने से बड़ी अशान्ति फैली ।

सन् १८०३ में उड़ीसा भी अँगरेजों की मुट्ठी में चला आया । सन् १८४७ में अँगरेजों ने उड़ीसा की जबरदस्त खोंड़-जाति पर चढ़ाई करके मानव-बलिदान की रोमाञ्चकारी कुप्रथा का मूलोच्छेद कर दिया ।

सन् १८२५ में संताल-परगना की बनैली जातियों (सौंतालों) ने अँगरेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता का लोहा लिया; परंतु सभी स्वतंत्रताप्रेमी सौंताल विद्रोही दमननीति से पददलित किये गये ।

बिहारोत्कल-प्रदेश में अँगरेजों की राज्यलक्ष्मी का भव्य मंदिर अभी शान्ति-प्रदीप के आलोक से जगमगाया ही चाहता था कि इतने में पश्चिम से विद्रोह की आँधी अचानक आ पहुँची । सन् १८५७ में सिपाही-विद्रोह की आग मेरठ में भड़की । वह आग दिन-दूनी रात-चौगुनी धधकती गयी और बड़े जोर से पूरब की ओर बढ़ती चली आयी ।

बिहार के शाहाबादजिले में 'जगदीशपुर' प्रसिद्ध राजस्थान है । वहाँ के नामी और समर्थ राजा उज्जैन-वंशावतंस बाबू कुँवर सिंह भी बड़ी बहादुरी से इस विद्रोह में शामिल हो गये । उनके शरीक होने से बिहार के गया और उड़ीसा के सम्बलपुर जिले में भी घोर विद्रोह तथा अशान्ति की दुर्दान्त मूर्त्ति के दर्शन हुए । मालूम हुआ कि इन दो-तीन जिलों से, लगभग दो सप्ताह के लिए, अँगरेजी राज्य उठ ही गया ।

चारों ओर लूट-खसोट और मार-काट मच गयी । निर्बल कुचल दिये गये । धन-जन-मान की शोचनीय अवस्था हो गयी । अन्त में, अँगरेजों ने विप्लव की बेतरह भड़की हुई आग बुझा डाली । इसी विप्लवाग्नि को पदमर्दित कर अँगरेजों ने यहाँ खूब डटकर पैर जमा लिया ।

सन् १९१२ में, जब सम्राट् पञ्चम जार्ज का राज्याभिषेक दिल्ली में हुआ, और भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली में बदल दी गयी, तब बिहार और उड़ीसा तथा छोटानागपुर एक ही प्रदेश बनाकर एक लेफटिनेण्ट गवर्नर (छोटेलाट) के अधीन कर दिये गये । छोटानागपुर के सीमान्त के पास की पाँच रियासतें मध्यप्रदेश में मिला दी गयी थीं, जिनके परिवर्त्तन में सम्बलपुर जिला और अन्यान्य चार देशी राज्य इसमें शामिल कर लिये गये ।

बिहार का प्राचीन महत्त्व

बिहार के प्राचीन गौरव की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए एक विद्वान् ने लिखा है—

"[१]भारत में सबसे पहले सभ्यता तथा विद्या का प्रचार बिहार में ही हुआ। वेदान्त-शिक्षा में अत्यन्त प्राचीन काल से बिहार ही अग्रणी है। मिथिलेश्वर महाराज जनक ईश्वरीय तत्त्व के जाननेवाले थे। उनसे शिक्षा ग्रहण करने के लिए महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासदेव के पुत्र श्री शुकदेवजी भक्तिभाव से नौ दिनों तक उनके द्वार पर खड़े थे। प्रतिदिन सैकड़ों महर्षि उनसे वेदान्त-तत्त्व सीखने आते थे। 'उन जीवन-मुक्त जनक महाराज की राजधानी इसी बिहार-प्रान्त (मिथिला) में थी।' न्याय का भी आविष्कर्त्ता बिहार ही है। बिहार से ही 'नदिया' (बंगाल) में न्याय गया है। 'जिस समय नदिया के संस्कृत-विद्यापीठ का नाम तक न था, उस समय मुख्यत: बंगाल के और अमुख्यतः अन्य प्रान्तों के भी अधिक-तर विद्यार्थी संस्कृत-शिक्षा—विशेषतः दर्शनशास्त्र की शिक्षा—के लिए मिथिला ही आते थे।' नव्य न्याय का भी सूत्रपात बिहार में ही हुआ था। कपिल के सांख्यसूत्र का प्रचार भी हमारे इसी प्रान्त में सर्वप्रथम हुआ था। 'न्याय-दर्शन' के रचयिता गौतम तथा सांख्यदर्शन के जन्मदाता कपिलमुनि को कौन नहीं जानता ? जिस मिथिला ने ऐसे-ऐसे महानुभावों को उत्पन्न किया, उसकी महिमा अवर्णनीय है। बौद्ध, जैन, चार्वाक् आदि के जाल से भारतवासियों का उद्धार करनेवालों में तीन महात्मा प्रधान माने जाते हैं—कुमारिलभट्ट, उदयनाचार्य्य और शंकराचार्य्य। इनमें से पहले दो बिहार के ही अधिवासी थे।' बिहारभूषण कुमारिल भट्ट ने मीमांसा पर वार्त्तिक बनाया। 'सुनते हैं, मिथिला के महाराज भैरवसिंह के समय में एक बार मैथिल विद्वानों की गणना की गयी तो तेरह सौ केवल मीमांसक निकले।' व्याकरण के सर्वमान्य आचार्य्य पाणिनि पटना में ही पढ़ते थे। वार्त्तिककार कात्यायन अथवा वररुचि 'मनेर' (पटना-जिला) के रहनेवाले थे। अभी तक मनेर के पास कात्यायनी देवी का मंदिर है। 'शायद याज्ञवल्क्य मुनि का निवास-स्थान भी मिथिला में ही था। उन्होंने याज्ञवल्क्य-स्मृति नामक धर्मशास्त्र की रचना करके इस देश को अनंत लाभ पहुँचाया।' याज्ञवल्क्य-स्मृति की प्रतिष्ठा अति प्रतिष्ठित है। महर्षि याज्ञवल्क्य मिथिला में रहते और मिथिलापति विदेह के गुरु थे। ज्योतिष के आचार्य आर्य्यभट्ट भी पटना के ही रहनेवाले थे। चाणक्य का नाम दुनिया-

१ यह अंश हिन्दी-मासिक 'मनोरंजन' के विशेषांक से उद्धृत किया गया है ; किन्तु बीच-बीच में '—' ऐसे चिन्ह के अन्दर जो अंश उद्धृत है, वह 'सरस्वती' का है।—ले०

भर में मशहूर हैं। वे बड़े भारी नीति-शास्त्रज्ञ थे। उनके पुत्र का नाम विष्णुशर्मा था, जिन्होंने 'हितोपदेश' नाम की नीतिपूर्ण पुस्तक बनायी है। उनके शिष्य कामन्दक का बनाया हुआ 'कामन्दकीय नीतिसार' भी प्रसिद्ध नीतिग्रन्थ है। महा-महोपाध्याय वाचस्पति मिश्र ने दर्शनों पर टीकाएँ की हैं। वे बौद्ध तथा जैन दर्शनों के भी पूर्ण ज्ञाता थे। उनकी जन्मभूमि भी बिहार ही है। पण्डित मंडन मिश्र बड़े भारी कल्पज्ञ थे। 'मिथिला की विदुषी स्त्रियों में शिरोमणि मण्डन मिश्र की स्त्री कही जा सकती है। जब मीमांसकाचार्य्य मंडन मिश्र और परिव्राजकाचार्य्य शंकर स्वामी के शास्त्रार्थ में मध्यस्थ होने योग्य और कोई न मिल सका, तब मण्डन मिश्र की स्त्री 'भारती' को ही मध्यस्थता का भार सौंपा गया। सुना जाता है कि बाल-ब्रह्मचारी शंकराचार्य्य शृंगाररस-विषयक शास्त्रार्थ में भारती से परास्त हो गये थे।' 'महाराज शिवसिंह मिथिला के महीपों में बड़े नामी हो गये हैं। उन्होंने गजनी के शासकों का दर्प चूर्ण किया था। विद्यापति (मैथिल कोकिल) इन्हीं शिवसिंह के सभापंडित थे। शिवसिंह की रानी लखिमा ठकुराइन मिथिला की विदुषी स्त्रियों में रत्नरूपा हो गयी हैं। इन्हीं का कहा हुआ है, कि—रघुवंशमपि काव्यं ? तस्यापि टीका ? सापि संस्कृतमयी ?' बिहार-प्रान्त बहुत प्राचीन समय से राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक बातों के कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। "प्राचीन समय का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय नालन्दा[1] का था, जो पटना जिले में ही अवस्थित है। इसमें दस हजार विद्यार्थी और १४०० महाध्यापक थे। सभी को भोजन, वस्त्र और पुस्तकें दी जाती थीं। इतना बड़ा कॉलेज दुनिया-भर में कहीं न था। इस विद्यालय के साथ एक बड़ा भारी पुस्तकालय था, जिसकी पुस्तकें बख्तियार खिलजी ने जला डालीं। कहते हैं कि कई महीनों तक लगातार दिन-रात पुस्तकें जलती रहीं[2]।"

"ईसा का भारत में आगमन" नामक पुस्तक में लिखा है कि वे राजगृह में आये थे और उन्होंने बौद्धों से पाली-भाषा सीखकर धार्मिक शिक्षा ग्रहण की थी। जैनियों के बीसवें तीर्थङ्कर सुव्रत स्वामी का कल्याणक (निर्वाण) राजगृह में हुआ था। चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामी का जन्म 'विशाला' (वैशाली, मुजफ्फरपुर) में हुआ था और पावापुरी (पटना-जिले) में उनका कल्याणक हुआ था[3]।

---

१. 'सभी शास्त्रों' की शिक्षा यहाँ दी जाती थी। चीन, स्याम, सिंहल आदि देशों से भी विद्यार्थी शिक्षा पाने तथा अपनी शंका-निवृत्ति के लिए यहाँ आते थे।'

—'सरस्वती', मई १९१७

२. "Learned men" wrote Hiuen Tsiang "who desire to acquire renown come in multitude to settle their doubts and then the streams of their wisdom spread far and wide."

३. 'मनोरंजन'—विशेषांक।

भूमण्डल-भर में ज्ञान की प्रभा का विस्तार करनेवाले प्रातः-स्मरणीय भगवान् गौतम बुद्धदेव भी, दक्षिण बिहार के बोधगया नामक पुण्यस्थान में ही, पीपल की शान्ति-विस्तारिणी शीतल छाया में समाधिस्थ होकर, दिव्य ज्ञान और परम पावन निर्वाण के अधिकारी हुए थे। बंगाल के सासंक (शशांक ?) नामक राजा ने उस परम पवित्र पीपल के पेड़ को जलाकर भस्म कर दिया और पाटलिपुत्र को लूटकर बिहार के बौद्ध मठों को तहस-नहस कर डाला।

पतिव्रता-शिरोमणि श्रीमती महारानी सीता जी बिहार में ही यज्ञभूमि से प्रकट हुई थीं। मिथिला-प्रान्त का सीतामढ़ी नामक स्थान उन्हीं के शुभ-जन्म से धन्य और स्तुत्य हुआ है। महर्षि विश्वामित्र, गौतम, च्यवन और महाकवि बाणभट्ट की साधना-भूमि बिहार ही था। सिक्खों के दसवें गुरु श्री गुरुगोविन्द सिंह जी की जन्मभूमि पटना ही है। पटना-सिटी का हरमन्दिर इसी कारण सिक्खों का भारत-प्रसिद्ध तीर्थ है।

इसी प्रकार बिहार की इस पुण्यभूमि में अनेक बड़े-बड़े धर्मप्रवर्त्तक, धर्माचार्य, धर्म-संरक्षक, धर्मनिष्ठ महात्मा, महातपा महर्षि, दिग्विजयी वीर, विक्रम-वैभवशाली सम्राट् , ख्यातनामा कवि-कोविद, विख्यात वैयाकरण, जगद्वन्द्य तत्त्वज्ञ, विदुषी आर्य ललना, सकल-शास्त्र-विशारद पंडित, सिद्ध योगी, दानवीर, कर्मवीर और धर्मधुरंधर पुरुष हो चुके हैं। इन्हीं कारणों से बिहार 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' धन्य बना रहेगा और भारत के अन्यान्य प्रान्तों से किसी तरह इसका गौरव कम नहीं हो सकता।

बिहार-उड़ीसा के प्रसिद्ध दर्शनीय स्थल[१]

(क) बिहार

(१) पाटलिपुत्र—मेघस्तन नामक विदेशी भारत-यात्री ने इसे हिरण्य-वाह (शोणभद्र) और भागीरथी गंगा के पुण्य संगम पर स्थित देखा था, जिस समय इसके चतुर्दिक् तीस हाथ नीची खाई थी तथा दीवार में ५७० बुर्ज और ६४ फाटक थे। किंतु, अब यह महान् नगर उक्त संगम से बड़ी दूर पूर्व की ओर गंगा-तटस्थ है। इसका आधुनिक नाम 'पटना' है। इसका वह पुराना रूप भूगर्भ का गौरव बढ़ा रहा है। कुछ दिनों से भू-तत्त्व-वेत्ताओं ने, प्राचीन नगर के मुख्य स्थान का अनुसंधान करके, भू-गर्भ से बड़े परिश्रम के साथ अनेक प्राचीन पदार्थ निकलवाये हैं, जिन्हें देखकर भारत के अनुपम कला-कौशल अनुमान किया जा सकता है।

पटना में मुसलमानी राज्य के कई चिह्न हैं। जाफर खाँ की पुष्प-वाटिका, शाह अर्जानी की दरगाह, शेरशाह की मसजिद (गुलजारबाग), पत्थर की मसजिद

---

१. विशेषांक 'पाटलिपुत्र' से संकलित।

(औरंगजेबी समय की बनी हुई), अजीम (औरंगजेब) के पौत्र की बनवाई हुई नगर की चहारदीवारी इत्यादि। दरगाह के समीप अशोक के एक स्तम्भ का एक खण्ड अबतक वर्तमान है। रेलवे-लाइन से कुछ दूर दक्षिण, एक बस्ती में, यक्ष की मूर्ति मगध के श्रेष्ठ कला-कौशल का परिचय दे रही है। शहर के अंदर नानकशाहियों के कई गुरुद्वारे और हिन्दुओं के पुराने मन्दिर हैं।

नगर के पश्चिमी खण्ड में 'गोलघर' नामक एक बहुत बड़ी गुम्बददार इमारत--ईंटों की बनी हुई--९६ फुट ऊँची है, जिसकी दीवार २१ फुट चौड़ी है। यह इमारत सन् १७८६ में दुर्भिक्ष-दलित दरिद्र-दुखियों के लिए अन्नादि एकत्र--सञ्चय--करने के लिए बनी थी। इससे कुछ दूर पूर्व खुदाबख्शखाँ की 'ओरिएण्टल लाइब्रेरी' है। फारसी-अरबी-भाषाओं के दुष्प्राप्य एवं अमूल्य ग्रन्थ इसमें संग्रह किये गये हैं। लार्ड कर्जन ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

(२) *बिहार शरीफ (पटना जिला)*--यहाँ का पुराना किला और अन्यान्य इमारतों के पुराने खँड़हर देखने योग्य हैं। शहर के एकदम बाहर दो प्राचीन पुल अबतक स्थिर हैं। शहर से आधा कोस पश्चिमोत्तर 'पीर पहाड़' पर बड़े-बड़े प्रसिद्ध फकीरों की कब्रें हैं। बिहार के प्रसिद्ध संत मलिक इब्राहिम की दरगाह यहीं है। एक दरगाह मखदुमशाह की भी है। दोनों पहुँचे हुए फकीर थे। वे क्रमशः सन् १३८७ और १३९७ में मरे थे। अकबर के समय में बिहार गवर्नर 'सईद खाँ' ने जुमा मसजिद यहाँ बनवायी थी। कचहरी-स्टेशन के पास 'नवरत्न' नामक एक इमारत है, जहाँ किसी मुसलमान शासक का ग्रीष्मावास था।

(३) *राजगिरि (पटना-जिला)*—यह स्थान बड़ा ही रम्य है। वैभारगिरि, विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि और सोनगिरि नामक पाँच पहाड़ियों से घिरा होने के कारण इसकी प्राकृतिक सुषमा पराकाष्ठा को पहुँच गयी है। यहाँ अनेक उत्तमोत्तम स्थान दर्शनीय हैं। वैभार के उत्तर सतपाणिगुहा है, जिसमें बौद्धों की बैठक हुई थी। वैभार के दक्षिण सोनभंडार है, जिसमें बुद्धदेव के निर्वाण के बाद पहली बैठक हुई थी। विपुलगिरि पर देवदत्तखोह प्रसिद्ध है।

राजगिरि से 'गिरियक' जाते समय नाग-मंदिर मिलता है। उसके पासवाले एक कूप में माया, बुद्धदेव और नन्दी-संयुक्त शिव, ये तीन मूर्त्तियाँ मिली थीं। विपुलाचल से 'नेकपाई' बाँध तक, रत्नगिरि के ऊपर, पुराने समय की बनी हुई प्रस्तर-प्राचीर, बावनगंगा के किनारे से होकर चलनेवाले यात्रियों को, स्पष्ट दीख पड़ती है। यहाँ उष्णजल के पाँच झरने और कुण्ड हैं। पूर्व-दक्षिण के कोने पर ऊपर की ओर गृद्धकूट पर्वत मिलता है। उक्त गिरियक पर हंसस्तूप

देखने योग्य है। गृद्ध्रकूट के शिखर पर बुद्धदेव के, ईंट के बने ,स्तूप की नींव अबतक विराजमान है।

(४) *बराबरगिरि (गया जिला)*—पटना-गया-रेलवे-लाइन के 'वेला' स्टेशन से तीन कोस पर यह पर्वत है। इसका पूर्वीय भाग नागार्जुनी नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्वत में सात कृत्रिम गुहाएँ हैं, जिनके द्वार पर शिलालेख भी हैं। इसमें कर्णचौवर सुदामा खोह, लोमसऋषि खोह, विश्वझोपड़ी इत्यादि प्रसिद्ध गुफाएँ भी हैं। अशोक ने इन्हें आजीवक संन्यासियों के लिए बनवाया था। पर्वतमूल में पातालगंगा नामक निर्मल निर्झर है। ऊपर की ओर सिद्धेश्वरचोटी पर सिद्धेश्वर महादेव जी हैं।

(५) *जलप्रपात*—गया-जिले की दक्षिणी सीमा की ओर, ध्रुवऋषि-शिखर से पूर्व, महावर शिखर है। इसी में से एक नदी निकलती है, जो दक्खिन से घूमकर आती हुई, इसी ऊँचे पर्वत से गिरकर, ६० फुट ऊँचा जलप्रपात बनाती है। कोकनद वा काकोलत के नाम से यह प्रपात प्रसिद्ध है। इसकी प्राकृतिक शोभा विचित्र है। अनेक दर्शक प्रतिवर्ष आते हैं। एक मेला भी लगता है।

(६) *आरा-हाउस*—यह शाहाबाद-जिले के 'आरा' नगर में है। बाबू कुँवर सिंह ने सन् १८५७ के विद्रोह में इसी धूस के अन्दर अनेक अँगरेजों को घेर रक्खा था।

(७) *सहसराम (शाहाबाद)*—यह पुराना शहर पठानवीर शेरशाह की जन्मभूमि है। शेर के पिता हुसेन खाँ के मकान का खँडहर आज तक देखने लायक है, जिसमें हुसेन की कब्र है। शहर से पश्चिम, एक बड़े भारी सरोवर के बीचोबीच, एक सुविशाल गुम्बददार इमारत के अन्दर, शेरशाह की कब्र है। पोखरे में चारों ओर पक्के घाट हैं। एक ओर से पुल द्वारा समाधि-मंदिर का प्रवेश-मार्ग है। शेरशाह के भतीजे सलीम की कब्र इससे कुछ ही दूर है। सहसराम पहाड़ी का प्राकृतिक रूप मनोहर और नेत्ररञ्जक है।

(८) *रोहतास (रोहिताश्वगढ़)*—यह गढ़ शाहाबाद-जिले की दक्षिणी सीमा पर, यह एक ऊँचे पहाड़ पर, सोनभद्र नदी के किनारे है। सत्यहरिश्चन्द्र के सुपुत्र रोहितास के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि यहाँ किले में सूर्य्य- देव का विशाल मंदिर था। उसे अब रोहिताश्व का मंदिर बतलाते हैं। औरंगजेब ने एक देवमंदिर का नाम-निशान यहाँ से मिटाया था।

सन् ११०० ईसवी में यह गढ़ हिन्दू-राजा 'प्रतापधवल' के हाथ में था। उनके वंशज राजा चिन्तामणि से इसे शेरशाह ने लिया। यह किला पूर्वसे पश्चिम तक दो कोस, उत्तर-दक्षिण ढाई कोस और घेरे में १४ कोस, सोन-नद से डेढ़ कोस अलग, १००० फुट ऊँचा है। अन्दर घुसने के तीन मुख्य द्वार हैं, जिसमें एक बहुत बड़ा है।

किले के अन्दर एक बड़ा-सा महल है, जिसके प्रत्येक द्वार पर हाथी की एक मूर्ति है। आगे की तरफ एक बारहदरी है। इसके भीतरवाले दालान में तीन कोठरियाँ हैं। आगे बढ़ने पर शाहनशीन नाम का रास्ता है, जिसके द्वारा दुर्ग के एक छोर से दूसरे छोर तक सुगमता से जा सकते हैं। राजा मानसिंह का शयनागार (रंग-महल), रौशन शहीद का चौक, जालदार पत्थर से घिरा हुआ राजसिंहासन, फूलमहल, फुलवारी तथा शीशमहल दर्शनीय स्थान हैं। और भी बहुत-सी पुरानी चीजें देखने के योग्य हैं।

(९) *भोजपुर (शाहाबाद)*—पहले यह नगर गंगातट पर था। अब यहाँ से गंगा जी कई कोस उत्तर बहती हैं; परन्तु अभी तक पुरानी गंगा का निशान बहुत-कुछ है। कई ऊँचे-ऊँचे टीलों को देखने से मालूम होता है कि सचमुच यह नगर किसी समय बहुत बड़ा रहा होगा। राजा भोज का 'नवरत्न' नामक राजप्रासाद आज तक भग्नावस्था में वर्तमान है। यह महल बहुत ही ऊँचा और विस्तृत था। आधुनिक दशा से साफ प्रकट होता है कि इसका काम बड़ा पक्का बना था। बनावट भी विचित्र है। ई० आई० आर (अबके ईस्टर्न रेलवे) के 'डुमराँव' स्टेशन से उत्तर यह स्थान बहुत निकट है।

(१०) *राजमहल (सन्ताल परगना)*—गंगा के दाहिने किनारे पर यह नगर सुशोभित है। पुराना नाम इसका 'आगमहल' प्रसिद्ध है। कलिंग से लौटती बार राजा मानसिंह ने इसे अपनी राजधानी बनाकर आज का यह नया नाम दिया था। मुर्शीद कुली खाँ ने फिर इसे राजधानी बनाया। सौ फुट का लम्बा संगीन-दालान, जो अभी ज्यों-का-त्यों खड़ा है तथा मैना-तालाब देखने के योग्य ही हैं।

(११) *अजगवीनाथ (भागलपुर-जिला)*—जमालपुर से आठ मील पूर्व, सुलतानगंज स्टेशन से उत्तर, गंगा की मध्य धारा में, एक पहाड़ी चट्टान पर यह प्रसिद्ध शिवमंदिर है। यात्री लोग यहाँ नाव से जाते हैं। मंदिर पुराना है। स्थान स्वच्छ और चितचोर है। आसपास चट्टानों पर विष्णु, गणेश, सूर्य, भगवती, महावीर, हनुमान आदि देवताओं की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं।

(१२) *कारीसाथ-मसाढ़*—शाहाबाद जिले में ई० आई० आर० (अब ई० आर०) का स्टेशन है। वाल्मीकि-रामायण में लिखा है कि 'करुष' और 'मलद' क्षेत्र बड़े पवित्र हैं, जहाँ इन्द्र की हत्या छूटी थी। वे ही दोनों क्षेत्र क्रमशः कारीसाथ और मसाढ़ गाँव के रूप में अब विद्यमान हैं। दोनों गाँव पास ही पास हैं। इनकी भूमि में अनेक शिवमूर्त्तियाँ हैं। काशी की भाँति लगभग घर-घर में शिवलिङ्ग हैं। ये मकान बनाते समय जमीन से निकले थे। कारीसाथ के पास जैनियों का एक बड़ा मंदिर है।

उसके पूर्व एक शिवजी हैं। बहुमूल्य रत्नों की भाँति उनका रंग प्रतिक्षण कुछ बदलता रहता है। कहते हैं कि उनके पास जाने से 'तिसरिया' (तीसरे दिन आनेवाला ज्वर) छूट जाता है। जैनमंदिर की दीवार में भी एक तेजस्वी शिवलिंग है।

ह्वानसांग ने 'मसूण' नामक स्थान में अनेक बौद्ध तथा हिन्दू-मंदिर देखे थे। वही 'ममूण' धीरे-धीरे 'मसूढ़' के बाद 'मसाढ़' हो गया हो तो संदेह नहीं। मसाढ़ के पास बहुत लम्बा-चौड़ा जलाशय, बिगड़ी दशा में, विद्यमान है। इसे लोग बाणासुर की कन्या 'उषा' की क्रीड़ावापी कहते हैं और यह आज भी उषा-सरोवर के नाम से मशहूर है। यहाँ से कुछ दूर दक्षिण बलिगाँव है, जहाँ शिवभक्त बाणासुर के पूर्वज दैत्यराज बलि की राजधानी थी।

(१३) *मनेर*—पटना-जिले में बहुत प्रसिद्ध स्थान है। ई० आई० आर० के बिहटा स्टेशन (अब ई० आर०) से छः मील उत्तर है। यहाँ छोटी और बड़ी दो दरगाहें हैं। ये दो प्रधान फकीरों की कब्रें हैं। इनकी इमारत अत्यन्त सुन्दर है। इनके झँझरीदार पत्थरों पर विचित्र फूलों की नक्काशी है। जहाँ-तहाँ कुरानशरीफ के वाक्य खुदे हैं। छोटी दरगाह के आगे एक विस्तृत सरोवर है, जिसमें चारों ओर पक्के घाट हैं। यहाँ एक दुर्गावाहन सिंह की मूर्ति है। निस्सन्देह यहाँ कभी हिन्दुओं का आधिपत्य था। सन् १५३० में 'बाबर' ने अपनी दोपहर की नमाज यहीं पढ़ी थी।

(१४) *अशोक-स्तम्भ एवं स्तूप*—चम्पारन के अन्तर्गत, 'केशरिया-स्तूप' से दस कोस पश्चिमोत्तर, लउरिया गाँव में,ईसा से २४६ वर्ष पहले का एक अशोक-स्तम्भ है। पुनः बेतिया (राजधानी) से सात कोस उत्तर-पश्चिम में एक और विशाल अशोक-स्तम्भ है। यह एक ही पत्थर का बना हुआ ३२ फुट ६।। इञ्च ऊँचा है। जड़ में इसकी परिधि का व्यास ३५।। फुट और शिखर पर २६ फुट २ इंच है। इसपर मुकुट-स्वरूप एक व्याघ्र ६ फुट १० इञ्च ऊँचा एक पत्थर के गोलाकार लम्ब पर, विराजमान है। स्तम्भ से बहुत थोड़ी दूर पश्चिम 'नन्दगढ़' नामक बहुत बड़ा स्तूप है। यह स्तूप आज तक बुद्धदेव की पवित्र समाधि का परिचय दे रहा है। इस गढ़ के गर्भ में एक लोहे के सन्दूक में एक मानुषिक हड्डी भी मिली थी। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने इस गढ़ को समाधि स्थान ही निश्चित किया है।

उपर्युक्त लउरिया से १० कोस उत्तर 'रामपुरवा' का धराशायी स्तम्भ भी देखने योग्य है। शिखा पर घंट विराजित है। वृषभखम्भ उसके निकट ही, बिना किसी लेख के, पड़ा है। हाल में यहाँ एक व्याघ्र की मूर्ति खोदकर निकाली गयी है। ये सब स्थान अद्यावधि अपनी प्राचीनता और प्रसिद्धि का पूर्ण परिचय दे रहे हैं। इन्हें एक प्रकार से बौद्धतीर्थों में परिगणित करें, तो कोई आपत्ति नहीं है।

बिहार में और-और भी अनेक स्थान दर्शनीय हैं।

(ख) उड़ीसा प्रान्त

(१) ¹*सूर्य्य-मंदिर*—जगन्नाथ पुरी से १८ मील उत्तर, समुद्रतट पर 'कनारक' गाँव (कोणार्क) के पास, एक पुराना टूटा हुआ, पर बड़ा अद्भुत, सूर्य्य-मंदिर है। सन् १२४१ में राजा नृसिंह देव लंगोरे ने बनवाया था। उड़ीसा की बारह बरस की आमदनी उसमें खर्च हुई थी। यद्यपि शिखर बिल्कुल गिर गया है; फिर भी जितना बाकी है, सवा सौ फुट के लगभग ऊँचा होगा। कहते हैं कि किसी समय उसके ऊपर एक टुकड़ा चुम्बक का इतना बड़ा लगा था कि लोहे के कील-काँटेवाले जहाजों को, जो उस तरफ से निकलते थे, किनारे पर खींच लेता था। उस मंदिर का जगमोहन अथवा सभामण्डप साठ फुट लम्बा, इतना ही चौड़ा और ऊँचा है। दीवारें २० फुट तक मोटी हैं। वह मंदिर निरे पत्थरों का बना है। पत्थर लोहे से आपस में जड़ दिये गये हैं। पत्थरों में अनेक प्रकार की मनोहर मूर्तियाँ और लतापुष्प के विचित्र चित्र बड़ी निपुणता से उरेहे गये हैं।

(२) *खंडगिरि*—भुवनेश्वर से पाँच मील पश्चिम इस नाम की पहाड़ी है। उसके कई स्थानों में पत्थर काट-काटकर सुन्दर सुचिक्कण गुफाएँ बनाई हुई हैं। शिलालेखादि भी हैं। ये सब बहुत पुराने हैं। वहाँ बहुत-से पुराने मंदिरों के टूटे हुए खंभे भी पड़े हुए हैं। जैन-मत की बहुत-सी मूर्त्तियाँ भी हैं। उड़ीसा के केशरी-राजकुल के महाराज ललितेन्द्र के सुन्दर महलों के चिह्न भी वर्त्तमान हैं।

(३) *उदयगिरि*—इस पहाड़ी में भी ईसा से सैकड़ों वर्ष पूर्व की बनी हुई सुन्दर सुहावनी गिरि-कन्दराएँ हैं। प्राचीनता और अतीत भारत की शिल्प-कुशलता की दृष्टि से इनका महत्त्व बहुत अधिक है। यह पुरी-जिले में है।

(४) *अस्सीगिरि*—कटक-जिले में यह पहाड़ी भी उसी गौरव-गरिमा के गर्व से सिर ऊँचा किये हुए है, जिस गौरव को पाकर उदय-खण्डगिरि पहाड़ियाँ आज तक सम्मानित हो रही हैं। इसमें भी अनेक सुन्दर गिरिगह्वर, जीर्ण-शीर्ण मठ, मन्दिर और पुरानी कारीगरी के अनूठे-अनूठे नमूने दर्शन-महत्त्व से परिपूर्ण हैं।

(५) *जहाजपुर*—कटक से ३५ मील उत्तर वैतरणी-तटस्थ प्राचीन नगर है। अब नगर का ध्वंसावशेष मात्र है। मन्दिरों और महलों के खँडहरों से मालूम होता है कि यह किसी समय प्रसिद्ध नगर और हिन्दूतीर्थ था। यहाँ अनेक मूर्तियाँ भी हैं।

उड़ीसा में भी कई और दर्शनीय स्थान हैं। श्री जगन्नाथ जी का मन्दिर तो जग-जाहिर ही है।

---

१. माननीय राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के 'भूगोल हस्तामलक' से।

बिहारोत्कल में पुरातत्त्व-सामग्री

बिहार-प्रान्त की प्राचीन सभ्यता के गौरवस्थलों में पहला नम्बर 'राजगृह' का है। ऐसे पवित्र स्थल वास्तव में पृथ्वीतल पर स्वर्ग-सुख का अनुभव करानेवाले हैं। इसके बाद 'लउरिया-नन्दगढ़ (चम्पारन) का नम्बर आता है। यहाँ वैदिक युग के समाधिस्तूप हैं। बराबर की पहाड़ियों (गया-पटना) में कुछ ऐसी गुफाएँ बनी हुई हैं, जिनका प्राचीन-भारत के इतिहास से गाढ़ा सम्बन्ध है। गुप्तेश्वरनाथ की पहाड़ियों (शाहाबाद) में भी कुछ गुफाएँ हैं। 'बराबर' की गुफाओं के समान ये भी अन्धकारमय हैं। उक्त गुफाओं की रचना विचित्रतापूर्ण है। राजगिरि का गिरियक-स्तूप, तिरहुत कमिश्नरी के अनेक बौद्धचैत्य तथा बौद्धस्तूप पुरातत्त्व-सम्बन्धी रहस्यों से भरे हुए हैं।

पटना नगर के पास 'कुम्हरार गाँव में प्राचीन पाटलीपुत्र का ध्वंसावशेष भूगर्भ से प्रकट हो रहा है। वहाँ पुरातत्त्व की अमूल्य वस्तुएँ मिल रही हैं। बिहार, वैशाली, नालंदा, भोजपुर आदि नगरों में भी बहुमूल्य पुरातत्त्व-सामग्री भरी पड़ी है, जो प्राचीनता की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

जहाँ बुद्धदेव ने सम्बोधि प्राप्त की थी, वह 'बोध गया' और असंख्य शिवलिंगों तथा प्राचीन मूर्त्तियों से सम्पन्न 'मसाढ़' गाँव (शाहाबाद) भी पुरातत्त्वज्ञों के विशेष ध्यान देने योग्य हैं। पुरातत्त्व के अनुसन्धान करनेवालों ने यह ढूँढ़ निकाला है कि भागलपुर के पास कहलगाँव (Colgong) में किसी समय 'कुल-[illegible] विश्वविद्यालय' था। भागलपुर-जिले में ही विक्रमशिला-विश्वविद्यालय का खँडहर भी है। पुरी-जिले (उड़ीसा) में 'धबली'-पहाड़ी पर भी कुछ शिलालेख हैं और ससराम (शाहाबाद) के पास पहाड़ी पर भी शिलाओं पर कुछ प्राचीन अक्षर अङ्कित हैं। उड़ीसा की अस्सी-उदय-खण्ड-गिरि पहाड़ियों में भी काफी पुरातत्त्व-महत्त्व है। कनारक (कोणार्क) और भुवनेश्वर के मंदिर तो अपनी अद्भुत रचना से पुरातत्त्वानुरागियों को उतना ही मुग्ध और चकित करते हैं, जितना बोध गया और जगन्नाथ के। भागलपुर जिले में 'चम्पानगर' अत्यन्त प्राचीन स्थान है। ह्वेनसंग ने चम्पाराज्य को ८० मील विस्तृत और उसकी राजधानी को आठ मील के घेरे में पाया था और बहुत-से बौद्ध-संघों को जीर्णावस्था में देखा था। पुरातत्त्वज्ञों की सूक्ष्म दृष्टि में इसका महत्त्व भी बहुत अधिक है।

इसी प्रकार अनेक स्तूप, स्तम्भ, मन्दिर, मठ, राजभवन, दुर्ग और समाधि-शालाएँ, बिहार के अतिशय प्राचीन वक्षस्थल पर शोभा की अंगपूर्ति करती हुई, पुरातत्त्वान्वेषकों का उत्साहवर्द्धन और आह्वान कर रही हैं।

बिहारोत्कल के तीर्थक्षेत्र[1]

[2]जिन स्थानों में अवतार हुए हैं, यज्ञ हुए है, तपस्याएँ हुई हैं तथा किसी महर्षि ने शास्त्र-चर्चा की है अथवा समाधि लगायी है, वे स्थान अब तीर्थ कहे जाते हैं और जिन स्थानों में भक्त की पुकार भगवान ने सुनी है, वे स्थान महातीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थ अथवा महातीर्थ की महिमा इसलिए है कि उनमें पहले का संस्कार बना हुआ है। हिन्दू-जाति तीर्थरूपी रेकर्ड पर श्रद्धारूपी सूई रखकर इन दिनों भी पहले की ध्वनियाँ, स्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ सुनती है तथा उनके अमोघ फल लूटती है।

(क) मगध

(१) *गया*—भारत के पुराण-प्रसिद्ध तीर्थों में यह एक सर्वमान्य श्रेष्ठ तीर्थ है। सभी प्रदेशों के लोग यहाँ अपने पितरों का श्राद्ध करने आते हैं। यहाँ 'विष्णु-पद' प्रधान स्थान है। यह 'फल्गु' नदी से थोड़ी दूर पर है। यहाँ गदाधर भगवान की भी मूर्त्ति है और 'बटेश्वर' तथा 'उमा-महेश्वर' नामक दो प्रसिद्ध शिवलिंग हैं। गया के पास बहुत-से पहाड़ तथा पहाड़ियाँ हैं। उनमें अनेक देव-मूर्त्तियाँ और समाधि-मग्न योगीश्वर हैं। गया से थोड़ी दूर बोध-गया है, जहाँ भगवान बुद्ध ने तपस्या की थी। बोधगया के मन्दिर का रचना-सौन्दर्य वर्णनातीत है।

(२) *राजगृह*—यह एक पवित्र हिन्दू-तीर्थ है। यहाँ अधिक मास (मलमास) में मेला लगता है। यहाँ शृंगी, शाण्डिल्य, वेदव्यास आदि कई महर्षियों ने तपस्या की थी। भगवान् बुद्ध भी बहुत दिनों तक यहाँ थे। जैनी भी इसे तीर्थ मानते हैं। इसके आस-पास 'सरस्वती' नामक एक नदी है। उसीके आस-पास कई कुण्ड हैं। उनमें 'ब्रह्मकुण्ड' और 'सीता कुण्ड' बड़े प्रसिद्ध हैं।

(३) *च्यवनाश्रम*—कहते हैं कि यह पटना जिले में कहीं था, अब शोण की धारा में पड़ गया है, और शोण-तटस्थ ई० आई० आर० के रेलवे-स्टेशन 'कोइलवर' (अब ई० आर०) के पास ही था। गया-जिले के 'देवकुण्ड' नामक स्थान कोभी च्यवनाश्रम कहते हैं, जहाँ फाल्गुन और वैशाख की शिवरात्रि में मेला लगता है।

(४) *सूर्यकुण्ड*—गया-जिले की देवराजधानी में सूर्य-नारायण का प्रसिद्ध मन्दिर और सरोवर है। वहाँ कार्त्तिक और चैत्र में छठ व्रत का बहुत बड़ा मेला होता है।

१. 'पाटलिपुत्र' और 'मनोरंजन' के 'विशेषाङ्कों' से संकलित।

२. पण्डित सकलनारायण पाण्डेय 'तीर्थत्रयी' के लेख से संकलित।

(५) *वत्सेश्वर महादेव*—प्राचीन काल के महाराज वत्स के स्थापित किये हुए ई० आई० आर० के बिहटा (अब ई० आर०) के शिवजी भी बड़े प्रसिद्ध हैं। यहाँ शिवरात्रि का मेला फागुन में अच्छा जमता है।

(६) *कात्यायनी देवी*—पटना जिले के 'मनेर' नामक प्रसिद्ध स्थान में यह भगवती हैं। यहीं 'वररुचि' तथा वार्तिककार 'कात्यायन' ने तपस्या की थी।

(७) *शाण्डिल्याश्रम*—पटना जिले के 'दीघा' नामक प्रसिद्ध स्थान में गंगातट पर कहीं यह आश्रम था। यहीं शाण्डिल्य ऋषि ने 'भक्तिसूत्र' की रचना की थी।

(८) *सिद्धाश्रम (व्याघ्रसर)*—शाहाबाद-जिले का 'बक्सर' (ई० आई० आर०) नगर प्रसिद्ध तीर्थ-स्थल है। यहाँ का गंगातटस्थ 'रामरेखा-घाट' और 'चरित्रारण्य' बहुत ही विख्यात हैं। गंगातटस्थ चरित्रवन में विश्वामित्र मुनि ने यज्ञ किया था। रामचन्द्र जी ने यहीं ताड़का-वध किया था। रामरेखा-घाट पर श्रीरामेश्वरनाथ महादेव भगवान राम के स्थापित किये हुए हैं। यहाँ विश्वामित्र की एक दिव्य मूर्त्ति मंदिर में स्थापित है। और भी अनेक मन्दिर तथा साधुओं के मठ दर्शनीय हैं। यहाँ के वामनेश्वर महादेव की भी प्रसिद्धि है।

(९) *सिद्धिनाथ महादेव*—यह शिवालय आरा-नगर के उत्तर गाँगी नदी के किनारे सिद्धक्षेत्र में है। सिद्धनाथ जी उपज्योतिर्लिङ्ग से प्रकट हुए हैं। शिवपुराण में इसका वर्णन है।

(१०) *भुवनेश्वर और गुप्तेश्वरनाथ*—शाहाबाद–जिले में—सहसराम की पहाड़ियों में—ये दोनों शिवलिंग स्थापित हैं। मूर्त्तियाँ अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध हैं। पहली शिव-मूर्त्ति सहसराम-नगर के निकट ही है। दूसरी भी कुछ ही दूर पर है। असंख्य दर्शनार्थी इनके दर्शनों के लिए सालभर आते-जाते रहते हैं। गुप्तेश्वरनाथ जी भी शिवपुराण के अनुसार उपज्योतिर्लिङ्ग से प्रकट हुए हैं।

(११) *किले की देवी* – यह भगवती मयूरध्वज नामक राजा के सिंहद्वार पर स्थापित थीं। उसने इनके सामने अतिथि की सन्तुष्टि के लिए अपने हाथों अपने एकमात्र पुत्र 'ताम्रध्वज' की बलि चढ़ाई थी। आरा-नगर में ही उसका गढ़ था। अभी तक देवी जी की बड़ी चलती और प्रतिष्ठा है। आरा-जिले के 'भलुनी' स्थान में, जंगल के बीच में, यक्षिणी भगवती (जखिनी या भिल्लिनी भवानी) का प्रसिद्ध मन्दिर है, जहाँ चैत्र के नवरात्र में बड़ा भारी मेला होता है।

(१२) *वैकुण्ठ-तीर्थ*—पटना-जिले के खुशरूपुर-स्टेशन के पास वैकुण्ठपुर नामक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ शिवरात्रि में बहुत बड़ा मेला लगता है। गंगा-तट के पास प्राचीन शिवमंदिर है।

(१३) *ब्रह्मेश्वरनाथ*—शाहाबाद-जिले में, ई० आई० आर० के रघुनाथपुर-स्टेशन (अब ई० आर०) से दो मील उत्तर 'ब्रह्मपुर' स्थान है । वहाँ ब्रह्माजी के स्थापित किये हुए महादेव जी हैं । आस-पास बारह कुण्ड हैं । एक में तो नहाते ही खुजली दूर होती है । इस तीर्थ का वर्णन पुराणों में विस्तृत रूप से मिलता है । यहाँ फाल्गुन और वैशाख की शिवरात्रि में मेले का विराट् आयोजन होता है । यहाँ का शिवमन्दिर और शिवलिङ्ग बहुत बड़ा है ।

(ख) मिथिला (तिरहुत)

(१) *छपरा (सारन)*—इसी जिले में सुना जाता है कि सुरथ राजा ने तपस्या की थी और दक्ष-प्रजापति ने यज्ञ भी किया था । 'गोदना' नामक स्थान में गौतम जी ने तपश्चर्या सम्पन्न की थी और न्यायसूत्र की रचना भी उन्होंने यहीं की थी । छपरा में ही राजर्षि दधीचि का आश्रम था ।

(२) *हरिहरक्षेत्र (सारन जिला)*—इसी का दूसरा नाम है चक्रतीर्थ । यहाँ गज-ग्राह की पुराण-प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी । सोनपुर के नाम से बड़ा भारी—भारत-विख्यात—मेला यहाँ कार्तिक-पूर्णिमा को लगता है । जहाँ गण्डक और गंगा का संगम है, वह स्थान अत्यन्त पवित्र तीर्थ है । भगवान् के चक्र से गज-रक्षा के समय गण्डकी के छोटे-छोटे पत्थर रेखाङ्कित होकर परम पवित्र हो गये हैं और उनकी पूजा होती है । यहाँ से थोड़ी ही दूर पर 'हाजीपुर' बड़ा प्रसिद्ध स्थान है । वहाँ जो नैपाली मंदिर है, वह सिद्धपीठों में है ।

(३) *जनकपुर*—दरभंगा-जिले की उत्तरी सीमा पर नेपाल की तराई में यह एक बड़ा प्रसिद्ध स्थान है । भारत भर के लोग इस स्थान से परिचित हैं । यहीं रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ा था । यहीं विदेह-राज जनक की राजधानी थी । इसी के पास सीतामढ़ी नामक स्थान में सीताजी प्रादुर्भूत हुई थीं । वहाँ एक पवित्र कुण्ड है । सीतामढ़ी के समीप 'लक्ष्मणा' नदी के उस पार शिवजी का एक पुराण-प्रसिद्ध लिंग है ।

(ग) अङ्ग (पूर्वीय बिहार)

(१) *शृङ्गेश्वरनाथ महादेव*—भागलपुर-जिले में 'सिंगेश्वर' नामक स्थान वराहपुराण के अनुसार बड़ा भारी तीर्थ है । उक्त शिवजी का मन्दिर वहीं एक नदी के तट पर है, जहाँ वैशाखी शिवरात्रि को बड़ा भारी मेला लगता है ।

(२) *जह्नु आश्रम*—भागलपुर-जिले के सुलतानगंज-स्टेशन के पास, जहाँगीर गाँव में, गंगा के बीच में, एक छोटी पहाड़ी है । वहीं यह आश्रम है और

अजगवीनाथ[1] महादेव का मन्दिर भी है। पुनर्गङ्गोत्पत्ति के कारण यह स्थान बड़ा पवित्र माना जाता है।

(३) *मन्दराचल*— भागलपुर जिले के 'बाँका'-सबडिवीजन में मन्दार-पर्वत है। उसपर मधुसूदन भगवान् की मनोहर मूर्त्ति है। रामकुण्ड और सीताकुण्ड तीर्थ-यात्रियों के स्नान करने के लिए बड़े पवित्र माने गये हैं। पुराणों में इस पर्वत की बड़ी महिमा लिखी हुई है। यह जैनियों का भी तीर्थ है। जैनियों ने अनेक अच्छे-अच्छे मन्दिर यहाँ भी बनवाये हैं।

(४) *वैद्यनाथ जी*—संतालपरगना जिले में 'देवघर' मशहूर जगह है। वहीं वैद्यनाथ महादेव का भारत-विख्यात मन्दिर है। लोग उन्हें 'रावणेश्वर' भी कहते हैं। उनकी गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में है। लोग गंगोत्री और हरद्वार से गंगाजल लाकर उन्हें श्रद्धा से चढ़ाते हैं। स्थान बड़ा मनोरम और रमणीय है। बिहार-भर में प्रसिद्ध स्वास्थ्यकर स्थान है। उक्त शिवमन्दिर से थोड़ी दूर पर शिवगंगा-सरोवर है।

(घ) उड़ीसा

(१) *जगन्नाथजी (जगदीशपुरी)*—पुरी-जिले में समुद्रतट पर विश्व-विश्रुत जगन्नाथ-मन्दिर विराजमान है। हिन्दुओं के 'चारों धाम' में से यह भी एक है। भारत में जगन्नाथजी की बड़ी प्रतिष्ठा है। लाखों श्रद्धालु तीर्थयात्री यहाँ हर साल आते-जाते हैं। यहाँ आषाढ़-शुक्ल द्वितीया के रथयात्रा-महोत्सव में असंख्य भक्तों का समारोह होता है। आसपास में और-और देवस्थान भी हैं; पर मुख्य यही है। इसे पुरुषोत्तमपुरी भी कहते हैं।

(२) *भुवनेश्वरनाथ*—ठाकुरद्वार से कुछ दूरी पर भुवनेश्वर का भव्य मन्दिर है। यह स्थान बहुत प्राचीन, प्रसिद्ध, पवित्र और पूज्य है। यहाँ का मुक्तेश्वर-मन्दिर देखने ही योग्य है। यहाँ के आधिवासी कहते हैं कि किसी समय यहाँ सात हजार मन्दिर और एक कोटि शिवलिंग थे। अभी तक एक मन्दिर १८० फुट ऊँचा है। एक शिवजी की प्रतिमा भी लगभग ४० फुट की है। भुवनेश्वर-कणिका में लिंगराज का मन्दिर भी बड़ा ही सुन्दर एवं द्रष्टव्य है।

(ङ) जैन-तीर्थ

(१) *पावापुरी*—बिहारशरीफ नामक नगर से तीन कोस पर जैनों का सबसे पवित्र-स्थान 'पावापुरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी स्थान में जैनमत के प्रधान अधिष्ठाता महावीर स्वामी पंचत्व को प्राप्त हुए थे। स्थान की प्राकृतिक शोभा और इमारतों की बनावट देखते ही बनती है। इमारतों में प्राचीन काल की कारीगरी

---

१. शिवजी के 'पिनाक' धनुष का नाम 'अजगव' भी है।

देखकर दंग रह जाना पड़ता है। लगभग आध मील की लम्बाई-चौड़ाई के प्रशस्त सरोवर में अतीव सुन्दर मन्दिर है, जिसमें जाने के लिए पुल बना हुआ है। यही महावीर प्रभु का समाधि-स्थान है।

(२) *पारसनाथ*—हजारीबाग–जिले में निमिया–घाट के निकट यह जैनियों का एक परम पवित्र स्थान है। इस पारस–पहाड़ी पर जैनियों के २७ मन्दिर हैं। पारस–पहाड़ी की ऊँचाई लगभग ५००० फुट है। जलवायु शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद है। प्राकृतिक शोभा अनिर्वचनीय है। पहाड़ पर एक जल-स्रोत भी है।

इनके अतिरिक्त अस्सीगिरि, खण्डगिरि, उदयगिरि, राजगिरि, बराबरगिरि आदि पहाड़ियाँ भी जैन-तीर्थों से विभूषित हैं। चम्पापुरी और मन्दार-पर्वत (भागलपुर) जैनियों के नामी तीर्थ हैं। चम्पा में दसवें जैनतीर्थङ्कर 'वासुपुराय' का जन्म हुआ था। उन्हीं के नाम पर चंपानगर और नाथनगर (भागलपुर) के जैन-मन्दिर हैं। मन्दारगिरि पर जैनी इमारतों के भड़कीले खँडहर अब भी नजर आते हैं।

(च) बौद्ध-तीर्थ

(१) *बोधगया*—गया-धाम से तीन कोस दक्षिण की दूरी पर यह स्थान बौद्ध संसार में उसी मंगल-मूल वृक्ष के सम्बन्ध से प्रसिद्ध है, जिसके नीचे ध्यानावस्थित होकर दिव्य भगवान् बुद्ध ने परमपावन ज्ञान-लाभ किया था। एक पीपल का वृक्ष आद्यावधि जीवित है। वह आदि-वृक्ष तो नहीं; परन्तु उसका वंशज अवश्य है। अशोक ने बौद्ध होने से पूर्व इसे जलाया था। फिर छठी शताब्दी में बंगाल-नरेश शशांकदेव ने इसका समूल नाश किया। यह प्रसिद्ध है कि मगध के राजा पूर्णवर्मा ने इसे पुनः रोपा। इतिहास के अनुसार यहाँ ईसा ३०० वर्ष पहले का एक अशोक-निर्मित मन्दिर है। यह इमारत नीले रंग की ईंट से बनी थी। दो लाख खर्च करके सरकार ने इसका जीर्णोद्धार किया था। इसमें प्रस्तर-वेदी पर बुद्ध की ध्यान-मग्न मूर्त्ति है। मन्दिर के चतुर्दिक् चित्रकारी की कुशलता देख पड़ती है। और-और भी अनेक पदार्थ यहाँ दर्शन-योग्य हैं।

(२) *राजगिरि*—इसे ही 'राजगृह' कहते हैं। इसका दूसरा पुराना नाम कुशाग्रपुर तथा गिरिव्रज भी था। २५०० वर्ष पूर्व एक समय वह भी था कि गिरिव्रज आनन्द-समुद्र में गोता लगा रहा था। अब यह नगर जीर्ण-शीर्ण दशा में है। यहाँ की पहाड़ी गुहाओं में कई बौद्ध-परिषदों की बैठकें हुई थीं, जिनमें एक से एक विद्वान् और मुमुक्षु जुटे थे। यहीं पहले-पहल आकर भगवान् बुद्धदेव ने हिन्दू-दर्शन-शास्त्र का अध्ययन-मनन किया था।

(३) *वैशाली*—मुजफ्फरपुर—जिले में, जहाँ इस समय 'बसाढ़' गाँव है, यह प्राचीन बौद्धनगर स्थित था। यहाँ भी बौद्ध-परिषद् हुई थी। भगवान् बुद्ध के चरणार्पण से यह भी पवित्र हो चुका है। इस नगर में कई बौद्ध राजा हो चुके हैं।

(४) *बिहार*—संस्कृत में बौद्धमठ को 'बिहार' कहते हैं; किन्तु इस नाम का नगर पटना जिले में है, जिसके नाम के आधार पर समस्त प्रान्त का अभिधान 'बिहार' ही प्रसिद्ध हो गया। इसका पुराना नाम 'उदण्डपुरी वा उदन्तपुरी' था। यहाँ का दुर्ग पतित अवस्था में है। उसके भीतर अनेक टीले, मन्दिर तथा बौद्ध-बिहार हैं। यहाँ बहुत बड़े-बड़े बौद्धमठ थे। उनमें असंख्य बौद्ध भिक्षु रहते थे। उन धर्म-प्रचारक संन्यासियों को बख्तियार खिलजी ने मारवा डाला था। अब भी बौद्धमठों के सुविशाल भग्नांश अपनी पहली उन्नत दशा का दिग्दर्शन कराते हैं।

(५) *नालन्द*—बिहार नगर से तीन कोस दक्खिन नालन्द-विद्यापीठ था। यह स्थान बौद्ध-शिक्षा का प्रधान केन्द्र था। पाश्चात्य विद्वान् इसे बौद्ध भारत का अक्षप्रस्तर (आक्सफोर्ड) और कामसेतु (कैम्ब्रिज) तथा शिकागो कहते हैं। भारतीय विद्वान् भी इसे बौद्ध-बिहार की वाराणसी (काशी) कहते हैं। यहाँ का-सा आदर्श विश्वविद्यालय (न भूतो न भविष्यति) संसार-भर में कहीं नहीं दीख पड़ता। यहाँ बुद्धदेव तीन मास तक एक विशाल मन्दिर में रहे थे। यहाँ एक-से-एक ऊँची-ऊँची इमारतें, सुन्दर-से-सुन्दर मन्दिर और प्रशस्त मठ थे, जिनके अब भग्नावशेष ऊँचे टीलों के रूप में खड़े हैं। अबतक बड़े-बड़े दालानों के चिह्न हैं। कई बहुत बड़े-बड़े सरोवर हैं, जो लगभग एक-एक मील लम्बे हैं। इनमें दधिपोखर, इन्द्रपोखर, हंसपोखर विशेष प्रसिद्ध हैं।

बिहार प्रान्त की कई और प्रसिद्ध पहाड़ियों में भी बौद्ध-मन्दिर वा मठ आदि के ध्वंसावशेष हैं। उड़ीसा में तो बौद्धों के कई पवित्र स्थान हैं। मठ-मन्दिरों के खँडहरों और प्राचीन चिह्नों के दर्शन भी तीर्थ के ही बराबर पुण्य देनेवाले हैं। उन्हें देखकर प्राचीन भारतीय वैभव और संस्कृति के स्मरण से गौरव का अनुभव होता है।

प्राकृतिक परिचय

प्राकृतिक रूप

साधारणतया बिहार-प्रान्त की स्थिति समतल भूमि पर है। गंगा की तराइयों का पूर्वीय खण्ड इसी प्रदेश में विस्तृत है। इस प्रदेश की भूमि गंगा, गंडक, सोन, सरयू, फल्गु, कोशी आदि नदियों की जलराशि से सिक्त कछारी मैदान से भरी हुई है। उक्त प्रसिद्ध नदियों की बाढ़ से कभी-कभी सारा बिहार बड़ी भयंकरता से परिप्लावित हो जाता है। बिहार-प्रान्त पश्चिम में पूरब की ओर ढालू है।

गंगा से उत्तर की ओर इसका उत्तरीय खण्ड मिथिला या तिरहुत है। हिमालय से निकलनेवाली दक्षिणाभिमुख-वाहिनी अनेक छोटी-बड़ी नदियाँ इस उत्तरीय खण्ड को सींचती हैं। उनमें कितनी तो बरसात में उमड़कर अपने आसपास की, बड़ी दूर तक की, भूमि को डुबो देती हैं। कई नदियाँ तो अपनी स्रोतगति परिवर्त्तित करके जहाँ-तहाँ झील, दह, पुष्कर और ताल के समान छोटे-बड़े, छिछले और गहरे, जलाशय बनाकर छोड़ देती हैं जो बरसात में उन्हीं नदियों की बाढ़ से अगाध जल के अन्दर डूबे पड़े रहते हैं। जाड़े में वे जलाशय अपने निर्मल जल का दृश्य दिखाकर गर्मी में ऐसे सूख जाते हैं कि कहीं-कहीं वे हल चलाकर जोते-बोये भी जाते हैं। कहीं-कहीं तो खूब हरी-भरी घास उपजकर बहुसंख्यक पशुओं को आश्रय देती और अपूर्व लहलही श्री धारण करती है। गंगा से उत्तर की भूमि उत्तर से दक्षिण की ओर ढालू है।

गंगा के दक्षिण-भाग में बिहार का दक्षिण-खण्ड है। यह खण्ड उत्तर की ओर ढालू है। शाहाबाद-जिले की दक्षिणी सीमा पर 'कैमूर' पहाड़ी अड़ी-खड़ी है। उसके आसपास पथरीली ऊँची भूमि है, जिसमें चरने के लिए हरी घास खूब उपजती है। इस खण्ड के दक्षिणी अंचल पर विशेषतः सघन वन की विचित्र हरियाली की छटा है। इन जंगलों के आस-पास न तो अच्छे खेत हैं और न अच्छी नहरें; पर इन जंगलों से कुछ उत्तर की ओर बहुत ही अच्छी नहरें और उपजाऊ खेत हैं। गाँवों की बस्तियाँ भी खूब घनी हैं। यद्यपि उत्तरी खण्ड की तरह यह खण्ड अनेक छोटी-बड़ी नदियों के जल से परिप्लावित नहीं होता रहता, तथापि शोणभद्र से निकली हुई बड़ी-बड़ी नहरों का जल चारों ओर फैल जाता है। सोन के सिवा कई और छोटी-

मोटी नदियाँ भी हैं, जो अपने क्षुद्र जलकोष से यत्र-तत्र कृषि-कार्य में सहायता पहुँचाती हैं और वर्षा-ऋतु में उमड़कर अपने पास की भूमि को जलमग्न कर देती हैं।

उड़ीसा के पश्चिमी खण्ड की जमीन कुछ ऊँची उठी हुई और पथरीली-सी है। कहीं-कहीं ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ बिछी हुई हैं। उनकी तलहटियाँ अधिकतर जंगलों से ढकी हुई और खूब उपजाऊ हैं। पूर्वी उपकूल समुद्र की ओर ढालू है।

छोटानागपुर की भूमि कुछ ऊँची है, जिसका अधिकांश घने जंगलों से ढँका हुआ है। जो अधिकतर ऊँची भूमि है, उसका ऊपरी हिस्सा नीरस और ऊसर है। ऐसी ही ऊँची भूमि उड़ीसा, सन्ताल-परगना और पूर्वोत्तर में गंगा की तराइयों तक फैलती चली गयी है। इसी सुविस्तृत उच्च भूमि पर पसरे हुए गहन वन में तीर-धनुही धारण करनेवाली वन्य-फल-मूल-जन्तु-भोजी एक पुरानी (आदिवासी) जाति रहती है। कहीं-कहीं जोतने-बोने लायक पैदावार जमीन के टुकड़े या बड़े-बड़े चकले भी हैं, जहाँ कुछ सभ्य मनुष्यों की एक-आध बस्तियाँ हैं।

प्राकृतिक दृश्य

बिहार-प्रान्त की प्राकृतिक शोभा देखने पर मंत्र-मुग्ध होकर मुक्त-कण्ठ से इसकी प्रशंसा करने की उत्सुकता होती है। कहीं ठौर-ठौर ऊँची-नीची पहाड़ियाँ हैं। कहीं जंगलों की हरियाली की शोभा आकाश की नीलिमा के साथ मिलकर खिल रही है। कहीं आम के बड़े-बड़े घने बाग बहार दिखाते हैं। कहीं आकाश छूने की चेष्टा में तत्पर ताड़ों का झुण्ड है। कहीं लाल-लाल पल्लव और अंगूर के-से उजले-उजले फल-गुच्छों के साथ महुए के स्थूल वृक्षों का जमघट है। कहीं विकसित कमलों से भरे हुए सरोवर अपना स्फटिक-स्वच्छ जल पुरइन के पत्तों की आड़ में छिपाये हुए हैं। जगह-जगह बर-पीपर-पाकड़ की सुखद शीतल छाया का प्रसार है। जहाँ-तहाँ इमली और निम्ब के सघन सुन्दर वृक्ष कतार-की-कतार खड़े हैं। कहीं गाँवों की बस्ती के चारों ओर किनारे-किनारे बाँस के घने झुरमुटों में चहकनेवाली चिड़ियाँ चहचहा रही हैं।

ग्रीष्मकाल में कहीं-कहीं नग्न और शुष्क भूमि फैली हुई दीख पड़ती है। पतली-पतली मेंड़ें उसे अनगिनत टुकड़ों में बाँट देती हैं। जमीन के ये छोटे-छोटे हिस्से 'खेत' कहलाते हैं। ये ठीक शतरंज की बिसात की नाईं एक अनूठा दृश्य दिखाते हैं। जब इनमें हरी-भरी फसल खड़ी रहती है, तब तो शतरंजी बिसात नहीं; बल्कि सुगापंखी मखमल-सा बिछा नजर आता है।

बरसात आते ही बसुन्धरा देवी हरी साड़ी और नीली ओढ़नी में खिल उठती है। चारों ओर हरे-भरे-रँगीले पौधे लहराने लगते हैं। वह निराली हरियाली एक नया रंग दरसाती है।

"जाड़े के दिनों में धान के पौधों पर सुनहला रंग चढ़ जाता है। कमर-भर के ऊँचे खड़े धान जब हवा के झोकों से लहराते और बल खाते हुए झुक-झुककर फिर उठते हैं तब सुन्दरता मानों उस हरे खेत को झुककर सलामी उतारती रहती है। पहरेदार नई बहू की तरह धान की लंबी-लंबी बालें घूँघट काढ़कर धरती ताकने लगती हैं[1]।"

नदियों का जल फिटकिरी-सा साफ-सुथरा हो जाता है। हर ओर गेहूँ, जौ, चना, रहर, मसूर और मटर के खेत खूब हरे-भरे और फूले-फले दीख पड़ते हैं। सरसों, कुसुम्भ, तीसी, मटर आदि के रंग-विरंग फूलों की वासन्ती-नीलिमा-सुषमा तथा आम और महुए के वृक्षों के लाल-लाल कोमल चिकने फल्लवों की विमल लालिमा वरवश हृदय को प्रफुल्लित कर देती हैं।

छोटानागपुर का प्राकृतिक दृश्य भी बड़ा मनोहर है। एक ओर बीहड़ जंगल और घनी झाड़ियों से ढकी हुई पहाड़ियों की शान्तिदायिनी तराइयाँ हं, तो दूसरी ओर चिकनी-चौड़ी चट्टानों पर निर्मल नीरवाले निर्झर मस्ती में लुढ़क रहे हैं। कहीं-कहीं गहन वन की ठण्ढी छाया से सुशोभित और रमणीय शिलाओं से परिवेष्ठित विमल जल की झीलें हैं। सूखे-रूखे दिनों में भी यहाँ के घने जंगलिस्तान की हरित छटा नयनों को सुख देती है। वसंत में तो पलास के अनेक जंगल लाल-टहाका फूलकर ऐसे लहालोट बन जाते हैं कि दिशाएँ रक्त-रंजित हो जाती हैं।

पहाड़-पहाड़ियाँ

ऐसे तो बिहार में केवल नाम धरने को बहुत-सी पहाड़ियाँ हैं; पर वस्तुतः दो ही चार ऐसी हैं जिनका महत्त्व सर्वापेक्षा अधिक उत्तम और स्तुत्य है।

पटना-जिले में 'राजगिरि' पहाड़ी, बोधगया से पूर्वोत्तर, बीस कोस में पसरी हुई है। सब जगह बहुत ऊँची न होने पर भी कहीं-कहीं तो १४७२ फुट की ऊँचाई तक पहुँच गयी है। वैभार, विपुल, रत्न, सोन और उदय—इसके भिन्न-भिन्न 'पाँच श्रेष्ठ अंग' हैं। इन उन्नत-मस्तक पर्वतों से घिरा हुआ 'राजगृह' नामक प्राचीन गौरवशाली नगर ध्वंसावशेष रूप में विराजमान है। वहाँ किसी दिन भारत-सम्राट् मगधेश की जग-जाहिर राजधानी थी। प्रातःस्मरणीय महात्मा बुद्धदेव

१. पण्डित रामदहिन मिश्र-सम्पादित 'रचनाविचार' (द्वितीय भाग) 'बाकी बेवाक' निबन्ध से।

की तपोभूमि होने के कारण यह सिद्धपीठ पहाड़ी और भी कीर्तिधवलित हो गयी है। अनेक ऋषियों ने यहाँ तपश्चर्या सम्पन्न की थी। ज्वलन्त-प्रताप जरासंध का अखाड़ा अभी तक इसके प्रशस्त वक्षस्थल पर शोभायमान है। ईसा से क्रमशः ४७८ और ५४३ वर्ष पूर्व इसकी गुहाओं में बौद्ध-परिषदों की पहली और दूसरी बैठकें हुई थीं। इसमें अनेक झील, झरने, नदी-नाले आदि हैं। पवित्र कुण्ड भी बहुत-से हैं। सुन्दर-सुन्दर सचिक्कण शिलाएँ और हरे-भरे जंगल भी सोहते हैं। 'पञ्चान' नदी के निकट 'गरियक' नामक पर्वतखण्ड पर हंसस्तूप अब तक दर्शनीय है।

गया से लगभग पाँच-छः कोस पर, उत्तर की ओर, 'बराबर पहाड़' सुशोभित है। पुराने समय की बनी हुई अनेक विचित्र गुहाएँ इसमें विद्यमान हैं। शिल्प-कला-मर्मज्ञ उनकी अद्‌भुत रचना देखकर आज भी दाँतों अँगुली काटते हैं।

"पर्वत (बराबर) देखने में रम्य एवं चित्ताकर्षक है जिस तरह यह लोक-लोचनानन्दकर है, उसी तरह अगम्य रहस्यों से पूर्ण एवं माहात्म्यादि से अलंकृत है। इसपर बहुत-से ऐसे सुरम्य स्थान हैं जो देखते ही बनते हैं। यों तो इसमें कई-एक झरने बहुत ही अच्छे हैं; पर 'पाताल-गंगा' इत्यादि सुरम्य और स्वच्छ जल से पूर्ण वापी-समान झरने देखने ही लायक हैं। इसमें सप्तगृह नाम का एक सात घर का बहुत-ही सुरम्य और सुदृश्य भवन है, जो लगातार एक से दूसरा और दूसरे से तीसरा, एवं सात घर में पूर्ण हुआ है। इसपर वनौषधियों की भी कमी नहीं है। जहाँ अधित्यका भूमि में 'सिद्धेश्वरनाथ' की प्रतिमा है, वहाँ से एक छोटी राह नीचे को गयी है। नीचे प्राचीन सिद्धेश्वरनाथ की प्रतिमा है। वास्तव में पाताल-गंगा से होकर प्राचीन मूर्ति तक पहुँचने की राह अत्यन्त संकीर्ण और जलपूरित है।

गया-जिले का 'कौआडोल' पहाड़ भी प्रसिद्ध है। किंवदन्ती है कि कौआ बैठने से इसकी शिला हिली थी। भागलपुर-जिले में जो मन्दार-पर्वत है, वही समुद्र-मंथन में मथनी बनाया गया था, ऐसा हिन्दू लोग मानते हैं। भूगर्भ-विद्या के तत्त्वज्ञों का तो यहाँ तक कहना है कि किसी समय समुद्र ही राजमहल पहाड़ के पास झकोरा मारता था।

मुंगेर-जिले में 'खड़गपुर पहाड़ी' जमालपुर के पास से जमुई रेलवे-स्टेशन तक फैली हुई है। इसकी सब से ऊँची चोटी 'मारुक' १६२८ फुट ऊँची है। इसके दक्षिण-पश्चिम की ओर 'गिद्धौर पहाड़ी' है, जिसका सर्वोच्च शिखर 'गिद्धेश्वर' (गृद्धेश्वर) प्रसिद्ध है।

कुछ ही दूर आगे बढ़कर, पूर्व की ओर, राजमहल-पहाड़ी मिलती है। यह अपनी छोटी-मोटी शाखा-प्रशाखाओं के साथ दो हजार वर्गमील में फैली हुई है। इसके पार्श्वप्रान्त से प्रवाहित होकर अग्रसर होनेवाली गंगा के नेत्ररञ्जक प्राकृतिक दृश्य का दिव्य दर्शन निस्सन्देह मनोमुग्धकर है। पर्वत-प्राचीर प्रक्षालित करती हुई पुण्यतोया कलुषनाशिनी अविरत कलकलध्वनि करती हुई बह रही है।

'सोमेश्वर' और 'दून' नामक पहाड़ियाँ चम्पारण्य-प्रान्त के नितान्त उत्तरीय सीमान्त पर चौसठ मील तक फैली हुई हैं। 'सोमेश्वर' ४४ मील में, और उसके दक्षिण लगभग २० मील में 'दून'। सोमेश्वर की ऊँची-ऊँची प्रशस्त शिलाओं पर से हिमालय की धवल-गिरि और गुसाँई-थान नामक ऊँची चोटियाँ बड़ी भड़कीली दीख पड़ती हैं—मानों ईश्वर ने आकाश के सहारे के लिए खम्भे रच दिये हों। सोमेश्वर की पूर्वीय छोर पर, नेपाल में प्रवेश करने के लिए, भिखना-ठोरी नामक प्रसिद्ध पहाड़ी-घाटी है। इसके पास तक रेल चली गयी है।

विन्ध्याचल की एक, सुविस्तृत शाखा 'कैमूर' पहाड़ी, दक्षिण-बिहारान्तर्गत शाहाबाद-जिले के दक्षिण सीमान्त पर आठ सौ वर्गमील में फैली हुई है। इसका कमनीय कलेवर भी अनेक झीलों, झरनों और झाड़ियों से विभूषित है। इसी में सबसे ऊँचा शिखर (१४८० फुट) रोहतासगढ़ के पास है। गुप्तेश्वरनाथ महादेव इसी की गुफा में विराजित हैं। सहसराम के पास-पड़ोस में चन्दन-शहीद और अन्यान्य कई रमणीय स्थान दर्शनीय हैं।

उड़ीसा में भी बहुत-सी छोटी-मोटी पहाड़ियाँ यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं; पर ४१८२ फुट ऊँची 'बङ्कसामो'-पहाड़ी सबका सिरमौर है। 'करलपाट' और 'वफलियामाली' नामक पहाड़ियाँ भी क्रमशः ३६८१ और ३५८७ फुट ऊँची हैं। इन्हीं पहाड़ियों में गोदावरी की सहायक नदी 'इन्द्रावती' का जन्म हुआ है। 'हाती' [१] और 'तेल' नामक नादियाँ भी इन पहाड़ियों के बीच से बहती हुई महानदी की ओर निकल जाती हैं। जलस्राविणी की तरह दो-ढाई हजार फुट ऊँची पहाड़ियाँ, महानदी और ब्राह्मणी के बीच में, विराजमान हैं।

उड़ीसा की पाललहरा रियासत में ३८६५ फुट ऊँची 'मलयगिरि पहाड़ी' है। वतरणी नदी के पूर्वीय तट से 'मयूरभञ्ज-पर्वत' उठता है। ३८२४फुट ऊँची 'मेघासिनी चोटी' इसके सिर पर ताज-सी सोहती है। बालासोर-जिले में 'नीलगिरि पहाड़ी' बंगोपसागर की ओर लगभग आठ-नौ कोस में फैली हुई है। कटक-जिले की 'असिया

१. हाती नदी, कालाहण्डी—राज्य के दक्षिण भाग से निकलकर, उत्तराभिमुख बहती हुई 'तेल' नदी में गिरती है। —(भूगोलपाठ-दर्शक)

५

पहाड़ी' और भुनेश्वर के पास पुरी-जिले में 'उदयगिरि' तथा 'खण्डगिरि' पहाड़ियाँ, जिनके आस-पास सुप्रसिद्ध झाड़खण्ड जंगल है, प्राचीनता की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं।

जैन और बौद्ध युग में इस भारतभूमि के अन्दर शिल्पकला की कैसी कल्पनातीत उन्नति हो चुकी थी, यह बात उक्त पहाड़ियों की शिला-शिला और गुहा-गुहा से प्रकट होती है। पूर्वोक्त राजगिरि और बराबरगिरि के अतिरिक्त कोई बिहारी पहाड़ी इनकी महत्ता की टक्कर में नहीं अड़ (डट) सकती। पुरी-जिले की 'धवली पहाड़ी' पर पुराने शिलालेखों के पास चट्टान काटकर अतीव सुन्दर हाथी बनाया हुआ है।

जैनियों के मुख्य-मुख्य पुण्यतीर्थों में परिगणित होनेवाली पारसनाथ-पहाड़ी छोटा-नागपुर में विराजती है। राँची के पूर्वोत्तर और पलामू [१] के दक्षिण में 'पाट' नामधारिणी कुछ पहाड़ियाँ हैं, जिनमें 'नेत्रहारपाट' ३३५६ फुट,'लमतीपाट' ३७७७ फुट और 'गलगलपाट' ३८२३ फुट ऊँची हैं। पूर्व की ओर, मानभूमि—जिले में, सुवर्णरेखा और कसाई नामक नदियों के बीचोबीच, 'बाघमूँडी' या 'अयोध्या' नामक पहाड़ी जलस्राविणी की तरह बनी हुई है। इसी जिले में 'दलमा' पहाड़ी की चोटी ३४०७ फुट और 'पञ्चकोट की चोटी' १६०० फुट की ऊँचाई तक पहुँची हुई हैं। सिंहभूमि [२] में तो दो-तीन हजार फुट ऊँची पहाड़ियाँ अनेक हैं। इस जिले के दक्षिण-पूर्व में तो पहाड़ियों की खासी ठट्ट है। 'सारण्ड' पहाड़ी के सिवा 'बुदा' और 'नोटू' पहाड़ियाँ क्रमशः २७२८ और २५७६ फुट ऊँची हैं।

जलवृष्टि और जलवायु

यदि सालाना औसत लगाया जाय तो बिहार में ५० इञ्च [३], छोटानागपुर में ५३ इञ्च और उड़ीसा में ५८ इञ्च वर्षा होती है। जून से सितम्बर (आषाढ़ से आश्विन) महीनों तक बरसात होती है। जहाँ-जहाँ पहाड़-पहाड़ियाँ और घने-घने

---

१. इस जिले में उत्तर-पश्चिम का हिस्सा पहाड़ और जंगल से भरा हुआ है। पश्चिमोत्तर खण्ड की सर्वोच्च चोटी २५०० फुट ऊँची है। दक्षिण-पश्चिम का पहाड़ करीब ३००० फुट ऊँचा है। —(भूगोल-पाठदर्शक)

२. इस जिले में जंगल बहुत हैं। वे सब पश्चिम और पूर्व की ओर हैं। उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में बहुत पहाड़ हैं। इन सब पहाड़ों की औसत ऊँचाई समुद्र की सतह से १२०० फुट है; परन्तु दक्षिण की कोई-कोई पहाड़ी ३००० फुट तक भी ऊँची है। उन सबके बीच की घाटियाँ १०० से लेकर ९०० वर्गमील तक हैं। —(भूगोल-पाठ-दर्शक)

३. मगध, भागलपुर आदि में ४६ इञ्च और तिरहुत में तो ५२ इञ्च वर्षा होती है।

जंगल बहुत हैं, वहाँ सूखे दिनों में भी बूँदा-बाँदी हो ही जाती है। जहाँ ये सब नहीं भी हैं, वहाँ भी माघ महीने में वर्षा हो जाती है।

मोटी तरह से तीन ऋतुएँ—जाड़ा, गर्मी और बरसात—अपने-अपने समय पर, यहाँ अच्छी बहार दिखलाती हैं। आश्विन से फाल्गुन तक जाड़ा का रंग रहता है। फागुन में गुलाबी जाड़ा पड़ता है—'आधा माघे कंबल काँधे'।

चैत से जेठ तक लू चलती है। तपाये हुए ताम्रपत्र की तरह धरती तलफने और धधकने लगती है। ग्रीष्म के दुस्सह ताप से व्याकुल होकर अमीर लोग तहखाने और खसखाने में बैठकर पंखे झलवाते हैं।

आषाढ़ से भादो तक बरसात का बोलबाला रहता है। इस ऋतु में भी गर्मी(ऊमस) मालूम होती है; पर पानी जब-जब बरस जाता है, आप-से-आप ठण्डक हो जाती है

बरसात के अन्त में एक हस्त–नक्षत्र हिंदुओं के मत से होता है। उसमें गृहस्थी का सारा सामान घर में इकट्ठा कर रखना पड़ता है। कारण यह है कि मेघों कि निरन्तर झड़ी, आँधी की धूम-धड़ी बाहर निकलने ही नहीं देती। इस तूफान के दिनों के बीत जाने पर बरसात बिदा हो जाती है। लोग कहते हैं कि हस्त-नक्षत्र के पेट से ही जाड़ा पैदा होता है।

गर्मी के दिनों में बिहार में अन्धड़ों और बवण्डरों की बड़ी भरमार रहती है। प्रबल वायु के झकोरे से सूख कर पृथ्वी की सभी वस्तुएँ नीरस और उदास हो जाती हैं। अमीर लोग पहाड़ों पर ग्रीष्मावासों में, चले जाते हैं। जो नहीं जाते, वे खुले मैदान में, आकाश के नीचे, फूलों के गमलों से घिरे हुए स्थान में और चारों ओर के वृक्ष-लतादि का स्पर्श करके बहनेवाली हवा की राह में, शयन करते हैं। गर्मी की रात तो यों कटी; पर दिन में भी बँगलों और कोठियों की खिड़कियों पर खस की मोटी-मोटी टट्टियाँ जड़ देते हैं और दरवाजों पर खस के पर्दे लटका देते हैं तथा उन्हें पानी के छिड़काव से भिगोते रहने का प्रबन्ध करते हैं।

छोटा-नागपुर की अधित्यकाओं[१] पर जाड़े में इतना अधिक कुहरा गिरता है कि एक इञ्च मोटी और दबीज बर्फ जम जाती है। सुना जाता है कि राजमहल-पहाड़ो पर से पहले जमाने में नवाबों के लिए बर्फ लायी जाती थी।

दक्षिण-बिहार में उत्तर-बिहार की तरह सर्दी की तीखाई नहीं अखरती; बल्कि दक्षिण-बिहार में गर्मी का प्रभाव उत्तर से अधिक है। सर्दी तिरहुत में अपेक्षाकृत अधिक है; क्योंकि हिमालय पड़ोस में पड़ता है।

[१] वहाँ जाड़े में सर्दी अधिक और ग्रीष्म में गर्मी कम मालूम होती है

छोटा-नागपुर में नेत्रहाट-पहाड़ी पर दो कोस लम्बी और सवा कोस चौड़ी अधित्यका भूमि है। जलवायु साधारण है।

उड़ीसा के उपकूल-भाग में सर्दी और गर्मी (दोनों ही) कम पड़ती है। जो भाग समुद्र से दूर और ऊँचा है, वहाँ की सर्दी-गर्मी में विशेष अन्तर है।

नद-नदियाँ

नदियों की बहुलता प्रायः पहाड़ों की कमी पर निर्भर रहती है। विशेष रूप से बिहार में पहाड़ों की कमी नहीं है। उड़ीसा में भी पहाड़ों का प्रसार है। अतएव, बहुलांश में बिहारोत्कल की भूमि नदी-जल-सिक्त है। भारत में और-और कई नदी-बहुल प्रान्त हैं; पर उनकी अपेक्षा बिहार की दशा शोचनीय नहीं है।

हाँ, कहीं-कहीं ऐसा भूमि-भाग भी है, जो आज तक कभी नदी-नीर से सींचा नहीं गया। नहीं तो, बहुतेरी ऐसी छोटी-बड़ी सजला नदियाँ हैं, जिनके इर्द-गिर्द की खेती-बारी सालभर नदी-जल के सहारे हरी-भरी और फूली-फली रहती है। ऐसी भी कुछ नदियाँ हैं जो बैसाख-जेठ के महीनों में सूख जाती हैं और बहुसंख्यक नदियाँ ऐसी हैं, जिनकी बाढ़ से अनेक गाँव नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं तथा चारों ओर की खड़ी फसल भी चौपट हो जाती है। किन्तु लाभ यही है कि नदी-पार्श्व की भूमि अत्यन्त उर्वरा और शस्यश्यामला होती है। बरसात-भर जल-मग्न रहने के कारण बड़ी दूर-दूर तक की भूमि चारों ओर लहलही घास से छिप जाती है। भूमि की सरसता के कारण बारहो मास पशुओं को हरियरी चरने को मिलती है। किसानों को खेत की सिंचाई में नदियों से सहायता मिलती है। तटस्थ ग्रामों और नगरों के ग्रामीणों तथा नागरिकों के जलपान और स्नान के निमित्त नदियों की विशेष उपयोगिता है। जहाँ कुएँ, नहरें, तालाब आदि जलाशय नहीं हैं, वहाँ के पशुओं के लिए नदियाँ प्राण-दान देनेवाली हैं।

(१) *गंगा*—लगभग ५०० कोस की विकट यात्रा पूरी करने के बाद बक्सर (शाहाबाद) से कुछ ही पश्चिम—कर्मनाशा-संगम (चौसा) के निकट—यह हिन्दुओं की पवित्र नदी 'सुरसरि' बिहार की भूमि में प्रवेश करती है। बिहार-भर में इसकी निर्मल धारा प्रायः पूर्वाभिमुखवाहिनी है; किन्तु राजमहल पहाड़ी, बिहार के पूर्वीय सीमान्त पर, जब इसकी प्रबल गति का प्रतिरोध करती है, तब राजमहल की प्रस्तरमयी प्राचीर से टकराती, द्रुत गति से, दक्षिणाभिमुख प्रवाहित होकर, बिहार से यह वियुक्त होती है। बिहार-भर में गंगा में कहीं पुल[१] नहीं बँधा है। ईस्ट-इंडियन (अब ईस्टर्न) रेलवे की लाइन बिहार की

१. अब मोकामा (पटना जिला) में एक विशाल पुल बन रहा है

दक्षिणी तराइयों के सीमान्त को पार करती हुई गयी है। बक्सर, दानापुर, पटना, मुँगेर, भागलपुर, साहबगञ्ज आदि बिहारी नगर इसके तट की शोभा बढ़ा रहे हैं। कर्मनाशा, सरयू, शोणभद्र, पुनपुन, फल्गु, गण्डक, कोशी आदि प्रधान-प्रधान नदियों से बिहार-भूमि में इसे जल-साहाय्य प्राप्त होता है।

(२) *शोणभद्र*—मध्य भारत की अमरकंटक-पहाड़ी से, नर्म्मदा के उद्गम-स्थान से कुछ ही दूरी पर, इस नद का जन्म हुआ है। यह, लगभग २५० कोस की लम्बी यात्रा सम्पन्न करके, रोहतासगढ़ (शाहाबाद) के पास, कैमूर पहाड़ी चीरकर, पश्चिमोत्तरगति से, लगभग ५० कोस तक बिहार की उर्वरा भूमि में लहराता हुआ, आरा और पटना के बीच में, गंगा की गोद में विश्राम करता है। डिहरीघाट में, १०८ फुट वाले ९३ खम्भों पर, ई० आइ० आर० (अब ई० आर०) की ग्रैण्ड-कौर्ड-लाइन का, १००४४ फुट लम्बा 'सोन का पुल' बँधा हुआ है, जो संसार के प्रसिद्ध और बड़े-बड़े पुलों में से एक है। फिर, आरा से कुछ पूर्व, कोइलवर में भी 'सोन का पुल' बहुत बड़ा और भड़कीला बना हुआ है। यह पुल दो तह का है, जिसमें नीचे मनुष्यों और गाड़ियों के चलने का मार्ग है और ऊपर रेलवे की डबल लाइन है। उक्त डिहरी-घाट में सोन में पत्थर का बाँध बनाकर सोन का प्रवाह रोका गया है। वहीं से नहरें भी निकाली गयी हैं, जो पश्चिम में शाहाबाद-जिले को और पूर्व में गया तथा पटना जिलों को आबाद करती हैं। सोन की बालू लाल और कुछ सुनहले रंग की होती है। इसी से इसका 'शोण' नाम पड़ा। भारत-यात्री मेगास्थनिज ने संस्कृत में इसका नाम 'हिरण्यवाह' पाया है। उसका कहना है कि गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिन्धुनद के बाद भारत की नदियों में इसी का नम्बर आता है।

(३) *सरयू*—मानसरोवर के आसपास से निकलकर, २०-२५ कोस तक बिहार को युक्तप्रान्त से पृथक् करती हुई, यह 'घर्घरा' (कलकल-निनादिनी, खरस्वनी)-नामधारिणी पुण्य नदी छपरा के पास गंगा से मिलती है। इसके सुरम्य संगमस्थल पर, हिन्दुओं के पर्व-त्योहारों के शुभ अवसर पर, हजारों स्नानार्थी एकत्र होते हैं। सूर्य्यवंशी राजाओं की पुराण-प्रसिद्ध राजधानी 'अयोध्या' का चरण-तल पखारते रहने से इसका बहुत बड़ा माहात्म्य है। बिहार में केवल छपरा-नगर इसके तट-प्रान्त को अलंकृत करता है। इस तीर्थ-नदी की प्रशंसा भगवान रामचन्द्रजी ने भी की थी[१]।

१, जन्मभूमि मम पुरी सुहवानि। उत्तर दिशि बह सरयू पावनि ॥ १ ॥
जे मज्जहिं ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा ॥ २ ॥
—(रामचरितमानस)—तुलसीदास।

(४) *गण्डक*—इस नदी का जन्म नैपाल में हुआ है। सात छोटे-मोटे सोतों ने एक में मिलकर गण्डक का रूप धारण किया और इसे आगे बढ़ने का ढाढ़स बँधाया है। चम्पारन-जिले में, त्रिवेणी के पास, एक पहाड़ी घाटी के निकट, पर्वत से उतरकर, उत्तरीय बिहार की भूमि में लगभग १०० कोस की यात्रा सम्पन्न करती हुई, पटना के सामने, यह गंगा से मिलती है। उक्त त्रिवेणी-स्थान से इसमें से नहरें निकाली गयी हैं, जो चम्पारन-जिले की अधिकांश भूमि पटाती हैं। गंगा गण्डक-संगम पर, हरिहरक्षेत्र में, भारत-विख्यात मेला लगता है, जो सर्वत्र 'सोनपुर का मेला' कहा जाता है। इसी जगह इस नदी में गज-ग्राह की पुराण-प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी। सोनपुर बी० एन-डब्लू० (अब एन० ई०) रेलवे का बहुत बड़ा स्टेशन है। इसका प्लैट फार्म संसार में सबसे बड़ा कहा जाता है। इसके पास एक सुन्दर पुल (गण्डक नदी में) बँधा हुआ है। गण्डक के किनारे हाजीपुर एक छोटा-सा शहर है, जहाँ का केला मशहूर है। यह नदी प्रायः अपनी धारा प्रवाहित करने का स्थान (प्रवाह-क्षेत्र) बदलती रहती है।[१] इसका दूसरा नाम 'नारायणी' भी है।

(५) *'कोशी' अथवा 'कुशी'*—गण्डक की तरह इसकी भी जन्म-कथा है। पानी के सात पतले स्रोतों—क्षुद्र जल-स्रोतों—ने परस्पर मिलकर नैपाली पथरीली भूमि में कुशी का जन्म कराया है। कदाचित् इन्हीं दो उपर्युक्त कारणों से नैपाल 'सप्त-गण्डकी' और 'सप्तकुशिकी' नाम से प्रसिद्ध है। नैपाली पहाड़ों को छोड़ने पर, ४०-५० कोस की यात्रा के बाद, इसे गंगा संगम का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। जैसे गण्डक और इसके जन्म में सादृश्य है, वैसे ही स्रोत-गति-परिवर्त्तन में भी समता है।[२]

(६) *महानदी (महानद ?)*—उड़ीसा की एकमात्र प्रधान नदी का उद्गम-स्थान मध्यप्रदेश के पर्वतीय प्रांत में है। लम्बाई में यह पाँच सवा पाँच सौ मील तक पहुँची हुई है। सम्बलपुर और उड़ीसा के देशी राज्यों को पार करती हुई यह बड़े तीव्र वेग से आगे बढ़ती है। यह दसपल्ला-पहाड़ी में वरमूलक घाटी—

१. गण्डक के मनमाने ढंग से धारा-क्षेत्र बदलते रहने से बहुत बड़ा-बड़ा दियारा छूट जाता है। इस समय भी इसकी कई पुरानी धाराएँ हैं। वे 'बूढ़ी गण्डक' आदि कई नामों से प्रसिद्ध हैं। इसमें कोई तो दरभंगा, कोई मुंगेर और कोई पटना के निकट गंगा से मिली है।

२. कुशी (कोशी) प्रवाह-क्षेत्र परिवर्तित करने में गण्डक को भी मात किया है। बहुत दिन पहले यही कोशी नदी पूर्णिया नगर के पास बहती थी। अब तो वहाँ से लगभग बीस कोस की दूरी पर काट कर रही है। अपनी राह-चाल में कई बार फेर-बदल करके इसने कई कोसों तक की बस्ती उजाड़ दी है। उर्वरा भूमि को रेतीली और ऊसर-धूसर बनाकर छोड़ दिया है। काला कोसी, दमदाहा कोसी, हीरान-कोसी और लोरानकोसी आदि इसकी प्रसिद्ध पुरानी धाराएँ हैं।

जो १४ मील लम्बी और लगभग एक-आध मील चौड़ी है और जहाँ की पहाड़ियाँ भी चारों ओर से घनघोर जंगलों के पर्दे में ढकी हुई हैं—पार करके, 'कटक' के पास से, पहाड़ियों को बिलकुल छोड़ कर, विशाल स्रोतों की रचना करती हुई, बंगोपसागर में प्रवेश करती है। इसके स्रोतों की एक धारा का नाम 'देवी' है और दूसरी का 'महानदी'[1]। कटक में इसमें से नहरें निकाली गयी हैं। प्रायः बरसात में यह नदी बहुत चौड़ी और गहरी हो जाती है। गर्मी में किश्तियाँ चलाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके किनारे सम्बलपुर, अंगुल, कटक आदि मुख्य नगर हैं। इसकी गणना भारत के नदों में, महानद नाम से होती है।

(७) *कर्मनाशा*—यह पुराण-प्रसिद्ध नदी हिन्दू-शास्त्रों में अत्यन्त अपवित्र समझी गयी है। कितने कट्टर धर्म-निष्ठ आज तक इसके जलस्पर्श से वंचित रहते हैं। यह कैमूर-पहाड़ी से निकलकर, शाहाबाद को मिर्जापुर, बनारस और गाजीपुर जिलों से तथा दक्षिण बिहार (मगध) को उत्तरप्रदेश से विभक्त करती हुई, गंगा में मिली है। यह खूब गहरी और सदासलिला है।

(८) फल्गु—यह अन्तःसलिला नदी है; पर कभी-कभी मौज में आकर विकराल रूप धारण करती है। इसके पश्चिमीय तट पर 'गया' नामक महातीर्थ है। यह भी बिहार की दक्षिणी सीमा की पहाड़ियों से उत्पन्न हुई है और फतुहा (पटना) के पास गंगा में मिली है। इसकी बालू का पिण्ड बनाकर हिन्दू लोग अपने मृत पितरों को अर्पित करते हैं। ऊपर देखने में तो यह बालुकामयी विस्तृत भूमि का शून्य दृश्य उपस्थित करती है; पर गड्ढा बना-बनाकर लोग ठौर-ठौर निर्मल-शीतल जल निकाल लेते हैं।

ऊपर की सभी नदियों की चर्चा हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों में मिलती है। कुछ को छोड़ कर प्रायः सभी नदियों में किश्तियाँ चलती हैं। बड़ी नदियों के तट पर पर्व-त्योहारों का मेला-महोत्सव होता है। उनका सम्मान तीर्थ के समान है।

उड़ीसा के देशी राज्यों में 'ब्राह्मणी' और 'वैतरणी'[2] नाम की जो दो

---

१. 'अङ्ग' नदी सम्बलपुर—जिले से निकलकर महानदी (स्रोत-शाखा) में गिरती है।

२. यह वैतरनी केओंझर और मयूरभंज राज्यों के बीचोबीच होकर बहती है। मयूरभंज राज्य से 'सालन्दी' नदी इसकी सहायता में आती है। गर्मी में केवल छोटी-छोटी किश्तियाँ इसमें चल सकती हैं। यह आठ मील तक सिंहभूम और केओंझर—राज्य के बीच से होकर बहती है।

नदियाँ हैं। वे 'पामीर' अन्तरीप के पास चन्दबली की ओर से होकर बंगोपसागर में गिरनेवाली 'धर्म' नामक स्रोत-शाखा के साथ मिलकर, समुद्र में प्रवेश करती हैं। पहली १२५ कोस से अधिक लम्बी है। वह वैतरणी की सहायक नदी है।

चिल्का-झील

सम्भव है, इस झील के अतिरिक्त अन्यान्य झील भी बिहारोत्कल की सरस-सुन्दर भूमि में सुशोभित हों; पर इसके समान किसी दूसरी झील का नाम जगजाहिर नहीं। यह पुरी-जिले की भूमि में २२ कोस लम्बी है और मद्रास-प्रान्त के गंजाम-जिले तक पसरती चली गयी है। इसके विस्तार की औसत लगभग ४०० वर्गमील है। बरसात में इसका प्रसार बहुत बड़ा और ग्रीष्म-काल में इसका कलेवर बहुत संकुचित हो जाता है। बरसात में इसका जल मीठा; पर और दिनों में खारा रहता है। कारण इसका यह है कि वर्षाकाल में कई छोटी-मोटी नदियों की प्रचुर जलराशि इसे इस तरह भरपूर कर देती है कि एक संकीर्ण स्रोत द्वारा यह समुद्र से जो जल-ऋण-ग्रहण किये रहती है, उसे व्याज के साथ चुका देती है। अपनेमें गिरनेवाली क्षुद्र नदियों का नवीन बरसाती जल पाकर ही यह मधुजला बनती है और उष्ण-ऋतु में समुद्र का नमक खाकर तद्रूप नमकीन जलवाली हो जाती है। यह झील है तो बड़ी सुन्दर; पर छिछली है। कहीं भी इसकी गहराई १४ फुट से अधिक नहीं पायी जाती।

इसके अन्दर कई छोटे-बड़े टापू भी बन गये हैं। उनकी सहज प्राकृतिक-शोभा सचमुच मनमोहिनी है। पूर्व की ओर का 'पारीकुद' नामक टापू सबसे बड़ा है। दक्षिण में 'ब्रेकफास्ट' नाम का दूसरा टापू है। इसपर गञ्जाम के किसी जिलाधीश (कलक्टर) का बनवाया हुआ एक स्तम्भ और छोटी-सी पक्की इमारत है।

खनिज-पदार्थ

खनिज पदार्थों की उपज में यह प्रदेश अन्यान्य प्रदेशों से बहुत बढ़ा-चढ़ा है। भारत-भर में इसकी कोयले की खानें प्रसिद्ध हैं; बल्कि विदेशों में भी उनकी प्रशंसा सुनी जाती है। केवल कोयला ही नहीं, बिहारोत्कल की रत्नगर्भा वसुन्धरा से बहुमूल्य खनिज पदार्थ—अनेक प्रकार के—एक ही द्रव्य भाँति-भाँति के—उत्पन्न होते हैं।

(१) कोयला

हजारीबाग-जिले में गिरिडीह की खानें परम प्रसिद्ध हैं। यहाँ की खानें सर्वोत्तम कोयला देती हैं। भारत क्या, विदेशों तक में यहाँ का कोयला उत्तमोत्तम गिना जाता है। ये खानें ११ वर्गमील में पसरी हुई हैं।

मानभूमि-जिले में झरिया की खानों से सन् १८६३ ई० से कोयले का निकास होने लगा। झरिया की पश्चिमीय सीमा की ओर २२० वर्गमील के 'बोकारो' नामक मैदान में भी कोयले की खानें हैं। फिर, हजारीबाग जिले के 'रामगढ़ क्षेत्र' (४० वर्गमील) में कोयले की खान है। किन्तु इस खान का कोयला विशेष अच्छा नहीं होता; पुनः उक्त जिले में ही ५४४ वर्गमील में फैला हुआ, 'करनपुरा' नामक कोयले का एक बड़ा क्षेत्र है।

पलामू—(डालटेनगंज)—जिले में भी कोयले की अच्छी खानें हैं। वहीं 'औरंगाक्षेत्र' ६७ वर्गमील में विस्तृत है। ६७ वर्गमील का 'हुतर' नामक क्षेत्र भी इसी जिले में है; किन्तु इन दोनों की स्थिति ऐसे दुर्गम स्थान में है कि इनका उपयोग होना अत्यन्त कठिन है।

सन्ताल-परगना के जामतारा सब-डिवीजन में भी एक-आध छोटी-मोटी खानें मिली हैं। उत्कल प्रान्त में महानदी की तराइयों के पास सम्बलपुर जिले में और अठमल्लिक, गंगपुर तथा तलचर राज्यों में भी कुछ खानें हैं। इन स्थानों की खानें भी बड़े काम की हैं।[1]

(२) लोहा

उड़ीसा की देशी रियासतों में और छोटानागपुर में अभी तक लोहे की खानें हैं; किन्तु अब इन खानों से जो कुछ थोड़ा-बहुत लोहा निकलता है सो वहीं के आसपास के गाँववालों के काम में आ जाता है। खुर्पी, कुदाली आदि घरेलू और खेती के अन्य औजार के बनाने में ही यहाँ के लोग सब लोहा खपा देते हैं। बाहरी चालान के लिए बचत नहीं हो पाती। परन्तु जो कुछ लोहा बच जाता है, वह बहुत ही अच्छा और उपादेय होता है। जंगली सन्ताल लोग कुठार और तीर इसी लोहे से बनाते हैं। मयूरभंज-राज्य की गुरुमासिनी-पहाड़ी में बहुत ही उत्तम लोहे की खानें हैं। यहाँ तक कि सिंहभूमि के 'साकची' नामक स्थान में लोहे के कारखानों की भरमार से बड़ा भारी शहर-सा बस गया है। बूदा और नोटू पहाड़ियों में भी लोहे की खानें हैं। राँची, पलामू, हजारीबाग, सिंहभूमि, सम्बलपुर आदि जिलों में जो खानें हैं, उनसे बहुत लाभ होता है।

१. बिहारोत्कल की खानों की उपज सालाना औसत से बहुत अधिक है। १९११ ईसवी में सम्बलपुर की खानों से छः हजार टन कोयला निकलता था। इसी प्रकार प्रत्येक खान की उपज का वार्षिक हिसाब अन्दाजा गया है—(१) झरिया ६० लाख टन (सलाना)। (२) गिरिडीह ८२० लाख टन (सालाना)। (३) बोकारो १५०८० लाख टन (सलाना)। (४) करनपुरा ९०००० लाख टन (सालाना)। १ टन = २७ मन।

(३) ताम्बा

सिंहभूमि-जिले में ४० ४५ कोस का लम्बा मैदान है, जिसमें बहुत बड़ी-बड़ी खानें हैं। ये खानें भारत-विख्यात हैं। इन खानों से सन् १६१२ ई० में लगभग ६००० टन [१] ताम्बा निकलता था, जिसका मूल्य १३५०० पाउण्ड [२] हुआ था।

कैमूर-पहाड़ी में, देवघर सब-डिवीजन में, और गिरिडीह में भी, ताम्बे की खानें हैं; किन्तु बहुत कम हैं।

(४) अबरक (अभ्रक)

हजारीबाग-जिले में, लुहरदग्गा के पास, गया-जिले के नवादा सब-डिवीजन में, और मुंगेर-जिले में, अबरक की खानें हैं। इन तीनों की सरहद पर ६० मील लम्बी और १२ मील चौड़ी खानें हैं। गिरिडीह और सम्बलपुर तथा झाझा के पास भी अबरक थोड़ा-बहुत निकलता है। उपर्युक्त खानों से काफी अबरक निकलता है। विदेशों में इसकी बड़ी खपत हैं। चालान खूब जाता है।[३]

(५) हीरा-जवाहर

उड़ीसा की सोनपुर-रियासत और [४] सम्बलपुर-जिले में, महानदी के अन्दर, हीरे मिलते हैं। सोनपुर हीरे के लिए बहुत प्रसिद्ध है। छोटानागपुर की 'संख' नामक नदी में मुगल-सम्राटों के समय में हीरे मिलते थे।[५]

(६) सोना

छोटा-नागपुर में सोने की खान थी, जिनमें हर महीने सोने की गुल्लियाँ (छड़) निकलती थीं।[६]

(७) शीशा

(चाँदी, पारा, अलमोनियम)

सन्थाल-परगना में शीशे की खानें हैं। उनमें से 'चाँदी' भी पैदा होती है।

---

१. १ टन = २७ मन।

२. १ पाउण्ड = १५ रुपया।

३. रूस देश में अबरक की पट्टियाँ खिड़कियों में शीशे की जगह मढ़ी जाती हैं।

४. उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सम्बलपुर में कई अमूल्य हीरे मिल चुके हैं। उनका पता अब तक भी मिलता है। एक हीरा तो ६७२ ग्रेन, २१० कराँत तौल के बराबर था, जो किसी महाराष्ट्र-सेनानी के हाथ लगा। गत ६० वर्षों में इधर भी कई बहुमूल्य हीरे मिल चुके हैं।

५. सुना जाता है, कमक साहब कप्तान (Captain Camae) जब सन् १७७२ ई० में अङ्गरेजी फौज के अध्यक्ष होकर छोटा-नागपुर में आये थे, तब उन्होंने यहाँ के एक राजा की पगड़ी में ४००००) रुपये की कीमत का हीरा जड़ा हुआ देखा था।

६. सुवर्णरेखा और महानदी की बालू धो-धोकर सोना निकालनेवाले 'झोरा' कहलाते हैं।

हजारीबाग में 'पारा' मिलता है। कई जगहों में एक ऐसा धातु-पदार्थ मिला है जिससे 'अलमोनियम' तैयार किया जा सकता है। उड़ीसा की रियासतों में एक प्रकार का धातु निकला हुआ है। उससे 'पेनसिल' बनायी जाती है। प्रायः उसे सब लोग 'शीशा' ही कहते हैं। गिरिडीह में भी खान से कुछ शीशा निकलता है। मुंगेर-जिले के चकाई-परगने में, खड़गपुर के पहाड़ों में, भागलपुर के बाँका और सन्ताल-परगने के देवघर सबडिवीजनों में, राँची जिले में बारहमसिया के पास, सम्बलपुर में तलपतिया और झुनर तथा पद्मपुर के पास, शीशे की कुछ खानें भी मिलती हैं।

(८) चूने की गट्टी और कंकड़-रोड़ा

कैमूर-पहाड़ी में, रोहतास के पास, चूने की गट्टी इफरात निकलती है। सोन के किनारे, डिहरीघाट में, चूने की गट्टी के बहुत बड़े-बड़े भट्ठे हैं।

पलामू और सिंहभूमि जिलों में तथा गंगपुर-राज्य में भी चूने की गट्टी की खानें हैं। गंगपुर-राज्य में, रेलवे के किनारे, बिसरा नामक स्थान में, खूब बढ़िया चूना निकलता है, जो काफी मात्रा में कलकत्ता चालान जाता है।

कंकड़ या रोड़ा, जो सड़क बनाने के काम में आता है, पूर्णिया के अतिरिक्त तिरहुत के सब जिलों में भी जमीन के अन्दर से निकलता है।

(९) टिन

एक प्रकार के भूरे रंग की टिन की खानें हजारीबाग में पायी गयी हैं। वहाँ की नदियों की बलुआही रेत में भी ऐसी ही टिन की चद्दरें मिलती हैं।

(१०) मिट्टी

चीनी मिट्टी राजमहल-पहाड़ी में खूब मिलती है। एक प्रकार की मिट्टी और भी है, जिसे 'गंगामिट्टी' कहते हैं। इससे दीवार पोतने का चूना बनाते हैं। यह गया, शाहाबाद तथा पूर्णिया के अतिरिक्त तिरहुत के सभी जिलों में मिलती है। पलामू, पुरी, मानभूमि, सिंहभूमि जिलों में और उड़ीसा के देशी राज्यों में भी यह मिट्टी बहुत होती है। राजमहल-पहाड़ी की दक्खिनी छोर पर जो चीनी मिट्टी निकलती है, उससे बरतन आदि कई चीजें बनायी जाती हैं।

(११) पत्थर की पट्टियाँ (पटरियाँ)

मुंगेर के पास खड़गपुर-पहाड़ी में से खोदकर पत्थर की पट्टियाँ निकाली जाती हैं; किन्तु खड़गपुर-पहाड़ी से निकली हुई पटरियों से कहीं अच्छी और दबीज पट्टियाँ कैमूर, राजमहल और उड़ीसा के देशी राज्यों की पहाड़ियों से निकलती हैं। खड़गपुर की पट्टियों से मुंगेर का किला बना था और कैमूर की पट्टियों से रोहतासगढ़ का। कैमूर का पत्थर कुछ लाली लिये होता है। शेरशाह की बनवायी हुई सभी इमारतें, जो

यहाँ अभी तक अच्छी अवस्था में हैं, कैमूर की ही पहाड़ियों से बनायी गयी थीं। उड़ीसा की रियासतों की पहाड़ियों में से पत्थर काट-काटकर जगन्नाथपुरी, कोनारक और भुवनेश्वर के सुन्दर, सुविशाल, सुदृढ़ एवं सुप्रसिद्ध मन्दिरों का निर्माण हुआ था।

उपर्युक्त खनिज द्रव्यों के अतिरिक्त और-और धातुपदार्थ भी इस प्रदेश में खानों से निकलते हैं। अबरक की खानों से फिरोजा (गोमेद) और रूपा आदि निकलते हैं। उत्तर-बिहार में शोरे (जवाखार) की खानें हैं। छोटा-नागपुर में 'खल्ली' अधिक मिलती है। उससे तरह-तरह के बरतन, प्याले आदि तैयार किये जाते हैं। रोहतासगढ़ के आसपास में 'फिटकरी' होती है। कैमूर-पहाड़ी में 'गेरू' मिलता है। वह रँगने के काम में आता है। जमालपुर के पहाड़ों में स्लेट-पत्थर निकलता है। गया के अतरी थाने में काला पत्थर होता है, जिससे भाँति-भाँति के प्रस्तर-पात्र और मूर्त्तियाँ बनाती हैं। कालाहण्डी और गंगपुर राज्यों में तथा सिंह-भूमि-जिले में 'मैंगनीज' नामक एक तरह की धातु की खानें हैं।

जंगल

पहाड़ी और उपजाऊ भूमि में वन का होना बहुत स्वाभाविक है। वन रहने से अनेक प्रकार के लाभ होते हैं। पक्की, मजबूत और उपयोगी लकड़ियाँ, सस्ते दाम पर, सुगमता से, मिलती हैं। गाय-भैंसों को काफी चरी (हरियरी) मिलती रहती है। प्राचीन वैद्यकों में लिखी हुई अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ, जाँच-पड़ताल करने पर, शीघ्र मिल जाती हैं। जंगल के आस-पास बसनेवाले मनुष्यों की आँख की रोशनी, नित-नूतन सघन हरियाली की सुहावनी छटा देखते रहने से, साफ और तेज होती है। कन्द-मूल, फल-फूल, पुख्ता लकड़ी, रंग-विरंगी पत्तियाँ, शुद्ध मधु, ईंधन, भाँति-भाँति के पक्षी, पशुपक्षी के केश-नख-पंख और सींग-खाल, झीलों की मछलियाँ, घनी निकुञ्जों की ठण्ढी छाया, आखेट-जनित आनन्द, परिष्कृत पवन, पुष्प-परिमल आदि की सुलभता जंगल की उपयोगिता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। देश की जलवायु पर भी जंगलों का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। गाय-भैंसों के दूध पर और आस-पास के खेतों पर भी जंगलों का कम प्रभाव नहीं पड़ता। जंगलों के कारण वर्षा यथेष्ट होती है। गर्म या ठण्ढी हवा के क्रूर झकोरों से फसल की रक्षा जंगल ही करते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जिन पहाड़ों का जंगल कट गया है, उनके सोतों का पानी भी घट गया है या सूख गया है। उनके नीचे की समभूमि में अब पहले की-सी अच्छी खेती नहीं होती। जंगल कटने से जमीन की तरी जाती रहती है। पत्तियाँ बहकर खेतों में खाद नहीं बन पातीं, इससे पैदावार घट जाती है। जहाँ बस्तियों के आस-पास के वन कट गये हैं, वहाँ धूप

और हवा बहुत सताती है।[१]

जंगलों के अनगिनत लाभों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित हुआ है। अतएव सन् १८५४ से जंगल-विभाग स्थापित हुआ। बिहारोत्कल-प्रदेश का, ३७०० वर्गमील में फैला हुआ, जंगल इस समय सरकार के संरक्षण में है। उड़ीसा की देशी रियासतों में भी बड़ी-बड़ी दूर तक जंगल पसरे हुए हैं। छोटानागपुर में शाल वृक्षों के जंगल चारों ओर छाये हुए हैं। सिंहभूमि में शाल-वृक्षों का बड़ा भारी जंगल है। जगन्नाथपुरी के रास्ते में झारखण्ड जंगल प्रसिद्ध है। सभी स्थानों में थोड़े-बहुत जंगल हैं। यथा—वैद्यनाथधाम के पास जैसा घना जंगल है, वैसा ही बीहड़ वन पलामू, दुमका, राँची, हजारीबाग आदि जिलों में भी देखा जाता है।

वृक्ष-लतिकादि

मोटी तरह से वृक्षों के दो विभाग हैं। एक तो फूल के पेड़ और दूसरे फल-वान वृक्ष। फूलों के जितने प्रकार के वृक्ष भारत की पवित्र भूमि पर उपज सकते हैं, उतने ही पुष्प-वृक्ष विहारी वसुन्धरा पर भी वर्द्धित किये जा सकते हैं। कमल, कुमुद, गुलाब, केवड़ा, बेला, मोतिया, जूही, चमेली, नेवारी, कुन्द, रजनीगंधा, मन्दार, हरसिंगार, तगर, पलास, गुलचीन, कनैल, धतूरा, कचनार, मौलसिरी, शिरीष, जटामासी, सूर्यमुखी, गेंदा, मालती आदि सभी सुन्दर, सुगन्धित और सुकोमल पुष्प यहाँ यथेष्ट रीति से होते हैं। फलों की भी लगभग वही दशा है।

[बिहार में बड़, पीपर और पाकड़ उत्तम फल-वृक्ष अनेक प्रकार के यहाँ हैं। ये तीन ही बड़े-बड़े वृक्ष हैं। यदि एक ही साथ मिलकर तीनों उपजें, तो उसे 'हरिशंकरी' कहते हैं। इसी के नीचे पुराने समय में गाँव-गाँव में पंचायतें होती थीं[२]। बड़ की बरोहें जमीन तक लटककर जमीन में पैठ जाती हैं, फिर क्रमशः पुष्ट होकर सुदृढ स्तम्भ की तरह समूचे छतनार वट-वृक्ष के सघन-छाया-मण्डित विशाल मस्तक को अपने कन्धे पर थामे रहती हैं। इसकी स्थूल शाखाओं के कोटरों में पक्षी, सर्प आदि रहते हैं[३]। फल लाल-लाल और पत्तियाँ दबीज-

---

१. 'सरस्वती' (मई १९०९) के 'जगलों से लाभ' शीर्षक लेख के आधार पर लिखित।

२. छपरा से पश्चिम, जहाँ सरयू गङ्गा से मिलती है, 'माँझी' नाम की बस्ती के पास एक बड़ का पेड़ इतना बड़ा है कि उसकी छाया गर्मियों में दोपहर के समय १२०० फुट के घेरे में पड़ती है। —'भूगोल हस्तामलक'।

३. बूढ़े लोगों से सुना है कि शाहाबाद जिले में गंगातट पर एक अति प्राचीन एवं विशाल वटवृक्ष था, जो हर साल अगहनी और चैती फसल के समय पचास-पचास रुपये में बिकता था; क्योंकि उसपर रहनेवाली असंख्य चिड़ियाँ दाने चुगकर खाती-गिराती थीं, जिससे कई मन अन्न मिल जाता था। —लेखक।

हरी होती हैं। वट की तरह पीपल भी हिन्दुओं का परम पूज्य है। उसे लोग 'वासुदेव' कहते और जल देकर उसकी परिक्रमा करते हैं। पीपल के पत्र चिकने, पतले और चंचल होते हैं। इसके फल बड़ के फल से छोटे और पकने पर श्याम और लाल होते हैं। पीपल में 'लाही' बहुत होती है। यह बेशकीमत चीज है। इससे 'लाह' (चपड़ा) बनता है। पीपर काटना हिन्दू लोग अधर्म समझते हैं। पाकड़ की छाया बड़ी सुशीतल होती है। पाकड़ के टूसे का अचार बनता है।

बिहारी गाँवों की बस्तियों के इर्द-गिर्द बाँस के घने झुरमुटों की बड़ी भरमार रहती है। बाँसों का लचीला मस्तक हवा में झूमकर बड़ा सुहावना बन जाता है। प्रातः-सन्ध्या चिड़ियों की चहचह से बाँसों की कोठियाँ (कुञ्जें) गूँज उठती हैं। बाँसों से घर और मण्डप बनते हैं तथा कई तरह के आवश्यक लाभ हैं।

बिहारी गाँवों में ताड़ और खजूर की भी कमी नहीं है। ताड़ के सूखे खग्गड़ से पंखे बनते हैं और छप्परों की छाजन भी बनती है। इसके फल बड़े-बड़े होते हैं। इसमें से एक प्रकार का खट-मीठा और नशीला रस चूता है। वही रस (ताड़ी) शरबत के समान पीकर बहुत-से लोग पागल बन जाते हैं। उड़ीसा में खजूर खूब होता है। उसका फल मीठा है।

निम्बवृक्ष भी उपयोगी है। वायु को शुद्ध और निर्दोष बना देता है। हानिकारक कीटाणुओं को नष्ट कर देता है। बड़े वृक्षों में यही तुलसी का गुण रखता है। इसके फल के बीज को पेरकर तेल निकालते हैं। यह तेल गरीबों के बहुत काम आता है। नीम से निकला हुआ तरल रस बहुत गुणद है। नीम पर चढ़ी गुड़च की लता से दवा बनती है।

इसी प्रकार कटहल, बड़हर, सेमर, इमली, महुआ, आँवला, अमड़ा, सहिजन, अगस्त, जामुन, लीची, अमरूद, केला, नारंगी, नाशपाती, नीबू, अनार, कैंत, करौंदा, तूत, आदि विविध प्रकार के असंख्य वृक्ष बिहार में पाये जाते हैं। इन वृक्षों के रोपने, बढ़ने और फूलने-फलने में कोई कठिनाई नहीं होती।

बिहार में, सच पूछिये तो, सर्वोत्तम फलवान वृक्ष 'आम' ही है। इस आमवृक्ष की सुन्दरता और आम्रफल की मधुरता सर्वोपरि है। इसके रसाल, सहकार, पिकबन्धु, वसन्तवल्लभ आदि नाम अक्षरशः सार्थक हैं। इसके पल्लव मंगलदायक समझे जाते हैं। इसकी कोंपलें लाल होती हैं। मंजरियों पर भौंरे गूँजते हैं। हरी-भरी शाखाओं पर कोकिलाएँ अलापती हैं।[1]

1. It hath a sweetness so peculiar that I doubt whether there be any comfit in the world so pleasant." —Bernier.'

"इस फल में इतनी प्रकृत मधुरता है कि ऐसा सुस्वादु फल संसार में कहीं होता है या नहीं, इसमें भी मुझे सन्देह ही है।" —भारतयात्री विदेशी बर्नियर

छोटा-नागपुर में 'लाह' और 'तसर' के रेशमी कीड़ेवाले वृक्ष भी बहुत हैं। हरड़, बहेड़ा आदि की भी कमी नहीं है। सबसे अधिक 'महुआ' के वृक्ष मिलते हैं। मधूक-फल खाने में मधुर और विशेषरूपेण पौष्टिक पदार्थ है। छोटानागपुर की जंगली जातियाँ इसे खूब खाती हैं। मधूक-फल के गुच्छे बड़े रसीले होते हैं; अतः शुकपक्षी उन्हें बड़े चाव से खाते हैं। वसन्त में महुए के पेड़ लाल-लाल पल्लवों और उजले-पीले फल-गुच्छों से लद जाते हैं। ये फल रात में खूब चूते हैं। इन्हें बटोरकर धूप में सुखाकर लोग खाने के लिए सँचते हैं। महुए का फल पक जाने पर मीठा लगता है। उसके बीज का तेल भी गरीबों के काम आता है। महुए से शराब भी बनती है। इसकी मजबूत लकड़ी बड़े काम की होती है।

उड़ीसा में नारियल और सुपारी के वृक्ष सब ठौर दीख पड़ते हैं। बिहार में अमीरों और शौकीनों की फुलवाड़ियों का सिंगार बिना मौलिश्री और अशोकवृक्ष के नहीं होता। श्रीकृष्णचन्द्र का प्यारा कदम्ब और शिवजी का प्यारा श्रीफल—ये दोनों वृक्ष बिहार में सर्वत्र ही होते हैं।

सेम, पान, करैली, लौकी, ककड़ी, कुम्हड़ा आदि लताएँ भी बिहार में लहलहाती हैं। जैसे मगही पान के लिए 'गया' भारत-प्रसिद्ध है, वैसे ही लीची के लिए मुजफ्फरपुर और आम के लिए दरभंगा। जल-फल (सिंघाड़ा और तालमखाना) के लिए भी दरभंगा ही प्रसिद्ध है।

जीव-जन्तु

(क) वन्य-पशु और पालतू जन्तु [१]

अंगुल जिले के उड़ीसा की रियासतों के जंगलों में जंगली हाथियों के झुण्ड-के-झुण्ड देखे जाते हैं। ऐसे तो बिहार में बड़े-बड़े राजा-महाराजा, जमीन्दार-ताल्लुकदार बड़े उत्साह से हाथी पालते हैं। घोड़े तो सभी छोटे-बड़े गृहस्थ भी

१. पालतू पशुओं का जीवन, हरियरी घास की चरी पर अवलम्बित है। अतः चरी की चर्चा यहाँ विस्तृत रूप से कर दी जाती है। चम्पारन-जिले के बगहा और शिकारपुर थाने में, सीतामढ़ी और मधुबनी (दरभंगा) सब-डिवीजनों में, पूर्णिया के उस हिस्से में—जो मोरंग। कहलाता है—चरी अफरात होती है। यहाँ के ऐसे मवेशी सूबे-भर में और कहीं नहीं होते। शाहाबाद और गया के दक्षिणखण्ड में, भागलपुर के कटोरिया थाने के घोघरे में, धर्मपुर परगने के चौर में, मुंगेर के फरकिया परगने में, जो गोगरी थाने में है—तथा अंगुल जिले (उड़ीसा) में साल-भर खूब चरी मिलती है। अतः मवेशी मजबूत होते हैं। कैमूर की अधित्यका और राजगृह की पहाड़ी में, राजमहल और खड़गपुर की पहाड़ियों में, छोटानागपुर के अधिकतर भाग और उड़ीसा के पहाड़ी हिस्सों में, सिर्फ बरसात भर चरी मिलती है। अतएव मवेशी बहुत कम दुबले-पतले और कमजोर होते हैं। —भूगोल-पाठदर्शक।

रखते हैं। कुछ हाथी पालनेवाले ऊँट भी रखते हैं। कई जगह ऊँट गाड़ियों में जोते जाते हैं। ऊँट-गाड़ी दिन-रात में पचासों कोस जा सकती है। घोड़ों का उपयोग विशेषतः इक्कों, बग्गियों, टमटम, फिटन, लैण्डो और जोड़ियों में ही होता है। सिर्फ शहरों में ही ऐसा होता है। दिहातों में लोग घोड़ों पर सवार होते हैं अर्थात् जीन-सवारी कसते हैं। छोटे टट्टू अन्नादि लादने के काम में भी आते हैं।

सिंहभूमि और उड़ीसा की रियासतों के जंगलों में एक प्रकार के जंगली बैल होते हैं। वे 'गौर' नाम से प्रसिद्ध हैं। बैलों के ही ऊपर इस प्रदेश-भर की खेती-बारी का सारा काम निर्भर करता है। सभी कृषक बैलों को बड़े प्रयत्न से पालते हैं। किसानों के घर-घर में पोसुए बैल पागुर करते हुए खूँटे से बँधे देखे जाते हैं। मीठा दूध देनेवाली गायें और भैंसें समस्त प्रदेश में, छोटे से बड़े तक, सभी के घर में नजर आती हैं। इनके दूध-दही और घी में खूब मिठास है। स्वादिष्ठ और सुस्निग्ध भोज्यपदार्थ होने के कारण इन तीनों की बिक्री भी बहुत होती है। इनके गोबर से 'ईंधन' तैयार होता है, चमड़े से 'मोट' और जूते, सींग से कंघियाँ, तरह-तरह की बेंट (मूँठ) इत्यादि चीजें बनती हैं। गाय के बछड़े से जितना अपरिमित लाभ होता है, उतना भैंस के पड़वे से नहीं।

बिहार में कई प्रकार के हिरन पाये जाते हैं। छोटा नागपुर में 'चिङ्कार' नामक एक प्रकार का हिरन मिलता है। नीलगाय, घुड़रोझ, चितकबरा आदि हिरन भी कहीं-कहीं नजर आते हैं। शिकारियों को हिरण का आखेट बहुत रुचता है। हिरणों की आँखें बड़ी लुभावनी और सहज-सलोनी होती हैं। हिरण के सींग की खूँटी पर अमीरों के दलानों में मसनद आदि रखे जाते हैं। मृगछाला का आसन परम पवित्र माना जाता है।

बिहारोत्कल के जंगलों में बनैले सूअर और भैंसे भी बड़े जबरदस्त पाये जाते हैं। इनका आखेट बड़ा श्रमसाध्य और साहसापेक्षी होता है। इनसे वन के निकटवर्ती गाँवों की खेती की भयंकर हानि हुआ करती है। ये बड़े निर्दय और निडर जन्तु होते हैं।

इस प्रदेश में जिस प्रकार गाय-भैंस पोसनेवाली कई खेतीहर जातियाँ हैं, उसी प्रकार भेड़ों को पोसने और चरानेवाली जातियाँ भी हैं। बकरी बेचारी का दूध स्वास्थ्य के लिए बड़ा लाभदायक होता है। बकरे तो मांसाहारियों के प्राणाधार हैं। भेड़ों के रोम से कम्बल बनते हैं, जिन्हें यहाँ के चतुर गड़ेरिये स्वयं बनाते हैं। इस प्रदेश में केवल धोबी गदहा पोसते हैं।

छोटानागपुर में मानव-भक्षक बाघ होते हैं। उड़ीसा की रियासतों में डरावने

चीते भी कभी-कभी शिकार में चले आते हैं। बिहार के पहाड़ी-जंगली क्षेत्रों में बाघों का शिकार बड़ी तैयारी के साथ होता है। शिकारियों के घर बाघम्बर भी पाया जाता है। बिहार-उड़ीसा के जंगलों में वन-बिडाल और लकड़बाघ तथा भालू बहुत हैं। भालू बड़े भयावने शब्द से गुर्राता है। यह सूँघ-सूँघकर हर तरह का अनुभव प्राप्त करता है। परन्तु बिहारी जंगलों में भालू कुछ कम दीख पड़ते हैं। यहाँ हुँड़ार (भेड़िया) और स्यारों की ही अधिकता है। भेड़िया बड़े कुत्ते के बराबर, पर खूब बलवान होता है। यह बकरी और गाय-भैंस तथा आदमी के बच्चों को जीवित ही उठाकर ले भागता है और इनका खून चूसता है। स्यार बेचारे तो सिर्फ गाड़ी हुई लाश और मुर्दे पर ही सन्तोष करते हैं।

इसी प्रकार लोमड़ी, खरहा, बन्दर, गिलहरी आदि जंगली जीव और नेवले, कुत्ते, बिल्ली आदि घरेलू जन्तु बिहार में विना बैर-बाधा के विहरते हैं।

(ख) पक्षी

इस प्रदेश में भाँति-भाँति के पक्षी भी हैं। हरएक पक्षी में कई प्रकार की (भिन्न-भिन्न) जातियाँ और विशेषताएँ हैं।

मयूर नामक सुन्दर वन-पक्षी यहाँ के अमीर-उमरा और धनी-मानी लोगों के महलों पर विराजते हैं। 'षडाननजी' का वाहन समझकर हिन्दू इसका शिकार नहीं करते। यह मेघमाला देखकर मस्ती में चूर हो नाचने लगता है। यह सर्प-भोजी, पर मधुरभाषी, होता है। इसके पंख बहुरंगे और चमकीले होते हैं जिनसे पवित्र और सुहावने पंखे बनते हैं।

गृद्ध नामक अशुभ पक्षी भी प्राणियों के शव के पास मँड़राता हुआ दीख पड़ता है। इसकी दृष्टि-शक्ति बड़ी तीव्र है। यह मांसोपजीवी पक्षी यदि किसी के घर के छप्पर पर बैठ जाय तो अनिष्टभय से या तो वह घर ही छोड़ दिया जाता है या छप्पर ही उजाड़कर संकट का संदेह मिटाया जाता है। चील और बाज भी शिकारी पक्षी हैं। इनके जबरदस्त चंगुल की चपेट में आकर कोई चीज सकुशल नहीं बचती। काक (कौआ) भी मांसभक्षी पक्षी है। इसकी चतुरता और धूर्त्तता प्रसिद्ध है। इसके शब्द को सुनकर रात्रि के अवसान और प्रभात के शुभागमन का अनुमान किया जाता है। गृहस्थों के छप्पर पर जिस दिन यह टर्राता है, उसी दिन यदि कोई घर का आदमी बाहर से लौट आवे या विदेश से चला आवे तो कौए को दूध-भात या दही-भात नसीब होता है।

बिहार प्रदेश में भी मुर्गों की आवाज सुनकर सुबह का अनुमान किया जाता है। यहाँ एक विचित्र पक्षी उलूक होता है, जिसे 'दिवान्ध' कहते हैं; क्योंकि

रात के सिवा इसे दिन में सूझता ही नहीं। यह सबसे मनहूस चिड़िया है। इसकी शकल-सूरत डरावनी और भद्दी होती है। इसकी अशुभ आवाज से रात की भयंकरता बेढब बढ़ जाती है। कभी-कभी यह आदमी की तरह कराहता भी है।

बिहारोत्कल-निवासी, विजयादशमी के दिन, नीलकंठ पक्षी का दर्शन मंगल-कारक समझते हैं। बहेलिया भी इस पक्षी को दिखाकर उस दिन अधेलो-सूका कमा ही लेता है।

यहाँ के लोग तित्तिर, बटेर और बुलबुल नामक चिड़ियों को बड़े शौक से पालते हैं। वे लोग तित्तिर और बटेर को सुन्दर पिंजड़े में और बुलबुल को हाथों पर लेकर हवा खाने (टहलने) निकलते हैं। तित्तिर बड़ा लड़ाका और ढीठ पक्षी है। सिसकारी देने से यह लगातार बोलने लगता है। बटेरों की लड़ाई भी दर्शनीय होती है।

गृहस्थ लोग सुग्गा पोसते हैं। गह पक्षी परम सुन्दर और मनुष्य-वाणी बोलने-वाला है। शुकपक्षी के सम्बन्ध की कितनी कथाएँ यहाँ कही-सुनी जाती हैं। यह शुकपक्षी जो कुछ भला-बुरा सुनता है, उसे ही दुहराता है। तोते के समान कबूतर भी सुन्दर और पालतू होते हैं। इन्हें भी बहुत-से लोग पोसते हैं। ये बड़े गिरह बाज और उड़ाके होते हैं। इनके पैरों में पैजनियाँ पहनाई जाती हैं। इनका कलरव (घुटकना) मीठा लगता है।

इस प्रदेश के घर-घर के छप्परों में घोंसले बना-बना कर गौरैया (चटका) पक्षी रहते हैं। इस चटकीली चिड़िया का चहचह करना बड़ा सुहावना लगता है। यह सच्ची बात है कि गाँव-नगर में महामारी (हैजा-प्लेग) फैल जाने पर यह पक्षी खोंता खाली खरके बाहर बाग में जा टिकता है। पकी फसल के खेतों में इस पक्षी के झुराड देखे जाते हैं।

कोयल और खंजरीट साल-भर तो अदृश्य रहते हैं; पर क्रमशः वसन्त और पावस के अन्त (उत्तरा नक्षत्र) में दर्शन देते हैं। खञ्जन-पक्षी अत्यन्त चञ्चल और सुबुक शरीर का छोटा-सा होता है। इसे लोग 'रामजी की (रजकी) धोबिन' कहते हैं। इसके उज्ज्वल अंगों पर काली धारियाँ होती हैं और प्रतिक्षण फुदकती चलती है। कोयल के कलकण्ठ पंचम स्वर में आलाप सुनकर वसन्तागमन की सूचना मिलती है। इस काली-कलूटी चिड़िया का कलकूजन श्रवण-सुखद होता है।

बिहार में उस विलक्षण पक्षी का मधुर शब्द भी सुना जाता है, जो सब तरह के जल का तिरस्कार करके स्वाती-बिन्दु के लिए नेह लगाये रहता है। उसे चातक या पपीहा कहते हैं। उसकी 'पी कहाँ' वाणी बड़ी रसीली और विरहोत्तेजक होती है।

(ग) सर्पादि अनेक जीव

इस प्रदेश में अनेक विषधर जीव भी हैं; पर उनमें साँप, बिच्छू, गोजर, हड्डा, बिढ़नी (ततैया) आदि प्रधान और प्रसिद्ध हैं। साँपों में गहुमन अत्यन्त भयंकर और प्रौढ विषधर है। इसके ललाट पर 'गो-पद-चिह्न' रहता है। क्रुध होने पर यह छत्र काढ़कर मदान्ध की नाईं फुफकार छोड़ने लगता है। इसका पौरुष और प्रबल साहस स्तुत्य है। डोंड नामक साँप पानी में रहते हैं और धामन भी खेतों में रेंगते फिरते हैं। सुना जाता है कि भैंस के पिछले पैरों को अपने शरीर से बाँधकर धामन साँप उसका दूध पी जाता है। करैत और सुनबहरी साँप भी विषैले हैं। जंगलों-पहाड़ों में अनेक प्रकार के बड़े साँप होते हैं।

बिच्छू गाँव-नगरों में तो होते ही हैं; पर जंगल, पहाड़ और मैदान में रहने-वाले बिच्छू बड़े विषैले होते हैं। पेड़ों के खोखलों में भी इनका निवास है। पहाड़ी बिच्छू काले-काले और बड़े-बड़े होते हैं। बस्तियों में उजले, पीले और छोटे बिच्छू मिलते हैं। इनके डंक की चोट पीतल और ताम्बे के दबीज बरतन भी नहीं बरदाश्त कर सकते, अर्थात् उनमें भी छेद हो जाता है। वज्र की टाँकी के समान वह डंक यदि ये मनुष्य के कोमल मांसास्थिमय शरीर पर मारते हैं तो एक प्रकार से मनुष्य चेतनशून्य—संज्ञाहीन हो जाता है।

गोजर, कनसलाई, हड्डे और बिढ़नी जहरीले हैं सही; पर इनके विष में प्राणान्तक पीड़ा नहीं है। पहाड़ी हड्डे प्रायः ऐसे जहरीले होते हैं कि वृश्चिकदंशन की पीड़ा याद पड़ जाती है।

इन जीवों के अतिरिक्त इस प्रदेश में मधुमक्षिका, भ्रमर, मशक, झिल्ली, चमगादड़, चूहे, गिरगिट, बिस्कुतिया (छिपकली) इत्यादि अनेक प्रकार के जीव भी पाये जाते हैं। मधुमक्षिका शुद्ध मधु-सञ्चय करती है। घरों और वनों में, पेड़ों पर और झाड़ियों में, इनके मधुच्छत्र की विचित्र सृष्टि होती है। फूलों और मंजरियों पर भौंरे गूँजते तथा मँड़राते हैं। जहाँ नमी और गन्दगी अधिक रहती है, वहाँ मच्छर भनभनाते रहते हैं। चूहे घरों, खलिहानोंऔर मैदानों में बिल बनाकर रहते हैं।

(घ) जलचर जीव

गंगा, गण्डक, सरयू आदि बड़ी-बड़ी नदियों में मगर या घड़ियाल, सूँस, सकुची, कच्छप आदि विशाल आकृति के जीव होते हैं। अन्यान्य छोटी-बड़ी नदियों में अनेक प्रकार की मछलियाँ आदि होती हैं। गंगा, सरयू आदि पुण्यजला नदियों में मेढ़क बहुत कम दीख पड़ते हैं। छोटी-मोटी नदियों में कच्छप के सिवा प्राण-घातक जल-जीव नहीं रहते। बरसात में बाढ़ आने पर मगर आदि उन छोटी नदियों में भी पैठ जाते हैं, जो बड़ी नदियों से सम्बद्ध हैं।

भौगोलिक परिचय

सीमा

'बिहार' के पूर्व में बंगाल, पश्चिम में उत्तरप्रदेश, उत्तर में नैपाल और दक्षिण में उड़ीसा है। उड़ीसा के पूर्व बंगोपसागर, दक्षिणी सीमा की ओर महानदी और पश्चिम में मध्यप्रदेश है। उड़ीसा की देशी रियासतों से उत्तर की ओर छोटा-नागपुर, दोनों उपर्युक्त प्रदेशों के बीच में, पड़ता है। बंगाल के मिदनापुर-जिले का उत्तरीय अंश इस छोटे-से प्रान्त के पूर्वीय सिंहभूमि-जिले के पूर्व में सटा हुआ है।

विस्तार और क्षेत्रफल

.नैपाल और दार्जिलिंग के दक्षिणी सीमान्त से लेकर बंगोपसागर और मद्रास-प्रान्त के उत्तरीय खण्डस्थ जिलों तक बिहार और उड़ीसा लगभग १११८२६ वर्गमील में विस्तृत हैं, जिसमें ४२३६१ वर्गमील में बिहार का और ४१७८६ वर्गमील में उड़ीसा का विस्तार है।

चिल्का-झील से लेकर सुवर्णरेखा-नदी तक बंगोपसागर के किनारे-किनारे उड़ीसा का लम्बायमान विस्तार है, जिसमें पुरी, कटक और बालेश्वर नाम के तीन प्रसिद्ध (सरकारी) जिले हैं। १५ मील से लगाकर—कहीं-कहीं—उड़ीसा की चौड़ाई ७० मील तक है। छोटानागपुर तो केवल २६७६६ ही वर्गमील में फैला हुआ है।

खण्ड-विभाग

बिहार-प्रदेश में मगध, मिथिला (तिरहुत) और भागलपुर नाम के तीन विभाग हैं[१]। गंगा की उत्तरी तराइयों में मिथिला का और दक्षिणी तराइयों में मगध और भागलपुर का विस्तार है। इन तीन कमिश्नरियों (डिवीजनों) में ग्यारह जिले हैं। तिरहुत-विभाग में सारन (छपरा), चम्पारन (मोतीहारी), मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले हैं। भागलपुर में मुँगेर, पूर्णिया, भागल-

१. अब 'छोटानागपुर' भी इसका ही एक विभाग है।—ले०

पुर और संतालपरगना (दुमका) जिले हैं[१]। मगध-खण्ड में पटना, गया और शाहाबाद तीन मशहूर जिले हैं।

उड़ीसा के दक्षिण भाग में अंगुल-जिला, पश्चिम भाग में सम्बलपुर-जिला और पूर्वीय उपकूल-भाग में बालेश्वर, कटक तथा पुरी जिले हैं। शेष प्रान्त-भर में देशी राज्यों का विस्तार है। उक्त पाँच सरकारी जिलों को छोड़कर २४ देशी मित्र-राज्य हैं।

छोटानागपुर-कमिश्नरी में केवल दो ही देशी राज्य हैं। इनके अतिरिक्त हजारीबाग, मानभूमि (पुरुलिया), पलामू (लालटेनगंज या डालटेनगंज), राँची और सिंहभूमि (चाइबासा) सरकारी जिले हैं।

मनुष्य और जातियाँ

यद्यपि बंगालियों से बिहारी लोग लम्बे और तगड़े हैं, तथापि उनके समान सुशिक्षित, प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि नहीं हैं। विशेषतः बिहार के लोग बड़े श्रम-सहिष्णु और उद्योगशील कृषक हैं। बिहार में कृषकों की संख्या अधिक है। किन्तु खेती कमाने में परिश्रमी होने पर भी ये कुछ-कुछ आलसी तथा मलिन स्वभाव के हैं। इनमें सहनशीलता अधिक और साहस कम है।

शाहाबाद और सारन तथा चम्पारन जिलों में भोजपुरी बिहारी बसते हैं। ये बड़े उद्दण्ड और हट्टे-कट्टे होते हैं। इनकी उद्धत प्रकृति आँधी-सी दुर्दमनीय है। ये बात-बात में लड़ने-झगड़ने पर कमर कसे रहते हैं; जान-बूझकर झगड़ा मोल लेते फिरते हैं। हुल्लड़ और दंगाफसाद मचाने में ये सबसे आगे रहते हैं। मार-पीट और ठोंक-पटक करने में इनकी बड़ी अभिरुचि है। ये हाथ में खूब मजबूत लाठी लिये चलते हैं। थोड़ी-सी बात में बिगड़कर ये हाथ छोड़ देते हैं। इनका सोटा देखकर बड़े-बड़े बहादुरों का कलेजा दहल जाता है। इनकी जबर-दस्ती पर एक मसल मशहूर है कि 'तसलवा तोर कि मोर ?' सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह में इन भोजपुरी बिहारियों ने भाग लिया था। हिन्दुस्तानी सेना में इनकी अपरिमित संख्या है। ये हाथ में लट्ठ लेकर रात-रात भर घर से बाहर खेतों और खलिहानों में रह जाते हैं; चाहे रात लाख डरावनी या अँधेरी हो। प्रवास-वास में इनकी अभिरुचि अत्यन्त है। प्रवासी भारतीयों में इनकी संख्या अधिक है।

पटना और गया जिलों में मगही लोग अधिक हैं। दरभंगा और मुजफ्फर-पुर में तथा मुंगेर और भागलपुर जिलों में मैथिलों की संख्या अधिक है। भोज-पुरी और मगही तथा मैथिल ही बिहार में अन्य वर्गों से अधिक हैं।

---

१. अब भागलपुर का सबडिवीजन 'सहरसा' भी एक स्वतंत्र जिला हो गया है।—ले०

बिहार में नौकरी, तिजारत और दूसरे-दूसरे व्यवसाय के मनुष्य भी हैं; पर किसानों की अपेक्षा बहुत ही कम। उड़ीसा के निवासी बड़े नम्र हिन्दू हैं। ये दयालु, शान्तिप्रिय, मिलनसार, श्रमशील और सरलचित्त होते हैं। ये लोग पान खाने के शौकीन और निरुत्साही हैं। किन्तु धनोपार्जन के निमित्त परदेश जाने में ये अनिच्छुक नहीं जान पड़ते। अपने घर का काम-काज आप ही कर लेने में इन्हें संकोच नहीं होता। ये नाटे, दुबले-पतले और देखने में बंगाली आकृति के मालूम होते हैं। इनमें अभी शिक्षा और सभ्यता का प्रचार यथेष्ट रूप से नहीं हुआ है। स्त्रियों में पर्दा की प्रथा कम है। पुरुषों में बलवान अधिक नहीं हैं। स्त्रियाँ अधिकतर कृशांगी दीख पड़ती हैं। उनका अंग केसर-कुंकुम का लेप लगाने से पीतवर्ण हुआ रहता है। विलासिनी स्त्रियाँ अपने शरीर को स्वर्णराग-रंजित कर सौन्दर्य की वृद्धि करने के लिए कुंकुम-केसर का लेप लगाती हैं।

कहीं-कहीं उड़ीसा की रियासतों में ऐसी असभ्य जातियाँ हैं जो पत्तियों से देह ढँकती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी तक उन्हें धातुओं तक की पहचान नहीं थी। उनकी बोल-चाल से असभ्यता टपकती है। उनकी स्त्रियाँ भी पत्ते का पहनावा पसन्द करती हैं।

उड़ीसा के देशी राज्यों के पर्वतीय प्रांतों में और छोटानागपुर तथा संताल-परगना के पहाड़ी हिस्सों में वही पुरानी जातियाँ हैं, जिनका संबंध द्राविड़ों से है। छोटानागपुर की ऊँची भूमि में द्राविड़ों की-सी एक जाति बसी हुई है, जो बिलकुल काली-कलूटी और नाटी है। उस जाति के लोगों की आँखें गोल-गोल, सिर बेडौल, नाक चिपटी और केश-गुच्छे कुछ-कुछ घूँघरवाले होते हैं।

छोटानागपुर की अधित्यका पर 'कोल' नामक एक जाति निवास करती है। इसका आदिम स्थान भी वहीं है, जो उक्त द्राविड़ों का। संस्कृत में 'कोल' शब्द का अर्थ 'शूकर' अर्थात् वन्यपशु है। पुनः 'कोल किरात भिल्ल बनवासी'[१] प्रसिद्ध पद है। संताल लोग बड़े ही कर्मठ और कार्य्यक्षम होते हैं। ये बात-की-बात में जंगलों को काटकर खुला मैदान बना देते हैं। ऊसर-से-ऊसर भूमि को जोत कर उपजाऊ बना डालते हैं। इनकी उद्योग-शक्ति के सामने कुछ असम्भव नहीं है। जहाँ एक दिन घने-घने जंगल थे, वहाँ इनके किये हरे-भरे धान के खेत लहलहा रहे हैं। सन् १८५५ के सौंताल-संग्राम में इनके निर्भीक साहस का पूर्ण परिचय मिला था। ये बड़े भारी मद्यप होते हैं। शराब पीने के लिए बेहाल रहते

१. रामचरितमानस (तुलसीदास)

हैं। इनकी स्त्रियाँ प्रायः स्वतंत्रता का उपभोग करती रहती हैं। वे घर के काम में जैसा हाथ बँटाती हैं, वैसा ही बाहर के कामों में भी।

खोंड़ जाति भी कम पियक्कड़ नहीं है। इस जातिवाले एक नंबर के शराबी होते हैं। मद्यपान की घृणित प्रकृति ही इन्हें अन्तिम दशा की दरिद्रता की चक्की में पीस रही है! सन् १६०८ में इन लोगों ने मद्यपान त्यागने की प्रतिज्ञा से अपने को बाँधा; पर उस प्रण-बन्धन को मद्य-पान की बुरी लत ने ढीला कर दिया। सन् १६१० में इन लोगों ने अँग्रेजी सरकार से प्रार्थना की कि शराब की भट्ठियाँ और दूकानें तोड़ या बन्द कर दी जायँ, पर सरकार ने उनकी प्रार्थना को उन्मत्त-प्रलापवत् समझकर इसलिए उस ओर ध्यान नहीं दिया कि इनसे शराब पीना छुड़ाना किसी दशा में अत्यन्त असम्भव है; क्योंकि शराब की खाली बू इन्हें ऐसा पागल बना देती है कि चाहे भट्टी कितनी ही दूर क्यों न हो, ये वहाँ जाने से नहीं चूकेंगे; अवश्य जाकर शराब पी आवेंगे।

बिहारोत्कल के हिन्दुओं में भी अनेकानेक जाति-भेद हैं। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र तो हैं ही; पर इन मुख्य चार वर्णों में भी असंख्य वर्गों या जातियों की शाखा-प्रशाखा फैली हुई है। ब्राह्मणों में जैसे अनेक जाति-भेद हैं, वैसे ही राजपूत-क्षत्रियों में तथा अन्यान्य वर्णों में भी।

मुसलमान भी इस प्रदेश में बहुत हैं[1]; पर हिन्दुओं की संख्या के सामने कुछ नहीं के बराबर हैं; किन्तु इनमें भिन्न-भिन्न जाति-विभाग का बखेड़ा नहीं है। नाम के लिए जुलाहे, पठान, शेख, सैयद आदि हैं। इनमें कुछ-ही-कुछ विभेद है; किन्तु इनमें मजहबी एका खूब है।

१. भारत का विभाजन होने के बाद, बहुत-से बिहारी मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं। पूर्वी पाकिस्तान (बंगाल) और पश्चिमी पाकिस्तान (पंजाब) से बहुत-से हिन्दू तथा सिक्ख बिहार-राज्य में चले आये हैं। इस प्रकार बंगाली और पंजाबी हिन्दुओं तथा सिक्खों की संख्या पहले से अधिक हो गयी है। आधुनिक बिहार-राज्य में पूर्व-बंगाल और पश्चिम-पंजाब (पाकिस्तान) से आये हुए हिन्दू तथा सिक्ख शरणार्थियों की कई बस्तियाँ बस गयी हैं। कुछ बिहारी मुसलमान भी दुर्दशाग्रस्त होकर पाकिस्तान से लौट आये हैं। बिहार-राज्य में सभी जातियों और सम्प्रदायों तथा प्रान्तों के लोग शान्तिपूर्वक रहते हैं। यहाँ बंगाली, मराठी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, मद्रासी, सिक्ख, नैपाली, पंजाबी, पारसी, ईसाई, बौद्ध आदि छोटे-बड़े नगरों और गाँवों तक में पाये जाते हैं। वे बिहारी बोलियाँ बोलते और समझते हैं। वे अपने-अपने त्योहार तो मनाते ही हैं, बिहारी त्योहारों में भी दिलचस्पी रखते हैं। बिहारियों की उदारता से एक नयी राष्ट्रीय संस्कृति बन रही है।—ले०

*सन् १९११ ई० की मनुष्य-गणना के अनुसार जनसंख्या

जिला या राज	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जन-संख्या	प्रति वर्गमील जन-संख्या
गया	४,७१२	२१,५९,४९८	४५८
पटना	२,०६९	१६,०९,६३१	७७८
शाहाबाद	४,३७३	१८,६५,६६०	४२७
जोड़ पटना-विभाग	११,१५४	५६,३४,७८९	५०५
चम्पारन	३,५३१	१५,०८,३८५	५४०
दरभंगा	३,३४८	२९,२९,६८२	८७५
मुजफ्फरपुर	३,०३६	१८,४५,५१४	९३७
सारन	२,६८३	२२,८९,७७८	८५३
जोड़ तिरहुत-विभाग	१२,५९८	९९,७३,३५९	७९२
भागलपुर	४,२२६	२१,३९,३१८	५०६
मुँगेर	३,९२२	२.१,३२,८९३	५४४
पूर्णियाँ	४,९९८	१९,८९,६३७	३९८
सन्ताल परगना	५,४६३	१८,८२,९७३	३४५
जोड़ भागलपुर-विभाग	१८,६ . ९	८१,४४,८२१	४४१

* सन् १९५१ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार बिहार राज्य की जनसंख्या

सारे बिहार प्रान्त की जनसंख्या	४,०२,२५,९४७
जिला	जनसंख्या
पटना	२५,२८,२७२
गया	३०,७०,४९९
शाहाबाद	२६,८८,४४०
जोड़ पटना कमिश्नरी	८२,८७,२११
सारन	३१,५५,१४४
चम्पारन	२५,१५,३४३
मुजफ्फरपुर	३५,२०,७३९
दरभंगा	३७,६६,५३४
जोड़ तिरहुत कमिश्नरी	१,२९.६०,७६०
मुँगेर	२८,४९,१२७
भागलपुर	१४,२९,०६६

जिला या राज		क्षेत्रफल (वर्गमील)	जन-संख्या	प्रति वर्गमील जन-संख्या
अंगुल	(उड़ीसा)	१,६८१	१,९९,४५१	११९
बालासोर	,,	२,०८५	१०,५५,५६८	५०६
कटक	,,	३,६५४	२१,०९,१३९	५७७
पुरी	,,	२,४९९	१०,२३,४०२	४१०
सम्बलपुर	,,	३,८२४	७,४४,१९३	१९५
जोड़ उड़ीसा-विभाग		१३,७४३	५१,३१,७५३	३७३
हजारीबाग	(छो० ना०)	७,०२१	१२,८८,६०९	१८४
मानभूमि	,,	४,१४७	१५,४७,५७६	३७३
पलामू	,,	४,९१४	६,८७,२६७	१४०
राँची	,,	७,१०४	१३,८७,५१६	१९५
सहभूमि	,,	३,८९१	६,९४,३९४	१७८
जोड़ छोटानागपुर-देशी राज्य		२७,०७७	५६,०५,३६२	२०७
जोड़ अंग्रेजी राज्य		८३,१८१	३,४४,९०,०८४	४१५
खरसाँवा	(दे० रा०)	१५३	३८,८५२	२५४
सराग्रकेला	,,	४४९	१,०९,७९४	२४५
जोड़ छोटानागपुर-देशी राज्य		६०२	१,४८,६४६	२४७

जिला	जन-संख्या
सहरसा	१३,०८,१९८
पूर्णिया	२५,२५,२३१
संतालपरगना	२३,२२,०९२
जोड़ भागलपुर कमिश्नरी	१,०४,२३,७१७
हजारीबाग	१९,३७,२१०
राँची	१८,६१,२०७
पुरूलिया	१५,४७,५५९
धनबाद	७,३१,७००
पलामू	९,८५,७६७
सिंहभूमि	१४,८०,८१६
जोड़ छोटानागपुर कमिश्नरी	८५,४४,२५९

सन् १९११ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार उड़ीसा के देशी राज्यों की जनसंख्या

२४ राज्यों की नामावली	क्षेत्रफल (वर्गमील)	जनसंख्या	प्रति वर्गमील जनसंख्या
आँटगढ़	१६८	४६,८१३	२७९
अठमल्लिक	७३०	५३,७६६	७४
बामड़ा	१,९८८	१,३८,०१६	६९
बराम्बा	१३४	४१,४२९	३०९
बउद	१,२६४	१,१३,४४१	९०
बोनई	१,२९६	५८,३०९	४५
दसपल्ला	५६८	५७,०५३	१००
ढेंकनाल	१,४६३	२,७०,१७५	१८५
गंगपुर	२,४९२	३,०३,८२९	१२२
हिण्डोल	३१२	४९,८४०	१६०
कालाहण्डी	३,७४५	४,१८,९५७	११२
केओंझर	३,०९६	३,६४,७०२	११८
खराडपाड़ा	२४४	७३,८२१	३०३
मयूरभंज	४,२४३	७,२९,२१८	१७२
नरसिंहपुर	१९९	३९,९६४	२०१
नयागढ़	५८८	१,५१,२९३	२५७
नीलगिरि	२७८	६८,७१४	२४७
पाललहरा	४५२	२५,६८०	५७
पटना	२,३९९	४,०८,७१६	१७०
रैरखोल	२३३	३१,७२९	३८
रणपुर	२०३	४५,९५६	२२६
सोनपुर	९०६	२,१५,७०१	२३८
तलचर	३९९	६६,२०१	१६६
तिगिरिया	४६	२३,२४०	५०५
जोड़ उड़ीसा-देशी राज्य	२८,०४६	३७,९६,५६३	१३५
जोड़ देशी मित्र-राज्य	२८,६४८	३९,४५,२०९	१३८
जोड़ समग्र बिहारोत्कल-प्रदेश के राज्य	१,११,८२९	३,८४,३५,२९३	३४४

धर्म्म

आदिकाल से भारत में आर्य-जाति का सर्वस्व-भूत, मुनि-महर्षिवृन्द-सेवित, रामकृष्णादि-संरक्षित, श्रीशंकरादि आचार्य-परम्परा-पल्लवित, कल्याण-कल्पद्रुम अनादि श्रीसनातन धर्म्म--वैदिक आर्य-धर्म्म—प्रचलित था और बहुलांश में है भी। बिहारोत्कल-प्रदेश में वही अखिल-भारतीय धर्म्म आदिकाल से प्रचलित था। इधर बीच में चौथी और पाँचवीं शताब्दी से बौद्ध-धर्म्म और जैन-धर्म्म का प्रभाव बिहारोत्कल की भूमि पर प्रबल हो उठा। इन धर्म्मों के सूत्रपात से ही वह प्राचीनतम श्रेष्ठ वैदिक धर्म्म क्षीण होने लगा।

उक्त धर्म्मों के विषय में मई १९१४ ई० की 'सरस्वती' में एक 'वैष्णव' लेखक महाशय लिखते हैं—"भारत की धर्म्मचिन्तारूपिणी नदी संहितारूपी पर्वत से जन्म प्राप्त करके ब्रह्म नामक शिला-माला से स्खलित होती हुई—प्रसार-लाभ करती हुई—जिस समय 'आरण्यकोपनिषद्' नामक गम्भीर कन्दरा में उपस्थित हुई; उस समय उसका जलोच्छ्वास और भी प्रबल तथा उसका वेग और भी भीषण हुआ। वह कलकल शब्द करके चारों दिशाओं को मुखरित और दोनों तटों को प्लावित करता हुआ चला। इसके बाद धारा-भंग हुआ—एक धारा की तीन धाराएँ हो गईं। वे तीन धाराएँ तीन विभिन्न दिशाओं में बहीं। विभिन्न प्रकृति के संसर्ग से उनकी प्रकृतियाँ भी विभिन्न हो गईं। इसलिए उनके नाम भी विभिन्न हो गये। प्रधान धारा का पहला ही नाम रहा; वह 'ब्राह्मण' कहकर विख्यात है। अन्य दो धाराओं में एक का नाम बौद्ध और दूसरी का जैन हुआ। इसके सिवा और कुछ नहीं। बौद्ध-धर्म हठात् आकाश से निपतित किंवा समुद्र से उत्थित नहीं हुआ था। [१]"

प्रातःस्मरणीय भगवान शंकराचार्य ने उस वैदिक धर्म का जब उद्धार किया, तब हिन्दुओं में धार्मिक जागृति फैलने लगी, और यहाँ तक फैली कि बौद्ध और जैन-धर्म का प्रवाह ही पीछे की ओर घूम गया। उक्त दोनों धर्मों की धवल धारा मुड़कर जब सनातन-धर्म-सागर में विलीन हो चुकी, तब उड़ीसा एक बार बहुत दिनों पर 'चैतन्य महाप्रभु' के भक्ति-संगीत से गुंजायमान तथा 'जयदेव' के गोविन्दगीतामृत से अभिषिक्त हो उठा और मिथिला प्रदेश महाकवि 'विद्यापति' की कोमल-कान्त पदावली के सरस प्रवाह से परिप्लावित होने लगा।

---

१. बौद्ध और जैनी वेद को नहीं मानते और पशु का घात करना बहुत बुरा समझते हैं। दो-ढाई हजार वर्ष का समय गुजरता है कि यह मत बड़ा प्रबल हो गया था और सारे हिन्दुस्तान में राजा-प्रजा सब लोग उसी मत को मानते थे। शंकराचार्य के समय से वह मत दूर हुआ और वेद की महिमा फिर चमकी।—(भूगोलहस्तामलक)

बिहार-उड़ीसा में हिन्दुओं की संख्या इस समय [1] ३२० लाख है। ये हिन्दू-धर्मानुयायी हैं। वैष्णव, शैव, शाक्त, वेदान्ती आदि अनेक मत हिन्दू-धर्म के अन्तर्गत हैं। वैष्णवों में भी अनेक भेद हैं। उड़ीसा और तिरहुत में हिन्दुओं का ठट्ट खूब है। मिथिला तो आर्य-जाति का आदिम स्थान है ही, उड़ीसा भी बहुत दिनों से हिन्दूधर्मावलम्बियों के लिए परम पवित्र भूमि समझा जाता रहा है।

जाज्वल्यपराक्रम जरासन्ध की भयंकर तलवार ने मगध में सनातनधर्म की अमृत-लता को जड़ से कलम कर दिया था; परन्तु उसके देहान्त के उपरान्त वह फिर लहलहा उठी और पुष्प-भार-नम्र होकर अपूर्व-श्री से शोभित हो रही।

अशोक ने उड़ीसा-निवासियों को भीषण आक्रमण द्वारा अपने अधिकार में लाकर बौद्धमतानुयायी बनाया था। इसके पूर्व वे हिन्दूधर्म की पूजा में प्रवृत्त थे। महाराज बिम्बसार के समय से अर्थात् पाँचवीं शताब्दी में बौद्धधर्म का जो दीपक प्रज्वलित हुआ था, वह आठवीं शताब्दी में निर्माण को प्राप्त हो गया।

यहाँ की ब्राह्मण-जाति के लोग सदा पूजा-पाठ, जप-अनुष्ठान आदि धार्मिक कृत्यों के सम्पादन के अधिकारी माने जाते हैं। सभी जातियाँ उनका देवतुल्य सम्मान करती हैं। उन्हें सुस्वादु भोजन द्वारा सन्तुष्ट कराने में महान् पुण्य समझा जाता है। बिहारोत्कल-निवासियों में राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, गणेश, सरस्वती, सूर्य, भैरव आदि देवों और देवियों की उपासना करनेवालों के सिवा बहुत-से ऐसे हैं, जो भूत-प्रेत-पिशाच आदि की आराधना में रत हैं। कल्पित लोकाचार की इतनी प्रबलता है कि वेद-मत शिथिल पड़ गया है। सब लोगों ने अपने-अपने मनोनुकूल धर्म गढ़ लिये हैं।

सन् १९११ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार बिहार-उड़ीसा में हिन्दूधर्मानुयायी ३१७५३६८८ मनुष्य हैं और इस्लाम-धर्मावलम्बी ३६८३४३८। २६८२६५ ईसाइयों के सिवा २२८८ सिक्ख, ४६२९ जैन और १९२७ बौद्ध धर्मों को मानने वाले हैं। बिहार-उड़ीसा में १५०९५५० शिक्षित हैं और ३६६२५७४३ अशिक्षित। छोटानागपुर में भी (देशी राज्य-सहित) ७१३३५९८ हिन्दू-धर्म, १३७९ जैन-धर्म, १४५४ बौद्ध-धर्म और ३४९१७९ इस्लाम धर्म के अनुयायी हैं। बिहारोत्कल की सन् १९११ ई० वाली जनसंख्या (३४४९००८४) में पुरुष १६८५९९२९ हैं और स्त्रियाँ १७६३०१५५। स्वतंत्र राज्यों के साथ जनसंख्या ३८४३५२९३ हैं। दोनों प्रान्तों की अलग-अलग जनगणना इस प्रकार है—बिहार २३७५२९६९ (पुरुष ११६०६४३२; स्त्री १२१४६५३७); उड़ीसा—

१. बीसवीं सदी की दूसरी दशाब्दी में।

५१३१७५३ (पुरुष २४७६२८४, स्त्री २६५५४६६)। छोटानागपुर की जन-संख्या (५६०५३६२) में पुरुष २७७२१३ और स्त्रियाँ २८२८१४६ हैं।

चाल-व्यवहार

आर्य्यों का आदिवासस्थान और प्राचीन आदर्श सभ्यता का लीला-क्षेत्र मिथिला और गंगा का तट ही है। किसी दिन यहाँ के निवासियों की रहन-सहन और चाल-चलन सभ्यता की महत्ता से परिपूर्ण थी। यहाँ आजकल प्रायः उस बीती दशा के विपरीत दृश्य उपस्थित है।

अब भी बिहारी लोग नामी होने और परलोक सुधारने के लिए धर्मशाला, देवमन्दिर, कूप, वापी, सरोवर आदि बनवाते हैं; किन्तु यह सब काम, निष्काम हृदय से, कोई-ही-कोई करता है। जिसे यह सब करना होता है, वह ऐसे पुण्य खाते के कामों में किसी को शरीक नहीं करता। यदि कोई ऐसे सार्वजनिक कार्य का बीड़ा ले उठे तो सहायक कम मिलते हैं। सबकी इच्छा अकेले ही पुण्य लूटने की रहती है। अभी यहाँ के लोगों में विद्या-प्रेम का बहुत-कुछ अभाव है; अतः पाठशालाओं और विद्यालयों की स्थापना की ओर बहुतों का ध्यान नहीं जा पाता।

बिहारी लोग पुत्र और कन्या के विवाह में, माता-पिता के श्राद्ध में और पण्डों के पाखण्ड-प्रपंच से परिप्लावित तीर्थों में अपरिमित द्रव्य व्यय करते हैं। इनके अपव्यय से जो क्षति होती है, वह समाज के सिर पड़ती है। शादी-ब्याह में रण्डियों और भाँड़ों के नाच-तमाशे के लिए धन को आतशबाजी की तरह फूँक देते हैं। तिलक और दहेज की कुप्रथा से इनका सारा समाज कलुषित हो गया है। मुकदमेबाजी में भी काफी फजूलखर्ची होती है।

बिहारियों को खाने-पहनने के लिए बहुत थोड़ा धन और अल्पसामग्री चाहिए। मुकदमा लड़ने के लिए इन्हें प्रचुर धन की आवश्यकता है। खाते हैं सत्तू, पहनते हैं फटा-पुराना, सोते हैं चटाई या खर-पात पर; किन्तु मामला-मुकदमा लड़ने में भिड़कर बेहिसाब रुपये लुटा देते हैं। छोटी-मोटी बात के लिए, ईर्ष्या-द्वेषवश, धन को पानी के समान बहा देना इनका एक प्रधान काम है। पुरानी पंचायत-प्रथा अत्यंत शिथिल हो गयी है।

यहाँ की स्त्रियाँ गहने पहनने में और गन्दा रहने में बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। स्त्रियाँ पर्दे में रहती हैं। नातेदारी में जो उनसे छोटे होते हैं, वे चाहे देख लें तो देख लें, नहीं तो उन्हें, बड़ों को बात कौन कहे, सूरज-चाँद भी नहीं देख पाते; किन्तु ऐसी स्थिति केवल बड़े घर की बहू-बेटियों की है। साधारण लोग अपनी स्त्रियों को सिर्फ पर्दे से बाहर घूमने-फिरने की आज्ञा देते हैं; परन्तु हर हालत में

स्त्रियों के सिर पर पुरुषों का अधिकार-अंकुश गड़ा ही रहता है। स्त्रियों की वेशभूषा अत्यन्त भद्दी है। केश और वस्त्र तथा अवयवों की गन्दगी पर विचार करना तो वृथा है; पर भूषणों का भद्दापन तो निन्दा की सीमा भी फाँद जा सकता है। जो स्त्री पानी का लोटा कूँए से नहीं निकाल सकती, वह भी पसेरी-भर गहना पहन लेती है और यदि उन्हीं भूषणों की गठरी उसके सिर पर लाद दी जाय तो वह सौ कदम से बेशी तेज नहीं जा सकती। यह हालत उन बड़े-बड़े घरानों की है जो गाँवों में हैं, जहाँ शिक्षा का आलोक नहीं पहुँचा है। शहरों के शिक्षित लोगों के घर में कुछ-कुछ सुधार हो चला है।

बिहारियों के बच्चे बहुत छोटी उम्र में ब्याहे जाते हैं; अतएव न तो स्वस्थ ही होने पाते हैं और न चिरायु ही। माता-पिता को बच्चों की शादी करने की जैसी गाढ़ी चिन्ता रहती है, वैसी लिखाने-पढ़ाने की नहीं रहती। बालकों की शिक्षा का प्रश्न उनके लिए महत्त्व नहीं रखता, तो बालिकाओं की गिनती न तीन में है, न तेरह में। बेचारी कन्या का ज्यों ही जन्म होता है, त्यों ही उसके माता-पिता मुँह बना लेते हैं और वैसे ही निराशा की नदी में डूबने-उतराने लगते हैं जैसे मंगलामुखी वेश्याएँ पुत्रोत्पत्ति के बाद निराशा-नदी में बह चलती हैं।

स्वामी दयानन्द के आर्य्यसमाज का कुछ प्रभाव पड़ने से कहीं-कहीं विधवा-विवाह भी हुआ है; पर यह प्रथा यहाँ अभी प्रचलित नहीं हुई है। हाँ, वृद्ध-विवाह, अनमेल जोड़ों का विवाह, बाल-विवाह, अयोग्य-विवाह आदि अनेक विवाहों की कुरीतियाँ इस प्रदेश में समाज की नसें ढीली कर रही हैं।

होली-महोत्सव में यहाँ सब लोग स्वभावतः उन्मादित हो जाते हैं। बाल-युवा-वृद्ध, सब-के-सब, एक ही रंग में रंग जाते हैं। ऊँच-नीच और बड़े-छोटे का विचार छूट जाता है। लज्जा और शील की आँखें फोड़ दी जाती हैं। सभ्यता का गला घोंट दिया जाता है। अनुचित-उचित का विवेक छोड़कर सब लोग अपशब्दों और घृणास्पद वाक्यों का उच्चारण करने लग जाते हैं। लोग दूसरों पर धूल, राख, कूड़ा, गन्दी-से-गन्दी, सड़ी-गली, नापाक, दुर्गन्धित चीजें डालने और फेंकने लगते हैं; शराब, गाँजा और भाँग पी-पी कर बम-भोला बने फिरते हैं।

दीवाली में जूआ खेलते हैं। गोमाता की पूजा करते हैं। कहीं-कहीं सूअर को घसीट कर गाय-भैंसों को उसे मारने के लिए ललकारने और उत्तेजित करने की चाल है। विजयादशमी (दशहरा) में बंगाल की तरह 'सरस्वती-पूजा' की चाल बिहारियों में नहीं है। उड़ीसा में जगन्नाथजी के रथयात्रा-महोत्सव (आषाढ़) में कितने ही भक्त लोग रथ के चक्के के नीचे आप-से-आप सोकर कुचल जाते थे। यह चाल अब छूटी है।

भाषा

बिहारोत्कल में कई भाषाएँ प्रचलित हैं; किन्तु हिन्दी और उड़िया की ही प्रधानता है। बिहारी भाषा तो मुख्यत: 'हिन्दी' ही है; पर 'भोजपुरी', 'मगही' (मागधी), 'मैथिली' आदि स्थान-भेद से उसके रूपान्तर हो गये हैं। हिन्दी-उर्दू को सरकारी कचहरियों में शरण मिली है। हिन्दी-भाषा को शिक्षित और सभ्य लोगों ने अपनाया है। किसानों और दिहातियों तथा अनपढ़ों में वही व्याकरण-हीन उक्त तीन भाषाएँ प्रचलित हैं। भोजपुरी और मगही कैथी अक्षरों में लिखी जाती हैं। मैथिली मिथिलाक्षर में और हिन्दी 'देवनागरी अक्षर' में लिपिबद्ध की जाती है।

छोटानागपुर, उड़ीसा के देशी राज्यों और सन्तालपरगना में 'मुण्डा' भाषा बोली-लिखी जाती है; किन्तु वहाँ की बसनेवाली जातियों के नामानुसार वह भाषा 'सौंताली', 'मुण्डारी' (मुड़िया), 'खड़िया' आदि नामों से विख्यात हो गयी है। सन्तालपरगना के सौरिया पहाड़िया लोग 'माल्टो' भाषा बोलते हैं और खोंड़-जातिवाले 'कौंधी' भाषा का प्रयोग करते हैं।

भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों की संख्या

१.	हिन्दी—	२,४६,३३,०००
२.	बिहारोत्कल में बंगभाषाभाषी—	२२,६५,०००
३.	उड़िया भाषा—	७८,२०,०००
४.	मुण्डा भाषा—	२५,५६,०००
५.	द्राविड़ी भाषा (आदिवासियों की)—	७८,५०,०००

खेती और उपज

'भारतवर्ष के किसी भी स्थान में बिहार के सदृश आदर्श कृषक नहीं पाये जा सकते। उनके मस्तिष्क में युगों का अनुभव भरा है और उनका संपूर्ण परिवार पूर्ण हृदय से कृषि-कार्य में रत रहता है। कृषि-विभाग उसे बहुत-कुछ सिखा नहीं सकता.........'[१]।

कृषि के अतिरिक्त बिहारियों का अन्य कोई व्यापार नहीं। कारण यह है कि उर्वरा भूमि और समय पर यथेष्ट वृष्टि उन्हें सुलभ है। वे साल-भर केवल अपने ही पेट पोसने-भर के लिए अन्न नहीं उपजाते; बल्कि उनकी उपार्जित अन्न-राशि से भारत के अन्यान्य प्रदेश तथा सुदूरवर्ती विदेश के निवासी भी पेट भर रहे हैं।

---

१. पाटलिपुत्र' (पटना) का विशेषांक, पृष्ठ—२७।

बिहार में तीन फसलें कटती हैं—भदई, अगहनी और चैती। भदई तो बरसात ही (भादो) में होती है ; पर अगहनी सावन-भादो में बोई और अगहन में काटी जाती है। फिर चैती भी कातिक में बोई जाती है। भदई में कोदो, मँडुआ, साँवाँ, टाँगुन, बजरा, जुन्हरी, जनेरा, मकई, सेरा, साठी, करहनी आदि अनेक प्रकार के मोटे अनाज पैदा होते हैं। अगहनी में सिर्फ धान की ही पैदावार का प्राधान्य है। धान असंख्य प्रकार के होते हैं। उनकी नामावली और उनके आकार-प्रकार और गुण-लाभ आदि का विवरण तैयार किया जाय तो एक बड़ा भारी पोथा तैयार हो जाय। चैती में रब्बी होती है। इसमें गेहूँ, जौ, चना, खेसारी, तेलहन, मटर आदि पौष्टिक अन्न उपजाते हैं। उड़द, मूँग, अरहर, मसूर, आदि दाल के अनाज भी खूब पैदा होते हैं। तीसी, तोरी, तिल आदि तेलहन को छोड़कर रेंड़ी, बर्रे आदि भी यथेष्ट रीति से यहाँ उपजते हैं।

बिहारी लोग गेहूँ तो अफरात उपजाते हैं; पर खाते बहुत कम हैं। विशेषतया (धान का) चावल ही बिहारियों का सर्व-प्रधान भोज्य पदार्थ है। पर्व त्योहारों में गेहूँ की खोज होती है। चने को मगर खूब सधाते हैं। बोने के वक्त हलवाहा भी चना चबाता है। पनपने पर लोग साग (टूसा) खोंट (कुटक) लेते हैं। फिर कचरी और होरहा के बहाने बूँट बेचारे को बेपनाह कर देते हैं। बूँट की बे-शुमार चीजें बनती हैं। बूँट के बराबर कोई वस्तु अगणित प्रकार का भोजन नहीं प्रस्तुत करा सकती। बूँट को घोड़े भी खूब चाव से खाते हैं।

उड़ीसा में भी पटुआ पैदा होता है; मगर बिहार के पूर्णियाँ-जिले के बराबर जूट कहीं पैदा नहीं होता। दक्षिण-बिहार में जिस प्रकार ऊख की खेती का बड़ा जोर है, उसी प्रकार तिरहुत में तम्बाकू की खेती का। बिहार में अफीम के पौधों की खेती पहले खूब होती थी; लेकिन अब उनका जखीरा जड़ से उखड़ गया। नहीं तो पटना में ही अफीम का अपार भण्डार-सरीखा गुदाम था[1]। चम्पारन में नील की खेती अब भी होती है; पर उसका व्यापार मंदा पड़ गया है।

पटना, गया और शाहाबाद जिले का चावल बहुत ही महीन (बारीक), सुंदर, सुस्वादु, सुगंधित, दर्शनीय और उज्ज्वल होता है[2]। चावल का प्रसाद देखते ही उसके सौरभ से मन मुग्ध और स्वच्छ दर्शन से चित्त तृप्त हो जाता है। चावल ही इस प्रदेश (बिहारोत्कल) के लोगों का प्रमुख खाद्य और प्राणाधार है।

---

१. मोतीहारी (चम्पारन) जिले में नील की खेती खूब होती है।

२. दक्षिण-उत्तर बिहार में धान की पैदावार खूब होती है। मुँगेर, भागलपुर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, चम्पारन और पूर्णिया जिलों में धान की खेती अच्छी होती है।

खेती की उपज में पैदावार जमीन और वर्षा की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही दरकार नहर, आहर, पोखर, ताल, पइन और कुँए की भी है। बिहार में नहरें भी हैं, झील-झरने भी हैं, नदी-तालाब, कुँए आदि जलाशय भी हैं।

उड़ीसा में भी नहरें हैं। [1]भूमि उर्वरा है और ताल, डाबर आदि बहुत हैं। उड़ीसा की भूमि कुछ लाल रंग की है। मिट्टी कहीं सूक्ष्म-कण-युक्त है और कहीं स्थूलकण-युक्त है। मँडुआ, साँवाँ, तम्बाकू, पान आदि की उपज के लिए वहाँ की मिट्टी बहुत अच्छी है।

छोटानागपुर में तो जहाँ-जहाँ नीची (खलार) जमीन है, वहीं खेती करने का सुभीता है; क्योंकि ऊँची जगह से नयी चिकनी मिट्टी का धुआठ—खादखूद—बहकर नीची जगह में खूब जमा होता है। इसीलिए तरी या गहरी जमीन में काफी पैदावार होती है। ऊँची जमीन का पानी नीचे की ओर बिल्कुल ढलक जाने के कारण छोटानागपुर[2] की ऊँची अधित्यका पर एक बूँद जल भी नहीं टिकता। बिहार की तरह वहाँ भी कुँए से जल निकालकर बहुत जगहों में खेती की सिंचाई होती है।

जैसे उड़ीसा में महानदी से नहरें निकाली गयी हैं, वैसे ही मगध देश में भी सोन की नहरें हैं। सोन की नहरों से शाहाबाद जिले का अधिकांश दक्षिणपूर्वी खण्ड आबाद होता है। पटना और गया जिले भी सोन की नहरों से सींचे जाते हैं। और-और जगहों में केवल मेघ और सजल जलाशयों की आशा पर ही अवलम्बित रहना पड़ता है। चम्पारन जिले में त्रिवेणी की नहरें हाल ही में बनकर तैयार हुई हैं। इनके द्वारा चम्पारन का समग्र उत्तरीय खण्ड सिक्त हो सकेगा।[3]

व्यवसाय[4]

"बिहार की व्यवसाय करनेवाली जातियों में कुछ तो इतनी प्राचीन हैं, जितना स्वयं इतिहास। गड़ेरी (जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'गड्डालिका' अर्थात् भेड़ से है) चन्द्रगुप्त के भी पूर्वकाल से भेड़ों का परिपालन करते आ रहे हैं। इन लोगों में ऊन धुनना, कम्बल बुनना आदि विषयों के जातीय संगीत भी पाये जाते हैं।"

---

१. उड़ीसा का उपकूल भाग उपजाऊ नहीं। समूचा प्रांत वन-पर्वत से भरा है।

२. छोटानागपुर की कुछ जमीन बलथर और कँकरीली भी है। यद्यपि वहाँ जंगल-पहाड़ की अधिकता है, तथापि धान, बाजरा, तेलहन आदि की उपज सन्तोषप्रद है।

३. छपरा (सारन), दरभंगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर, मुँगेर, पूर्णिया आदि जिलों में केवल मेघ के भरोसे खेती होती है।

४. इस विषय का कुछ अंश 'पाटलिपुत्र' के विशेषांक से उद्धृत है।

"असीरिया, बैबीलोनिया, मिस्र, यूनान, रूम आदि देश बिहार के नील से अभिज्ञ थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जहानाबाद (गया) से लेकर फतुहा (पटना) तक की कुल जमीन को चारखाना तथा अन्य वस्त्रों के बुनने का बड़ा भारी केन्द्र बनाया था और हजारों जुलाहों और ताँतियों को काम दिया था। ये चीजें विदेश भेजी जाती थीं। अब कल-पुर्जे का जमाना आ गया है। फतुहा और खुशरूपुर के कुछ चारखाने (कपड़े) ही बस इस समय उस व्यवसाय के चिह्नस्वरूप बच गये हैं, जो किसी वक्त बहुत ही चढ़े-बढ़े थे।"[1]

सन् १८६६ ई० में बिहार में नील की जितनी उपज थी, अब उसकी तिहाई भी पैदावार नहीं है। दर्जनों कारखाने बन्द हो गये। एक साल तो नील की वार्षिक आय ३३ लाख रुपये तक पहुँच गयी थी।

बंगाल से बिहार में तम्बाकू की उपज तिगुनी बेशी है। मुँगेर में तम्बाकू की 'पेनिनसुलर कम्पनी' का बड़ा भारी कल-कारखाना है, जहाँ सिगरेट बनती है।

राँची और मानभूमि जिलों में लाह के कई अच्छे-अच्छे कारखाने हैं। छोटा नागपुर और उड़ीसा के उत्तर-खंड में लाह होता भी बहुत है।

"मुजफ्फरपुर के एक स्कूल-सब-इन्सपेक्टर ने अपने गृह के निकट एक झरने में कुछ छोटे-छोटे सीप देखे और उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनसे बटन बड़े मजे में बन सकते हैं। परिणाम यह हुआ कि आज 'मेहसी' (चम्पारन) में बटन का एक बहुत बड़ा कार्यालय खुल गया है, जहाँ से प्रतिमास हजारों बटन बनकर निकलते हैं।"

"इसी प्रकार, कागज बनाने[2] और शीशा ढालने का व्यवसाय भी बिहार में अच्छी तरह चल सकता है। बड़े-बड़े दियारों में नरकट और घास का इतना बाहुल्य रहता है कि उनसे कागज का काम बड़े मजे में चल सकता है। रसायनज्ञ 'सर विलियम रैमसे' ने पटना की बालू को शीशा ढालने के लिए परम उपयोगी बतलाया था। फतुहा के समीपवर्ती कुछ मानमर्यादावाले दो मुसलमान नवयुवकों ने शीशा बनाने का व्यवसाय आरम्भ किया था।"

उड़ीसा के उपकूल-भाग में पहले इतना नमक होता था कि उसके व्यापार से ईस्ट इण्डिया कम्पनी, सरकार को, १८ लाख सालाना व्यवसाय-कर देती थी। यह बात एक सौ वर्ष से अधिक की नहीं।

१. पटना में 'मोटिया' कपड़ा और दरी बुनने का व्यवसाय खूब होता है। मोतीहारी में भी दरी अच्छी बनती है।

२. राजमहल-पहाड़ी में 'सबई' घास बहुतायत से होती है। वह कागज बनाने के काम में अमूल्य सहायता दे सकती है।

ऊख की खेती दक्षिण-बिहार में बहुत होती है[1]। ऊख को कल (कोल्हू) में पेरकर और उसको कड़ाह में औंटकर गुड़ बनाया जाता है। गृहस्थ लोग स्वयं गुड़, राब (छोआ) आदि बना लेते हैं। ऊख पेरने के लिए लोहे की कलें, आरा से पच्छिम 'बिहिया' में, बनती थीं। यह कारखाना यद्यपि बहुत ही बड़ा था तथापि अब वह अपना नाम-निशान बतलाने योग्य दशा में भी नहीं है।

बिहार में ठठेरों, लुहारों, जुलाहों, सुनारों, कुम्हारों और तेलियों तथा चमारों का घरेलू व्यवसाय भी बड़े महत्त्व का है। बहुत-सी ऐसी[2] जगहें हैं जहाँ ठठेर लोग पीतल और ताम्बे के सामान बहुत बढ़िया और मजबूत बनाते हैं। लुहार भी कल-पुर्जे के सिवा[3] और-और भी जितनी जरूरी चीजें बिहारी गृहस्थों को दरकार होती हैं, खूब सुबुक और सस्ती बनाते हैं।

कुम्हार भी तरह-तरह की मिट्टी की चीजें बनाकर लोगों की नित्य की आवश्यकताएँ पूरी करते हैं। सारन-जिले में 'सिवान' के मिट्टी के बरतन और शाहाबाद-जिले के ससराम में बने हुए मिट्टी के पात्र बड़े ही सुन्दर और सुडौल होते हैं। उनपर की हुई चित्रकारी और फूल-पत्तियों के काढ़ने की कारीगरी बड़ी प्रशंसा के योग्य होती है।

सुनार लोग भी सब जगह अपना कारबार फैलाये हुए हैं। मगर मुंगेर-जिले के खड़गपुर में और कटक में सोने-चाँदी के गहनों की विचित्र गढ़ाई होती है। कटक की नक्काशी तो भारत-विख्यात है। पटना में जरदोजी का काम बहुत ही सुन्दर होता है। सोने और चाँदी के सच्चे तारों से मखमल पर और अच्छे-अच्छे मूल्यवान रेशमी वस्त्रों पर कसीदा या बेल-बूटे काढ़े जाते हैं।

जुलाहों का काम भी कल-पुर्जों के मारे कौड़ी का तीन हो गया[4]। पहले चर्खा चलने से बिहार की असंख्य विधवाएँ अपनी जीविका का उपार्जन करती

---

१. छपरा, मोतीहारी, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, शाहाबाद आदि जिलों के भिन्न-भिन्न स्थानों में चीनी बनाने के अच्छे-अच्छे कारखाने हैं। जैसे—छपरा में मरहौरा, बनकट और शाहाबाद में नासरीगंज, जगदीशपुर इत्यादि। किंतु अब तो अनेक नई मिलें खुल गई हैं।

२. पटना, पलामू, पुरी, अंगुल, संभलपुर जिलों में पीतल के काम होते हैं।

३. मुंगेर में बन्दूक, पिस्तौल, छुरी, काँटे इत्यादि लोहे की चीजें बहुत ही अच्छी और सस्ती बनती हैं। मुजफ्फरपुर जिले में भी लोहे का कुछ काम कई जगह होता है। पलामू जिले में तो लोहे के गहने भी बनते हैं। मुजफ्फरपुर और भागलपुर में ट्रंक (लोहे के संदूक) भी खूब बनते हैं।

४. अब भी छपरा, मोतीहारी, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, मानभूमि, पुरी आदि जिलों में थोड़ा या बहुत कपड़ा बुनने का काम होता है। सम्भलपुर में रेशमी और भागलपुर में तसरी कपड़े अच्छे बनते हैं।

थीं। देश के अन्दर अच्छा सूत काता जाता था। बेचारे जुलाहे उससे अच्छे-अच्छे गाढ़े वस्त्र रचते थे। अब उनकी सारी कारीगरी मिट्टी में मिल गयी।

तेल पेरनेवाले तेली भी निकम्मे हो गये। चारों ओर कलें चलने लगीं और किरासन तेल इतना अधिक बाहर से (चालान) आने लगा कि तेलियों का दिवाला पिट गया।[1] कल द्वारा आटा पीसने और तेल पेरने से कितने लोगों को आलसी और निकम्मा होना पड़ा, इसका अटकल लगाना असम्भव है। इतने पर भी बेचारे जुलाहे और तेली धीरे-धीरे अपना रोजगार किसी तरह चला ही रहे हैं; किंतु कलि की कलें उन्हें कुछ करने दें तब तो!

सरकार की ओर से जेलों (कारागारों) में कैदी असामियों (बन्दियों) द्वारा अनेक ऐसे कार्य्य सम्पन्न कराये जाते हैं, जिनसे व्यवसाय की बहुत-कुछ रक्षा होती है। हरएक जिला-जेल और सेन्ट्रल जेल में दरी, कालीन, नेवार, टाट, तम्बू, रस्सी आदि अनेक चीजें बुनी और बनायी जाती हैं। जेल का तेल भी शुद्ध और स्वादिष्ट होता है। गेहूँ पीसने की चक्कियाँ भी वहाँ चलती हैं और जीन तथा मोटिया कपड़ा भी तैयार कराया जाता है। हजारीबाग के रिफारमेट्री-स्कूल में और भागलपुर, गया, बक्सर, मुजफ्फरपुर, राँची, कटक आदि के जेलखानों में ऐसे अनेक अच्छे काम होते हैं जो व्यवसाय की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। उदाहरणार्थ— पूर्णिया के जेलखाने में दरी और नेवार की बिनाई अच्छी होती है तथा राँची के जेलखाने में चटाई और नेवार बढ़िया बीना जाता है।

साधारणतः कितने ही जिलों में भिन्न-भिन्न चीजों के व्यवसाय की प्रधानता है। जैसे—अंगुल जिले में चटाई और टोकरी बनाना तथा पूर्णिया में चटाई बीनना। गया में पत्थर के बरतन और मूर्त्तियाँ अच्छी बनती हैं। पुरी में भी पाषाण-मूर्त्तियाँ बनती हैं। पटना के मारूफगंज-घाट पर पत्थर की गढ़ाई का काम होता है। हजारीबाग और मुंगेर जिलों में कम्बल बुनना तथा पलामू में कम्बल और टाट बुनना। मानभूमि में लाह एकत्र करना, तसर का सूत बनाना और भागलपुर जिले में तसर के कीड़े पालना, मोतीहारी में शोरा बनाना, बाढ़ (पटना) में बेला-चमेली का तेल बनाना, कटक में घड़ी और खिलौने आदि बनाना। छपरा, पूर्णिया, पलामू, शाहाबाद आदि जिलों में पशुपालन तथा घी का व्यवसाय भी होता है। उड़ीसा के बैरण्ड-स्टेट में सुनारी का काम खूब होता है और नरसिंहपुर तथा खण्डपाड़ा राज्यों में पीतल आदि के बर्त्तन बनाये जाते हैं[2]

१. सोन की नहरों में ठौर-ठौर पनचक्कियाँ हैं, जिनमें गेहूँ (आटा) पीसा जाता है।

२. इस विषय का आधुनिकतम विस्तृत विवरण 'श्री राजेन्द्रअभिनन्दन-ग्रंथ' में प्रकाशित 'बिहार के आर्थिक विकास की संभावनाएँ' शीर्षक लेख में देख सकते है। उक्त ग्रंथ आरा की नागरी प्रचारिणी सभा से संवत २००६ (सन् १९५० ई०) में प्रकाशित हुआ था।—ले०

दिहाती तिजारत

(लेन-देन और हाट-बाजार)

छोटे-बड़े गाँवों में एक-आध छोटी-मोटी दूकानें रहती हैं, जिनमें बेचारे गृहस्थों को रोज खर्च होनेवाली जरूरी चीजें मिलती हैं ; किंतु कितने ऐसे गाँव हैं, जिनमें ऐसी दूकानें भी नहीं हैं। ऐसे गये-बीते गाँवों के लोग एक अथवा दो कोस तक के बड़े-बड़े गाँवों में हाट-बाजार करने चले जाते हैं और सप्ताह-भर के लिए जरूरी चीजें खरीद लाते हैं। ऐसे बड़े-बड़े गाँव दो-तीन या चार-पाँच कोस के घेरे में केवल एक या दो पाये जाते हैं, जहाँ सप्ताह में एक बार अथवा दो बार बाजार लगता है।

बाजार भी दो तरह के हैं—एक तो स्थायी और दूसरे तात्कालिक। स्थायी बाजारों का जमघट सदा रहता है, केवल किसी निश्चित दिन पर बाहरी ग्राहक जुटते हैं; किन्तु तात्कालिक बाजार के जितने दूकानदार होते हैं, सब-के-सब, स्थायी बाजार के दूकानदारों से चीज खरीद लाते हैं और अपने मिहनताने का कुछ नफा उन बिकनेवाली चीजों पर रखकर बेचते हैं। जहाँ यह बाजार लगता है, वहाँ एक-आध घास-फूस की झोपड़ी रहती है अथवा घने बाग में या खुले मैदान में ही यह हाट लग जाती है। संध्या समय सौदागर और ग्राहक दो–चार घंटे के लिए निश्चित दिन पर एकत्र हो जाते हैं। चिराग-बत्ती की बेला होते ही बाजार उठाकर सब लोग अपने-अपने घर की राह लेते हैं।

हरएक जिले में दो-चार-दस ऐसे छोटे-बड़े मेले भी साल में एक-दो बार हो जाया करते हैं, जहाँ से जिले-भर के लोग घोड़े, बैल, गाय, भैंस, पालकी, दरी, कालीन, बर्त्तन, कपड़े, सन्दूक, बाजे, जूते, मसाले, खिलौने, छाते, पुस्तकें और भाँति-भाँति की आवश्यक वस्तुएँ खरीद ले जाते हैं। ऐसे-ऐसे मेले पर्व-त्योहार के अवसर पर हुआ करते हैं। इन मेलों के धरम-धक्के में अन्धपरम्परा की लकीर पीटनेवाले देहाती लोग आबाल-वृद्ध नर-नारी, एकत्र होकर मन बहलाते हैं।

धनिक महाजन लोग गृहस्थों को कड़े सूद पर रुपये देते हैं। इस प्रदेश के अधिकतर गृहस्थ ऋण-ग्रस्त होने से अशान्त और दुःखी हैं। यहाँ के लहनदार बड़े निर्दय और लोभी हैं। साल-भर में मूल और सूद का हिसाब एक बार होता है। ऋण-भार से दबे हुए गृहस्थों को मोटेमल महाजन खूब चूस लेते हैं। बेचारे किसान लोग हड़तोड़ मिहनत करके अन्न उपजाते हैं। दूकानदार या महाजन लोग उन खेतिहरों को साल-भर कपड़ा, नमक, तेल, मसाला और अन्यान्य आवश्यक पदार्थ देते हैं; पर चैती और अगहनी कटने पर दाम-दाम

वसूल कर लेते हैं। देते समय तो वे लोभ और स्वार्थ से अंधे रहते हैं; पर लेने की बेर क्रूरता के अवतार हो जाते हैं।

हरएक जिले में कितनी ही ऐसी मुख्य-मुख्य जगहें हैं जहाँ भिन्न-भिन्न वस्तुओं का व्यापार हुआ करता है। ऐसी जगहों में बड़े-बड़े गोले और गुदाम बने हुए हैं। वहाँ से थोक-के-थोक माल की बिक्री होती है। ऐसी-ऐसी मंडियाँ और आढ़तें जहाँ-जहाँ हैं वहाँ-वहाँ कच्ची या पक्की सड़कें, किसी पास के रेलवे-स्टेशन से लगातार बनी हुई हैं।

यात्रा-पथ

बिहार-पति, पठान-वीर शेरशाह की बनवायी हुई पक्की सड़क, जो बंगाल से पंजाब तक लम्बी है, दक्षिण-बिहार के दक्षिणी खण्ड से होती हुई गयी है। डिहरी-घाट (शाहाबाद) में सोन नद को पार करती हुई वह गया, ससराम आदि प्रसिद्ध बिहारी नगरों को छूती जाती है। उसका नाम 'ग्रैण्ड ट्रंक रोड' है। सन् १५४०-४५ ई० में उसका निर्माण हुआ था।

पटना से राँची तक लम्बी पक्की सड़क है, जो गया होती हुई जाती है। सभी जिलों में मुख्य नगर से सबडिवीजनों तक सड़कें हैं।

रेलवे-लाइनों का विवरण

(१) बंगाल नागपुर-रेलवे—८३३ मील[1]

(२) बंगाल और उत्तर-पश्चिमी-रेलवे—६२८ मील[2]

(३) पूर्वीय बंगाल-रेलवे—१७० मील[3]

(४) ईस्ट-इण्डियन-रेलवे[4] —१०४० मील[5]

सन् १९३८ में इन लाइनों की लम्बाई इतनी ही थी।

नं० १ (बी० एन० आर०), नं० ३ (ई० बी० आर०) और नं० ४ (ई० आइ० आर०) दक्षिण बिहार में हैं। नं० २ (बी० एन० डब्लू० आर०) उत्तर बिहार में है।

१. अब यह ईस्टर्न रेलवे के अन्तर्गत है।

२. अब यह नार्थ ईस्टर्न रेलवे के अन्तर्गत है।

३. यह भी ईस्टर्न रेलवे के अन्तर्गत है।

४. इसका अब ईस्टर्न रेलवे नाम हो गया है।

५. ईस्टर्न रेलवे की मुख्य लाइनें—लूप लाइन, कार्ड-लाइन, ग्रैण्ड-कार्ड, साउथ-बिहार लाइन, बारुन-डालटेनगंज ब्रांच, पटना-गया-ब्रांच, धनबाद-कतरास-झरिया ब्रांच।—ले०

लाइट रेलवे (छोटी लाइनों) का विवरण

(१) आरा—ससराम—६० मील (शाहाबाद-जिले में है)

(२) बख्तियारपुर—बिहार—३३ मील (पटना-जिले में है)

(३) डिहरी—रोहतास—२४ मील (शाहाबाद-जिले में है)

उपर्युक्त पहली, दूसरी और तीसरी छोटी लाइनें दक्षिण-बिहार में ही हैं।

आसनसोल (बंगाल) के पास से ग्रैण्ड-कार्ड-लाइन फूट निकली है। यह मोगलसराय में जाकर ई० आइ० आर० के कार्ड-लाइन में मिलती है। डिहरी-घाट के जगत्प्रसिद्ध 'सोन-ब्रिज' (सोनपुल) द्वारा यह सोनभद्र पार करती है। गया और ससराम नामक प्रसिद्ध एवं पुराने बिहारी नगर इसके किनारे पड़ते हैं। यह लाइन भी दक्षिण-बिहार के दक्षिण-खंड में है[1]।

बर्दवान (बंगाल) के पास 'खानार' स्टेशन से ई० आइ० आर० की कार्ड-लाइन निकली है। यह मुँगेर तक लूप-लाइन कही जाती है। राजमहल, साहबगंज, पीरपैंती, कहलगाँव (कुल-गङ्ग), भागलपुर, नाथनगर, सुल्तानगंज, जमालपुर, मुँगेर आदि बिहार के प्रसिद्ध स्थान इस लाइन के किनारे पड़ते हैं।

साहबगंज और जमालपुर जंकशन-स्टेशन और बड़े प्रसिद्ध स्थान हैं। मुँगेर-घाट से स्टीमर द्वारा गङ्गा-पार करके एन० ई० रेलवे मिलती है। यही लूपलाइन मुँगेर-जिले के कीउल-जङ्क्शन से आगे पश्चिम की ओर बढ़ती है। इसे अब कार्ड (मेन) लाइन कहते हैं। इसी कार्ड-लाइन पर मधुपुर-जङ्क्शन है, जहाँ से गिरिडीह-ब्रांच फूटती है और इसी में से जसीडीह-जङ्क्शन से देवघर तक लाइन गयी है। मोकामा, बख्तियारपुर, पटना और आरा जङ्क्शन-स्टेशन इसी कार्ड (मेन) लाइन पर पड़ते हैं।

मोकामा-घाट से स्टीमर-द्वारा गङ्गा-पार करके सेमरिया-घाट (उत्तर-मुँगेर) में बी० एन० डब्लू० रेलवे[2] मिलती है। बख्तियारपुर से राजगिरि के लिए छोटी गाड़ी जाती है। पटना से गया तक ई० आइ० आर० शाखा-लाइन फूटकर, पुनपुन नामक मशहूर नदी को पार करती हुई, गयी है। पटना से दीघा-घाट तक भी गङ्गा-तट पर ई० आई० आर० की शाखा निकल कर गयी है[3]। दीघा से स्टीमर द्वारा गङ्गा-पार करके पहलेजा-घाट पहुँचने पर बी० एन० डब्लू० रेलवे मिलती है।

१. राजमहल, साहबगंज, भागलपुर, मुँगेर, कीउल, पटना, आरा, बक्सर, गया, ससराम, देवघर, डालटेनगंज आदि शहरों को कार्ड और ग्रण्ड-कार्ड लाइनें मिलाती हैं।—ले०

२. बी० एन० डब्लू० (बंगाल-नार्थ-वेस्ट) रेलवे का नाम, कुछ दिन, बीच में, ओ० टी० आर० (अवध-तिरहुत-रेलवे) रहा; पर अब एन० ई० आर० (नार्थ-ईस्टर्न—उत्तर पूर्वीय-रेलवे) नया नाम हो गया है।—ले०

३. अब यह शाखा तोड़ दी गई है।

पटना से पूर्व में कार्ड (मेन) लाइन पर गुलजारबाग, पटना-सिटी, फतुहा, खुशरूपुर, बाढ़, बख्तियारपुर-जङ्कशन, मोकामा-जङ्कशन, लक्खीसराय, किउल-जङ्कशन,[१] जमुई, गिद्धौर, झाझा, जसीडीह और वैद्यनाथ धाम, जामातारा प्रसिद्ध स्टेशन हैं। ये बिहारान्तर्गत प्रसिद्ध स्थान भी हैं।

पटना से पश्चिम दानापुर बहुत बड़ा स्टेशन है। उसके बाद 'नेवरा' स्टेशन, छोटा होने पर भी, बिहार-भर में प्रसिद्ध स्थान है; क्योंकि भारत-प्रसिद्ध बैरिस्टर इमामबन्धुओं और सुशिक्षित तथा ऊँचे ओहदे के मुसलमान नागरिकों का निवास-स्थान है। फिर आगे पश्चिम में बिहटा, कोइलवर,[२] कुलहरिया, आरा, बिहिया[३], रघुनाथपुर[४], डुमराँव[५], वक्सर, चौसा[६] आदि प्रसिद्ध स्थान इसी लाइन पर पड़ते हैं।

राजमहल से चौसा तक, गङ्गा की दक्षिण-तटस्थ तराइयों की दक्षिणी सीमा बाँधती हुई, यह लाइन दक्षिण-बिहार में बिछी हुई है। किन्तु दक्षिण-बिहार की दक्षिणी सीमा की ओर उक्त ग्रैण्ड-कार्ड-लाइन है, जिसके किनारे धनबाद, झरिया, पारसनाथ, गोमो, हजारीबाग-रोड, गया, औरंगाबाद-रोड, डिहरी-घाट, गढ़वा-रोड, डालटेनगंज, ससराम, कुदरा, भभुआ-रोड आदि मशहूर स्टेशन पड़ते हैं।

बङ्गाल-नागपुर और बी० एन० डब्लू० रेलवे-लाइनों का प्रचार तिरहुत (उत्तर-बिहार) में, गङ्गा के उत्तरी तट की उर्वरा तराइयों में, विशेष-रूप से है। छपरा, सोनपुर, हाजीपुर, पूसा, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर, दरभंगा, सीतामढ़ी, मधुबनी आदि प्रसिद्ध स्टेशन इसी लाइन पर हैं। बेतिया, मोतीहारी, नरकटियागंज आदि इस लाइन के उत्तरी छोर पर बड़े स्टेशन हैं।

१. लूप लाइन भागलपुर होते हुए, किउल में कार्ड-लाइन को मिलाती है।

२. वहीं बाबू शालग्राम सिंह वकील (हाईकोर्ट, कलकत्ता) का जन्म-स्थान है, जिन्होंने पटना के बिहार-नेशनल-कालेज को स्थापित किया था। उनकी वह कीर्ति (बी० एन० कालेज) उन्नत दशा में है।

३. किंवदन्ती है कि यहाँ हैहयवंशी राजाओं का गढ़ था। इस स्टेशन के पास जंगल के चिह्न बहुत हैं। इस स्थान के चारों ओर की बहुदूर-विस्तृत बालुकामयी भूमि को, जो बड़ी उर्वरा है, देखकर लोग प्राचीनकालीन शोण के प्रवाह-क्षेत्र का अनुमान करते हैं। यहाँ स्टेशन के पास एक तेजोमयी 'महन्ती सती' का मन्दिर है।

४. प्रसिद्ध है कि गोस्वामी तुलसीदास यहाँ आये थे और उन्होंने रघुनाथपुर नाम रखा था। अबतक यहाँ तुलसीचौरा है।

५. उज्जैनवंशी प्राचीन राजा डुमरशाह का बसाया हुआ है। राजा का गढ़ है।—ले०

६. इसी स्थान पर हुमायूँ और शेरशाह से युद्ध छिड़ा था।—ले०

बी० एन० (बङ्गाल-नागपुर) रेलवे के किनारे जमशेदपुर, राँची, रामगढ़, हजारीबाग-रोड, चाईबासा (सिंहभूम), डालटनगंज इत्यादि नामी स्टेशन हैं। बी० एन० डब्लू० (बङ्गाल नार्थ-वेष्टर्न) रेलवे के पूरबी छोर का प्रसिद्ध स्टेशन है— कटिहार। उसके भी पूरब ई० बी० (ईष्टर्न बङ्गाल) रेलवे के प्रसिद्ध स्टेशन हैं— किशनगंज, फारबिसगंज, पूर्णिया आदि।

छोटानागपुर में बङ्गाल-नागपुर रेलवे का प्रसार है। राँची नामक प्रसिद्ध नगर इसी के किनारे पड़ता है। छोटानागपुर-विभाग में जंगल-झाड़ के कारण रेल की सुविधा सब जगह तो नहीं है; पर पक्की सड़कों की कमी नहीं है।

हवड़ा (कलकत्ता) से मद्रास की ओर जानेवाली रेलवे-लाइन उड़ीसा के उपकूल-भागस्थ तीन प्रसिद्ध सरकारी जिलों को छूती हुई जाती है। और-और जगहों में सड़कें हैं; पर कच्ची बहुत और पक्की कम। जंगली प्रान्तों में गाड़ी-छकड़े की राहें कठिनाई से प्राप्त होती हैं। देशी रियासतों में अच्छी सड़कें हैं। कहीं-कहीं कुछ दूर तक पक्की सड़कें भी मिलती हैं।

(१) कटक, अंगुल, सम्बलपुर सड़क—१७१ मील।

(२) कटक, सोनपुर (राज्य)—२०५ मील।

(३) सम्बलपुर, पटना (राज्य), कालाहंडी (राज्य)—सड़क वाणिज्य-व्यापार के कारण प्रसिद्ध।

उड़ीसा में नहरों द्वारा जल-यात्रा करने में अच्छी सुविधाएँ हैं। उड़ीसा के उपकूल-भाग में जो नहरें हैं, उनमें किश्तियाँ चलती हैं और महानदी में नौका-यात्रा से प्राकृतिक दृश्यों का विशेष आनन्द प्राप्त होता है; किन्तु उत्तर-बिहार में जल-यात्रा का आनन्द गंडक, सरयू आदि नदियों से ही प्राप्त होता है। दक्षिण-बिहार में तिरहुत की तरह गंगा से ही जल-यात्रा का आनन्द मिल सकता है। दूसरी ऐसी दो-चार ही नदियाँ हैं, जिनमें किश्तियों का बेखटके निर्वाह हो सके[१]; परन्तु सोन की नहरों में खूब किश्तियाँ चलती हैं। बड़ी-बड़ी चौड़ी नहरों में किश्तियों के सिवा स्टीमरें (बोट) भी चलती हैं। ठौर-ठौर गङ्गाजी में भी कम्पनियों के छोटे-मोटे जहाज चलते हैं, जैसे—बक्सर, पटना, मुकामा, मुंगेर आदि में।

दीघाघाट, मुकामाघाट, मुंगेरघाट, बरारीघाट, साहबगंजघाट से स्टीमर द्वारा बी० एन० डब्लू० आर० के यात्री ई० आइ० आर० पर आते हैं।

१. गंगा, घाघरा, गण्डक, कोसी, महानन्दा, महानदी, ब्राह्मणी और वैतरणी में बराबर नावें चलती हैं।

बिहार में कच्ची-पक्की सड़कें सर्वत्र हैं। सभी नगर और मुख्य-मुख्य स्थान पक्की सड़कों द्वारा एक-दूसरे से नथे हुए हैं। उनपर इक्के, बग्घी और बैल-ऊँट-गाड़ियाँ चलती हैं।

शासन-व्यवस्था

बिहार-उड़ीसा और छोटानागपुर एक प्रदेश बनकर छोटे लाट (लफटिनेण्ट गवर्नर) द्वारा शासित होते हैं। ये छोटे लाट महाशय, जिनका सर्वतोभावेन शासनाधिकार इस प्रदेश पर रहता है; इण्डियन-सिविल-सर्विस के मेम्बर[१] होते हैं—जो पहले बहुत दिनों तक भारत के किसी प्रान्त में शासक-रूप से रह चुके हैं। छोटे लाट के शासनकाल की अवधि पाँच ही वर्ष पर्यन्त निर्धारित रहती है। इनकी कौंसिल[२] में चार मेम्बर होते हैं, जिनमें दो तो ऐसे होते हैं, जो भारत में बारह वर्ष तक सरकारी नौकरी कर चुके हैं—अर्थात् इंडियन सिविल-सर्विस के दो अँगरेज। और, बाकी दो गैर-सरकारी[३] आदमी—प्रतिभावान् और प्रभुताशाली प्रतिष्ठित भारतीय भद्रपुरुष।

प्रादेशिक कौंसिल में ४३ सरकारी और गैरसरकारी दोनों तरह के सदस्य रहते हैं। प्रादेशिक नियमों का संशोधन करने के लिए एक व्यवस्थापिका सभा भी बनी हुई है।

बिहार-सरकार की राजधानी 'पटना' और ग्रीष्मावास 'राँची' है। राँची में हरे-भरे घने जङ्गलों की अधिकता है। पटना में प्रधान सरकारी ऑफिसों (कचहरियों) की बड़ी-बड़ी इमारतें बनी हैं। शासन-व्यवस्था में सुगमता के लिए अनेक विभाग भी बनाये गये हैं। सेक्रेटरिएट द्वारा शासन-सम्बन्धी आवश्यक प्रबन्ध होते हैं। पुलिस-विभाग द्वारा राजकीय सत्ता और प्रजा-वर्ग के स्वत्त्व की रक्षा होती है। शिक्षा-विभाग द्वारा शिक्षा के प्रचार[४] का प्रबन्ध होता है। कृषि-विभाग-द्वारा कृषि का सुधार किया जाता है। जेल, अस्पताल आदि का विभाग भी बड़े महत्त्व का है। दण्डाप्त अपराधियों की स्वास्थ्य-रक्षा पर भी

---

१. मेम्बर = सदस्य।

२. कौंसिल = विचार-परिषद्।

३. गैरसरकारी = जो सरकारी नौकरी में नहीं हैं।

४. बिहार-उड़ीसा-छोटानागपुर में जो हाई इंगलिश स्कूल हैं, उनमें मैट्रिकुलेशन तक पढ़ाई जारी है। किन्तु कालेजों की संख्या बहुत ही कम है। दरभंगा जिले के पूसा नामक प्रसिद्ध स्थान में कृषि-विद्यालय विद्यमान है। इंजीनियरिंग कालेज और लॉ कालेज तथा मेडिकल कालेज पटना में हैं।

सरकार का ध्यान रहता है। अस्पतालों से सर्वसाधारण को बिना मूल्य दवा बाँटी जाती है। चिकित्सालयों से गरीब-दुखियों को विशेष लाभ होता है। पशुओं की चिकित्सा का भी प्रबन्ध है। आबकारी-विभाग खोलकर नशीली चीजों के उपासकों का उपकार (?) किया जाता है। जङ्गल-विभाग द्वारा जङ्गलों की रक्षा की जाती है।

बिहारोत्कल में इक्कीस जिले हैं। उनका औसत विस्तार बिहार में लगभग ४४०० वर्गमील और उड़ीसा में ३८६१ वर्गमील है। राँची और हजारीबाग सभी जिलों में बड़े हैं। प्रत्येक में लगभग ७००० वर्गमील भूमि है। छोटानागपुर के सब और बिहारोत्कल के सन्तालपरगना तथा अंगुल नामक जिलों को शासन-प्रणाली अन्यान्य जिलों से सामान्यतः भिन्न है, क्योंकि वे असंस्कृत[1] जिले माने जाते हैं। सभी कानून की धाराएँ वहाँ लागू नहीं की गई हैं। वहाँ के निवासी शिक्षा में बहुत पिछड़े हुए हैं।

शासन की सुविधा के लिए दो-चार जिलों को एक में मिलाकर एक कमिश्नरी की रचना की गई है। इसके शासक एक कमिश्नर हैं। उसी प्रकार कई सब-डिवीजनों को मिलाकर एक जिला बना है, जो कलक्टर (मण्डलाधीश) के अधीन है। हरएक सबडिवीजन में एक अफसर रहते हैं, जो एक प्रकार से छोटे कलक्टर ही हैं। जिले के नगर में जैसे जज के अधीन अदालत-दीवानी रहती है, वैसे ही सबडिवीजनों में भी एक-दो मुंसिफ दीवानी मुकदमे देखने के लिए रहते हैं।

सबडिवीजनों का औसत विस्तार, बिहार और उड़ीसा में, १११० वर्गमील है। एक सबडिवीजन में कई थाने रहते हैं। बिहारोत्कल में थानों का दायरा (इलाका) १०२ वर्गमील रहता है, जिसमें लगभग ७२००० प्रजा निवास करती है।

प्रत्येक छोटे-बड़े नगर में म्युनिसिपैलिटियाँ बनी हुई हैं। इनके काम हैं— शहर की सफाई की देख-रेख करना, शहर में रोशनी का प्रबन्ध करना, सड़कों पर पानी छिड़कवाना, महामारियों में टीका लगाना, शहर के मकानों की देख-भाल करना इत्यादि।

प्रत्येक जिले में एक जिला-बोर्ड है। सड़क, पुल, दवाखाना आदि बनवाना; पानी की कलें लगवाना, जलवायु में सुधार करने की चेष्टा करना, प्रजा की स्वास्थ्य-

१. तात्पर्य यह है कि उन जिलों की प्रजा अधिकतर अशिक्षित है।

रक्षा का प्रबन्ध करना, पाठशालाएँ चलाना, सार्वजनिक संस्थाओं की सहायता करना, चिकित्सालय के कार्यों का निरीक्षण करना आदि इसके मुख्य कार्य हैं।

जिस प्रकार म्युनिसिपल-कमिश्नरों द्वारा म्युनिसिपैलिटियों की कार्यवाही सम्पन्न होती है, उसी प्रकार जिला-बोर्ड में भी सरकारी और गैरसरकारी, दोनों तरह के, सदस्य बहुमत से चुने हुए रहते हैं।

इसी प्रकार अनेक छोटे-छोटे विभागों की सृष्टि करके शासन की सुविधाएँ बढ़ायी गयी हैं। प्रजा-वर्ग से 'कर' वसूलने और उनपर 'कर' लगाने का विभाग अलग है।[1]

'राजधानी' [पाटलिपुत्र]

(पटना-नगर)

'प्राचीनता'—[2]"भारत के इतिहासावलोकन से ज्ञात होता है कि अजातशत्रु ने नगाधिराज हिमालय की ओर से आई हुई तुरानी जाति को जीतने के लिए अपनी राजधानी 'पाटलिपुत्र' में स्थापित की थी। जिस नन्दवंश के अन्तिम राजा के समय में जगद्विख्यात वीर सिकन्दर ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी, उस नन्दवंश के राजाओं की भी राजधानी 'पाटलिपुत्र' में ही थी। जिस मौर्यवंश का संस्थापक वीरवर और राजनीतिज्ञ-शिरोमणि चन्द्रगुप्त था, उसके राजाओं की राजधानी भी इसी 'पटना' में थी।"

[3]"जिस समय सेल्यूकस ने पराजित हो मगधराज की सभा में एक दूत भेजा था, उस समय भी पाटलिपुत्र समग्र भारत की राजधानी था। इस पाटलिपुत्र को

---

१. वर्तमान बिहार की शासन-व्यवस्था पहले से बहुत अधिक विस्तृत और उन्नत हो गई है। प्रशासन-सम्बन्धी अनेक नये विभाग बन गये हैं। शिक्षा-प्रचार दिन-दिन बढ़ रहा है। सभी जिलों के अधिकांश प्रमुख नगरों में कालेज खुल गये हैं। गाँवों तक में हाई स्कूल खुले हैं और खुलते ही जा रहे हैं। कालेजों के सिवा अनेक हाई स्कूलों में भी हिन्दी-साहित्य-सभाएँ हैं तथा पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। भागलपुर-कमिश्नरी में 'सहरसा' नया जिला बना है। स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि होती जा रही है। समस्त प्रान्त प्रगति-पथारूढ़ है।—ले०

२. 'सरस्वती' नवम्बर १९१७ से उद्धृत।

३. 'पाटलिपुत्र' के विशेषांक से उद्धृत।

देख मेगास्थनीज आश्चर्यान्वित चित्त से इसकी शोभा-समृद्धि का सविस्तर[१] वर्णन लिख गया है। सम्राट् अशोक की मृत्यु के बाद जिस समय धीरे-धीरे प्रान्तीय प्रदेश मौर्य्य-राजाओं के हाथ से निकलने लगे थे, उस समय भी भारतवासी पाटलिपुत्र को ही राजधानी समझते थे। सनातनधर्म के घोर दुर्दिन के समय जब पुष्यमित्र ने अपना पराक्रम दिखाने के मिस अन्तिम मौर्य्य-श्रेष्ठ बृहद्रथ को मारा था, तब भी यह पाटलिपुत्र ही राजधानी था। छाया की भाँति धीरे-धीरे अनार्य-वंशोत्पन्न आन्ध्रराज के भृत्यों ने जिस समय आर्य्यावर्त्त की ओर अधिकार बढ़ाया था, उस समय भी यह पाटलिपुत्र राजधानी के नाम से विख्यात था। इसी पाटलिपुत्र से विजय-सेना लेकर महाराजाधिराज समुद्रगुप्त ने उत्तरापथ और दक्षिणापथ की विजय की थी। इसी पाटलिपुत्र में उनका अश्वमेध-यज्ञ सुसम्पादित हुआ था। गुप्त-साम्राज्य की स्थिति के साथ-ही-साथ चंचला लक्ष्मी देवी की भी इस पाटलिपुत्र में फिर से वृद्धि होने लगी। पाटलिपुत्र सारे भारतवर्ष की राजधानी हुआ। जिस समय सारा आर्य्यावर्त्त हूणराज के करतलगत था, उस समय भी पाटलिपुत्र मगध की राजधानी था। समुद्रगुप्त के वंशधर उस समय भी इस पाटलिपुत्र में ही निवास कर राज्य-शासन करते थे; किन्तु इसके बाद ही लक्ष्मी ने पाटलिपुत्र को फिर त्यागा। जिस समय शेरशाह ने नवीन साम्राज्य प्रतिष्ठित किया, उस समय दलदल-भूमि-वेष्टित, अलंघ्य दुर्जेय और प्राचीन पाटलिपुत्र के किले[२] की बनावट ने उसको विस्मित कर दिया था। (उसी समय पाटलिपुत्र का अपभ्रंश पटना

---

१. उस (चंद्रगुप्त) की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी। वह दस मील लम्बी और दो मील चौड़ी थी, और गंगा तथा सोन नदियों के बीच में बसी हुई थी। नगर के चारों तरफ कोट बना हुआ था, जिसमें ६४ दरवाजे थे। कोट में ५७० शिखर थे।···राजभवन में अधिकांश काम लकड़ी का था; परन्तु वह था इतना सुन्दर और चमत्कारपूर्ण कि उसकी तुलना संसार के और किसी भवन से न हो सकती थी।···सजावट में सुवर्ण और अमूल्य रत्नों की प्रचुरता थी। राजमहल में जितने बरतन थे, सब रत्नजटित और सुवर्ण के थे।

—(मेगास्थनीज) 'सरस्वती, जून १९१७।'

२. सम्भव है, वह किला अब गंगा-गर्भ का गौरव बढ़ा रहा हो। इतिहासज्ञ स्मिथ साहब ने लिखा है कि अजातशत्रु ने पाटलिग्राम में गंगातट पर एक किला बनवाया था। लिच्छवि-शत्रुओं का दमन करने के लिए, उसके पौत्र 'उदय' ने उसके पास ही एक शहर बसाया था।

हो गया) पाटलिपुत्र फिर मगध वा बिहार की राजधानी हुआ। शेरशाह का राजत्वकाल समाप्त हो जाने पर भी मगध की राजधानी पटना से स्थानान्तरित न हुई। अकबर के समय में भी पटना सूबे-बिहार की राजधानी था। औरंगजेब के समय पटना का नाम अजीमाबाद हो गया था और कहाँ तक कहें, यहाँ ही नवाब मीरकासिम की नवाबी भी खतम हुई थी।"

[1]"यह तो एक प्रकार से सर्ववादि-सम्मत है कि अजातशत्रु के समय नगर का भित्ति-स्थापन हुआ, उदय के समय नगर-निर्माण हुआ, चन्द्रगुप्त के समय समृद्धि-वृद्धि हुई और अशोक के समय यह उन्नति के शिखर पर पहुँच गया था। फाहियान ने पाटलिपुत्र का संक्षिप्त वर्णन किया है। हुयंगसंग का वर्णन भी अत्यंत चित्ताकर्षक है[2]।"

पाटलिपुत्र की प्राचीनता के विषय में एक प्रत्नतत्त्ववागीश[3] ने लिखा है कि 'वायुपुराण में भविष्यराजवंशवर्णन के प्रसंग में कहा गया है, क्षेमवर्म्मा के राज्य के बाद पचीस वर्ष तक राजा अजातशत्रु का राज्य रहेगा। पश्चात् राजा बिम्बिसार २८ वर्ष, राजा दर्श* २५ और राजा उदायी ३३ वर्ष तक राज्य करेगा। यही उदायी 'कुसुमपुर' प्रसिद्ध नगर बसायेगा। यह गंगा के दक्षिण-तट पर प्रतिष्ठित होगा।' भविष्य-पुराण के ब्रह्मखंड में पाटलिपुत्र की नामोत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है—'अंगभूमि के निकट गंगा के दक्षिण-भाग में पाटलिपुत्र नामक एक परम सुन्दर नगर है। गाधिराजा की 'पाटलि' नाम की सुलक्षणा और विदुषी सुन्दरी कन्या को कौण्डिन्यकुमार ने, जाबालि-मुनि से आकर्षण-सिद्धमंत्र सीखकर, च्यवनऋषि के आज्ञानुसार, अपना वेश बदल कर, राज-भवन से, मंत्रबल द्वारा,

---

१. 'पाटलिपुत्र' के विशेषांक से उद्धृत।

२. पाटलिपुत्र इस समय भी बहुत फूला-फला नगर है। इसके चारों तरफ और भी बड़े-बड़े नगर हैं। उनमें बड़े दानी और परोपकारी मनुष्य रहते हैं। यहाँ दो विशाल विहार हैं, जिनमें छः-सात विद्वान् साधु रहते हैं। उनके पास दूर-दूर के धार्मिक मनुष्य आया करते हैं। बौद्धमत के उत्सव खूब धूम-धाम से होते हैं। इस समय का राज्य-शासन धर्म-प्रमाणित और नीति-संयुक्त है। नगरों में न कसाइयों की दूकानें दिखाई देती हैं और न शराबखाने नजर आते हैं।

—'सरस्वती', अगस्त १९१७।

३. बिहारोत्कल-पुरातत्त्व-शोध-विभाग के सहकारी संयोजक।

हरण किया था। दोनों आकाशमार्ग से उड़ते हुए गंगातटस्थ सघन वन में उतर पड़े। पाटलि की प्रार्थना से मुनिनन्दन ने मंत्रबल से एक नगर बसाया। राजकुमारी पाटलि और मुनिपुत्र के नामानुसार यह नगर पाटलिपुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ।' अब इससे बढ़कर पाटलिपुत्र की प्राचीनता के पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। यह स्पष्ट है कि अपनी प्राचीन महत्ता के बल से यह नगर भारत के प्राचीनतम नगरों की टक्कर ले सकता है; बल्कि ईरान और यूनान के पुराने नगरों की श्रेणी में इसे उच्च पद मिलना चाहिए।

आधुनिक पटना-नगर—कलकत्ता से ३२० मील पर, वायुकोण में, गंगा के दक्षिण पार्श्व में, किनारे-ही-किनारे लगभग दस-बारह मील में, पटना-शहर बसा हुआ है। इसकी बस्ती बहुत लम्बी और पुरानी है। चौड़ाई बहुत ही कम है—कहीं-कहीं तो एक-आध मील से भी कम। यह नगर कई बार भयानक लूटपाट, अमानुषिक अत्याचार, विकट आक्रमण और भीषण हत्याकाण्ड का लोमहर्षण दृश्य देख[1] चुका है। इस नगर का पश्चिमी हिस्सा 'बाँकीपुर' नाम से प्रसिद्ध है। बाँकीपुर में सरकारी कचहरियाँ, कॉलेज, स्कूल, बैंक, गिरजाघर, पुस्तकालय, रमना (मैदान), अस्पताल, डाकखाना, छापाखाना, बड़े-बड़े बाबुओं के बँगले, वकील-बारिष्टरों की कोठियाँ, पुस्तकों की बड़ी-बड़ी दूकानें, दवाखानें और अनेक प्रकार की आवश्यक वस्तुओं की बहुत बड़ी-बड़ी दूकानें हैं। बाँकीपुर से कुछ पश्चिम, गंगा-तट और रेलवे-लाइन के बीच में, लगभग हजारों बीघे के सुविस्तृत मैदान में हाइकोर्ट (प्रधान न्यायालय), लाट साहब की कोठी, सेक्रेटेरिएट आदि की कई भड़कीली और अतीव सुन्दर बहुमूल्य इमारतें हैं। बाँकीपुर से कुछ पूरब की ओर गंगा-तट पर पटना-विश्वविद्यालय की इमारतों का विस्तार है और उनके बीच दरभंगा-नरेश का राजभवन विशेष भव्य है।

---

१. बौद्धों के 'महापरिनिर्वाणसूक्त' नामक पाली-ग्रंथ पढ़ने से जाना जाता है कि भगवान् बुद्ध अन्तिम बार नालन्दा से वैशालीपुरी जाते समय पाटलिग्राम में आये थे। यहाँ के रहनेवालों ने एक विश्रामागार बनवाया था। उसमें ठहरने के समय बुद्धदेव ने कहा था कि यह गाँव बहुत लोगों से परिपूर्ण एक नगर हो जायगा और यह स्थान अग्नि, जल और विश्वासघातकता का आघात भी सहन करेगा।

—साप्ताहिक 'पाटलिपुत्र' (पटना) का विशेषांक।

नगरों का वर्णन

[दक्षिण-बिहार-मगध और अङ्ग]

बिहारोत्कल-प्रदेश में सैकड़े ६७ मनुष्य गाँवों (दिहात) में रहते हैं। प्रान्त-भर में केवल ७६ नगर हैं, जिनमें पटना—जहाँ की जनसंख्या लगभग एक लाख है—गया, भागलपुर, दरभंगा और कटक—जिनकी नागरिक-संख्या लगभग ५०००० है—तथा राँची, मुजफ्फरपुर, मुँगेर, छपरा, आरा, पूर्णिया आदि प्रधान एवं प्रसिद्ध हैं।

मगध अब पटना-कमिश्नरी भर में फैला हुआ है, जिसमें पटना, गया और शाहाबाद नाम के तीन जिले हैं। प्राचीन अंग-राज्य भागलपुर-कमिश्नरी में है, जिसमें मुँगेर, भागलपुर, पूर्णिया और सन्थालपरगना नाम के चार जिले हैं।[1]

उक्त दो कमिश्नरियाँ दक्षिण-बिहार में हैं। भागलपुर-कमिश्नरी का कुछ अंश उत्तर बिहार में भी है। पटना-कमिश्नरी यद्यपि भागलपुर- कमिश्नरी से छोटी है, तथापि इसका महत्त्व उससे बढ़कर है। प्राचीनता अथच ऐतिहासिक दृष्टि से भागलपुर-डिवीजन भी गौरवमय है।

पटना ही इस समय बिहार, उड़ीसा और छोटा-नागपुर की राजधानी है। प्रादेशिक शासक पटना में ही रहते हैं। प्रान्तीय शासन-सभाओं की बैठक यहीं होती है।[2]

पटना की जन संख्या लगभग १८४६४७४ है। इस प्रदेश में इससे बड़ा अब दूसरा कोई नगर नहीं। बाँकीपुर, बाढ़ और 'बिहार' नामक तीन[3] सबडिवीजन पटना-जिले में हैं। बाँकीपुर तो पटना नगर का ही पश्चिमी हिस्सा गंगातट पर सुशोभित है।

बाँकीपुर से कुछ पश्चिम की ओर 'दानापुर' प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ अँगरेजी[4] पलटन का शिविर और तोपखाना है। यह छोटा, पर अच्छा शहर है, गुलजार है। यहाँ ई० आइ० आर० का बहुत बड़ा और मशहूर स्टेशन है; क्योंकि यहाँ रेलवे-विभाग के जिला-अफसर रहते हैं।

---

१. भागलपुर-कमिश्नरी में अब एक नया जिला 'सहरसा' बना है। —ले०

२. राजधानी (पाटलिपुत्र) के परिचय में पटना का विस्तृत विवरण देखें। —ले०

३. अब पटना-जिले का चौथा सबडिवीजन दानापुर भी है। —ले०

४. दानापुर में अब स्वदेशी सेना की 'फौजी छावनी' है। —ले०

दानापुर से थोड़ी दूर पश्चिम में, सौभाग्य की रंगस्थली-सी एक छोटी-सी बस्ती है। सुन्दर-सुन्दर इमारतों ने इसे छोटे-मोटे शहर का ही रूप दे दिया है। यह बैरिस्टरों, जजों, वकीलों, कलक्टरों और ऊँचे ओहदे के अफसरों की जन्मभूमि कहलाते रहने का बोझा ले चुका है। इसे 'नेवरा' कहते हैं। अँगरेज-सम्राट् पंचमजार्ज अपने शुभागमन से इसे गौरव प्रदान कर चुके हैं।

बाढ़ में मुसलमानों की संख्या अधिक है। यहाँ बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिक मुसलमान हैं। यहाँ चमेली-तेल खूब बढ़िया तैयार होता है।

बिहार (२५१५१) के नाम के आधार पर इस प्रदेश का 'बिहार' नाम विख्यात हुआ। कारण यह है कि यहाँ पालवंशी राजाओं ने सुविशाल बौद्धमठ, जिसे संस्कृत में 'विहार' कहते हैं, बनवाया था—जिस समय इस नगर में उनकी राजधानी थी। यवनों के प्रथम आक्रमण ने उक्त मठ का विध्वंस कर और लूट-पाट का भयानक उपद्रव मचाकर नगर-श्री को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। यहाँ आजतक एक पुराना किला और फकीरों की कई कब्रें हैं, जो रो-रोकर अपनी पुरानी बड़ाई की कहानी कह रही हैं। मुसलमानों के लिए एक तीर्थ स्थान होने से इसका मशहूर नाम 'बिहारशरीफ' है[1]। यहाँ के एक स्तम्भ पर कुछ शिलालेख हैं, जो अनुमानतः पाँचवीं शताब्दी[2] से सम्बन्ध रखते हैं। यहाँ से प्राचीन नालन्दा-विश्वविद्यालय का दर्शनीय ध्वंसावशेष समीप ही है।

मोकामा नामक मशहूर रेलवे स्टेशन[3] पटना-जिले में ही है। इस जिले में राजगृह,नालन्दा और 'मनेर' तथा कुम्हरार देखने योग्य प्राचीन ऐतिहासिक स्थान हैं।

गया—अन्तःसलिला 'फल्गु' के किनारे यह पवित्र तीर्थ और प्राचीन नगर है। मन्दिर-मुकुटित पहाड़ियाँ चारों ओर से इसकी प्राकृतिक सुन्दरता को बढ़ा रही हैं। अतः ग्रीष्म में यहाँ बड़ी कड़ी (सड़ी) गर्मी पड़ती है। पुराना शहर ऊँची पथरीली जगह में बसा हुआ है। 'फल्गु' में यहाँ बहुत अच्छे-अच्छे पक्के घाट हैं। पुरानी बस्ती में महलनुमा ऊँचे-ऊँचे मकानों की सघन शोभा बड़ी विचित्र है। नया शहर 'साहबगंज' चट्टानों पर बसे हुए पुराने शहर से बिलकुल लगा हुआ है। इस नगर में भारत-भर के तीर्थयात्री अपने पितरों का श्राद्ध-तर्पण करने के लिए हमेशा आते

१. बिहारशरीफ का प्राचीन महत्त्व जानने के लिए 'श्रीराजेन्द्र-अभिनन्दन-ग्रन्थ' में 'उदन्तपुरी' नामक लेख पढ़िए। —ले०

२. पटना के निकट 'फुलवारीशरीफ' भी मुसलमानों का तीर्थ है। —ले०

३. यहाँ गंगा पर नया रेलवे-पुल बन रहा है। —ले०

रहते हैं। आश्विन के पितृ-पक्ष में यहाँ कई लाख तीर्थयात्री जुटते हैं। इसके आस-पास और भी कितने पुण्यस्थल हैं, जो तीर्थस्थान के अतिरिक्त रमणीक भी हैं। अहल्याबाई ने यहाँ अठारहवीं शताब्दी में विष्णुपद-मन्दिर बनवा दिया था; जिसके लिए एक अंग्रेज-कलक्टर ने सन् १७६० में एक विजय-घण्ट समर्पित किया था। आजतक मन्दिर का पड़ोस घंटा-निनाद से गूँजा करता है। रामगिरि या रामशिला, प्रेतशिला आदि मशहूर जगहें हैं। ब्रह्मयोनि-पर्वत की स्वच्छ शिला पर योगासन लगाकर भगवान बुद्ध ने पवित्र उपदेशामृत की वृष्टि की थी।[१]

गया से तीन कोस दक्षिण बोध गया है, जो संसार-भर के असंख्य बौद्धों का तीर्थ-स्थान और गौतमबुद्ध के विशुद्ध ज्ञान का जन्मक्षेत्र है। यहाँ के महाबोधि-मंदिर और अशोक-कालीन शिल्प-कौशल तथा भिन्न-भिन्न शताब्दियों के स्तूप दर्शनीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं। गया-जिले में 'टिकारी'-राज्य प्रसिद्ध है[२]। गया, नवादा, जहानाबाद और औरंगाबाद[३] नामक चार सब-डिवीजन गया-जिले में हैं।

शाहाबाद-जिले में भी चार सबडिवीजन हैं—आरा, बक्सर, ससराम, भभुआ। जिले का हेडक्वार्टर 'आरा' है। सदर सबडिवीजन (आरा) में ही जगदीशपुर है जहाँ इतिहास-प्रसिद्ध बाबू कुँअरसिंह का गढ़ है। आरा[४] में 'आराहाउस' प्रसिद्ध है, जिसमें सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह में अंग्रेजों को बाबू कुँवरसिंह ने घेरा था। सन् १९१२ में स्वयं सम्राट् पंचमजार्ज भी इसे देखने के लिए आरा में पधारे थे।

भभुआ-सब-डिवीजन में चैनपुर और मोहनिया मशहूर जगहें हैं। चैनपुर मशहूर परगना है, जैसे बक्सर-सबडिवीजन में भोजपुर। वहाँ एक राजा का गढ़ है। कहते हैं कि वहीं के 'शालिवाहन' राजा के नाम का शाकाब्द चल रहा है और उनके तेजस्वी पुरोहित 'हरसू बाबा' का मंदिर उनके गढ़ के सिंहद्वार पर अबतक प्रसिद्ध है।

बक्सर में एक पुराना किला गंगातट पर सुदृढ है। सन् १७६४ ई० में यहाँ एक इतिहास-प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी, जिसमें नवाब शुजाउद्दौला ने अँगरेजी सेना से

१. गया का विस्तृत परिचय 'गंगा' (प्रवाह १, तरंग ६, वैशाख १९८८), अप्रैल, सन् १९३१ में देखें।

२. वर्तमान टिकारी-नरेश महाराज गोपालशरणसिंह ने सिर्फ अपने खर्च-भर आमदनी बचा कर सारा राज्य स्त्री-शिक्षा के लिए उत्सर्ग कर दिया है।

३. यह ग्राण्ड-ट्रङ्क-रोड के किनारे है।

४. आरा-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'आरा-पुरातत्त्व' देखिए।

हार खाई थी। बक्सर से पाँच कोस पूरब 'डुमराँव' है, जहाँ भोजवंशी उज्जैन-राजा का गढ़ है, जिसके पास ही 'भोजपुर' में राजा भोज के नवरतन-महल का ध्वंसांश है।

ससराम-सबडिवीजन में रोहतासगढ़ नामक भारत-विख्यात सुदृढ़ दुर्ग है। ससराम नगर[1] बहुत पुराना और ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का समझा जाता है। कैमूर पहाड़ी की उत्तरीय तलैटी में यह स्थित है। शहर में मुसलमानों की घनी बस्ती है। शहर से पूरब 'चन्दनपोर' पहाड़ी पर अशोक-कालीन शिलालेख है। बिहार का पठान-बादशाह 'शेरशाह' एक सुविशाल सरोवर में, बने हुए अपने अतीव सुन्दर समाधि-मंदिर में, मक्काशरीफ की ओर सिर किये, सोया पड़ा है। सन् १५५३ ई० में जब उसका बेटा सलीमशाह ग्वालियर में मर गया, तब वह भी यहीं दफनाया गया। उसकी कब्र अलग है; पर वह अधूरी ही रह गयी। वह भी पोखरे के बीच में है। शेरशाह के पिता की कब्र भी यहीं है।

'भागलपुर-डिवीजन' में चार जिले हैं। भागलपुर-जिले में चार सबडिवीजन है—बाँका, मधेपुरा, सुपौल और भागलपुर। इसी जिले में कहलगाँव[2] गंगातटस्थ प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ तिजारत खूब होती है। जिले के 'सबौर' नामक स्थान में कृषि-कॉलेज है।

भागलपुर नगर भी गंगातट पर विराजता है। यह बरारी से चम्पानगर तक आठ मील लम्बा और दो मील चौड़ा है। भागलपुर का कलमी आम उत्तम होता है और यहाँ का बना हुआ ट्रंक भी बड़ा पुख्ता होता है। यहाँ विशेषतः अन्न और कपड़े का व्यवसाय होता है। यहाँ के तसरी कपड़े भारत-प्रसिद्ध हैं। यहाँ इञ्जिन से चलनेवाले तेल पेरने, गेहूँ पीसने और धान कूटने के कारखाने बढ़ते जाते हैं। यहाँ बूढ़ानाथ महादेव का प्रसिद्ध मंदिर गंगातट पर सुन्दर बना हुआ है। राजमहल-पहाड़ी की आदिम जातियों का दमन करनेवाले मिस्टर ऑगस्टस क्लेवलैण्ड (सन् १७५५-८५) की सुन्दर कब्र यहीं है। भागलपुर-जिला नेपाल के सिवाने से वैद्यनाथ धाम (देवघर) तक प्रायः १५० मील उत्तर-दक्षिण, गंगा के

१. कहावत है 'जग में जगदीशपुर, शहर में ससराँव; चट्टी में दाउदनगर, गँवई में डुमराँव'। 'दाउदनगर' गया जिले में प्रसिद्ध स्थान है। वहाँ नवाबों की अच्छी रियासत थी।

२. कुलगंग-विश्वविद्यालय पुराने जमाने में यहीं था, यह पुरातत्त्व-प्रेमियों का अनुमान है। कहावत है—'भागलपुर का भगेलिया, कहल-गाँव का ठग, पटना का दीवालिया तीनों नामजद। सुन पावे भोजपुरिया तो तीनों के तूरे रग।'

दोनों तरफ, फैला हुआ है। दक्षिण के पहाड़ों पर साखू और महुआ तथा मैदान में हर तरह के महीन सुगन्धित धान पैदा होते हैं। इस जिले का प्राकृतिक दृश्य भी चित्ताकर्षक है।

भागलपुर जिले में सीताकुण्ड और पसौना का गर्मजल का कुण्ड, खड़गपुर की झील और वहाँ के पर्वत का जल-प्रपात, सुलतानगंज में गंगा के बीच में अजगवी नाथ का शिवमंदिर, वटेश्वर और मन्दार-पर्वत आदि दर्शकों को मुग्ध करनेवाले पवित्र स्थान हैं।[१]

मुंगेर-जिले में तीन सबडिवीजन हैं—मुंगेर, जमुई और बेगूसराय। जमुई तिजारत के लिए प्रसिद्ध है। इसीके अंतर्गत 'गिद्धौर' में राजा का महल है। मुंगेर सबडिवीजन में 'खगड़िया' एक व्यापार-केंद्र है। 'खड़गपुर' और 'लखीसराय' भी प्रसिद्ध स्थान[२] हैं। जमालपुर ई० आइ० आर० का प्रसिद्ध स्टेशन है, जहाँ रेलवे का लोहे का बड़ा भारी कारखाना है।

बंगाल की पश्चिमी सीमा पर, कलकत्ता से २५० मील उत्तर-पश्चिम, गंगा के दाहिने किनारे पर 'मुंगेर'[३] पुराना नगर है। यह नगर सन् १७६१-६३ ई० में नवाब मीरकासिम की राजधानी था। यहाँ अबतक एक पुराना किला है। पीर-पहाड़ पर कासिम के अरमेनियम सेनानी 'मुरगी खाँ' का निवास-स्थान था।

'पूर्णिया'-जिले में तीन[४] सबडिवीजन हैं—अररिया, किशनगंज और पूर्णिया। पूर्णिया-सबडिवीजन में कटिहार है, जो छोटी लाइन का प्रसिद्ध जंकशन स्टेशन है, जहाँ से धान और रेंड़ी दूसरी जगह भेजी जाती है, जहाँ कम्बल की बिनायी और भेंड़ की बिक्री खूब होती है। अररिया के रानीगंज थाने में अच्छा घी मिलता है। पूर्णिया में पहले नवाबी राजधानी थी। यहाँ के नवाब बड़े जबरदस्त थे। दस-पन्द्रह हजार तक फौज उनके पास हमेशा तैयार रहती थी। यहाँ का एक नवाब बङ्गाल की नवाबी के लिए सिराजुद्दौला से भिड़ गया; पर अकृतकार्य हुआ।

१. भागलपुर का विस्तृत विवरण देखना हो तो हिन्दी-मासिक 'मनोरंजन' का विशेषांक (मार्गशीर्ष-संवत् १९७०) देखिए। —ले०

२. अब खड़गपुर में एक हिन्दीमहाविद्यालय और लखीसराय में महिलाविद्यापीठ है।—ले०

३. मुंगेर जिले और नगर का विस्तृत विवरण श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ—लिखित 'मुंगेर' नामक पुस्तक में देखिए। —ले०

४. पूर्णिया-सदर-सबडिवीजन में से अब एक नया चौथा सबडिवीजन 'कटिहार' बना है। —ले०

सन्ताल-परगना नामक जिले में तीन[1] सबडिवीजन हैं—दुमका (जिले का सदर शहर), देवघर और राजमहल। दुमका नगर, प्राकृतिक दृश्यों के कारण, रमणीक एवं मनोहर है। इसी सबडिवीजन में कहीं तेलियागढ़ी का पुराना किला गंगातट पर शोभता है। देवघर बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ वैद्यनाथ महादेव का भारत-विख्यात मंदिर है। साल में लाखों भारतीय तीर्थयात्रा करने यहाँ आते हैं। जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है[2]। 'राजमहल' गंगातट पर बहुत पुराना नगर है। सन् १५६२ ई० से १६०८ तक और पुनः सन् १६३६ से १६६० तक यह बंगाल की राजधानी था। सन् १५७६ में अकबर की सेना ने यहाँ के दाऊदशाह को परास्त किया था। नयी बस्ती से दो कोस पच्छिम पुरानी बस्ती का खंडहर है, जहाँ एक-से-एक ऐतिहासिक इमारतें टूटी-फूटी पड़ी हैं।

उत्तर-बिहार—तिरहुत

तिरहुत—(मिथिला) कमिश्नरी में चार जिले हैं—(१) मुजफ्फरपुर, (२) दरभंगा, (३) सारन और (४) चम्पारन। यह कमिश्नरी गंगा की उत्तरीय तराइयों में फैली हुई है। तिरहुत-डिवीजन का सदर शहर (हेड-क्वार्टर) मुजफ्फरपुर है, जहाँ तिरहुत विभाग के कमिश्नर रहते हैं।

मुजफ्फरपुर में 'बिहार-लाइट-हॉर्स' नामक रिसालों की छोटी पलटन भी रहती है। यह नगर बड़ा और देखने में सुन्दर तथा रौनक़दार है। बूढ़ी गण्डक नदी के तट पर बसा है।

मुजफ्फरपुर-जिले में तीन सबडिवीजन हैं—सीतामढ़ी, हाजीपुर और सदर। सीतामढ़ी से नैपाल-राज्यान्तर्गत जनकपुर जाने का रास्ता है और हाजीपुर का मीठा केला बहुत प्रसिद्ध है।

दरभंगा-जिले[3] में भी तीन ही सबडिवीजन हैं—मधुबनी, समस्तीपुर, दरभंगा। दरभंगा नगर में मिथिलेश महाराजा बहादुर का सुविशाल, मनोहर एवं बहुमूल्य राजमहल है। राजप्रासाद बड़ा ही भड़कीला और नेत्ररंजक है। बिहारोत्कल-प्रदेश में दरभंगा के समान समृद्धिशाली राज्य दूसरा नहीं है। दरभंगा शहर के पड़ोस में लहेरियासराय सदर मुकाम है, जहाँ जिले की सरकारी कचहरियाँ आदि हैं।

१. आजकल छः सबडिवीजन हैं—गोड्डा, जामतारा, पाकड़ो भी।

२. अब यहाँ एक हिन्दीविद्यापीठ (साहित्य-महाविद्यालय) और गुरुकुल है। —ले०

३. दरभंगा जिले का विस्तृत विवरण पंडित जगन्नाथप्रसाद मिश्र-लिखित 'दरभंगा' नामक पुस्तक में देखिए। —ले०

'सारन' जिले में तीन सबडिवीजन हैं—छपरा (जिले का सदर शहर), सिवान, गोपालगंज। सारन-जिले में ही 'हथुआ' राजधानी है, जहाँ प्रसिद्ध राजा का महल है। सिवान में मिट्टी के बर्तन अच्छे बनते हैं। 'छपरा' नगर गंगा-सरयू-संगम पर बसा हुआ है। यहाँ डचों और पोर्चुगीजों के पुराने कारखाने की कुछ इमारतें हैं।

चम्पारन जिले में केवल एक ही सबडिवीजन है-मोतीहारी। इसी में 'बेतिया' राजधानी है। बेतिया का राज्य सरकार के हाथ में है। सन् १७४५ ई० से बेतिया में ईसाई मिशन स्थापित है। मोतिहारी शहर एक झील के किनारे है, जो किसी समय गंडक नदी का प्रवाहक्षेत्र था। जिले का प्रधान केन्द्र यही है।

उड़ीसा

उड़ीसा—डिवीजन में पाँच जिले हैं:—कटक, बालासोर (बालेश्वर), पुरी, अंगुल, सम्बलपुर। कटक जिले में तीन सबडिवीजन हैं—जयपुर, केन्द्रपाड़ा, कटक। जयपुर किसी समय केशरीवंश के राजाओं की राजधानी था।

कटक में 'वारावती' नाम का एक पुराना किला है। महानदी और काटजुरी के बीच में नगर बसा हुआ है। पथरीली मजबूत दीवार ही नदियों की बाढ़ से नगर की रक्षा करती है। कटक में एक कालेज भी है। उड़ीसा की नहरों का सदर आफिस यहीं है। यहाँ सोने-चाँदी के गहनों पर बहुत बारीक और नफीस कारीगरी होती है। उड़ीसा के देशी राजाओं की अनेक अच्छी-अच्छी कोठियाँ इस नगर की शोभा बढ़ा रही हैं।

पहले कटक में मुगल-सूबेदार रहते थे। मुगल-सूबेदार के महल का स्थान अब कटक के कमिश्नर की कोठी ने अपने अधिकार में कर लिया है। उस कोठी को अब 'लालबाग' कहते हैं। पहले वह स्थान इतने बड़े महल की शोभा से सम्पन्न था कि उसके जनाने हिस्से में ३०० औरतें (महलसरा बेगमें) रहती थीं। १८ वीं शताब्दी के मध्य में इसपर महाराष्ट्रों का अधिकार हुआ। फिर सन् १८०३ में यह अङ्गरेजों के हाथ लगा। किले की तो अब रद्दी हालत है। पक्की इमारतें टूट-टाट कर पक्की सड़कों के रूप में बदल गयीं। यहाँ का किला बारह भट्टी (बट्टी) के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसके इर्द-गिर्द ८० गज चौड़ी खन्दक है।

बालासोर-जिले में दो सबडिवीजन हैं—भद्रक और बालासोर। बालासोर नगर बुढ़बलंग-नदी पर है। पहले का यह बड़ा भारी बन्दरगाह और मराडी है। वहाँ डच,

डेनिश, फ्रेञ्च और अङ्गरेजों के कारखाने थे। अब सब उजाड़ है। वहाँ बाणेश्वर-महादेव का मन्दिर मशहूर है। वहाँ अफीमची और शराबी बहुत हैं। डच लोगों की कई कब्रें वहाँ हैं, जो १७ वीं शताब्दी में बनी थीं।

पुरी-जिले में भी दो सबडिवीजन हैं—खुर्दा और पुरी। खुर्दा सबडिवीजन में ही भुवनेश्वर-मन्दिर है। पुरी नगर बङ्गोपसागर के तीर पर, जगत्प्रसिद्ध जगन्नाथ-मन्दिर के साथ, विराजित है। जगदीशपुरी, पुरुषोत्तमपुरी अथवा ठाकुरद्वारा आदि नामों से भी यह नगर प्रसिद्ध है। भारत के सभी प्रान्तों से हिन्दूतीर्थयात्री हमेशा यहाँ आते रहते हैं। विशेषत: आषाढ़ के रथयात्रा-महोत्सव में यहाँ खासी भीड़ होती है। यहाँ के मन्दिर का बुर्ज १६० फुट ऊँचा है। मन्दिर के सिंहद्वार से बाहर सामने ही १५ फुट ऊँचा सूर्य्य-स्तम्भ है, जो कोनारक के सूर्य-मन्दिर में से यहाँ आया है।

सम्बलपुर-जिले में दो सबडिवीजन हैं—बारगढ़ और सम्बलपुर। अंगुल-जिले में दो सबडिवीजन हैं—खौंद और अंगुल। खौंद-महाल का सदर मुकाम फूलवानी है।

छोटा-नागपुर-डिवीजन

छोटा-नागपुर-विभाग में भी पाँच ही जिले हैं—राँची, हजारीबाग, सिंहभूम, मानभूम, पलामू। राँची में कमिश्नरी है। राँची ही सब जिलों से बड़ा है। बिहारो-त्कल-सरकार का ग्रीष्मावास भी राँची में है। राँची की आबहवा बहुत ही अच्छी और फायदेमंद है। यह बहुत ही रमणीक और खुला हुआ हवादार शहर है। आसपास में जंगलों की हरियाली-छटा विचित्र और नेत्र-सुखद है। यहाँ ईसाई मिशनरी बहुत हैं। राँची-नगर से ४७ मील पच्छिम 'लोहरदग्गा' में एक कोढ़िया अस्पताल है।

राँची-जिले में तीन सबडिवीजन हैं—राँची, गुमला और खूँटी। खूँटी-सब-डिवीजन में 'बूढ़ू' नामक एक छोटा-सा शहर तिजारत के लिए मशहूर है।

हजारीबाग-जिले में भी दो ही सबडिवीजन हैं। एक गिरिडीह, जहाँ भारत-विख्यात कोयले की खानें हैं और दूसरा हजारीबाग, जहाँ पहले सन् १८७४ ई० तक फौजी छावनी थी। अब उसी सेना-शाला की इमारत में रिफारमेटरी स्कूल है, जिसमें सजा पानेवाले लड़कों से हर तरह के हुनर के काम कराये जाते हैं। बालिग होने पर उस स्कूल से बहुत-से कारीगर और हुनरमंद नौजवान निकलते हैं। हजारीबाग में डबलिन-विश्व-विद्यालय का एक मिशन-कालेज भी है। इसी सब-डिवीजन में 'बतरा' मशहूर जगह है।

पलामू-जिले का सदर शहर डालटेनगंज (लालटेनगंज) है। इस शहर को छोटानागपुर के कमिश्नर मिस्टर कौलोनेल डालटन ने सन् १८६२ में बसाया था। सन् १६०४ से यहाँ पानी की कल खुली है। डालटनगंज एकमात्र सबडिवीजन और जिला-सदर है। इसी सबडिवीजन में 'गढ़वा' प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ से लाह, रंजन, तसर, तेलहन, घी, रूई, लोहा आदि चीजें अन्यान्य स्थानों में भेजी जाती हैं। डालटनगंज में एक डिपुटी-कमिश्नर और दो डिपुटी-कलक्टर शासक-रूप में रहते हैं। इन्हें बिहारी जिलों के जजों और मजिस्टरों के समान शासनाधिकार मिला हुआ है।

पुरुलिया-जिले में दो ही सबडिवीजन हैं—धनबाद और पुरुलिया। धनबाद बहुत बड़ा रेलवे-केन्द्र है। यहाँ की जल-वायु अच्छी है। अँगरेजों के बँगले यहाँ बहुत-से हैं। शहर भी गुलजार है।

पुरुलिया-जिले में रघुनाथपुर और झालदा मशहूर जगहें हैं। पहले में तसर का काम बहुत होता है और दूसरे में लाह का कारबार खूब चलता है। मानभूम का सदर शहर पुरुलिया है। पुरुलिया से राँची को रेलवे-लाइन गयी है।

सिंहभूम-जिले का सदर शहर चाइबासा है। वहाँ एक डिपुटी-कमिश्नर और तीन डिपुटी-कलक्टर शासन-प्रबंध के लिए रहते हैं। चाइबासा में ही एक डिपुटी-कञ्जरवेटर, जंगल के प्रबन्ध के लिए, रहा करते हैं। 'साकची' नामक नगर इसी जिले में है। यहाँ ताता–कम्पनी के लोहे के बहुत बड़े–बड़े कारखाने हैं। केवल लोहे के कारखानों की भरमार से ही यहाँ शहर-सी बस्ती हो गयी है[१]।

१. बिहार और उड़ीसा अब अलग-अलग स्वशासित प्रान्त हो गये हैं। सन् १६३०-३१ ई० की 'गङ्गा' पत्रिका में बिहार के जिलों और नगरों का विस्तृत परिचय प्रकाशित हो चुका है। विशेष विवरण 'गङ्गा' (सुलतानगंज, भागलपुर) के अंकों में द्रष्टव्य है। पटना के ग्रंथमाला-कार्यालय (हिन्दुस्तानी प्रेस) से प्रकाशित और श्रीगदाधरप्रसाद अम्बष्ठ द्वारा लिखित 'जिला-दर्पण-पुस्तकमाला' तथा 'बिहार-दर्पण' में आधुनिक बिहार-प्रान्त का भौगोलिक, ऐतिहासिक, व्यावसायिक एवं राजनीतिक परिचय दर्शनीय है। —लेखक

परिशिष्ट

[प्रथम संस्करण]

(क) वक्तव्य

मेरा बहुत दिनों से विचार था कि बिहार के विषय में एक पुस्तक लिखी जाय; पर पुस्तक किस प्रकार की हो, इसका निर्णय बहुत दिनों तक नहीं हो सका। कुछ दिनों के बाद मैंने बिहार का विस्तृत इतिहास लिखना प्रारम्भ किया और उसके प्रारम्भिक कई अध्याय लिख भी डाले; किन्तु ऐसा इतिहास लिखने से मेरा मनोरथ पूरा होता नहीं दीख पड़ा। अतः मैंने एक ऐसी पुस्तक प्रस्तुत करने का विचार किया, जिसमें बिहार के ऐतिहासिक, प्राकृतिक और भौगोलिक वर्णन हों। प्रस्तुत पुस्तक उसी विचार का परिणाम है।

मैंने इस पुस्तक के लिखने के लिए बहुत-सा सामान संग्रह किया; पर कई आवश्यक कार्यों में फँस जाने के कारण पुस्तक-रचना में विलम्ब होने लगा। इससे, मैंने यह भार अपने परम स्नेही 'हिन्दी-भूषण' बाबू शिवपूजन सहाय को सौंपा और सब सामान उन्हें दे दिया। उन्होंने खुशी से यह भार अपने ऊपर लेकरमेरे बार-बार के अनुरोध से शीघ्र ही इस पुस्तक को समाप्त किया। लेखक ने इसके लिखने में यथेष्ट परिश्रम किया है और उन्हें अपने प्रयत्न में अधिक सफलता प्राप्त भी हुई है।

पुस्तक की लेखन-शैली बड़ी ही सुन्दर, सरस और अलंकृत है। लेखन की यह शैली स्वाभाविक है, कृत्रिम नहीं। संस्कृत-बहुल होने से यद्यपि यह शैली सर्वसाधारण के लिए कुछ कठिन है, तथापि वह इतनी मधुर है कि उसमें सरलता के लिए अन्तर डालना अच्छा नहीं प्रतीत हुआ। सम्भव है कि लेखक की 'हिन्दी-भूषण' उपाधि को सार्थक करनेवाली यह शैली सबको पसन्द आ जाय।

मैंने अपने आरम्भ किये हुए बिहार के विस्तृत इतिहास के उल्लिखित कई अध्यायों से कुछ मसाला लेकर एक उपक्रम इस पुस्तक के लिए लिखा है। यह उपक्रम यथा-समय बिहार के विस्तृत इतिहास का आकार धारण करेगा। सम्भव है, इस उपक्रम से भी बिहार की कुछ प्राचीन ऐतिहासिक बातें पाठकों को मालूम हो जायँ और उससे उनका मनोरञ्जन हो।

पुस्तक के लेखक अपने लेखों द्वारा हिन्दी-संसार में बहुत दिनों से परिचित हैं। इससे उनका यहाँ परिचय कराना अनावश्यक है। आज वे इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण होते हैं। आशा है, हिन्दी-प्रेमी उनकी इस कृति को अपनाकर उनका उत्साह बढ़ावेंगे।

पटना, १९१९ ई० — रामदहिन मिश्र।

(ख) उपक्रम

भारतवर्ष एक परम प्राचीन देश है। इसकी सभ्यता भी प्राचीन काल से ही प्रसिद्ध है। संसार में कोई ऐसा देश नहीं जो प्राचीनता और सभ्यता में इसकी समानता करे। यह कहने में कुछ भी अत्युक्ति न होगी कि जिस समय संसार के बड़े-बड़े देश अन्धकार के गहरे गर्त्त में डूबे हुए थे, उस समय भारत का उज्ज्वल आलोक चारों ओर फैल रहा था[१]

भारत के इतिहास में बिहार का यथेष्ट गौरव है। क्या धार्मिक, क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक, जिस किसी दृष्टि से देखिए, बिहार को बहुत पहले से ही सब प्रकार समुन्नत पाइयेगा। यदि भारत के प्राचीन इतिहास से बिहार का इतिहास अलग कर दिया जाय तो उसका आदिकालीन इतिहास कुछ रह ही न जायगा। बड़े-बड़े ऐतिहासिकों ने वैज्ञानिक दृष्टि से भारत का जो इतिहास लिखा है, वह बिहार के इतिहास से ही प्रायः प्रारम्भ होता है। वह ऐतिहासिक काल बौद्धयुग कहलाता है। तब से लेकर लगभग डेढ़हजार (१५००) वर्ष तक बिहार की बड़ी चलती रही। बिहार के कितने राजाओं के समय तो समस्त भारत ही उसके अधीन बना रहा। यह बात छिपी नहीं है। उसका कुछ आभास इस पुस्तक के ऐतिहासिक विवरण में मिल सकता है। इस उपक्रम में बिहार की, बुद्धयुग के पूर्व की, कुछ बातें लिखी जायँगी।

आजकल हम जिसे 'बिहार' कहते हैं, वह पहले तीन राज्यों में विभक्त था। पहला विदेह वा मिथिला, दूसरा मगध वा कीकट और तीसरा अङ्ग राज्य था। ये तीनों अब भी बिहार में हैं। पहले दो के नाम तो अब भी यथेष्ट लिये जाते हैं, पर तीसरे का नाम लुप्त-सा हो गया है। ऐतिहासिकों के अतिरिक्त सर्वसाधारण को इस राज्य का नाम भी अविदित ही है। यह निश्चय है कि अङ्ग देश (भागलपुर प्रान्त) के निवासी इसके नाम और थोड़े से वृत्तान्त से भी परिचित हैं। इसका कारण यह है कि अब भी वहाँ इस लुप्तप्राय राज्य के कुछ बचे-बचाये चिह्न स्मारक-रूप से वर्तमान हैं।

आर्यों के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में विशेषतः पंजाब का उल्लेख है। उसमें पंजाब के अतिरिक्त भारतवर्ष का कुछ विशेष विवरण नहीं है। उसमें दूरस्थ गंगा

---

१. ग्रन्थमाला-कार्यालय (पटना) द्वारा प्रकाशित 'साहित्य-सुधाकर' नामक पुस्तक में प्रोफेसर रामावतार शर्मा, साहित्याचार्य, एम० ए० का लिखा 'सभ्यता का विकास' नामक लेख देखिए।

और यमुना के तटों का बहुत ही कम उल्लेख पाया जाता है। उस समय आर्य लोग केवल उसी सारी भूमि को जोतकर बसे हुए थे, जो कि सिन्धु और उसकी सहायक पाँच नदियों से सींची जाती है। यद्यपि यह बात थी, तथापि अन्यान्य देशों के नाम उसमें यत्र-तत्र पाये जाते हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में मगध का दूसरा नाम कीकट[1] देश है। यह प्रमाणतः और अनुमानतः एक प्रकार स्थिर हुआ है। यदि यह बात है तो कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के तृतीयाष्टक के संग्रह-काल में पञ्चनदवासी आर्यों को मगध[2] का अस्तित्व विदित था। यजुर्वेद में भी मागध[3] शब्द आया है। अथर्ववेद के पञ्चम काण्ड में अङ्ग और मगध[4] दोनों के नाम मिलते हैं। इससे स्थिर होता है कि आर्यों के निकट प्राचीन बिहार परिचित था। पर मिथिला के सम्बन्ध में यह बात नहीं थी। वैदिक काल में वह आर्यों के अधिकारभुक्त हो गया था। इसका उल्लेख वैदिक साहित्य में हमें यथेष्ट मिलता है।

ऋग्वेद से पता मिलता है कि पहले आर्य सरस्वती-प्रान्त से पूर्व की ओर गये। प्राचीन आर्य यज्ञादि-कर्मों से बड़ा प्रेम रखते थे। अतएव, अपने साथ यज्ञादि-क्रिया का सब सामान—अग्नि आदि का ले जाना, बहुत ही सम्भव है। ऋग्वेद में आर्यों का पूर्व की ओर अग्नि का ले जाना लिखा है[5]। विदेहों के पूर्व की ओर बढ़ने का कुछ अस्पष्ट-सा हाल 'शतपथ ब्राह्मण' में भी लिखा है, जिसका सारांश नीचे दिया जाता है—

"माधव विदेघ के मुख में अग्नि वैश्वानर था। उसके कुल का पुरोहित ऋषि गौतम राहुगण था। इसने अग्नि को आवाहन कर उसके मुँह से बाहर किया। माधव विदेघ उस समय सरस्वती नदी पर था। वहाँ से वह (अग्नि) पृथ्वी को जलाती हुई पूरब की ओर बढ़ी। ज्यों-ज्यों वह जलाती हुई बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों गौतम, राहुगण और विदेघ माधव उसके पीछे-पीछे चले जाते थे। उसने सब नदियों को सुखा डाला वा पार किया; पर हिमालय से निकली हुई सदानीरा (गण्डकी) को नहीं सुखाया। पहले ब्राह्मण लोग उसके पार नहीं गये; क्योंकि अग्नि वैश्वानर उसके आगे न गया। उसके पूरब में ब्राह्मण रहते थे; पर वह स्थान

१. निरुक्त६।६।४

२. किम् ते कृण्वन्ति। कीकटेषु गावः न आशिरम्। ऋक् ३। ५३। ५४।

३. अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्रजापत्या मागधः पुंश्चलीकितवः क्लीबो शूद्राः।
यजुर्वेद अ० ३०, मं० ५।

४. गान्धारिभ्योमुजवद्भ्योऽङ्गेभ्यो मगधेभ्यः। अथर्व ५। २२। १४।

५. अग्ने त्वा पूर्वमनयन्। ऋक् १। ३१। १४।

पहले यज्ञादि-क्रिया की अनुष्ठान-भूमि नहीं था। पीछे होमादि करके उसे ब्राह्मणों ने अग्नि से चखवाया। जब अग्नि वैश्वानर उसके पार न गया, तब माधव विदेघ ने उससे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ। उसने उत्तर दिया कि तेरा निवास इस नदी के पूरब हो, क्योंकि ये माधव की सन्तति हैं।"[१]

अबतक भी वह नदी कौशलों और विदेहों की सीमा है।

ऊपर के वृत्तान्त से हम लोगों को कल्पित कथा के रूप में प्राचीन अधिवासियों के सरस्वती-तट से गण्डक-तटतक धीरे-धीरे बढ़ने का वृतान्त मिलता है। यह नदी दोनों राज्यों की सीमा थी। कोशल लोग उसके पश्चिम में रहते थे और विदेह लोग उसके पूरब में। सम्भवतः कई शताब्दियों में विदेहों का राज्य शक्ति और सभ्यता में यहाँ तक बढ़ा कि वह उत्तरी भारत में सबसे प्रधान राज्य हो गया। उसकी प्रधानता के कारण विदेह-राज जनक[२] थे। वे बड़े ही ज्ञानी और अद्वितीय विद्वान् थे। उनकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में 'शतपथ ब्राह्मण' में एक ऐसा प्रसङ्ग आया है—

"विदेह के जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो अभी आये थे। ये श्वेतकेतु, आरुणेय, सोमसुष्म-सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा कि आप अग्निहोत्र कैसे करते हैं? तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया; पर किसी का उत्तर ठीक नहीं था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के निकट था; परन्तु वह पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे ऐसा कहा और रथ पर चढ़कर चला गया। ब्राह्मणों ने कहा, इस राजन्य ने हम लोगों का अपमान किया है। याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़कर राजा के पीछे गया और उससे शङ्का-निवारण की[३]। अबसे जनक ब्राह्मण हो गया।[४]"

वे ही याज्ञवल्क्य उन राजा जनक की सभा में प्रधान पुरोहित हुए। श्वेत यजुर्वेद अपने संग्रह करनेवाले वा प्रकाशित करनेवाले उन्हीं याज्ञवल्क्य वाजसनेय

१. शतपथ ब्राह्मण १।४।१; २।१।१।

२. यह निर्णय करना अत्यन्त कठिन है कि ये जनक कौन थे। वैवस्वत मनु के पुत्र इच्छ्वाकु के पुत्र निमि ने ही विदेह-वंश की स्थापना की। इनका ही नामान्तर विदेह था। विष्णुपुराण में लिखा है कि मृत देह से उत्पन्न होने के कारण इनका नाम जनक पड़ा। भविष्य-पुराण में पुरीजनन सामर्थ्य से इनका जनक नाम पड़ने की बात लिखी है। जनक के नामानुसार इस वंश के सभी राजा उसी नाम से प्रसिद्ध होने लगे। जनक शब्द इस वंश के राजाओं की उपाधि-सा हो गया। इसकी कई पीढ़ियों के बाद जानकी के पिता 'सीरध्वज' जनक हुए।

३. शतपथ ब्राह्मण ११।४।५।

४. शतपथ ब्राह्मण १२।६।२१।

के नाम से ही 'वाजसनेयी संहिता' कहलाता है । उस शुक्ल यजुर्वेद का शतपथ ब्राह्मण भी इसी महर्षि के कर्त्तव्य का फल है ।

श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त अपने 'भारतीय सभ्यता के इतिहास' में इस प्रसङ्ग पर लिखते हैं ।—

"जनक के बड़े यश का कारण कुछ अंश में उसकी सभा के प्रधान पुरोहित याज्ञवल्क्य वाजसनेयी की बुद्धि और विद्या है । राजा जनक के आश्रय में इस पुरोहित ने उस समय के यजुर्वेद को दोहराने, मन्त्रों को व्याख्यानों से अलग करने, उनको संक्षिप्त करके नये यजुर्वेद (शुक्ल यजुर्वेद) के रूप में बनाने तथा इसका विस्तृत वर्णन एक बड़े ब्राह्मण (शतपथ ब्राह्मण) में करने का साहस किया । इस महत् कार्य में ब्राह्मणों ने कई पीढ़ी तक श्रम किया; परन्तु इस कार्य के आरम्भ करने का गौरव इस शाखा के संस्थापक याज्ञवल्क्य वाजसनेयी और उसके विद्वान् आश्रयदाता विदेहों के राजा जनक को ही प्राप्त है ।"

राजा जनक ने ही अपनी सभा में उपनिषदों की चर्चा छेड़ी थी । उन्हीं के यहाँ उन दार्शनिक विचारों का प्रारम्भ हुआ था, जिनका पूर्ण विकास सूत्रों के समय में हुआ था । कहते हैं कि राजा जनक ने ही आत्मा के उद्देश्य और ईश्वर के विषय में खोज की, पुष्ट तथा दृढ आध्यात्मिक विचार प्रकट किये । ये विचार उपनिषदों में ओत-प्रोत हैं । राजा जनक का, उपनिषदों के इन विचारों को उत्पन्न करने के कारण, उस समय के अन्य राजाओं की अपेक्षा, बहुत आदर किया जाता है ।

भारतवर्ष के ऐतिहासिक प्राचीन काव्य-काल (ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषत्काल) के इतिहास में विदेहों के राजा जनक कदाचित् सबसे प्रधान व्यक्ति हैं । इस सम्राट् ने केवल भारतवर्ष के दूरतम सीमा तक अपना प्रभुत्व ही नहीं स्थापित कर लिया था, वरन् उसने उस समय के बड़े-बड़े विद्वानों को अपने निकट रक्खा था और जगदीश्वर के विषय में उन्हें शिक्षा दिया करता था । यही कारण है कि जनक के नाम ने अक्षयकीर्ति पायी है । काशियों के राजा अजातशत्रु ने, जो स्वयं एक विद्वान् था और विद्या का एक प्रसिद्ध प्रचारक था, निराश होकर कहा—'सचमुच यह कहकर सब लोग भागे जाते हैं कि हमारा रक्षक जनक है ।'[१]

जिस प्रकार उस समय उत्तर भारत अध्यात्म-विद्या के विशेष प्रचार और विद्वानों के यथेष्ट सम्मान करने के कारण बहुत प्रसिद्ध हो रहा था, उसी प्रकार दक्षिण बिहार भी अपने शौर्य और शक्ति के कारण आर्यों की आँखों का काँटा

१. बृहदारण्यक उपनिषद् ११।३१ ।

हो रहा था। आर्यों ने अपना प्रभुत्व उत्तर भारत में जैसी सरलता से फैला लिया था, वैसी सरलता से वे दक्षिण में अपना प्रभुत्व नहीं फैला सके। दक्षिण बिहार के अधिवासी अपनी शक्ति को अक्षुण्ण बनाये रहे, जिससे आर्यों को पैठ वहाँ न हो सकी। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि दुष्यन्त के पुत्र भरत ने, जो १३६ अश्वमेध यज्ञ किये थे, उनमें ७८ यमुना के तट पर और ५८ गंगा के तट पर सम्पन्न हुए थे। यदि मगधादि प्रदेश भी आर्यों के अधिकारभुक्त रहते तो इन प्रदेशों के पुण्य-स्थानों में भी यज्ञ होने की बात अवश्य लिखी रहती।

ऐतरेय आरण्यक में वंग, मगध और चेरदेश-वासियों को आर्यों ने पक्षी के समान माना है।[१] 'चेर' देश या जाति-विशेष का नाम है। पहाड़ों में 'चेर' जाति अब भी है। दक्षिण के पहाड़ों में 'चेरो' 'खरवारो' नाम की जातियाँ अब भी रहती हैं। दक्षिणापथ के एक प्राचीन राज्य का भी 'चेर' नाम है, जिसे 'केरल' कहते हैं। प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख पाया जाता है। न मालूम आर्यों ने किस कारण इन प्रदेशवासियों को पक्षितुल्य माना है। हो सकता है कि आर्य जिसे मनुष्य कह सकते थे, उसकी श्रेणी में अबतक वे न आये हों। यह भी कहा जा सकता है कि जंगल और पहाड़ों में रहने के कारण उनका ऐसा नामकरण आर्यों ने किया हो। किन्तु, महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री ने अपने एक प्रबन्ध में लिखा है कि जब आर्य बढ़ते-बढ़ते प्रयाग तक पहुँच गये, तब उन्होंने (मगध-युक्त) बंगाल की सभ्यता से ईर्ष्यान्वित होकर उन्हें धर्मज्ञान-शून्य और भाषाज्ञान-शून्य पक्षी कहा है।'

जिस समय पूर्व में आर्योपनिवेश स्थापित नहीं हुआ था, उस समय बंगाल और मगध में जो जाति बसती थी, सम्भवतः उसे ही आर्यों ने ऋग्वेद में 'दस्यु' के नाम से और ऐतरेय आरण्यक में 'पक्षी' के नाम से सम्बोधित किया है। वह जाति द्रविड़ थी। वेद से लेकर उपनिषत् तक उस दस्यु, अनार्य वा द्रविड़ जाति का वर्णन है। इस जाति का प्रसार बहुत दूर में था। इस जाति के लोग यज्ञहीन श्रद्धाहीन, बुद्धिहीन आदि विशेषणों से विशेषित हुए हैं; किन्तु उन्होंने बड़े-बड़े नगर बसा लिये थे और दुर्भेद्य दुर्ग भी बना लिये थे। सहज में इनपर विजय पाना आर्यों के लिए असम्भव था।

वैदिक साहित्य में इन सब उल्लेखों को देखकर हम अनुमान कर सकते हैं कि उस समय अंग और मगध, मिथिला में आर्योपनिवेश स्थापित होने पर भी, स्वाधीन

१. इमाः प्रजाः तिस्रो अत्ययमायं तानीमानि वयांसि वङ्गमगधाश्चेरपादान्यका अर्कमभितो विविश्र इति। ऐतरेय आरण्यक २।१।१।

थे और विजयी आर्यों के निकट उन्होंने अपना मस्तक अवनत नहीं किया था। इसी से वैदिक-काल में आर्यों ने इस देश के निवासियों को धर्महीन, मनुष्यत्वहीन आदि शब्दों से विशेषित किया है। उनके इस विद्वेष का आभास आगे भी स्पष्ट है।

बौधायन धर्मसूत्र [1] में लिखा है कि वङ्ग, कलिङ्ग, सौवीर, मगध आदि देशों में जाने से प्रायश्चित होता है और शुद्धि के लिए यज्ञानुष्ठान करना पड़ता है। इससे अनुमान होता है कि सूत्रकाल तक वहाँ के प्राचीन अधिवासी अपनी प्राचीन प्रथा के ही पूर्ण पक्षपाती बने हुए थे और आर्यों की कला अङ्ग-मगधादि में नहीं लही थी। इसी से विद्वेषवश उन्होंने उन प्रदेशों में जाने का निषेध कर दिया।

सूत्र-ग्रन्थों के आधार पर बने हुए स्मृतिग्रन्थों में भी इस विद्वेषाग्नि की चिनगारियाँ छिटकी हुई हैं। एक श्लोक [2] में लिखा हुआ है कि अंग, वंग, कलिंग, मगध आदि देशों में जाने से प्रायश्चित्त करना पड़ता है। ऐसे ही और भी प्रमाण इस विषय में मिलते हैं।

बहुतों का अनुमान है कि अङ्ग-मगधादि-देशों में यज्ञ करने के लिए सामग्री नहीं मिलती थी, इसीसे वे अपवित्र समझे जाते हैं। पर यह अनुमान ठीक नहीं। रामायण में लिखा है कि दशरथ के मित्र रोमपाद अङ्ग देश के राजा थे और उनके दामाद ऋष्यशृङ्ग उन्हीं के राजभवन में रहते थे। वर्त्तमान कजरा[3] से आठ मील दक्खिन शृङ्गि ऋषि पर्वत पर, जो महाभारत के समय में ऋषिगिरि कहा जाता था, ऋष्यशृङ्ग का आश्रम था। महाभारत के सभापर्व में लिखा है कि पहले मगध में गौतम का आश्रम था और अङ्गवङ्गादि के राजा उनके आश्रम में जाकर बहुत प्रसन्न होते थे। यदि अङ्ग-मगध-आदि देश अपवित्र समझे जाते तो इन देशों में इन पुण्यात्मा महर्षियों का कभी निवास नहीं होता। इससे ऐसा अनुमान भ्रान्त है। तुलसीदास जी का 'मग काशी सुरसरि कर्मनाशा' आदि लिखना विचारसंगत नहीं; बल्कि प्राचीन परिपाटी के अनूकुल है।

प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि आर्यों ने मगधादि प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व कब जमाया? इससे आर्यों को उनपर अधिकार करने के समय का निर्णय नहीं किया जा सकता। सिंहल के इतिहास से मालूम होता है कि ईसवी-सन् की छः सदी पहले विजयसिंह नामक के वङ्गीय राजपुत्र ने सिंहलद्वीप पर अधिकार किया था। इस विजय के कारण ही लंका का नाम सिंहलद्वीप हुआ था;

---

१. बौधायनधर्मसूत्र ।१।१।२।

२. अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च
तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति ॥

३. मुंगेर जिले में बड़ी लाइन का एक रेलवे-स्टेशन।

क्योंकि रामायण में लंका नाम है; पर सिंहल नाम नहीं। उसके बाद संस्कृत-साहित्य में सिंहल नाम मिलता है। 'विजय सिंह' नाम अनार्य के ऐसा नहीं विदित होता है। इससे, इसके पूर्व ही वङ्ग और मगध के प्राचीन अधिवासी अपनी रीति-नीति छोड़कर आर्यों के आचार-विचार से दीक्षित हो गये थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

मगध में आर्यों का जब सिक्का जमा तब अनार्यों ने जंगल और पहाड़ों का आश्रय लिया और कितनों ने आर्यों की रीति-नीति और भाषा-भाव को ग्रहण कर लिया। किन्तु, नवागत विजेता आर्य-गण के शासनपाश में अधिक दिनों तक ये बद्ध नहीं रहे। तीन ही चार शताब्दी के बाद समग्र आर्यावर्त्त मगध के अनार्य—शूद्र जातीय राजगणों की अधीनता स्वीकार करने को बाध्य हुए थे। इस समय आर्यजाति निर्वीर्य-सी हो गयी थी और उसका अधःपतन एक प्रकार हो रहा था। इस अधःपतन-काल के कुछ पूर्व आर्यधर्म के विरुद्ध देशव्यापी आन्दोलन हो रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध और जैन धर्म प्रबल हो गये। इन धर्मों के अभ्युत्थान का प्रधान क्षेत्र मगध ही था। इन दोनों धर्मों के संस्थापक गौतम बुद्ध और महावीर के निर्वाण होने के कुछ ही समय के बाद शिशुनागवंशी महानन्द की शूद्रा पत्नी के गर्भज महाराज चन्द्रगुप्त भारत के समस्त आर्य राजवंशों को निर्मूल कर के एकच्छत्र सम्राट् हुए थे। इस समय से लेकर गुप्तवंश के अधःपतन-काल तक मगधराज ही उत्तरापथ के एकछत्र सम्राट् थे और पाटलिपुत्र ही इस साम्राज्य की राजधानी था। इस प्रकार सर्वशक्ति-सम्पन्न मगध कुछ काल के लिए जो अधीन हो गया था, उसने फिर गर्वोन्नत होकर अपना यश और गौरव दिग्दिगन्त में फैलाया।

पटना, १६१६ ई०

रामदहिन मिश्र

(ग) मुख्य नगरों की जनसंख्या

क्रम-सं०	बिहार के मुख्य नगरों का नाम		सन् १९११ की जनसंख्या	सन् १९५१ की जनसंख्या
१	पटना		१३६१५३	२८३४७९
२	बिहार	(पटना)	३५१५१	६३१२४
३	दानापुर	,,	३१०२५	४२६८४
४	बाढ़	,,	९१३८	२९३०८
५	राजगीर	,,		३८७०
६	गया		४९९२१	१३३७००
७	जहानाबाद	(गया)	४७६४	१२४४५
८	नवादा	,,	६८२८	१०३९१
९	औरंगाबाद	,,	५७९९	१०२९९
१०	टिकारी	,,	५८६१	६२७८
११	आरा	(शाहाबाद)	३८५४९	६४२०५
१२	सासाराम	,,	२३०५७	२९२६५
१३	बक्सर	,,	११३०९	१८०८७
१४	डुमराँव	,,	१५०४२	१६६०५
१५	भभुआ	,,	५४५२	७८५८
१६	छपरा	(सारन)	४२३७३	६४३०९
१७	सीवान	,,		२२६२५
१८	गोपालगंज	,,		१४२१३
१९	मोतीहारी	(चम्पारन)		२४४८९
२०	रक्सौल	,,		६५९४
२१	बेतिया	,,	२५७९३	३५६३४
२२	मुजफ्फरपुर		४३६६८	७३५९४
२३	सीतामढ़ी	(मुजफ्फरपुर)	१०१२२	१३२६७
२४	हाजीपुर	,,	१९२२३	२५१४९
२५	दरभंगा		४५८१६	६२६२८
२६	जयनगर	(दरभंगा)		७०११
२७	मधुबनी	,,	१६५००	२३२८३
२८	समस्तीपुर	,,	९१६८	१९[illegible]६६

क्रम-सं०	बिहार के मुख्य नगरों के नाम		सन् १९११ की जनसंख्या	सन् १९५१ की जनसंख्या
२९	मुँगेर		४६९१३	७५३४८
३०	खगड़िया	(मुँगेर)	१०८०४	१००५०
३१	बेगूसराय	,,		१५१४१
३२	जमालपुर	,,	२०५७६	४४१७२
३३	लखीसराय	,,		१७३२९
३४	खड़गपुर	,,		७५४९
३५	जमुई	,,		११५९४
३६	भागलपुर		७४३४९	११४५३०
३७	कहलगाँव	(भागलपुर)	४२९७	७५१५
३८	पूर्णिया		१४७८४	२५०६०
३९	फारबिसगंज	(पूर्णिया)		११५५१
४०	किशनगंज	,,	७५६३	१५९०३
४१	कटिहार	,,	१०२१९	४२३६५
४२	देवघर	(सन्तालपरगना)	११३९४	२५५१०
४३	मधुपुर	,,	६९९५	१७१४४
४४	दुमका	,,	५६२९	१३५८२
४५	साहिबगंज	,,	१४७८३	२५६६९
४६	राजमहल	,,	५३५७	४८७६
४७	हजारीबाग		१७००९	३२८१२
४८	रामगढ़	(हजारीबाग)		१४७७५
४९	चतरा	,,	९२२२	९९११
५०	गिरिडीह	,,	१०६६८	२९१६७
५१	राँची		३२९९४	१०६८४९
५२	लोहरदग्गा	(राँची)	६७७३	१०५५५
५३	पुरुलिया	(मानभूमि)	२०८८६	४१४६१
५४	झालदा	,,	५६१६	८२८३
५५	आदरा	,,		१०५७७
५६	धनबाद	,,		३४०७७

क्रम-सं०	बिहार के मुख्य नगरों के नाम		सन् १९११ की जनसंख्य	सन् १९५१ की जनसंख्य
५७	झरिया	(मानभूमि)		२६४८०
५८	सिन्दरी	,,		१३०४५
५९	डालटनगंज	(पलामू)	७१७९	१९२२३
६०	गढ़वा	,,	४१९८	९४६७
६१	चक्रधरपुर	(सिंहभूमि)		१९९४८
६२	चाईबासा	,,	९००९	१६४७४
६३	जमशेदपुर	,,	५६७२	२१८१६२
६४	सरायकेला	,,		४७७७
६५	खरसवाँ	,,		३४३८

शिवपूजन-रचनावली

विभूति

[कहानी-संग्रह]

"I do not know what I may appear to the world, but to myself I seem to have been only like a boy playing on the sea-shore, and diverting myself in now and then finding a smooth pebble, or a prettier shell than ordinary, whilst the great *Ocean of Truth* lay all undiscovered before me."

—*Newton.*

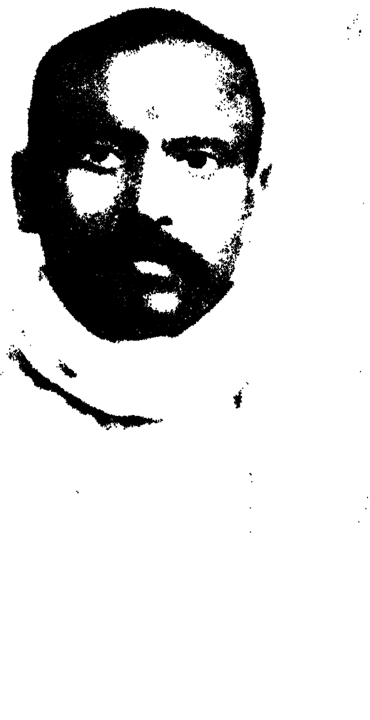
"Of all those arts in which the wise excel,
Nature's chief master-piece is Writing well."

—*Buckingham.*

× × ×

"एतावत्सरसिजकुड्मलस्य कृत्यं भित्वाम्भः सरसि विनिर्गमो बहिर्यत् ।
आमोदो विकसनमिन्दिरानिवासस्तत्सर्वं दिनकरकृत्यमामनन्ति ॥"

"अर्थात्, कमल-कलिका का तो इतना ही काम है कि सरोवर के जल को भेद कर बाहर निकल आवे । उसमें मधुर मकरन्द लाना, उसे विकसित करना, उसमें लक्ष्मी का निवास कराना, यह सब सूर्य्य का काम है । बुद्धिमान् जन यह मानते हैं ।"



स्वर्गीय पंडित ईश्वरीप्रसाद शर्मा

समर्पण

अनेक हिन्दी-पुस्तकों के लेखक और अनुवादक

तथा

'मनोरंजन', 'लक्ष्मी' और 'धर्माभ्युदय' के

भूतपूर्व सम्पादक

(आरा-निवासी)

मिश्र ईश्वरीप्रसादजी शर्म्मा

मंत्री, नागरी-प्रचारिणी सभा, आरा

गुरुवर !

आपने मेरे हृदय में, आज से दस वर्ष पहले, हिन्दी-प्रेम का जो शुद्ध बीज-वपन किया था, वह आज फल लाया है। फल पका नहीं है, कच्चा ही है, हौसले की आँधी में चू पड़ा है। तो भी यह प्रथम फल आप ही के श्रद्धेय चरणों में भक्तिपूर्वक समर्पित करता हूँ। विश्वास है, आप इसे सस्नेह स्वीकार करके कृतार्थ करेंगे।

आपका सेवक

शिवपूजन

संवत् १६७६

मुण्डमाल

हाथ में दे शूल निज पति के जहाँ पत्नी अहा !
बोलती यों विधु-वदन से वीर-वचनामृत बहा—
"भीरु अबला की विनय यह नाथ भूल न जाइयो,
शत्रुकुल को पीठ दिखला, लौट गेह न आइयो।"

—लोचनप्रसाद पांडेय

× × ×

We are bravemen's mothers, and brave-men's wives.
We are ready to do and dare.
We are ready to man your walls with our lives
And string your bows with our hairs.

—*Wives of the Spartans.*

१

आज उदयपुर के चौक में चारों ओर बड़ी चहल-पहल है। नवयुवकों में नवीन उत्साह उमड़ उठा है। मालूम होता है कि किसी ने यहाँ के कुँओं में उमंग की भंग घोल दी है। नवयुवकों की मूँछों में ऐंठ भरी हुई है, आँखों में ललाई छा गई है। सबकी पगड़ी पर देशानुराग की कलँगी लगी हुई है। हर तरफ़ से वीरता की ललकार सुन पड़ती है। बाँके-लड़ाके वीरों के कलेजे रणभेरी सुनकर चौगुने होते जा रहे हैं। नगाड़ों से तो नाकों में दम हो चला है। उदयपुर की धरती धौंसे की धुधुकार से डगमग कर रही है। रण-रोष से भरे हुए घोड़े डंके की चोट पर उड़ रहे हैं। मतवाले हाथी हर ओर से, काले मेघ की तरह, उमड़े चले आते हैं। घंटों की आवाज से सारा नगर गूँज रहा है। शस्त्रों की झनकार और शंखों के शब्द से दसों दिशाएँ सरस-शब्दमयी हो रही हैं। बड़े अभिमान से फहराती हुई विजय-पताका राजपूतों की कीर्त्तिलता-सी लहराती है। स्वच्छ आकाश के दर्पण में अपने मनोहर मुखड़े निहारनेवाले महलों की ऊँची-ऊँची अटारियों पर चारों ओर सुन्दरी-सुहागिनियाँ और कुमारी कन्याएँ भर-भर अंचल फूल लिये खड़ी हैं। सूरज की चमकीली किरणों की उज्ज्वल धारा से धोये हुए आकाश में चुभनेवाले कलश, महलों के मुँडेरों पर, मुस्कुरा रहे हैं। बन्दीवृन्द विशद विरुदावली बखानने में व्यस्त है।

२

महाराणा राजसिंह के समर्थ सरदार चूड़ावतजी आज औरंगजेब का दर्प-दलन करने और उसके अन्धाधुन्ध अन्धेर का उचित उत्तर देने जानेवाले हैं। यद्यपि उनकी अवस्था अभी अठारह वर्षों से अधिक नहीं है, तथापि जंगी जोश के मारे वे इतने फूल गये हैं कि कवच में नहीं अँटते। उनके हृदय में सामरिक उत्तेजना की लहर लहरा रही है। घोड़े पर सवार होने के लिए वे ज्योंही हाथ में लगाम थामकर उचकाना चाहते हैं, त्योंही अनायास उनकी दृष्टि सामनेवाले महल की झँझरीदार खिड़की पर, जहाँ उनकी नवोढ़ा पत्नी खड़ी है, जा पड़ती है।

३

हाड़ा-वंश की सुलक्षणा, सुशीला और सुन्दरी सुकुमारी कन्या से आपका ब्याह हुए दो-चार दिनों से अधिक नहीं हुआ होगा। अभी नवोढ़ा रानी के हाथ का कंकण हाथ ही की शोभा बढ़ा रहा है। अभी कजरारी आँखें अपने ही रंग में रंगी हुई हैं। पीत-पुनीत चुनरी भी अभी धूमिल नहीं होने पाई है। सोहाग का सिन्दूर दुहराया भी नहीं गया है। फूलों की सेज को छोड़कर और कहीं गहनों की झनकार भी नहीं सुन पड़ी है। अभी पायल की रुन-झुन ने महल के एक कोने में ही बीन बजाई है। अभी घने पल्लवों की आड़ में ही कोयल कुहुकती है। अभी कमल-सरीखे कोमल हाथ पूजनीय चरणों पर चन्दन ही भर चढ़ा पाये हैं। अभी संकोच के सुनहरे सींकड़ में बँधे हुए नेत्र लाज ही के लोभ में पड़े हुए हैं। अभी चाँद बादल ही के अन्दर छिपा हुआ है—किन्तु नहीं, आज तो उदयपुर की उदित-विदित शोभा देखने के लिए घन-पटल में से अभी-अभी वह प्रकट हुआ है।

४

चूड़ावतजी, हाथ में लगाम लिये ही, बादल के जाल से निकले हुए उस पूर्णचन्द्र पर टकटकी लगाये खड़े हैं। जालीदार खिड़की से छन-छनकर आनेवाली चाँद की चटकीली चाँदनी ने चूड़ावत-चकोर को आपे से बाहर कर दिया है! हाथ की लगाम हाथ ही में है, मन की लगाम खिड़की में है! नये प्रेम-पाश का प्रबल बन्धन प्रतिज्ञा-पालन का पुराना बन्धन ढीला कर रहा है! चूड़ावतजी का चित्त चंचल हो चला। वे चट-पट चन्द्रभवन की ओर चल पड़े। वे यद्यपि चिन्ता में चूर हैं; पर चन्द्र-दर्शन की चोखी चाट लग रही है। वे संगमर्मरी सीढ़ियों के सहारे चन्द्र-भवन पर चढ़ चुके; पर जोभ का जकड़ जाना जी को जला रहा है।

५

हृदय-हारिणी हाड़ा-रानी भी, हिम्मत की हद करके, हल्की आवाज से बोलीं—"प्राणनाथ! मन मलिन क्यों है? मुखारविन्द मुर्झाया क्यों है? न तन में तेज ही देखती हूँ, न शरीर में शांति ही! ऐसा क्यों? भला उत्साह की जगह उद्वेग का क्या काम है? उमंग में उदासीनता कहाँ से चू पड़ी? क्या कुछ शोक-संवाद सुना है? जब कि सभी सामन्त-सूरमा, संग्राम के लिए,

सज-धजकर आपही की आज्ञा की आशा में अँटके हुए हैं, तब क्या कारण है कि आप व्यर्थ व्याकुल हो उठे हैं? उदयपुर के बाजे-गाजे के तुमुल शब्द से दिग्दिगन्त डोल रहा है। वीरों के हुंकार से कायरों के कलेजे भी कड़े हो रहे हैं। भला ऐसे अवसर पर आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है? लड़ाई की ललकार सुनकर लँगड़े-लूलों को भी लड़ने-भिड़ने की लालसा लग जाती है; फिर आप तो क्षात्र तेज से भरे हुए क्षत्रिय हैं। प्राणनाथ! शूरों को शिथिलता नहीं शोभती। क्षत्रिय का छोटा-मोटा छोकरा भी क्षण-भर में शत्रुओं को छील-छाल कर छुट्टी कर देता है; परन्तु आप प्रसिद्ध पराक्रमी होकर पस्त क्यों पड़ गये?"

चूड़ावतजी चन्द्रमा में चपला की-सी चमक-दमक देख चकित होकर बोले—"प्राणप्यारी! रूपनगर के राठौर-वंश की राजकुमारी को दिल्ली का बादशाह बलात्कार से ब्याहने आ रहा है। इसके पहले ही वह राज-कन्या हमारे माननीय राणाबहादुर को बर चुकी है। कल पौ फूटते हो राणाजी रूपनगर की राह लेंगे। हम बीच ही में बादशाह की राह रोकने के लिए रण-यात्रा कर रहे हैं। शूर-सामन्तों की सैकड़ों सजीली सेनाएँ साथ में हैं सही; परन्तु हम लड़ाई से अपने लौटने का लक्षण नहीं देख रहे हैं। फिर कभी भर नजर तुम्हारे चन्द्र-वदन को देख पाने की आशा नहीं है। इस बार घनघोर युद्ध छिड़ेगा। हमलोग मन मनाकर जी-जान से लड़ेंगे। हजारों हमले हड़प जायँगे। समुद्र-सी सेना भी मथ डालेंगे। हिम्मत हर्गिज न हारेंगे। फौलाद-सी फौज को भी फौरन फाड़ डालेंगे। हिम्मत तो हजारगुनी है; मगर मुगलों की मुठभेड़ में महज मुट्ठी-भर मेवाड़ी वीर क्या कर सकेंगे? तो भी हमारे ढलैत, कमनैत और बानैत ढाढ़स बाँधकर डट जायँगे। हम सत्य की रक्षा के लिए पुर्जे-पुर्जे कट जायँगे। प्राणेश्वरी! किन्तु हमको केवल तुम्हारी ही चिंता बेढब सता रही है। अभी चार ही दिन हुए कि तुम-सी सुहागिन दुलहिन हमारे हृदय में उजेला करने आयी है। अभी किसी दिन तुम्हें इस तुच्छ संसार की क्षणिक छाया में विश्राम करने का भी अवसर नहीं मिला है। किस्मत की करामात है, एक ही गोटी में सारा खेल मात है। किसे मालूम था कि एक तुम-सी अनूपरूपा कोमलांगी के भाग्य में ऐसा भयंकर लेख होगा! अचानक रंग में भंग होने की आशा कभी सपने में भी न थी! किन्तु ऐसे ही अवसरों पर हम क्षत्रियों की परीक्षा हुआ करती है। संसार के सारे सुखों की तो बात ही क्या, प्राणों की भी आहुति देकर क्षत्रियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है।"

हाड़ी-रानी, हृदय पर हाथ धरकर, बोली—"प्राणनाथ! सत्य और न्याय की रक्षा के लिए लड़ने जाने के समय सहज-सुलभ सांसारिक सुखों की बुरी वासना

को मन में घर करने देना आपके समान प्रतापी क्षत्रिय-कुमार का काम नहीं है। आप आपात-मनोहर सुख के फन्दे में फँसकर अपना जातीय कर्त्तव्य मत भूलिए। सब प्रकार की वासनाओं और व्यसनों से विरक्त होकर इस समय केवल वीरत्व धारण कीजिए। मेरा मोह-छोह छोड़ दीजिए। भारत की महिलाएँ स्वार्थ के लिए सत्य का संहार करना नहीं चाहतीं। आर्य्य-महिलाओं के लिए समस्त संसार की सारी सम्पत्तियों से बढ़कर—

'सतीत्व ही अमूल्य धन है!'

जिस दिन मेरे तुच्छ सांसारिक सुखों की भोग-लालसा के कारण मेरी एक प्यारी बहन का सतीत्व-रत्न लुट जायगा, उसी दिन मेरा जातीय गौरव अरवली-शिखर के ऊँचे मस्तक से गिरकर चकनाचूर हो जायगा। यदि नव-विवाहिता उर्मिला देवी वीर-शिरोमणि लक्ष्मण को सांसारिक सुखोपभोग के लिए कर्त्तव्य पालन से विमुख कर दिये होती, तो क्या कभी लखनलाल को अक्षय यश लूटने का अवसर मिलता? वीर-बधूटी उत्तरा देवी यदि अभिमन्यु को भोग-विलास के भयंकर बन्धन में जकड़ दिये होतीं, तो क्या वे वीर-दुर्लभ गति को पाकर भारतीय क्षत्रिय-नन्दनों में अग्रगण्य होते? मैं समझती हूँ कि यदि तारा की बात मानकर बालि भी, घर के कोने में मुँह छिपाकर, डरपोक-जैसा छिपा हुआ रह गया होता, तो उसे वैसी पवित्र मृत्यु कदापि नसीब न होती। सती-शिरोमणि सीता देवी की सतीत्व-रक्षा के लिए जरा-जर्जर जटायु ने अपनी जान तक गँवाई जरूर; लेकिन उसने जो कीर्त्ति कमाई और बधाई पाई, सो आज तक किसी कवि की कल्पना में भी नहीं समाई। वीरों की यह रक्त मांस का शरीर अमर नहीं होता, बल्कि उनका उज्ज्वल-यशोरूपी शरीर ही अमर होता है। विजय-कीर्त्ति ही उनकी अभीष्ट-दायिनी कल्पलतिका है। दुष्ट शत्रु का रक्त ही उनके लिए शुद्ध गंगाजल से भी बढ़कर है। सतीत्व के अस्तित्व के लिए रण-भूमि में ब्रजमण्डल की-सी होली मचानेवाली खड्ग-देवी ही उनकी सती सहगामिनी है। आप सच्चे राजपूत वीर हैं; इसलिए सोत्साह जाइए और जाकर एकाग्र मन से अपना कर्त्तव्य-पालन कीजिए। मैं भी यदि सच्ची राजपूत-कन्या हूँगी, तो शीघ्र ही आपसे स्वर्ग में जा मिलूँगी। अब विशेष विलम्ब करने का समय नहीं है।"

चूड़ावतजी का चित्त हाड़ी-रानी के हृदय-रूपी हीरे को परखकर पुलकित हो उठा। प्रफुल्लित मन से चूड़ावतजी ने रानी को बार-बार गले से लगाया। मानों वे उच्च भावों से भरे हुए हाड़ी-रानी के हृदय-पारस के स्पर्श से अपना लौह-कर्कश हृदय सुवर्णमय बना रहे हों। सचमुच ऐसे ही हृदयों के आलिंगन से

मिट्टी की काया भी कंचन की हो जाती है। चूड़ावतजी आप-से-आप कह उठे—"धन्य देवि! तुम्हारे विराजने के लिए वस्तुतः हमारे हृदय में बहुत ही ऊँचा सिंहासन है। अच्छा, अब हम मरकर अमर होने जाते हैं। देखना, प्यारी! कहीं ऐसा न हो कि—" (कंठ गद्गद् हो गया!)

रानी ने फिर उन्हें आलिंगित करके कहा—"प्राणप्यारे! इतना अवश्य याद रखिए कि छोटा बच्चा चाहे आसमान छू ले, सीपी में सम्भवतः समुद्र समा जाय, हिमालय हिल जाय, तो हिल जाय; पर भारत की सती देवियाँ अपने प्रण से तनिक भी नहीं डिग सकतीं!"

चूड़ावतजी प्रेम-भरी नजरों से एकटक रानी की ओर देखते देखते सीढ़ी से उतर पड़े। रानी सतृष्ण नेत्रों से ताकती रह गईं।

६

चूड़ावतजी घोड़े पर सवार हो रहे हैं। डंके की आवाज घनी होती जा रही है। घोड़े फड़क-फड़ककर अड़ रहे हैं। चूड़ावतजी का प्रशस्त ललाट अभी तक चिन्ता की रेखाओं से कुंचित है। रतनारे लोचन-ललाम रण-रस में पगे हुए हैं।

उधर रानी विचार कर रही हैं—"मेरे प्राणेश्वर का मन मुझमें ही यदि लगा रहेगा, तो विजय-लक्ष्मी किसी प्रकार उनके गले में जयमाल नहीं डालेगी। उन्हें मेरे सतीत्व पर संकट आने का भय है। कुछ अंशों में यह स्वाभाविक भी है।"

इसी विचार-तरंग में रानी डूबती-उतराती हैं। तबतक चूड़ावतजी का अन्तिम संवाद लेकर आया हुआ एक प्रिय सेवक विनम्र भाव से कह उठता है—"चूड़ावतजी चिह्न चाहते हैं—दृढ़ आशा और अटल विश्वास का। सन्तोष होने योग्य कोई अपनी प्यारी वस्तु दीजिए। उन्होंने कहा है—'तुम्हारी ही आत्मा हमारे शरीर में बैठकर इसे रणभूमि की ओर लिए जा रही है; हम अपनी आत्मा तुम्हारे शरीर में छोड़कर जा रहे हैं।"

स्नेह-सूचक संवाद सुनकर रानी अपने मन में विचार रही हैं—"प्राणेश्वर का ध्यान जबतक इस तुच्छ शरीर की ओर लगा रहेगा, तबतक निश्चय ही वे कृतकार्य नहीं होंगे।" इतना सोचकर बोली—"अच्छा, खड़ा रह, मेरा सिर लिये जा।"

जबतक सेवक 'हाँ! हाँ!' कहकर चिल्ला उठता है, तबतक दाहिने हाथ में नंगी तलवार और बायें हाथ में लच्छेदार केशोंवाला मुंड लिए हुए रानी का

धड़, विलासमन्दिर के संगमर्मरी फर्श को सती-रक्त से सींचकर पवित्र करता हुआ, धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा।

बेचारे भय-चकित सेवक ने यह 'दृढ़ आशा और अटल विश्वास का चिह्न' कँपते हुए हाथों से ले जाकर चूड़ावतजी को दे दिया। चूड़ावतजी प्रेम से पागल हो उठे। वे अपूर्व आनन्द में मस्त होकर ऐसे फूल गये कि कवच की कड़ियाँ धड़ाधड़ कड़क उठीं।

सुगन्धों से सींचे हुए मुलायम बालों के गुच्छों को दो हिस्से में चीरकर चूड़ावतजी ने, उस सौभाग्य-सिन्दूर से भरे हुए सुन्दर शीश को, गले में लटका लिया। मालूम हुआ, मानों स्वयं भगवान् रुद्रदेव भीषण भेष धारण कर शत्रु का नाश करने जा रहे हैं। सबको भ्रम हो उठा कि गले में काले नाग लिपट रहे हैं या लम्बी-लम्बी सटकार लटें हैं। अटारियों पर से सुन्दरियों ने भर-भर अंजली फूलों की वर्षा की। मानों स्वर्ग की मानिनी अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि की। बाजे-गाजे के शब्दों के साथ घहराता हुआ, आकाश फाड़नेवाला, एक गंभीर स्वर चारों ओर से गूँज उठा—

'धन्य मुण्डमाल !!!'

सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा

वीरभूमि मेवाड़ आर्य-गौरव-लीलास्थल
अतुल जहाँ के शौर्य, जाति-अभिमान वीर्यबल !
है सतीत्व सद्धर्म का जो पवित्र आगार,
गाता जिसका सुयश है नित सारा संसार;
अमित आनन्द से !

× × ×

शुचि स्वदेश-वात्सल्य, सत्य-प्रियता, सहिष्णुता,
आत्मत्याग, श्रम-शक्ति, समर-दृढता, रण-पटुता।
विमल धीरता, वीरता, स्वाधीनता अखंड,
करता है जिस भूमि की, उज्ज्वल भारत-खंड;
अखिल भूलोक में !

—लोचनप्रसाद पांडेय

१

जो प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप के धैर्य्य-समुद्र से यशोरूपी अमृत मथ निकालने में मथानी (मन्दराचल) बना था, जिसकी शिलाओं पर रगड़कर वीर-व्याघ्र राजपूतों ने अपनी तलवारों पर सान चढ़ाई थी, जिसकी गुहाएँ राजपूतों के कीर्ति-दुन्दुभी-स्वरूप झरनों के कल-कल शब्द से गूँजती रहती हैं; उसी अरवली-गिरि की तलहटी में राठौरों की राजधानी 'रूपनगर' है। राजपूताने के उन्नत हृदय पर अरवली-पर्वत की बड़ी अद्भुत शोभा है। वह विशाल पर्वत राजपूताने के सैकत-समुद्र में विकराल ग्राह की भाँति विराजमान है। उसी पर्वत के प्रशस्त अंचल पर रूपनगर एक अमूल्य रत्न के समान जड़ा हुआ है। जिस समय आर्यावर्त्त के पवित्र मंडल पर मुगल-बादशाह औरंगजेब के राज्य का सिक्का जमा हुआ था, उस समय रूपनगर भी मुगल-सल्तनत के ही अन्दर था। राठौरों ने वंश-मर्य्यादा की छाती पर मूँग दलकर, अपनी तलवारों को देशाभिमान के खौलते हुए खून से बाहर निकालकर, खुशामद के ठंढे जल में डुबो दिया था। औरंगजेब ने उनकी वीरता पर गीला कम्बल डालकर उनके पैरों में गुलामी की बेड़ी पहनाई थी। जिस समय राठौरों का हृदय कुल-कलंकनी कायरता का अड्डा बना हुआ था, उसी समय रूपनगर के रमणीय राजमहल में रनिवास से अलग एकान्त स्थान में बैठी हुई राजकुमारी रूपवती गीता-पाठ किया करती थी—

"क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ ! नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप !"

राजकुमारी रूपवती, सुन्दरता के साँचे में ढली हुई सोने की सजीव सलोना मूर्त्ति होने के कारण, 'प्रभावती' नाम से प्रसिद्ध थी। बाल-सूर्य की मीठी और ठंढी किरणों की भाँति उसके नख-शिख-सुन्दर शरीर से तेज की स्निग्ध छटा छिटकती रहती थी। वह दूध और कपूर-सी उजली चाँदनी के अमृतरस में पगी हुई कुमुदनी-सी विकसित और भगवद्भक्ति के गाढ़े रङ्ग में रँगी हुई कविता-सी सरल थी। वह अनन्यरूपा राज-कन्या स्वतन्त्रता-देवी की अनन्योपासना की प्रत्यक्ष मूर्त्ति-सी मालूम होती थी। जान पड़ता था, मानों राठौरों की गिरि दशा में भी उनका गौरव बढ़ाने के लिए साक्षात् वीरता देवी ने सौम्य रूप धारण करके अवतार लिया है। जहाँ वह रहती थी, वहाँ किसी दूसरे पुरुष अथवा कुलटा स्त्रियों की छाया तक नहीं जाने पाती थी। राजपूतों की कुलीन कन्याएँ आ-आकर उससे 'गीता' का उपदेश सुना करती थीं। जिस तरह निर्मल चन्द्रमा से अमृत बरसता

है, उसी तरह प्रभावती के चन्द्रानन से उपदेशामृत बरसता था। उस अमृत ने अनेक राजपुत्रियों का हृदय सींचकर उनका नारी-जन्म सार्थक और नारी-जीवन धन्य बना दिया था। जिस समय प्रभावती अपने कोकिल-कंठ से सती-सीमन्तिनी सीता देवी, पति-प्रेम-परायणा शकुन्तला और सती-शृंगारभूता दमयन्ती आदि के अपूर्व पातिव्रत्य को सरस कथा कहने लग जाती थी, उस समय सुशीला राठौर-कन्याओं की बड़ी-बड़ी आखों में आँसू की धारा बह निकलती थी। कभी उनकी छाती भर आती थी, कभी देह की सुध-बुध बिसर जाती थी। प्रभावती की वाणी गंगा की स्वच्छ धारा के समान पवित्र और बच्चों की मधुर हँसी के समान सरल थी। कड़वी वाणी तो सपने में भी उसकी जोभ को छू नहीं गई थी। वह जो कुछ बोलती थी, सबमें सत्यता के साथ-साथ सरसता भरी रहती थी। झूठ बोलने और बेकार बकबाद करने से वह मौन रहना ही अच्छा समझती थी। वह कोमल वचनों से भगवान् का गुण गाकर अपनी प्यारी सखी-सहेलियों को सुनाती रहती थी। प्रस्फुटित कमल-कलिका-सी युवावस्था भी उसके दिल में विवाह की लालसा पैदा नहीं कर सकी थी। चमेली और गुलाब को मात करनेवाली सुकुमारता भी उसे भोग-विलास की ओर नहीं झुका सकी थी। राजसी सुखों के साधनों से घिरी रहने पर भी वह संसार की कुवासनाओं से बिल्कुल अलग रहा करती थी; जैसे जल में रहने पर भी कमलिनी जल से जुदा रहती है।

नित्य प्रातःकाल उठकर वह सबसे पहले भारत की सतीसाध्वी आर्यमहिलाओं के शुभ नाम याद किया करती थी। फिर अंत में, हाथ जोड़कर, मन-ही-मन, परमेश्वर से प्रार्थना करती थी—"हे परमपिता! तूने ऐसे कुल में मेरा जन्म दिया है, जिसकी कन्याएँ प्राण देकर भी अपना पत-पानी बचाती हैं। जिस समय भारत की सती पुत्रियों का पद-पद पर व्रतभंग किया जा रहा है, जिस जमाने में उनके सिर पर सदा सैकड़ों संकट सवार रहते हैं, जिस काल में जबरदस्ती वे विषय-विलासी यवनों की पाशविक वृत्ति की तृप्ति का साधन बना दी जाती हैं; उसी समय में, भगवान्! मुझे सुन्दरता की थाती सौंपकर ऐसे देश में भेजना तुझे उचित नहीं था। अच्छा, तू जो कुछ करता है, वह भलाई ही की नीयत से करता है। कुलाङ्गनाओं की लाज रखनेवाला केवल तू ही नजर आता है। यह तेरी अबोध बालिका, सुन्दर रंग-रूप-गंध से भरा हुआ अपना यह जीवन-कुसुम, तेरे ही चरणों पर भक्तिपूर्वक अर्पित करती है। इस अपने सँवारे हुए फूल के लिए यदि तू ने प्रेमी भ्रमर नहीं बनाया है, तो निर्जन वन में खिलकर आप-ही-आप झर जानेवाले फूल की तरह, मेरे जीवन-कुसुम को भी, अनजान और अछूत ही रहने देकर, झर जाने देना; पर इसे किसी कुटिल कीट के हवाले हर्गिज न सौंपना।"

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव...।"

इतना कहते-कहते उसके जुड़े हुए हाथ शिथिल होकर छूट पड़ते थे और बंद आँखों से मोतियों की तरह आँसू की बूँदें गिरने लगती थीं।

२

रूपनगर का रनिवास अपनी बगल की फुलवारी के सुगंधित फूलों से हरदम गमगमाया रहता था। उसी फुलवारी में खिलनेवाले सुन्दर फूलों की मीठी-मीठी हँसी को अपनी एक-एक मन्द मुस्कान से लज्जित करनेवाली प्रभावती उक्त रनिवास में रहा करती थी। फूलों की क्यारियाँ सींचना और क्षमा की भिक्षा माँगकर पुष्प-वृक्षों से पूजा के फूल उतारना प्रभावती का नित्य-नैमित्तिक नियम था। उन फूलों की सुगंध तो केवल रनिवास ही को आमोदित करती थी; पर उन्हें जीवन-दान देनेवाली प्रभावती के दिव्य रूप और अलौकिक गुणों की सुगंध ने दिल्ली के सिंहासन पर बैठे हुए औरंगजेब तक को पागल बना दिया था। एक स्वर्गीय फूल की भीनी-भीनी महँक ने म्लेच्छराज को इतना मतवाला बना दिया था कि वह रूप-तृष्णा की तीव्र उत्तेजना से अत्यन्त व्याकुल हो उठा।

वह खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, बोलते-बतराते, इसी सोच में रहने लगा कि "किस तरह उस बहिश्ती नूर से अपने दिल व दिमाग को रौशन करूँगा? कैसे उसे अपनी नफ्स-परवरी का सामान बना सकूँगा? वह खुशी की रात कब इस शाही महल को आबाद करेगी? किस वक्त इस हिन्दुस्तान के ताज में जड़े हुए बेश-कीमत लाल उस दिल-रुबा की कदम-बोसी हासिल करेंगे?" उस नारकी शाहंशाह के ओछे और गन्दे दिमाग में यह पाक खयाल कभी सपने में भी नहीं पैदा होता था कि भारत की पुत्रियों का हृदय स्वर्ग से भी सुन्दर, प्रजा-पालक राजाओं के यश से भी उज्ज्वल, सज्जनों की शुद्ध वाणी से भी कोमल, तपस्वी की चिन्ता से भी पवित्र, बच्चों के स्वभाव से भी सरल, कवियों की कल्पना से भी प्रबल और सच्चे भक्त की भावना से भी सरस होता है। वहाँ छल की छाया नहीं, लोभ की लीला नहीं, विलास की वासना नहीं। वहाँ तो बस शान्ति की तूती बोलती है, निष्कलंक प्रेम की वंशी बजती है, नित-नूतन भव्य भावों की सृष्टि और भक्ति-जनित आनन्द की वृष्टि होती है।

३

सन्ध्या हो चली थी। पास ही के पहाड़ी झरनों से दिन-भर खेलकर हवा रूपनगर की ओर लौट रही थी। चिड़ियों की चहचहाहट से झाड़ियाँ सजीव हो

उठी थीं। अरवली की ऊँची-ऊँची चोटियों ने सूरज की लाल-पीली किरणों का मुकुट पहन लिया था। जङ्गल की ओर से गायें भगी चली आती थीं। उनके पीछे-पीछे दो हजार मुगल घुड़सवार उन्हें बेतहाशा खदेड़े चले आते थे। डरी हुई गायों के हुँकाड़ने और जंगी जोश से भरे हुए घोड़ों के हिनहिनाने से रूपनगर गूँज उठा! औरंगजेब ने रूपनगर के सामान्त-राज, प्रभावती के पिता के पास, एक पत्र इन्हीं घुड़सवारों के हाथ भेजा था। अपने असीम गौरव से मोहित होने के कारण, घोर अहंकार में चूर होकर, उसने ललकारकर पत्र लिखा था। सामन्त-राज उस मदान्ध बादशाह का पत्र पढ़ते ही काँप उठे! रोंगटे क्या, सिर के बाल भी खड़े हो गये! सिर से पैर तक एक खौफनाक बिजली दौड़ गई! मालूम हुआ कि कलेजे में किसी ने लाल (तप्त) लोहे की मोटी छड़ घुसेड़ दी। उनकी भयजनित चिन्ता ने उनका वर्त्तमान घोर अन्धकारमय और भविष्य-भयंकर ज्वालामय बना दिया! उन्हें इतना भी निश्चय करना पहाड़ हो गया कि अब क्या करना चाहिए। यह समाचार प्रभावती के कानों तक पहुँचा। पिता के पास जाते ही, उन्हें मौन देखकर, वह अथाह समुद्र में पड़ गई। हा! एक तो सामने उमड़ी हुई भादो की अपार नदी, दूसरे उसमें भारी बोझ से लदी हुई बिना मल्लाह की झाँझरी नैया, तीसरे तूफानी तरङ्गों का तांडव नृत्य! बस, केवल द्रुपददुलारी की लाज रखनेवाले का भरोसा!

४

सामन्त-राज की चिन्ता, ग्लानि, अशान्ति, व्यग्रता, निराशा, घबराहट और शोकाकुल दशा देखकर प्रभावती अचेत हो गई। उसका उद्वेग उभड़ उठा। धैर्य की चट्टान, विपत्ति की अगाध लहरों में, डूब गई। आशा की लदी-लदाई नैया चट्टान से टकराकर मँझधार ही में चकनाचूर हो गई। किसी-किसी तरह सतीत्व-शक्ति के सेतु पर चढ़कर वह डूबते-डूबते बची। अपनी असहायावस्था देखकर उसे बड़ा क्षोभ हुआ। उसने सोचा—'अब शायद मेरा कोई सच्चा बंधु नहीं है। पिताजी एक साधारण सरदार ही ठहरे; मारवाड़-नरेश क्रूरकर्मा औरंगजेब के चापलूस ही हैं। और-और राजपूत-वीर चापलूसी की पगड़ियाँ पहने हुए, दिल्ली-दरबार में बैठे बैठे, केवल मूँछें ऐंठनेवाले हैं! अब ऐसा बचा ही कौन है, जो ऐसे गाढ़े समय में एक अबला की प्रतिष्ठा बचाने के लिए लोहा लेगा। कोई ऐसा धुरन्धर राजपूत-वीर आँखों-तले नहीं पड़ता जो एक राजपूत-कन्या की सतीत्व-रक्षा के लिए, बादशाह के विरुद्ध, अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाले। अब तो चाहे जो हो, विष खाऊँगी,

कलेजे में कटारी भोंकूँगी, आग में जल मरूँगी, गल-फाँसी डालूँगी ; पर जीते-जी इस शरीर पर पापी म्लेच्छ-राज की अपवित्र दृष्टि भी न पड़ने दूँगी। भगवान कृष्ण जिस प्रकार शिशुपाल के हाथ से रुक्मिणी की रक्षा कर चुके हैं, उसी प्रकार उन्हें मुझको भी बचाना ही पड़ेगा। जगज्जननी सीते! तूने जिस शक्ति के बल से, अगणित राक्षसों के बीच में रहकर भी, अपना सतीत्व-व्रत-पालन किया था; आज इस अपनी पुत्री को उसी शक्ति का दान देकर कृतार्थ कर। नहीं तो, तेरे आँसुओं से सींचा हुआ प्यारा सतीत्व-वृक्ष अब भारत-भूमि से उखड़ा ही चाहता है!" सोचते-सोचते वह रो पड़ी।

५

"चित्तौर-चिंतामणि! मैं राठौर-वंश की एक दीन कन्या हूँ। आप राणा-वंश के प्रतापशाली वीर, छत्रधारी क्षत्रियों के छत्रपति और मातृभूमि मेवाड़ के यशस्वी भक्त हैं। यदि आपके देखते-ही-देखते क्षात्र गौरव का सर्वनाश हो जाय, राजपूत-कन्याओं की लाज लुट जाय और तेजस्वी पूर्वजों के उज्ज्वल यश में धब्बा लग जाय, तो इससे बढ़कर अब अधिक लज्जा का विषय, आप-सरीखे प्रताप-कुलदीपक के लिए, और हो ही क्या सकता है? मैं आपके चरणों की शरण में आई हूँ। मेरी बाँह पकड़कर लाज रखिए। अपनी ओर देखकर मेरी ढिठाई क्षमा कीजिए। नीच कीचक के क्रूर हाथों से वीरपुङ्गव भीम और अभिमानी जयद्रथ के पंजे से दुर्द्धर्ष धनुर्द्धर अर्जुन ने जिस प्रकार अपनी प्यारी द्रौपदी को बचाया था, उसी प्रकार, आप भी, म्लेच्छों के हाथ से, इस कुलवती की लाज बचाइए। हाय! देवताओं का पवित्र यज्ञ-भाग गर्दभ खाया चाहता है! मैं आपके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा सुन चुकी हूँ। आपके चरणों की चेरी बनने का हौसला है, हिम्मत नहीं। आलमगीरी अन्धेर ने आज आपके आगे आने का अवसर दिया है। नहीं तो; खून के चूसे जाने पर भी अपना शीलसङ्कोच न छोड़नेवाली राजपूत-कन्या, इस तरह अधीर और निराधार होकर, अपने सतीत्व-रत्न का पुण्यवान् ग्राहक नहीं ढूँढ़ती फिरती! जौहरी हीरे की तलाश में रहता है; पर हीरा भी अपने सच्चे पारखी की खोज करते-करते उसके पास तक पहुँच ही जाता है। इस समय यदि मैं आपसे लज्जा करती, तो मेरी लज्जा लुट जाती। लज्जा और भय छोड़कर, हिन्दुस्तान की सम्राज्ञी बनने से मुँह मोड़कर, दुनिया की मोह-माया का जाल तोड़कर, राजपूतों की कायरता का भंडा फोड़कर, भक्ति-पूर्वक दोनों हाथ जोड़कर, आज आपके सामने धर्म-रक्षा की भिक्षा माँगने आई हूँ। आपके चरणों पर तन, मन, प्राण, हृदय, सर्वस्व की भेंट चढ़ाती हूँ। चाहे आप इस दासी को अपनावें या पैरों से

ठुकरावें। मैं तो आप ही की सेवा में जीवन बिताने का संकल्प कर चुकी। इस हृदय में अब आपके सिवा किसी और के लिए जगह नहीं रही। यदि आप शीघ्र ही इस अपने चरण-कमल की भ्रमरी की सुध न लेंगे, तो औरङ्गजेबी अत्याचार से अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए, यह आपकी किङ्करी अपने प्राणों को अग्निदेव को सौंप देगी। मानस-सरोवर में मोती चुगनेवाली, दूध और जल को बिलग-बिलग करनेवाली तथा नये खिले हुए कमलों से खेलती रहनेवाली राजहंसिनी क्या कभी हिंसासक्त बगले की सङ्गिनी हो सकती है? हाय! आपके जीते-जी एक राजपूत-कन्या को, दूध-दही और मेवा-मिसरी आदि अमृतोपम पवित्र भोजन छोड़कर अब क्या शराब-कबाब खाने के लिए विवश होना पड़ेगा? एकाग्रचित्त से पति-सेवा करने का एकान्त सुख तिलांजलि देकर एक राजपूत-कन्या कैसे विषय-विलासिनी बनेगी! केसर, कस्तूरी, कपूर और चन्दन की सात्विक सुगन्ध छोड़कर, मन में विकार पैदा करनेवाले इत्रों और फुलेलों को, एक हिन्दू-महिला कैसे छू सकेगी? मृदुल-मधुर हरित तृण की अभिलाषिणी मृगी क्या कभी अखाद्य मांसों की ज्योनार से जी सकती है? चातकी तो स्वाती की एक ही बूँद से तृप्त होती है, सामने उमड़े हुए क्षार रत्नाकर की ओर कभी फूटी नजर से भी नहीं देखती। वसन्त-विलासिनी कोयल के लिए यदि आम की एक हरी-भरी डाली ही भर आबाद रहे, तो वह कल्पद्रुम का स्वप्न भी नहीं देखती। अजगरों का घमंड चूर करनेवाले मेघ-मत्त मयूरों के साथ नाचनेवाली मयूरी क्या श्मशान के गर्हणीय और गन्दे गीध से चोंच मिला सकती है? जिस रावण के समान प्रतापी राजा आजतक ब्रह्मा से रचते नहीं बना, वह रावण भी अपने वैभवविलास को चमक-दमक दिखाकर सती सीता की आँखों में चकाचौंध नहीं पैदा कर सका। आप-जैसे धर्म-मर्मज्ञ से कहाँ तक क्या-क्या कहूँ? दिल्ली से 'डोले का फरमान' पाते ही आकस्मिक संकट से घबराकर मेरे क्रोधोन्मत्त पिताजी अपना समयानुकूल कर्त्तव्य नहीं निश्चित कर सकते। उनका शरीर अपमान की धधकती हुई आग में जल चुका है। अब उनके प्राण भी मुगलों की तलवारों की चिनगारियों में जलेंगे। हाय! अपनी जान देकर भी वे मेरी जान नहीं बचा सकते। इसलिए अशरण-शरण अग्निदेव के अंक में विलीन होने को उद्यत यह दासी अपना वसन्त-सुन्दर शरीर और अमृत-मधुर हृदय आपके चरणों पर निछावर करती है। त्राहि माम्!"

६

उदयपुर के रोबदार दरबार में राजस्थान-केसरी महाराणा राजसिंह अपने जागीरदार चूड़ावत, झाला, राठौर आदि शूरसामन्तों के साथ बैठे हुए थे। हर ओर

शान्ति बिराजती थी। सभासद् ऐसे शान्त भाव से बैठे थे कि उनके अङ्ग-प्रत्यंग से शौर्य-तेज बरसता था। गायकगण गुण-गाथा गा रहे थे, दरबार के पार्श्ववर्त्ती मंडप में वेद-पाठी ब्राह्मण हवन कर रहे थे। दिव्य हव्य की सुगन्ध हर तरफ फैल रही थी। सवा मन के सुनहरे शमादान पर, जलती हुई सुगन्धित धूप-बत्तियों के बीच में, लंबी कपूरी बत्ती जल रही थी। सब सभासदों के आगे उनकी तलवारें एक कतार में पड़ी थीं।

सबके देखते ही, मंगल-वाणी से शुभाशीर्वाद देता हुआ, एक तेजस्वी वृद्ध ब्राह्मण राणाजी के सामने आया। सुमनांजलि के साथ, प्रभावती का वही प्रेममय प्रर्थना-पत्र, ब्राह्मण-देवता ने, राणाजी की—भक्ति-भाव-पूर्वक प्रणाम के हेतु जोड़ी गई—अंजली में, उनका कल्याण मनाते हुए, छोड़ दिया। राणाजी ने फूलों को माथे चढ़ाया। ब्राह्मण-देवता एक उच्च आसन पर बैठे। पत्र को, सबके सामने ही, खोलकर राणाजी स्वयं पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते आँखें उमड़ आईं। दाँतों ने ओठ चाँप लिया। भुजाएँ फड़कने लगीं। भौं का कमान जुट गया। अँगुलियों ने काँपते-काँपते वह पत्र नीचे रख दिया। चूड़ावत सरदार ने राणाजी से, एकाएक चिन्तित और उदास हो जाने का कारण पूछा। राणाजी ने शिथिल हाथों से यह पत्र चूड़ावत-सरदार की ओर धीरे से बढ़ा दिया। चूड़ावतजी आखें फाड़-फाड़कर पत्र पढ़ने लगे। प्रभावती की दयनीय दशा का चित्र उनकी आँखों में फिरने लगा। राजपूती जोश का खून आँखों में उबल आया। उनका आश्चर्य, क्रोध की मदिरा पीकर, आपे से बाहर हो गया। उन्होंने ओजभरे शब्दों में कहा—"धर्मावतार! आप इस तरह उदास मत हों। यह राठौर-कन्या जब आपको मन से बर चुकी तब इसकी रक्षा से विमुख होकर क्या आप क्षात्र धर्म को रसातल भेजेंगे? जिस मेवाड़ की मान-मर्यादा बचाने के लिए हमारी माताओं ने, अपनी गोद के लाखों लाल लुटा दिये हैं, उसी मेवाड़ की गौरवान्वित गद्दी को सनाथ करनेवाला, राणा हम्मीर और राणा साँगा तथा हिन्दू-कुल-सूर्य महाराणा प्रताप का सुयोग्य वंशधर, क्या राज्य-नाश के भय से, जंगलों में भटकते फिरने की शङ्का से, शरण में आई हुई एक अबला को आत्मघात करने का अवसर देगा? यदि ऐसा होगा तो उसी दिन वीर-रक्ताभिषिक्त मेवाड़-भूमि रसातल में पैठ जायगी, सूर्य्य चक्कर खाकर डूब जायगा, भूमंडल भी—तूफान से घिरे हुए जहाज की तरह—डगमगा उठेगा, तारे एक दूसरे से टकराकर चूर्ण हो जायँगे, समुद्र अपनी मर्यादा छोड़कर भूलोक को डुबो देगा, चाँद से चिनगारियाँ बरसने लगेंगी और अरवली का हृदय भीषण ज्वालामुखी के प्रस्फोट से एकाएक फट

पड़ेगा। अपनी मातृभूमि की लाज रखने के लिए खून की नदियाँ बहानेवाले और कंदराओं में रहकर कन्द-मूल के सहारे स्वतन्त्रता के दिन बितानेवाले माननीय महाराणा प्रताप के अन्न का पवित्र रक्त आज भी मेरी रगों में बह रहा है, अब भी मेरी नस-नस में वही वीरत्व की बिजली दौड़ रही है; केवल आपके जीभ हिलाने की देर है। मैं चाहूँ तो अभी उस कन्या को आदरपूर्वक उदयपुर लिया आऊँ और शत्रुओं की कटी लोथों से लड़ाई का मैदान पाटकर प्रलय मचा दूँ। कम-से-कम इस प्रतापी गद्दी की लाज रखने के लिए तो आपको अवश्य ही युद्ध की घोषणा करनी पड़ेगी। अब परमाराध्य भगवती रणचंडी शत्रुओं का रक्त-पान किये बिना न मानेगी।"

चूड़ावत-सरदार की वाणी सुनते ही इधर सभी शूर-सामंत रण-रोष से मत्त हो उठे और उधर दिल्ली में राजसिंहासन पर बैठे हुए मुगल बादशाह के सिर से ताज खिसककर गिरते-गिरते बच गया!

७

इधर राणाजी अपने शरीर-रक्षकों, गिने-चुने नामी पहलवानों, रणधीर वीरों और अनेक मुठ-भेड़ लड़ाइयों में शत्रुओं के पैर उखाड़नेवाले लड़ाके घुड़सवारों को साथ लेकर शुभ मुहूर्त्त में रूपनगर की ओर चले। उधर चूड़ावतजी दल-बल और बाजे-गाजे के साथ, दिल्ली से रूपनगर की ओर उमड़ी आती हुई, मुगल-सेना की राह में काँटे बिछाने चले।[१]

रूपनगर से आगे बढ़ते ही, आगरे की ओर से आते हुए बादशाही लशकर की आहट पाकर, चूड़ावतजी ने राजपूतों की पचास हजार सेना को खूब सम्हलकर डट जाने के लिए उत्तेजित किया। सभी राजपूत-वीर मूँछों पर ताव दे, कमर कसकर तैयार हो गये। वे युद्ध के लिए सन्नद्ध हो ही रहे थे कि इतने ही में मुगलों की सेना आ धमकी। हाथी पर बैठे-ही-बैठे बादशाह ने शत्रुओं से राह माँगी। किन्तु मेवाड़ की सेना में भला कौन ऐसा कायर कपूत राजपूत था, जो अपनी कुल-लज्जा डुबो देने के लिए लहराते हुए समुद्र को आगे बढ़ने देता? लड़ाई छिड़ गई। मेवाड़ी और मुगलानी सेना भिड़ गई। एक सती सुन्दरी का सत्य-व्रत अटल रखने के लिए राजपूतों ने अपना पवित्र रक्त मुगलों के खून में मिल जाने दिया! तीन दिनों तक घमसान लड़ाई होती रही। चौथे दिन, मस्ताना

---

१ इसी समय के दृश्य के आधार पर 'मुंडमाल' की रचना हुई है!

घोड़ा छरकाते-फँदाते और मुगल-रिसालों की भीड़ चीरते हुए, चूड़ावतजी, बादशाह के हाथी पर बड़े वेग से टूट पड़े। उन्होंने बड़े जोश में आकर अपना भाला बादशाह की छाती में घुसेड़ना चाहा। घोड़ा भी आवेश-पूरित होकर, मदोन्मत्त मृगेन्द्र की भाँति, हाथी के मस्तक तक चढ़ गया। अपनी जान पर बेढब आफत आई देखकर, अन्यायी आलमगीर, दोनों भुजाएँ पसारकर बड़े जोर से चीख उठा। हाथी भी चिंघाड़ मारकर भाग चला। मालूम हुआ, मानों बहुत दिनों की जमी हुई हिन्दू प्रजा की आह, बादशाह का फौलादी फेफड़ा फाड़कर, आसमान में गायब हो गई!

८

लड़ने-भिड़ने में बादशाह बीच ही में फँस गये। मुगल-सेना जी भरकर लड़ी; मगर मनोरथ छूँछे पड़ गये। 'मुंडमाल' का तावीज बाँधे हुए चूड़ावतजी भी, अपनी स्वर्गीय धर्म-पत्नी से मिलने के लिए, चले गये! परन्तु शत्रुओं के दाँत खट्टे करके अपना वचन पूरा कर गये। बादशाह आलमगीर को छठी का दूध याद पड़ा और प्रभावती भूल गई! प्रभावती परिणय की अभिलाषा आत्म-ग्लानि में परिणत हो गई! काम-लिप्सा को क्षोभ ने धर दबाया! मुगल-सेना दिल्ली की ओर लौट चली। बादशाह वैसे ही श्रीहत हो गया जैसे अङ्गद का पैर न उठा सकने के कारण रावण लज्जित हुआ था। पाँच हजार राजपूत बड़े गर्व से रूपनगर की ओर चल पड़े। चलते समय उनलोगों ने चूड़ावत-सरदार की लोथ को अनेक बार आलिङ्गित किया। इतनी बड़ी विजय प्राप्त करके अन्ततोगत्वा उनलोगों ने उदयपुर जाने का ही निश्चय किया। उदयपुर की ओर आते समय उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे। उनके शरीर और शस्त्र शत्रु-रक्त-सिक्त थे। उसी भैरव भेष में वे लोग उदयपुर पहुँचे। विजयी वीरों के शुभागमन का संवाद सुनकर उदयपुर-निवासियों ने उनके स्वागत का विराट आयोजन किया।

जय-घोष करते हुए राजपूत वीरों ने जब नगर में प्रवेश किया, तब यह देखकर उनका आनन्द असीम हो उठा कि ऊँची अटारियों पर, हाथों मे पुष्पमालाएँ लिए, सोल्लास मङ्गल-गान गाती हुई राजपूत-रमणियाँ खड़ी हैं। राजपथ पर अनवरत पुष्पवृष्टि के कारण फूलों के पाँवड़े बिछ गये हैं। चौक के सामनेवाले राजप्रासाद की एक पुष्प-पल्लवालंकृत खिड़की पर, मोती का झालरदार पर्दा हटा-कर, कंचन के थाल में सजी हुई आरती कर-कमलयुगल में लिए, सौभाग्यवती

रूपवती प्रभावती खड़ी है। गान-वाद्य-निनाद और जयजयकार की गगन-भेदनी ध्वनि आनन्द के वायुमंडल में व्याप्त हो रही है। असंख्य आँखों ने देखा कि उसी बन्दनवार-शोभित खिड़की पर खड़े-खड़े महाराणा राजसिंह मुस्कुरा रहे हैं और उनके वाम भाग में सुशोभित है वही माङ्गल्यमयी—

'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा'!

विष-पान

O, woman! Lovely woman! Nature made Thee
To temper man! we had been brutes without you;
Angels are painted false, to look like you
Ther's in you all that we believe of heaven.
Amazing brightness, purity and truth;
Eternal joy, and everlasting love.

—*Otway*.

× × ×

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।

—रघुवंश

१

"रे कुलाङ्गार ! नर-पिशाच ! तेरा मुँह देखने से भी महापाप होगा। क्या तू ही इस शीशोदिया-वंश में कलंक-टीका लगाने के लिए अपनी माता के यौवन-वन का कुठार होने को था? निर्लज्ज ! चुल्लू-भर पानी में डूब मर। जी तो चाहता है कि तुझे ले जाकर अरवली की ऊँची चोटी पर से नीचे ढकेल दूँ। तेरे अधम शरीर में राजपूत का एक बूँद भी रक्त नहीं है। न जाने यह मेवाड़ की महिमामयी भूमि तेरी अपवित्र देह का असह्य भार कैसे वहन कर रही है! मालूम होता है कि अब यह भी तेरे ही साथ-साथ रसातल के अन्धकारमय गर्भ में धँसना चाहती है। रे नृशंस ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो अभी यहाँ से मुँह काला कर। नहीं तो सत्य का पक्ष पालन करनेवाली यह मेरी तलवार तेरे-जैसे पुरुषाधम के कलेजे के नापाक खून से शीघ्र ही अपने क्रोध की भयंकर ज्वाला बुझायेगी। क्षत्रियों की मान-मर्य्यादा धूलि में मिलाकर, जातीयता की गर्दन पर भोंथी छुरी चलाकर, सती सुन्दरी वीर-पत्नियों के चरणतल से पवित्र रनिवास को निस्तेज बनाकर, किस लाभ की आशा से, इस अपयश की कालिमा से पुते हुए तुच्छ शरीर में, तू अपने मलिन प्राणों को पोसे हुए है? क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए तीव्र उत्तेजना देनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण का यह गीता-वाक्य

"सम्भावितस्य चाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते"

जिस क्षत्रिय के हृदय-पट पर अंकित नहीं, उसे राजपूत कहलाने का कोई अधिकार नहीं। तेरे कलेजे में अगर शत्रु की तलवार घुसेड़ी गई होती, तो आज इतने राजपूतों के नेत्रों से खून न टपकता। अपने विख्यात वंश की बहू-बेटियों पर विपत्ति का वज्र घहराते देखकर, यदि तू रनिवास को श्मशान के रूप में परिणत करके वीरतापूर्वक लड़ाई के मैदान में उतर गया होता और समर-यज्ञ में अपने शरीर-शाकल्य को होम दिये होता, तो आज सभी राजपूत-वीरों के हृदय में तेरे लिए बहुत ही ऊँचा स्थान होता। तू भी वीर-गति पाकर अपने पितरों का मुख उज्ज्वल कर दिये होता। जब तुझे शत्रुओं के हाथ से अपने प्राण और प्रतिष्ठा बचाने की इच्छा थी, तब तूने उस वीर-कन्या के शोणित से अपनी इस तलवार को क्यों नहीं पवित्र कर लिया? जिस विपत्ति की सम्भावना की आशंका मात्र से तूने इस जघन्य पाप

का भार अपने सिर पर उठाया है, तुझे धैर्य्य और साहस के साथ उस भावी विपत्ति की प्रतीक्षा करनी चाहिए थी और उसके उपस्थित होने पर वीरतापूर्वक, आत्मोत्सर्ग द्वारा, उसका सामना करना उचित था। धिक्कार है कि भीरुता-राक्षसी के पंजे में फँसकर तू कर्त्तव्य-पथ से विचलित हुआ! अब तो कोटि कंठों से धिक्कार की ध्वनि सुनते हुए तुझे धरती में धँस जाना चाहिए। किन्तु, जब कर्त्तव्य-पालन से विमुख होनेवाला कृतघ्न मेवाड़-भूमि में पैर तक रखने का दावा नहीं कर सकता, तब भला यह वीरता की रंगस्थली और क्षत्रियत्व की धात्री मेवाड़-भूमि तेरे-जैसे पतितात्मा को अंक में धारण करने के लिए कैसे उत्कंठित होगी? हाय! बाप्पा रावल के वंश का सर्वनाश अब निकट है! उस राजकुमारी के आदर्श आत्मत्याग से क्षत्राणियों का मस्तक तो अवश्य ही गर्वोन्नत हुआ है; पर राजपूत-वीरों के आत्यभिमान पर कलंक की छाप लग जाती है। उस कलंक-कालिमा को समस्त भारत की पवित्र नदियों की जलराशि भी नहीं धो सकती।"

२

शक्तावत-सरदार संग्रामसिंह की उपर्युक्त ओजस्विनी वाणी सुनकर विश्वास-घाती अजितसिंह भय, शोक, लज्जा, पश्चाताप और पीड़ा से व्याकुल हो उठा। वह सिर नीचा करके भीतर-ही-भीतर मन मसोसकर रह गया। वह रह-रहकर, क्रोधान्ध विषधर की तरह, आह की फुफकार छोड़ने लगा। कभी तो वह दाँत पीसता, कभी ओठ चबाता, कभी हाथ मलता और कभी तमतमाकर तलवार पर हाथ ले जाता। उसके क्षुब्ध हृदय के अन्दर मनोविकारों में युद्ध ठन गया। उस युद्ध में क्रोध महाराज विजयी हुए! क्रोध-विजित अजितसिंह अधीर होकर कह उठा—"हा दैव! यदि इस समय वह पाखंडी पठान अमीर खाँ कहीं मिल जाता तो मैं उसकी बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को खिला देता।"

अजितसिंह की अमर्ष-पूर्ण वाणी सुनकर एक राजपूत-वीर-केसरी ने गरज कर कहा—"रे चांडाल! वेणु-वंश में तू घमोय कैसे उत्पन्न हुआ? उज्ज्वल कुल में धब्बा लगाकर सचाई का यह ढकोसला? यह ढोंग कहीं और जाकर दिखाना। यहाँ बहुत सफाई मत दिखला। जिस अमीर खाँ का अभी तू खून चूस रहा था, उस दिन उसीने तुझे अपने सामने से तिरस्कारपूर्वक हटा दिया था। उस दिन उसके दुरदुराने पर यह तुम्हारी राजपूतानी शान की झूठी झलक कहाँ थी? यह आज की हेंकड़ी उस दिन क्या भूल गई थी? एक पठान की घृणापूर्ण फटकार सुनकर—वीरों के बीच में डींग मारने का साहस करने के लिए—तेरी ही तरह

क्या कोई राजपूत निर्लज्जतापूर्वक जी सकता है ? सिंहनी के गर्भ से तू गीदड़ कैसे पैदा हुआ है ? यदि इस निन्दित शरीर से भी तुझे प्रेम है, तो अभी यहाँ से दूर हट जा।"

३

राणा भीमसिंह की परमसुन्दरी कन्या कृष्णाकुमारी के कविकल्पनातीत सौन्दर्य्य की ख्याति भारत-भर में फैली हुई थी। किशोरावस्था का समस्त सौन्दर्य्य उस ललना-ललाम के सुघटित अंग-प्रत्यंग पर मुग्ध होकर टिका हुआ था। वह अभिनव लावण्य-लतिका अपनी अशेष सुकुमारता और स्वर्गीय सौरभ के कारण 'राजस्थान-कमलिनी' नाम से विख्यात थी। वह सचमुच मेवाड़ की मूर्त्तिमती ममता थी। जातीयता की उस ज्योति में वासन्तक सुषमा-सी सुष्ठुता, ऊषा की शीतलता-सी मधुरिमा, शारदीय संध्या की निस्तब्धता-सी शान्ति और राकारजनी की रमणीयता-सी मनोज्ञता थी। वह सत्य-सी दृढ़, सन्तोष-सी पवित्र, मणि-प्रभा-सी तेजोमयी, समुद्र-सी गम्भीर, हिमालय-सी विशाल-हृदया और वसुन्धरा-सी क्षमाशीला थी। उस वनिता-वल्लरी के सौन्दर्य्य-वितान की सघन-सुशीतल छाया में विश्राम करने की अभिलाषा से, जयपुर-नरेश जगतसिंह ने, अपनी शक्ति का परिचय देने के लिए, उदयपुर में बहुत बड़ी वीर-वाहिनी भेजी थी। इधर नरवर के नरेश मान-सिंह ने भी, जगतसिंह का मान-मर्दन करने के लिए, अपने पराक्रम का पूर्ण प्रभाव दिखलाने की इच्छा से, उदयपुर में बड़ी भारी सेना पठाई थी। उदयपुर के राज-सदन-रूपी उदयाचल पर प्रकाशित होकर देश-भर में अमृत बरसानेवाले उस पूर्णचन्द्र के चकोर मानसिंह भी थे। 'मान' और 'जगत्' की प्रतिद्वन्द्विता ने ही उस सुर-सुन्दरी को बाध्य किया कि वह इस पाप-परिताप-पूर्ण संसार को छोड़कर सती-लोक के लिए प्रस्थान करे! 'मान' और 'जगत' के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष की प्रबल आँधी ने ही उस 'राजस्थान की कुसुमित कीर्त्तिलता' को उखाड़ डाला।

४

मेवाड़ के इतिहास में 'पुरुवत्सर' नामक स्थान का नाम उतनी ही प्रतिष्ठा के साथ स्मरण किया जाता है, जितनी महत्ता के साथ मुगलों के इतिहास में 'पानीपत' का नाम और बंगाल के इतिहास में 'पलासी' का। एक नारी-रत्न के अप्रतिम रूपलावण्य पर मोहित होनेवाले 'मान' और 'जगत' की सेनाओं का तुमुल संग्राम 'पुरुवत्सर' में ही हुआ था। उस समय पुरुवत्सर-क्षेत्र कुसुमित किंशुक-कानन की

शोभा को प्राप्त हुआ था। दुर्दान्त राजपूत-योद्धाओं के रक्त से सिक्त होकर पुरुवत्सर-क्षेत्र अतिशय भीष्म हो उठा था। इसी रणभूमि में, मानी महीप मानसिंह, अपनी सेना में आपस की फूट फैलते देखकर, अपनी ही तलवार से अपनी गर्दन उतारने को उद्यत हुए थे। किन्तु मुट्ठी-भर सामन्त-सरदारों ने ही उनके जैसे वीर-वरिष्ठ को आत्महत्या करने से रोककर आक्रमणकारी शत्रुओं के दाँत खट्टे किये थे। जगतसिंह जान बचाने के लिए लड़ाई छोड़कर भाग खड़ा हुआ। उसकी अगणित सेना तितर-बितर और तहस-नहस हो गई। देव-बाला कृष्णा को प्राप्त करने की आशा-कली उज्ज्वल प्रभात से पहले ही, टूट गई!

मानसिंह के भाग्यचक्र के एकाएक परिवर्त्तन से उनके शत्रुओं पर आतंक छा गया। किन्तु 'जगत' और 'मान' के बीच में धधकती हुई क्रोध एवं विरोध की अग्नि सहज में ही शान्त न हुई। उसे बुझाने के लिए कृष्णाकुमारी के पवित्र रुधिर की ही आवश्यकता पड़ी!

५

अजितसिंह बड़े शान्त और सरल स्वभाव का था। उसकी शिष्टता और शालीनता के चारों ओर प्रशंसा होती थी। किन्तु अमीर खाँ की कुसंगति का ही ऐसा भीषम परिणाम हुआ कि उसे संग्रामसिंह के कटु वाक्यों और एक राजपूत-सभासद् के कुवाच्यों का शिकार बनना पड़ा।

उस दिन दुराकांक्षी अमीर खाँ ने भी स्पष्ट शब्दों में अजितसिंह के सामने कह दिया था कि 'जबतक मेरे दिली दोस्त मानसिंह के साथ कृष्णा की शादी नहीं होगी, तबतक तमाम मुल्क में खलबली मचाने की कोशिश करता रहूँगा। मुमकिन है कि उदयपुर का नामोनिशान तक मिट जाय। अगर राणा मेरी राय के मुताबिक काम न करेंगे, तो उनके ऊपर आफत का पहाड़ टूट पड़ेगा।'

सीधा-सादा बेचारा अजितसिंह एक गीदड़ की धमकी सुनकर काँप उठा था। उसके प्राण संज्ञा-हत हो गये! उदयपुर के भावी सर्वनाश की चिन्ता-चिता पर उसकी दीन बुद्धि जलने लगी। अपनी बहू-बेटियों की कुल-लज्जा पर भावी संकट आता देखकर वह मूर्च्छित हो गया!

राणा भीमसिंह ने अजित के स्याह चेहरे को देखकर पूछा—"तुम्हारे शरीर में आज इतनी उद्विग्नता क्यों है? तुम्हारा मुख कान्ति-हीन और शरीर तेजोहीन हो गया है। बात क्या है? डरे हुए-से क्यों मालूम होते हो? शोकमुद्रा बनाये क्यों बैठे हो? चिन्ता और पश्चात्ताप का कुछ कारण भी तो मालूम हो?"

अजितसिंह ने कातर स्वर में कहा—"शीघ्र ही उदयपुर पर वज्रपात होनेवाला है। अमीर खाँ और मानसिंह उसपर भयंकरता से आक्रमण करनेवाले हैं। बड़ी भारी ग्लानि का विषय तो यह है कि उपद्रवी अत्याचारियों की इच्छा चत्राणियों के सतीत्व पर आघात पहुँचाने की है। यही सोच-सोचकर मैं व्याकुल हो रहा हूं। अमीर खाँ ने जोशीले शब्दों में अहंकारपूर्वक कह रक्खा है कि 'कृष्णा की शादी मानसिंह से करने के लिए अगर राणा तैयार न होंगे, तो उदयपुर को उसी दिन उजड़ा हुआ देखेंगे।"

भीमसिंह—"क्या उदयपुर का सर्वनाश इतना निकट है? यह सर्वस्व-संहार की सम्भावना कैसी? मानसिंह ने भी, आज से कुछ दिन पहले यह संवाद भेजा था कि 'मेरी आशा और अभिलाषा भंग करके यदि 'जगत' के हाथ में मेवाड़ का अनमोल रत्न फेंका जायगा, तो मैं किसी को सुख की नींद न सोने दूँगा।' आज वह संवाद अचानक भयानक आपत्ति की सूचना देकर अतिशय भयंकर हो उठा! इधर अमीर खाँ उदयपुर को उजाड़ने का मनसूबा बाँध रहा है, उधर मानसिंह उदयपुर का विध्वंस करने पर तुला हुआ है! हर तरफ से उदयपुर को श्मशान ही बनाने का उद्योग किया जा रहा है।"

अजितसिंह—"आप तो अभी उदयपुर को कुत्तों, गीधों और गीदड़ों का लीलास्थल होने की केवल आशंका ही कर रहे हैं और वहाँ जयपुर के समान सर्वाङ्गसुन्दर नगर श्मशान का स्वांग धारण कर चुका! यहाँ तक कि जोधपुर भी लूटपाट की चपेट में पड़कर अनेक उत्पातों का मुँह देख चुका। एकमात्र कृष्णा के कारण आज समस्त राजस्थान घोरतर अशान्ति का भंडार बना हुआ है।"

भीमसिंह—"क्या राजस्थान की कीर्त्तिवाटिका की कल्पलता को उखाड़नेवाले मतवाले हाथियों का अहंकार चूर्ण और कुम्भ विदीर्ण करनेवाला कोई मृगराज मेवाड़ में मौजूद नहीं है? क्या अब मेवाड़ में मुगलों का मान-मर्दन करनेवाला कोई राजपूत नहीं रह गया? हाय! शत्रुओं के छक्के छुड़ानेवाले वीर कहाँ लुप्त हो गये? यदि आज दिल्लीश्वरों के दाँत रँगनेवाले हमारे पूर्वजों में से एक भी वीर-केसरी रहा होता तो 'राजस्थानकमलिनी' को उन्मूलित करने के लिए आनेवाले मदान्ध मातङ्ग इधर झाँकने भी नहीं आते। जान पड़ता है कि इस जमाने में अब सती देवियों का पत-पानी रखनेवाला कोई माई का लाल इस अभागे देश की गोद में रह न गया है! अनुमान से मालूम होता है कि राजस्थान की सौभाग्य-लक्ष्मी 'कृष्णा' के रूप में ही अवतीर्ण हुई है। इस युग में स्वतन्त्रता की मणि भारत-जननी की गाँठ से छूटी जा रही है। पंजाब-केसरी रणजीत फिर भी उस

स्वतन्त्रता-मणि को भारत-माता के अंचल के छोर में बाँध रहे हैं। किन्तु हाय! स्वतन्त्रता की रङ्गशाला मेवाड़-भूमि में अब भीमान्धकार का राज्य होगा! कृष्णा का जीवन-प्रदीप असमय हो निर्वाण को प्राप्त होनेवाला है। कृष्णा हमारी कन्या होकर अवतीर्ण नहीं हुई है, बल्कि भारत में क्षत्रियत्व की परीक्षा कराने और नारीधर्म का महत्त्व प्रकट करने के लिए ही विधाता ने उसे भेजा है। जिस दिन कृष्णा की ज्योतिष्मती आत्मा ने हमारे राजमहल को अपने दिव्य प्रकाश-पुञ्ज से आलोकित किया, उसी दिन यदि हम जानते होते कि हमारे वंश के आलबाल में विष-बेली उपज रही है, तो उसी समय उस क्षीण आलोक को अनन्त अन्धकार के गढे में डाल देते। अनिष्ट का अंकुर पनपते ही यदि नष्ट कर दिया गया होता, तो आज ऐसी विषम समस्या उपस्थित न होती। शिशु-हत्या से बचने का फल यह हुआ कि आज नारी-हत्या के समान लोमहर्षण व्यापार करना पड़ता है! किन्तु नारी-हत्या का यह घृणित कर्म हमारे वंश का यशविध्वंस करनेवाला है! ऐसे गर्हणीय कार्य्य का अवलंबन करना हमारे लिए सर्वथा अनुचित है—

"विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् ।"

अजितसिंह—"एक कन्या की बलि चढ़ाने से ही यदि मातृभूमि की रक्षा होती है तो क्या मातृभूमि के चरणों पर उस कन्या-कुसुम को आप न चढ़ायँगे? माता की जान बचाने के लिए पुत्री का बलिदान न करेंगे? मातृभूमि की रक्षा के लिए एक कन्या के यदि प्राण ही जायँगे, तो इसमें चिन्ता का विषय ही क्या है? आप उस कन्या से मातृभूमि रक्षा का यह प्रस्ताव करें। यदि वह सचमुच राजपूत-कन्या होगी, तो मातृभूमि के चरणों में सहर्ष अपने प्राणों को भेंट चढ़ाकर आपका मुख उज्ज्वल और अपना नारी-जन्म सफल करेगी। अमीर खाँ के परामर्श से मैंने यह उपाय सोच निकाला है। सम्प्रति यही एकमात्र ऐसा यत्न है, जिसे काम में लाकर उदयपुर को हमलोग शत्रुओं के जाल से निकाल सकते हैं। जब तक आप कृष्णा की हत्या के लिए, हृदय को वज्र बनाकर, उद्यत न होंगे, तब तक न तो आपके रनिवास की प्रतिष्ठा रहेगी, न राणा-कुल में कोई कुल-दीपक बचेगा और न मेवाड़ में राजपूतों के लिए कोई दो-चार बूँद आँसू बहानेवाला ही बचने पावेगा।"

इतना सुनते ही राणाजी कटे हुए सूखे वृक्ष की तरह जमीन पर गिर पड़े। मालूम हुआ, मानों किसी ने उनके विदीर्ण हृदय में हाथ डालकर उनका कलेजा ही मरोड़कर खींच लिया! उधर वात्सल्य-रस की पवित्र धारा से उनका अन्तः-करण परिप्लावित होने लगा और इधर उदयपुर की भावी शोचनीय अवस्था का चित्र आँखों के सामने झूलने लगा! अगत्या उन्होंने वात्सल्यस्नेह को सुमिष्ट

भावना को तिलाञ्जली देकर कृष्णा को इस यन्त्रणामय संसार से विदा करना ही निश्चित किया। कुलघ्न अजित राणाजी का निश्चय सुनकर अत्यंत प्रमुदित हुआ। उसने अमीर खाँ और मानसिंह को राणाजी के इस निश्चय की सूचना दे दी!

हाय! भीमसिंह यदि बाप्पा-रावल के अयोग्य वंशधर, शीशोदिया-वंश की अयोग्य-सन्तान, मेवाड़ के कलुषित कलंक और कायरता के जीते-जागते उदाहरण माने जायँ, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं।

पाठकप्रवर! यदि कृष्णाकुमारी-सी अविरल सुन्दरी के लिए आठ-आठ आँसू रोने की इच्छा हो, यदि उसकी स्नेहशीला माता के दारुण-करुण विलाप-कलाप से कलेजा कँपाना हो, यदि कल्पद्रुम-कुसुम-माला-मंडिता स्वर्ण-प्रतिमा का अकाल-विसर्जन देखकर दिल दहलाना हो, तो आइये, हमारे साथ राणाजी के अन्तःपुर में चलिए; किन्तु उदयपुर के रनिवास में चलकर एक हृदय-द्रावक दृश्य देखने के लिए पहले हृदय को वज्र से मढ़ लीजिए।

६

"विषस्य विषमौषधम्"

भीमसिंह के पिता की वेश्या का पुत्र जवनदास नंगी तलवार लेकर, उदयपुर के रनिवास को एक अनपेक्षित दृश्य दिखाने के लिए, प्रातःकाल से ही राजमहल के भीतरी भाग में इधर-से-उधर घूम रहा था। इतने ही में वह सुर-सुन्दरी, ईषत्-प्रस्फुटित कमल की भाँति मंद-मंद मुस्कराती हुई आकर उसके सामने नतमस्तक हो खड़ी हो गई। एक तो वह अपने सुगन्ध-सिक्त केश-गुच्छ के भार से नत थी, दूसरे पितातुल्य जवनदास के आगे आकर वह लाज के बोझ से और भी दब गई। उस मुक्तकेशी सुकुमारी का भूलोक-दुर्लभ लावण्य देखते ही जवनदास करुणा से भर गया। जवनदास के हृदय रूपी करुणासमुद्र से कृष्णा के लोचन लाज के जहाज बन गये। उसके हाथ से तलवार छूटकर गिर पड़ी! उसे मालूम हुआ कि भीषण भूकम्प के कारण सारा राजप्रासाद पताल में धँसा जा रहा है।

कृष्णा धीरे से शीश झुकाकर बैठ गई। उसके मुखमंडल पर प्रसन्नता का रंग चढ़ता जाता था। अंग-अंग से प्रफुल्लता चुई पड़ती थी। जवनदास की आँखें दया-द्रवित आसुओं में डूब गईं। उसके पैर उसकी काँपती हुई देह का भार न थाम सके।

उसी समय एक सजल-लोचना सुमुखी दासी हाथ में विष का एक प्याला लेकर आई और कृष्णा के हाथ में उसे देकर बोली--"उदयपुर के कल्याण की

कामना करते हुए इसे पी जाइए।" कृष्णा ने शान्त भाव से प्याला थामकर, धीरता-पूर्वक, विष को पी लिया। उसी समय कृष्णा की सदया माता, वत्सोत्सुका धेनु की तरह, दौड़ती हुई वहाँ आ पहुँची। कालसर्प की तरह उस जवनदास की तलवार को वहाँ पड़ी देखकर, और विष के प्याले को बिल्लौरी फर्श पर लुढ़कता हुआ पाकर वह राणाजी पर आक्रोश की वर्षा करने लगी। वात्सल्य-विभोर माता कृष्णा को गले से लगाकर उसका माथा सूँघकर, रोने लगी।

कृष्णा ने माता को सान्त्वना देते हुए कहा—'जननी! तू वीर-माता और वीर-वधू होकर इस प्रकार क्यों अधीर हो रही है? राजपूत-कन्या होकर मुझे मौत से डरने का क्या काम है? जिस दिन मैंने राजपूत-कुल में नारी-जन्म धारण किया, उसी दिन मेरे भाग्य में विधाता ने यह अंकित कर दिया कि अकाल अथवा अपघात मृत्यु से एक दिन निश्चय ही मरना पड़ेगा।' राजपूतों की दुःख-भागिनी कन्याएँ तो जन्म लेते ही नमक चटाकर मार डाली जाती थीं; किन्तु न जाने मैं किस सुख की आशा से, इतने दिनों तक, लाड़-प्यार के साथ पाली गई थी!"

हा! कृष्णा के कोमल प्राणों ने प्राण-नाशक विष को भी परास्त कर दिया; किन्तु कृष्णा की परम सहिष्णुता ने राणा की निर्दयता को परास्त नहीं किया! दूसरा और बाद को फिर तीसरा प्याला पीकर भी कृष्णा ने दिखला दिया कि—

"राखनहारा साँइयाँ, मारि न सकिहैं कोइ"

किन्तु

"सुधा सराहिय अमरता गरल सराहिय मीच"

से विपरीत परिणाम को देखकर जवनदास के हृदय में हाहाकार मच गया! हाहाकार की प्रलयङ्करी आँधी ने धैर्यद्रुम को उखाड़ डाला! प्रचंड लू की लपटों से झुलसे हुए मरुस्थल-यात्री की तरह बेचारी माता निष्प्राण हो गई! यह पैशाचिक कांड देखकर बाँदियाँ, माथा थामकर, अचेत हो, जहाँ-की-तहाँ, गिर पड़ीं! सारा राजमहल शोक की गरजती हुई लहरों से परिप्लावित हो गया!

हा! हन्त!! अभी तक राणा के हृदय में दया का संचार नहीं हुआ! दया-देवी के मुँह पर लत्ता बाँधकर, और मनुष्यता-देवी की छाती पर पत्थर रखकर, राणा ने चौथा प्याला तैयार कराया! इस चौथे प्याले को हाथ में लेते ही कृष्णा का सौन्दर्य-गरिमा-मय मुखारविन्द विकसित हो गया। इस प्रतारणामय संसार की दानवी लीला देखकर भी उसकी बड़ी-बड़ी आँखें हँसती ही रहीं। स्वार्थ की विकट लीला, संसार का क्षणभंगुर चाकचिक्य और मानव-जीवन की असारता पर तिर-

स्कारपूर्वक हँसते हुए हालाहल का प्याला मुख के पास ले जाकर बोली—"हे परमेश्वर! मैं स्वदेश और स्वजाति की मङ्गलकामना के साथ तुम्हारे इस मायामय लीलागार से सदा के लिए प्रस्थान करती हूँ। कृपा करके 'मुझे माया से मुक्त करने-वालों का' मन्तव्य पूर्ण करना! हे अशरण-शरण! मेरे प्राणपखेरू को अपने पद-पल्लवों की सुखद छाया में विश्राम करने का स्थान दो। यदि तुम्हारे पद-प्रान्त-पर्य्यन्त पहुँचने का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हो सकता, तो दयापूर्वक मुझे ऐसे किसी स्थल में पहुँचने की शक्ति दो, जहाँ मृत्यु का भय नहीं, अन्धकार का आधिपत्य नहीं, पाप का प्राबल्य नहीं, पीडा का प्रभुत्व नहीं और स्वार्थ का साम्राज्य नहीं। हे भक्त-कल्पद्रुम। मैं अब ऐसे ही किसी स्थान में जाना चाहती हूँ, जहाँ दया की नदियाँ बहती हों, सत्य का सूरज चमकता हो, प्रेम की चाँदनी छिटकती हो, क्षमा की ठंढी-ठंढी हवा चलती हो, सन्तोष के फूल खिलते हों, अमृत के फल फलते हों, आनन्द की ऊषा और शान्ति की सन्ध्या होती हो।"

इतना कहते-कहते कृष्णा का कमनीय कलेवर एकाएक तेजःपुञ्जमयी-ज्वाला से प्रज्वलित हो उठा! बुझते हुए दीपक की लौ की-सी सुन्दर मुस्कान से मुखमंडल उद्भासित हो उठा! प्याला का विष, अमृत से भरे हुए कनककुंड में, ढलक गया! राजस्थान की कमलिनी मुर्झा गई! मेवाड़ की कीर्त्ति-कौमुदी अस्त हो गई! उदयपुर की राजलक्ष्मी अन्तर्हित हो गई! सतीत्व की धवल धारा सूख गई। आगे भारत के निर्मल आकाश से एक ज्योतिष्मान् नक्षत्र टूट पड़ा!

—:०:—

तूती-मैना

I deem her some Olympian Goddess—guest,
Who brings my heart, new courage, hope and rest
In her brave eyes dwells balm for my despair,
And then I seem, while fondly gazing there.

—*Poems of Passions.*

× × ×

हर्षित होते थे हार गूँथकर दोनों,
पहनाते थे फिर उन्हें परस्पर दोनों।
पल-पल में फिर वे उन्हें बदल लेते थे,
मिलकर पौधों को कभी सलिल देते थे।

—मैथिलीशरण गुप्त

किसी को मस्त और किसी को पस्त करनेवाला, किसी को चुस्त और किसी को सुस्त करनेवाला, कहीं अमृत और कहीं विष बरसानेवाला, कहीं निरानन्द बरसानेवाला और कहीं रसानन्द सरसानेवाला तथा अखिल ब्रह्माण्ड में नई जान, नई रोशनी, नई चासनी, नई लालसा और नई-नई सत्ता का संचार करनेवाला सरस वसन्त पहुँच चुका था। नवपल्लवपुष्पगुच्छों से हरे-भरे कुंजपुंज में वसन्त- बसीठी मीठी-मीठी बोली बोलती और विरह में विष घोलती थी। मधुर-मधुमयी माधवी-लता पर मँडराते हुए मकरन्द-मत्त मधुकर, उस—चराचर मात्र में नूतन-शक्ति-संचालन करनेवाले—जगदाधार का गुन-गुनकर गुण गाते थे। लोनी लतिकाएँ सूखे-रूखे वृक्षों से भी लिपट रही थीं। वसन्तवैभव ने उस वन को विभूतिशाली बना दिया था।

उसी सघन वन में, नवकिसलय से सुशोभित एक अशोकवृक्ष-तले, एक सजीव सुषमा की सौम्य मूर्त्ति, लहलही लता-सी तन्वी, सरल-तरल दृष्टिवाली, कोई कान्तिमयी कान्ता, खड़ी-खड़ी, मल्लिका-वल्लरी-वितानों के भीतर कबूतरों की क्रीड़ा एवं अलि-अवलि-केलि-लीला देख-देख, चकित हो, चिबुक पर तर्जनी अँगुली रखकर, मन्द-मन्द मुस्कानों की लड़ियाँ गूँथ रही थी। मंजुल-मंजरी-कलित तरु-वर की शाखाओं पर, शान से तान का तीर मारनेवाली काली-कलूटी कोयल, पल्लवागुंठन में मुँह छिपाये बैठी हुई, इस अनूपरूपा सुन्दरी को देख रही थी। शीतल-सुरभित समीर विलुलित-अलकावली-तीर डोल-डालकर रस घोल जाता था। चंचल पवन अंचल पर लोट-लोटकर अपनी विकलता बताता था। धीरे-धीरे लहराती हुई कालिन्दी की लहरों के सदृश चढ़ाव-उतारवाली श्याम-सुचिक्कण-कुंचित कुन्तलराशि, नितम्बारोहण करती हुई, आपाद लटक रही थी। यद्यपि निराभरण शरीर पर केवल एक सामान्य वस्त्र ही शेष था, तथापि वह शैवाल-जाल-जटित सुन्दर सरोजनी-सी सोहती और मन मोहती थी। नैनसुख की धोती ही नयनों को सुख देती थी। रूप-रंग में अप्रतिम होने के कारण, अथवा लाड़-प्यार किंवा संसार से विलग रहने से, न जाने क्यों, उसके 'तूती-मैना' आदि कई जंगली नाम पड़े थे। जैसे जन शून्य वनस्थली में बहुरंगे सुरभित सुमन खिल-खिलकर अछूत और अज्ञात ही रह जाते हैं, उसी तरह वह मंजुभाषिणी सुहासिनी भी उस वन में दिन बिता रही थी।

फूलों को चुन-चुनकर माला गूँथना, कँगना और बाजू-बन्द बनाना, अपने रेशम-से मुलायम बालों में फूलों की कलियाँ गूँथना, हरिणियों की देह पर धीरे-धीरे

हाथ फेरते रहना, कान देकर पक्षियों का गाना सुनना और नदी से कलसी में जल भरकर द्रुम-गुल्म-लतादि को सींचना—ये ही उसके नित्य के कृत्य थे। जब वह गंगा में कलसी भरने जाती, तब मुकुरोज्ज्वल मन्दाकिनी में अपनी परछाईं देखकर, अपनी सुन्दरता पर आप-ही-आप मुग्ध होकर, मुस्कराने लगती थी!

कभी-कभी शून्य स्थान में स्वच्छन्द विहार करनेवाले पक्षियों और भ्रमरों को किलोलें करते देखकर उसके मन में यौवन मद-जनित एक प्रकार का मनोविकार-सा उदित हो आता था। किन्तु उससे वह प्रभावान्वित नहीं होती थी। एक तो कोमल-कमल-कलिका-सी सुकुमारी, दूसरे त्रिवली-सोपान द्वारा मन्मथमहेन्द्र का क्रमशः आ-रोहण और तीसरे एकान्त वसन्त-वेष्टित वन में वास—सब कामोद्दीपक सामग्रियाँ जहाँ अहर्निश आँखों के सामने खेल-खेलकर रिझा रही थीं, वहाँ भला चपला-चञ्चल तारुण्य से आक्रान्त अबला का निवास कैसा कष्टकर था!!! कभी-कभी रुचिर-रश्मि-राशि राकेश की सुधा-सिक्त किरण-कन्यकाओं को पार्श्ववर्त्तिनी पुष्करिणी के स्फटिकोपम जल-वक्षस्थल पर थिरकते हुए देखकर यों ही मुस्करा उठती थी। जब वह कबूतरों को गोद में लेकर प्रेम-पूर्वक चूमने-चाटने लगती थी, तब वे स्निग्ध-कर-स्पर्श-जन्य अद्भुत सुख का अनुभव करते हुए, गोद में सटकर, पुलक-पल्लवित शरीर को फुलाकर, आनन्दोत्फुल्ल एवं अर्द्धोन्मीलित नयनों से मृगनयना मैना के सुधाधरोपम मुखड़े की ओर देखते हुए, उसकी पतली-पतली और नन्हीं-नन्हीं कोमलारुण अँगुलियों को चोंच में लेकर, धीरे-धीरे पीने लगते थे।

२

वनान्त-प्रदेश-वासी राजा राजीवरञ्जनप्रसादसिंह के प्रिय दत्तक पुत्र शशिशेखर-कुमार, घोड़े पर सवार होकर, मृगया खेलने उसी वन में आये हुए थे। किशोरावस्था थी। निडर और ढीठ थे। घोड़ा मानों हवा से बातें करनेवाला था; इसी से शायद उसका नाम 'पलीता' रखा गया था। उसकी सजावट, तेजी और डील-डौल देखकर देखनेवाले दाँतों अँगुली दबा लेते थे। कुमार साहब उसी अशोक के पास पहुँच गये, जहाँ वह शान्तोज्ज्वल स्मित-विकसित मुखड़ा चतुर्दिक आनन्द की वृष्टि कर रहा था। वह भुवन-मोहन रूप देखते ही कुमार का मन निहाल हो गया! घोड़े से उतरकर मन-ही-मन सोचने लगे कि "नैवं रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले!"—"लोचन-लाहु हमहिं विधि दीन्हा!" कुमार किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो खड़े रह गये! जिन्होंने कभी गजेन्द्र-कुम्भ-विदारक मृगेन्द्र का भी, बिना मारे, पीछा न छोड़ा था, उन्हीं कुमार का कड़ा कलेजा, एक सौकुमार्य्य-पूर्ण

सुन्दरी को देखते ही, मोम हो गया ! जो कुमार अपनी दपट की झपट से छलाँग मारते हुए केसरीकिशोर को तत्क्षण भूमिशायी कर देते थे, वे ही वीर कुमार उस वामाक्षी को देखकर एक शब्द भी न बोल सके—निरे अवाक् रह गये ! किसी तरह धैर्य्य धारण कर कुछ-कुछ लड़खड़ाती हुई जबान से बोले—"हे शुचिस्मिते ! तुम किन-किन अक्षरों को पवित्र करती हो ? किस शुभ देश से तुम्हारा वियोग हुआ है ?"

कुमार के प्रश्नों का उ र न मिला। विशाल लोल लोचनों से दो-चार बूँद आँसू टपक पड़े ! मानों 'मानस-सरोवर' के रुचिर 'राजीव'-से, हंस द्वारा संचित, 'मोती' झरते हों। क्यों ? "सो सब कारण जान बिधाता !"

कुमार को, आँसू टपकते देखकर, बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उससे उसके रोने का कारण पूछने का उन्हें साहस न हुआ। उन्होंने सोचा—"नाम-धाम पूछने का तो यह नतीजा हुआ; दुबारा कुछ पूछने से न जाने क्या-क्या गुल खिलेंगे ! अभी तो थोड़ी देर हुई कि हास्यमुक्ता, माला से मुखमंडल मंडित था। न जाने क्यों अब अश्रु-विन्दु-मुक्तावली गूँथकर स्वपद-तलस्थ मृदुल दूर्वादलों का मंडन करने लगी ! हाँ, जो दूर्वादल उसके शयन करने के लिए मृदु शय्या बनकर सुख देते हैं, उन वन्य शष्पों का मूल-सिञ्चन उसके लिए क्या कोई अनुचित काम है ? जो हमारे सुख के लिए अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर देता है, उसके लिए हम यदि अपने कलेजे का खून भी दे दें, तो कौन-सी बड़ी बात है ?" यही सोचते-सोचते कुमार 'कहि न सकै कछु चितवत ठाढ़े !'

थोड़ी देर सँभलकर एक ओर बड़े जोर से दौड़ पड़े। फिर कुछ ही देर में एक पलास के दोने में वन्य कन्द-मूल-फल आदि लाकर तूती के सामने रख दिये। कमल के पत्ते को चारों ओर से चुनकर, कुश से उसका मुँह बाँधकर, कमंडल बनाया और उसी में पास ही की नदी से थोड़ा जल लाये। परन्तु "प्रेमविवश मुख आव न बानी।" साहस पर भार देकर बोले—"देवी ! तुच्छ आतिथ्य स्वीकार करो।"

सौन्दर्य्य में बड़ी विलक्षण विद्युत्-शक्ति है ! जिसके सामने दासगण सदैव हाथ बाँधे खड़े-खड़े मुँह जोहते रहते हैं, जो प्रचुर प्रजा-मंडली का भावी शास्ता है, उस समर्थशाली नृपनंदन को क्षणमात्र में सौंदर्य्य ने कैङ्कर्य्य सिखा दिया।

ठीक है, यदि सौन्दर्य्य में ऐसी अद्भुत आकर्षण-शक्ति न होती, तो मत्स्योदरी का नाम योजन-गँधा कैसे होता ? नारद के समान विरागी भजनानन्दी व्याकुलता की पराकाष्ठा तक क्यों पहुँचते ? बेचारे राक्षस अमृत के बदले मदिरा क्यों पी लेते ? उर्वशी भला 'नारायण' के बदले 'पुरुरवा' का नाम लेकर क्यों स्वर्ग-च्युत होती ? सूर्पणखा को अपने नाक-कान क्यों कटाने पड़ते ? गोपियाँ लोक-लाज की

तिलाञ्जलि क्यों देतीं ? रुक्मिणी खिड़की की राह से कृष्ण को प्रेम-पत्र क्यों भेजतीं ? ऊषा की सखी चित्रलेखा अपनी चित्र-कला-कुशलता का परिचय कैसे देती ? मानिनी राधिका के पैरों की महावर नन्दनन्दन के माथे का तिलक कैसे होती ?

३

एक अपरिचित युवक के सामने तूती कन्द-फल-दल-जल, कुछ भी, छू न सकी। लज्जावनतमुखी होकर सरलतापूर्वक बोली—"तबतक इस चटाई पर बैठिए, पिताजी बाहर से आते होंगे।" तूती की वाणी सुनकर राजकुमार की दक्षिण भुजा और आँख फड़क उठी। उस चटाई पर बैठकर कुमार मखमली गद्दी की गुदगुदी अनुभव करने लगे। वे सोच रहे थे—

"कहत मोहि लागत भय लाजा।
जो न कहौं बड़ होइ अकाजा।"

कुमार की सांसारिक वासनाओं में तूती के प्रेम की-सी अलौकिक पवित्रता और क्षमता नहीं थी। जिस प्रकार गङ्गा में मिलकर कर्मनाशा भी शुद्ध हो गई, उसी प्रकार तूती की सरलता-सुरसरी में कुमार की कुवासना-कर्मनाशा मिलकर निर्मल हो गई। उनकी इच्छा थी कि 'हमारे तमसाच्छन्न हृदय में इसी छवि-दीप-शिखा का उजाला होता, इसी बाहु-लता की सघन छाया में हमारा प्राण-पथिक विश्राम करता, इन्हीं अधर-पल्लवों की ओट में हमारा प्राण-पखेरू छिपकर शान्ति पाता और इसी स्वर्गीय सौन्दर्य-सुधा का एक घूँट पीकर हम अमरत्व लाभ करते।' किन्तु कुमार की कलुषित कामना कुंठित हो गई ! तूती का सारल्य उनकी कामना पर विजयी हुआ ! नीच जल-बिन्दु भी जैसे कमल-दल के संयोग से मुक्ताफल की-सी श्री धारण करता है, राजस सुख के उपासक कुमार का चित्त सात्विक सुख का अनुभव करते-करते वैसे ही धवलित हो गया !

प्रेमोन्मत्त मधुप कमलिनी को इतना रिझाता है कि वह अपने दिल के सब परदे खोलकर, भौंरे को भीतर बुलाकर, अनेक स्निग्ध-सुगन्धमय आवरणों के अन्दर छिपा लेती है। वह चाहती है कि मेरी सुन्दरता पर अपना तन-मन-धन निछावर कर देनेवाले अनन्य प्रेमी पर अब कोई दूसरा डाही डीठ न डालने पावे।

हंस-गण प्रतिदिन आते हैं, चमकीली सीपियों के स्फुटोन्मुख मुख चूम-चूमकर चले जाते हैं। सीपियाँ भी एक दिन दिल खोलकर उनके सामने मोतियों की डाली लगा देती हैं।

वंशी टेरनेवाला, प्रेम में खूब डूबकर, अपने हृदय का माधुर्य अधरों में

भरकर, जब निभृत निकुञ्ज में सुरीली तान छेड़ने लगता है, तब हृदयहारिणी हारिणी भी कहने लगती है—

"चाम काटि आसन करौ, माँस राँधि कै खाउ।
जब लौं तन में प्रान हैं, तब लौं बीन बजाउ॥"

४

भगवान् भास्कर, संसार-भर के शुभाशुभ कर्मों का नीरीक्षण करके कर्त्तव्य-परायणता का परिचय देते हुए, पश्चिमाचल की ओर चल पड़े। संध्या-वधू ने अपने धूसर अंचल से धरनी का नग्न पृष्ठ-देश ढँक लिया। थोड़ी देर के बाद, ताराओं की मुक्तामाला पहन, ललाट पर चन्द्रचन्दन की बिन्दी लगा, दिगङ्गनाओं को उज्ज्वल दर्पण दिखाती और चकोरों को चाँदनी की चासनी चखाती हुई, राका-रजनी-रमणी आ पहुँची। मालूम हुआ, मानों यह दुनिया ज्योत्स्ना-तरङ्ग में स्नान कर रही है।

चटाई पर बैठे-बैठे कुमार अनुक्षण रूप-सुधा-माधुरी पान कर रहे थे। चन्द्रमा के किरण-जाल में अपने सौंदर्य्य-सुरसरी-गत मन-मीन को फँसाने की असफल चेष्टा कर रहे थे। कभी सिन्दुरिया आम और चिबुक से, कभी विकसित किंशुक-कुसुम और नासिका से, कभी अंगूर के गुच्छों और स्तन-स्तवक से, कभी पक्व जम्बूफल और कुन्तल-कलाप से, कभी अनार-दानों और सुशोभन दन्त-पंक्ति से, कभी पकी हुई नारङ्गी और देह की गौरवमयी गोरता से तथा कभी मृगशावक के आकर्णविस्तृत नेत्रों और तूती के तरलायित लोचनों से सादृश्य मिलाते थे। कभी कंठ से विद्रुम की माला निकाल कर उसमें उन कोमल अधरों की-सी-अरुणिमा ढूँढ़ते थे। किन्तु वह पीन-घन-सजीव शोभा कहीं मिलती न थी।

एकाएक प्रेमान्ध होकर फिर कुमार ने कहा—"हे कन्दर्पकीर्त्ति-लतिके! ये तेरे विषम विशिख-सरीखे नयन तो शेर के शिकारियों का भी शिकार करनेवाले अचूक आखेटक मालूम होते हैं!" भोलीभाली तूती कूपमंडूक थी; उस वन्याश्रम और उस कुञ्ज-कुटीर के सिवा भी कोई स्थान संसार में है, यह उसे मालूम ही नहीं था। कुमार की उक्तियाँ सुनकर, सरल हँसी हँसती हुई, तूती उनका मुख निहारती रह जाती थी। तूती का भोलापन देखकर कुमार मुग्ध हुए बिना न रह सके। वे मन-ही-मन सोचते थे कि 'चाहे तूती देवांगना हो या वनदेवी हो; पर अपने राज्य में आयी हुई सर्वोत्तम वस्तु को अब दूसरे किसी के हाथ में न जाने दूँगा। राज्य भर में जितनी उत्तमोत्तम वस्तुएँ हों, उन सबका संग्रह राजाओं को अवश्य ही करना चाहिए।'

५

द्रुम-लताओं की ओट में छिपे-छिपे एक महात्माजी सारी प्रेम-लीला देख रहे थे। तूती की स्वाभाविक सरलता और कुमार की प्रेमिकता देखकर हँसते-हँसते वे पूरब की ओर से प्रकट हुए। मानों आशुतोष शिव औढरदानी, तूती और कुमार के प्रेम-योग से सन्तुष्ट होकर, उनके मनोरथपूर्ण करने के निमित्त, प्रकट हुए हों। महात्माजी सर्वाङ्ग में भस्म रमाये, सिर पर जटा बाँधे और हाथ में सुमिरनी लिये हुए थे। इन्होंने ही तूती को, गंगा की बाढ़ में बहते जाते हुए देखकर, पकड़ा था और चार वर्ष की अवस्था से ही, आज सोलह वर्ष की अवस्था तक, बड़े लाड़-प्यार से पाला था।

महात्मा को देखकर तूती सहम गई। राजकुमार चकित होकर चरणों में झुक गये। महात्मा ने पूछा—"तू कौन है ? तेरा यहाँ क्या काम है ?" राजकुमार ने हाथ जोड़कर कहा—"महात्मन्! मैं मृगया-वश इस जंगल में चला आया हूँ। एकाएक मैं आपकी कुटी की ओर निकल आया। यहाँ आने पर मैं इस देवी को देखकर स्तम्भित हो गया। मैंने ऐसा भोलाभाला अनूठा रूप कभी देखा नहीं था। इस पर्ण-कुटी के पास आते ही मैंने इस देवी को रोते देखा। कुछ ही देर पहले यह हँस रही थी। इसका रोना देखकर मैं अधीर हो गया। इसे भूख-प्यास के कारण रोती जानकर मैं विमल-सलिला गंगा से थोड़ा जल और कुछ जंगली फल ले आया ; किन्तु इसने मेरा सत्कार स्वीकार नहीं किया है। इसका कारण मुझे ज्ञात नहीं। इसके सिवा मेरा कोई अपराध नहीं। अभी तक मैंने इस देवी की केवल मानसिक पूजा की है। इस अलौकिक रूप ने मुझे अपना किंकर बना लिया है। मैं इस अमूल्य रत्न का भिक्षुक हूँ। आप इस अपराध को यदि दंडनीय समझते हैं, तो इस अतुलनीय रूपरत्न का याचक बनकर मैं आपका शाप भी ग्रहण कर सकता हूँ।"

राजकुमार की सच्ची बातें सुनकर महात्मा ने कहा—"हम तुम्हारे सद्भाव से सन्तुष्ट हैं। तुम राजकुमार जान पड़ते हो। तुम्हारा ब्रह्मचर्य्य-प्रदीप्त मुख-मण्डल देखकर हम प्रसन्न हैं। यह कन्या गङ्गा की बाढ़ में बहकर आई थी। हमने बड़े स्नेह से इसका पालन-पोषण किया है। आज हमारा स्नेह-सम्वर्द्धन सार्थक हुआ। हमारे-जैसे विजन-वन-विहारी वाताम्बु-पर्णाहारी की कुटी में इसको कष्ट होता था। यह तुम्हारे राजमन्दिर के ही योग्य है। हम हृदय से आशीर्वाद देते हैं कि यह मणि-काञ्चन-संयोग सफल हो। मणि का स्थान राजमुकुट ही उपयुक्त है।"

६

शशिशेखरकुमार भी एक राजा के लाड़ले पुत्र ही तो थे। अकंटक सुख से पला हुआ उनका शरीर मक्खन-सा मुलायम और चिकना था। दीर्घ भुजाएँ, चौड़ी-ऊँची छाती, चटकीला चेहरा, कसरत से कसी हुई देह और प्रशस्तोन्नत ललाट—सभी अवयव मनोहर थे। मोतियों से गुथी सोने की गोल-गोल बालियाँ कानों में पड़ी थीं। कानों तक फैले हुए नेत्र यों सोहते थे, मानों मुक्ता-फल उगलती हुई सीपियों के मुख चलित-पत्रयुक्त पद्म चुम्बन कर रहे हों। तूती के योग्य ही सुवर्ण-घटित प्रेम-पिंजर मिल गया! सोने के पिंजड़े में सोने की चिड़िया बन्द हो गई!

वन के तोते जब पिंजड़ों में बन्द होकर जन-समुदाय में आते हैं, तब पांडित्य प्राप्त कर अपना जीवन आदर्श बना लेते हैं! सुन्दर सरोवर में चाहे कितने भी सुन्दर सरोज क्यों न खिलें; पर जबतक भगवान् शशिशेखर के मस्तक पर वे नहीं चढ़ते, तबतक उनका संसार में होना-न-होना बराबर रहता है। इसी प्रकार जो वन ही में फूलते और झर जाते हैं, उन पुष्पों का उपयोग ही क्या है? कण्व-कन्या यदि दुष्यन्त की हृदय-सर्वस्वा न हुई होती, तो उसके अंक-गगन में भरत-सरीखे पुत्र-पूर्णेन्दु दर्शन पाकर संसार किस प्रकार प्रफुल्लित होता? 'महाकवि' का 'शाकुन्तल' ही आज क्यों संसार में सर्वोच्च आसन पाता?

ठीक है, जिसने चन्द्रमा को सुन्दर बनाया, उसी ने चकोर के हृदय को भी प्रेममय बना दिया; जिसने मेघ को श्यामसुन्दर बनाया, उसीने बिजली को भी ब्रजबाला बना दिया। फूल बनानेवाले ने ही भ्रमर के छोटे-से हृदयकेन्द्र में अगाध प्रेमसागर उमड़ाकर 'गागर में सागर' भर दिया!

७

अहा! जो तूती शून्यारण्य में चहकती थी, जिसके कुन्तलकलाप को पन्नगी-परिवार समझकर मयूर-माला अपनी चोंच से धीरे-धीरे बिखेरती थी, जिसके दिये हुए अनार-दानों को चखनेवाले शुक-शावक कुटी के वृक्ष-शाखाओं पर बैठकर नित्य ही कलरव करते थे, जिसकी बोली सुनकर जंगली मैना भी अपनी बोली बिसारकर वैसी ही मीठी बोली बोलने का अभ्यास किया करती थी, जिसके फूलों से भरे अंचल में से बावले-उतावले भ्रमरों का झुंड निकलकर सुरभित श्वाससमीर के लोभ से घ्राण-रन्ध्र के पास टूट पड़ता था, वही तूती अब राज-प्रासाद के मखमली परदों में बृहद्दर्पणालंकृत विविध-विभूषित विलास-मन्दिरों में और खस की टट्टियों

से जड़ी हुई बारहदरियों में बन्द रहने लगी। जो बिजली वन में तूती की शोभा निहारकर आरती उतार जाती थी, अब वही बिजली खिड़कियों की राह से भी झाँकने नहीं पाती—तड़प-तड़पकर बाहर ही रह जाती है! वन्य वृक्षलतादि को सींचने के समय तूती के विधु-वदन पर जो श्रम-स्वेद-कण परिलक्षित होते थे, उन्हें प्रकृतिदेवी अपनी पवनान्दोलित लतिका कन्यकाओं के पुष्पमय अंचलों से पोंछ लेती थी; अब उन्हीं कुंडल-कलित कल-कपोलों को शशिशेखरकुमार अपने सुगन्ध-सिक्त रेशमी रूमाल से पोंछकर झट आँखों से लगा लेते हैं। जो हाथ झंझावात के झोंके से इतस्ततः उलझी हुई लताओं को सुधारने में सधे थे, अब वे ही हाथ हारमोनियम और सितार पर सध गये!

संसार का सारा सौंदर्य्य यदि प्रेम की सुगन्ध से शून्य हो जाय, तो ईश्वर ने अपने 'मनोरंजन' के लिए जो यह विश्वमहा-नाटक रचा है, उसका पहला परदा कभी न उठे; सारा खेल मटियामेट हो जाय! प्रेम की सुगन्ध के बिना यह जीवन-कुसुम सौंदर्य्य की थाती लेकर क्या करेगा?

देखिए, जिन पर्वत-शिलाओं पर घास-पात का परदा था, जिनका कलेवर काई से ढँका रहता था, जिनपर चाँदनी भी आकाश से उतरकर घड़ी-भर के लिए रँगरलियाँ मचा जाती थी, वे ही शिलाएँ आज पहाड़ की चोटियों से उतरकर, प्रेमवश दृष्टि उन्मेषिणी एवं लोचनानन्ददायिनी मूर्त्तियाँ बनकर, देवमन्दिरों में आ डटी हैं। अब उनका कलेवर प्रकृति की गोद में पले हुए फूलों से ढँका हुआ नहीं है, बल्कि दूध की धाराओं से सींची हुई संगमर्मरी क्यारियों में फूलनेवाले फूलों के मोटे-मोटे गजरे उन्हें पहनाये जाते हैं! काई के बदले अब हरे रंग की जरीदार मखमली पोशाक सुशोभित हो रही है! यही इस परिवर्त्तनशील संसार की विचित्रता है!

"मैना! तू वनवासिनी, परी पींजरे आनि।
जानि देव-गति ताहि में, रही शांत सुख मानि॥"

× × ×

"कहैं 'मीर' कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना।
तो भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूँ 'मै-ना'॥"

वीणा

दूती ! बैठी हूँ सजकर मैं,
ले चल शीघ्र मिलूँ प्रियतम से;
धरा, धाम, धन, सब तजकर मैं
धन्य हुई हूँ इस धरती पर,
निज जीवन-धन को भजकर मैं;
बस अब उनके अंक लगूँगी,
उनकी 'वीणा'-सी बजकर मैं !

—मैथिलीशरण गुप्त

× × ×

She gave me eyes, she gave me ears,
And humble cares, and delicate fears;
A heart,—the fountain of sweet tears,
And Love and Thought and Joy.

—*Wordsworth.*

१

कौन वीणा ? किसकी वीणा ? कहाँ की वीणा ? क्या सरस्वती के कर-कंजों में शोभा पानेवाली ? क्या किन्नरियों की गुलगुल गोद में ठुमकनेवाली ? क्या कादम्बरी की अँगुलियों को अपने तार में उलझाकर नचानेवाली ? क्या महाश्वेता के उन्नत उरोज की सहचरी ? या वह देवर्षि नारद की गोविन्द-गुण-गण-गान-परायणा वीणा तो नहीं, जिसके कंठ-हार के चू जाने से महाराज 'अज' का प्राणाधार, हृदय-धन, जीवन-सर्वस्व एवं सुख-सौभाग्य घोर अन्धकार और भीषण हाहाकार में विलीन हो गया था ?

नहीं जी वह वीणा नहीं !

तो फिर यह है कौन-सी वीणा ? क्या पवन-देवता द्रुमगुल्मलता के तीर-तीर विहरण करते हुए कीचक-रन्ध्र में प्रवेश करके जो मधुर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, वह इसी वीणा का कल स्वर है ? क्या भगवान् सिन्धु-देव अपनी जिस गम्भीर हुङ्कार-ध्वनि से दिग्दिगन्त को निनादित करते हैं, वह ध्वनि इस वीणा की ध्वनि से मिलती-जुलती-सी है ? भगवती भारत-वसुन्धरा अपने सुविस्तृत वक्षःस्थल पर रखकर अपने मुखरित पाद-मंजरी और कटि-किंकिणि-क्वणन से स्वर मिलाकर, अनन्त-तरल-तरङ्गमयी वारिधि-वल्लभा रूपिणी जो वीणा बजा रही है; क्या वही वीणा ? गगन-मंडल के हृदय-तल में बड़े चमत्कार के साथ चमककर जो असंख्य हृत्तन्त्री में बड़ी चंचलता से झनकार पैदा कर देती है, क्या वह वीणा ? भगवान् हुताशन की लोल लपटों के संघर्षण से जो ध्वनि निकलती है, क्या वैसी ही ध्वनि उत्पन्न करनेवाली वीणा ?

नहीं, नहीं, ऐसे कठोर शब्दों में क्यों पूछते हो ? जैसी वीणा की कल्पना तुम्हारे शब्दों ने की है, वैसी तो हमारी वीणा नहीं है। वह तो अतीव सुकुमारी है, उसकी कल्पना सुकुमार शब्दों ही द्वारा की जा सकती है। हमारी वह वीणा अब भी वसन्त में कोयल बनकर कल गान सुना जाती है! वर्षाकाल में निशीथ-कालीन झिल्ली-झनकार बनकर हमारी गाढ़ी नींद उचटा जाती है! ग्रीष्मकाल में मृग-तृष्णा की तरंगमाला बनकर हमें बरबस तृषित बना देती है! हेमन्त में कुन्देन्दुधवल तुषारकण बनकर अपने जन्म-जन्मान्तर के बैरी कमल-कुल का विनाश कर जाती है और शरत्काल में चन्द्रचूड़-चूड़ाच्युत चन्द्रलेखा की सुधा-स्राविणी चन्द्रिका बनकर हमारे चित्त-चकोर को नचा जाती है!

हाय ! सब कुछ करती है, किन्तु प्रत्यक्ष दर्शनों से वंचित रखती है ! अहा ! वह अप्रतिम प्रतिमा, प्रभा-प्रदीप्त प्रतिमा, ग्रीष्मकालीन सघन-शीतल वटच्छाया-सी वह प्रतिमा, वसंतकाल की नव-किसलय-कलित रसाल-द्रुमावली-सी वह प्रतिमा, प्रभात-कालीन मलय-मारुत से ईषत्-दोलायमाना मन्दस्मिता नव-नलिनी-सी वह प्रतिमा, वासन्ती संध्या-समीरणजनित गंगा की कृश-कल्लोल-मालिका-सी वह प्रतिमा, जयदेव की कोमल-कान्त-पदावली-सी वह प्रतिमा, शोण-सैकत-शय्या पर लेटी हुई सद्यः उदित सूर्य्य की किरणों की-सी वह प्रतिमा, श्रावण की जल-प्लाविता शस्य-श्यामला वसुन्धरा की-सी वह प्रतिमा, नवोढा कृषक-ललना के कर-तल-विराजित नव-शालि-वालि-पुंज की-सी वह प्रतिमा, अर्जुन के प्रति स्वर्गीय वाराङ्गना उर्वशी की मधुर-कटाक्षपात-पूर्वक विनीताभ्यर्थना की-सी वह प्रतिमा, मरुस्थल के श्रान्त एवं तृषार्त्त पथिक के लिए सजला-सरसी-दर्शन की-सी वह प्रतिमा, दुष्यन्त के प्रति शकुन्तला की निरन्तर चारु-चिन्ता की-सी वह प्रतिमा, कार्त्तिक-मास की दीपावली से नख-शिखमंडिता काशी की गंगातटस्थ आकाशचुम्बिनी प्रासाद-प्रणाली की-सी वह प्रतिमा, भाद्रपद के नीरव निशीथकाल में वर्षा-वारि-विलोडिता खर-स्रोता सरिता की दूरागत कल-कल-ध्वनि की-सी वह प्रतिमा, कुसुमित दाम्पत्य-प्रेम-पादप के प्रथम फल की आशा की-सी वह प्रतिमा, पुष्पोद्यान में प्रथम बार रामचन्द्र-दर्शन से मैथिली के मानस-मन्दिर में प्रकट हुई अलौकिक प्रीति-ज्योति की-सी वह प्रतिमा, लावण्य-लीला-विस्तारिणी नव-वधू के मित-मिष्ट-भाषण की-सी वह प्रतिमा, हाय ! कैसे कहें कि वह कैसी प्रतिमा थी ! भगवन् ! क्या वह अब प्रतिमा कभी देखने को भी न मिलेगी ?

२

पराई वस्तु पर हमारा अधिकार कैसा ? दूसरे के गले की माला पहनने के लिए हम अपना गला क्यों कटाते हैं ? वह हमारी कौन होती है ? व्यर्थ प्रलोभन में पड़कर हम क्यों मृग-तृष्णा में भटकते फिरते हैं। बिना मिजराव की वीणा लेकर ही हम क्या करेंगे ? हमीने इश्क का दामन पकड़-पकड़ कर अपने दिल की सेज पर बैठाया, तो अब दूसरा कौन दर्द बरदाश्त करेगा ? 'बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से होय ?' "तब न ज्ञान अब ज्ञान ?"

वह स्वर्गीय देवी, हम मर्त्य मनुष्य ! वह साध्वी महिला, हम लोलुप ! लम्पट ! वह शुकदेव की पवित्र भावना, हम रम्भा के मलिन मनोरथ ! वह प्रह्लाद की प्रतिज्ञा, हम हिरण्य-कशिपु के हृदय ! वह रुक्मिणी, हम शिशुपाल ! वह द्रौपदी, हम जयद्रथ ! वह सीता, हम रावण ! वह कविता, हम यतिभंग !

वह सर्व-मंगला, हम विघ्न-बवंडर ! वह उपासना, हम इन्द्रिय-विलास ! वह सुधा, हम गरल ! वह लता, हम प्रभंजन ! वह कुसुम, हम कीट ! छिः !! हमारा उसका सम्बन्ध ही क्या ? हमारा उसका मिलन ही कैसा !

वह वीणावाद्यप्रवीणा जब अपनी छत की खिड़की पर बैठी-बैठी वीणा बजा-बजाकर 'राष्ट्रीय वीणा' का यह करुणा-पूर्ण पद्य गाने लगती थी—

"हे प्रभु ! क्यों इस भाँति मुझे है दीन बनाया ?
दुःख-सिन्धु का दया-सिन्धु ! क्यों मीन बनाया ?"

तब उसके प्रति हमारे हृदय में अनायास आस्था का आविर्भाव हो आता था और हम वह कहे विना नहीं रह सकते थे कि—

"वीणा-पुस्तक-रंजितहस्ते !
भगवति वीणापाणि ! नमस्ते ।"

किन्तु, फिर सँभलकर जब हम उस अनवद्यांगी का अनिर्वचनीय रूप देखने लगते थे, तब आँखें कहती थीं कि सारी इन्द्रियों के प्राण हमारे अन्दर भर दो, ताकि जी भरकर हम देख लें।' हृदय कहता था कि 'आँखों को बन्द कर लो, ताकि खुली खिड़कियों से हवा आकर हमारे घर का दीपक न बुझा दे।' पैर कहते थे कि 'आँखों ने हमें अशक्त कर दिया है, ऊपर की सारी शक्तियाँ समेटकर नीचे लाओ, हम अभी तुम्हें चन्द्रलोक की सैर कराते हैं।' मन कहता था कि 'दृष्टि-द्वार बन्द करो, अधिक प्रकाश आने से चित्र अङ्कित करने में—फोटो उतारने में—बड़ी बाधा पड़ती है।' हाथ कहते थे कि 'दावात-कलम-कागज ले आओ, हम अभी समस्या हल किये देते हैं।'

× × ×

हमें हाथों की बात पसन्द आई। हम झट अपनी अध्ययनशाला में चले गये। वहाँ जाकर चार चिकने पत्र-खंड रँग डाले। स्याही से नहीं, प्रेम के गाढ़े रङ्ग से। किन्तु प्रेम में तो वासना की बू नहीं होती। प्रेम तो सती की पति-चिन्ता और ध्यानावस्थित योगी की समाधि से भी पवित्र कहा जाता है। वह तो शीत-विन्दु की तरह शस्य-श्यामला वसुधा पर स्वर्ग से अवतीर्ण होता है और फिर रवि-किरणों की गोद में बैठकर स्वर्ग ही में लौट जाता है। स्वाती-विन्दु सीपी के उदर में आकर मोती बन जाता है और संसार में अपना मोल-तोल बढ़ा लेता है। प्रेम-रूपी शीत-विन्दु शष्पाग्रस्थ होकर थोड़ी देर के लिए संसार में अपनी चमक-दमक

दिखाता है और सूर्य्य की शैशवावस्था की मुस्कान की छटा दिखाते हुए स्वर्ग को लौट जाता है। स्वाती-विन्दु चातक की प्यास बुझाता है; पर ओस चाटने से किसी की प्यास नहीं जाती। स्वाती-विन्दु की तरह यदि प्रेम भी किसी हृदय की तृष्णा शांत करता, तो फिर प्रेम कोई अतृप्त नहीं रह जाता। हम भी ओस ही चाटकर प्यास बुझाना चाहते थे; पर अतृप्त ही रह गये!

३

चैत की पूर्णिमा थी! वासन्ती निशीथकाल का यौवन जड़-संसार में भी सजीव सौन्दर्य्य भर रहा था। सुनीलाम्बर में राका-रजनीश अपनी उदारोज्ज्वल मुस्कान से हर ओर जादू जगा रहे थे। भगवान् व्योमकेश के जटाजूट में स्वर्गङ्गा छहरा रही थी। दिगङ्गनाएँ नक्षत्र-पुष्पाञ्जलि चढ़ाकर उनकी सविधि अर्चना कर रही थीं। शुभ्र ज्योत्स्ना जगतीतल पर शान्ति-सुधा प्रवाहित करके स्फटिक-सलिला गंगा की गोद में खेल रही थी। गंगा के दोनों तटों की द्रुम-माला चन्द्रिका की मीठी-मीठी थपकियों से निद्रा-निमग्न हो गई थी। दो-चार नौकाएँ धीरे-धीरे गंगा में चली जाती थीं। वारुणी-विभ्रांत मल्लाहों के डाँड़ खेने से जल में जो शब्द होता था, वह उनके अर्द्धस्फुट-श्वासोद्गीर्ण गीतांश के साथ मिलकर निशीथिनी की नीरवता को भंग करता था। उसी समय हमारी उन्निद्रित आँखों ने कौमुदी के प्रकाश में मणि-कर्णिका-घाट की नीचेवाली सीढ़ी पर एक तरुणारुण-तामरसाभ मुखड़ा देखा। हम झट उठकर उस स्थान तक चले गये। हमने देखा कि एक शुक्ल-वस्त्र-परिधाना मुक्तकेशी विधवा वहाँ बैठकर रो रही है! उसके रोने में करुणा की संगीत-लहरी थी, जो उस समय गंगा ही की तरह वहाँ स्तिमित गति से बह रही थी। हमारा हृदय उसी करुणा-कल्लोलिनी तरङ्गों में डूब गया! हम हृदय-हीन की तरह चुपचाप वह दृश्य देख रहे थे। हमसे कुछ करते या कहते नहीं बना। हम एक छतरी के नीचे छिपकर बैठ गये। वह रोते-रोते एकाएक उठकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर भगवती भागीरथी से कहने लगी—"जननि! गंगे!! इसी जगह मेरी मुद्रिका का नगीना खो गया है! मुझे दे दे। मेरा सर्वस्व लेकर तू क्या करेगी? तुझे क्या कमी है? मुझे ऋण के तौर पर दे; फिर व्याज-सहित ले लेना। तू तो आज तक असंख्य चिताओं को बुझा चुकी, फिर मेरे हृदय की धधकती हुई शोकाग्निज्वाला क्यों नहीं बुझाती? क्या तुझमें वैधव्य-ज्वाला शान्त करने योग्य शैत्य नहीं है?"

इतना कहकर वह विधवा अपने घर की ओर चली। जाने के समय हमने

देखा कि यह तो वही 'वीणा' है ! जब वह कुछ दूर चली गई ; तब हम भी उसके पीछे-पीछे चले । हमें सन्देह हुआ कि 'हमारी वीणा तो गत वर्ष अपनी ससुराल चली गई, वह तो अमृतसर के सेठ मुकुन्ददास के पुत्र को ब्याही थी, उसका सौभाग्यादित्य तो उसके जीवन-गगन के मध्य भाग में विराजमान था, उसका आनन्द पारावार तो अगाध और अपरिमेय था, वह असूर्य्यम्पश्या किशोरी तो कभी घर की चौखट भी नहीं लाँघती थी; हो न हो, यह कोई दूसरी बाला है ।' हम समझते थे कि वीणा-सी सुन्दरी फिर कभी हमारे दृष्टि-पथ पर आरूढ न होगी । किन्तु वह हमारा भ्रम था । यह सुन्दरी तो अलंकार-शून्य होने पर भी सर्वाङ्गसौम्या है, अनाश्रिता लता होने पर भी इसके पल्लव हरे-भरे हैं, अर्द्ध-दग्ध होने पर भी यह वृन्त-च्युत अनाघ्रात कुसुम-कलिका-सी मनोहरा है ।

हम इसी उधेड़-बुन में पड़े थे, तबतक वह एक घर में पैठ गई ! हमने देखा कि यह तो वही घर है, जिसमें वीणा रहती थी । हम उसी जगह एक चबूतरे पर बैठ गये । अनायास हमारा हाथ जेब में चला गया । हमने अपने लिखे हुए प्रेम-पत्र का वहीं फाड़ डाला । आँखों के आगे अँधेरा छा गया ; छाती धड़कने लगी ! हम सोचने लगे कि 'क्या सचमुच विधवाओं के दुःख में ब्रह्मांड हिला देने की शक्ति है ? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती के मस्तिष्क-महोदधि में तूफान उठानेवाला वैधव्य-दुःख इतना भयंकर है ? क्या अनादिदेव महादेव की समाधि-भङ्ग करनेवाला विधवा-विलाप इतना मर्मतलस्पर्शी है ?' सोचते-सोचते अचेत होकर हम वहीं पड़ रहे । फिर न जाने क्या हुआ ?

४

ग्रीष्मकाल की सन्ध्या थी । बहुत-से लोग मणिकर्णिका-घाट पर स्नान कर रहे थे । गङ्गा में बँधी हुई मचानों पर एक-से-एक भव्य मूर्त्तियाँ बैठी थीं । एक महाशय कुशासन पर त्रिपुंड लगाये सन्ध्या कर रहे थे । उनकी नाक पर अंगुली का अंकुश लगा हुआ था, पर उनकी आँखें निरंकुश होकर एक आकंठ-जल-मग्ना नवयुवती को घूर रही थीं । हमारी दृष्टि पहले उन्हीं पर जा पड़ी । फिर उनकी दृष्टि के संकेत का सहारा पाकर हमने भी उसे देखा । वह पश्चिमाभिमुख होकर सूर्य्यार्घ्य दे रही थी । मालूम होता था, मानों कोई कमलिनी अपने विदेश-गमनोद्यत प्राणनाथ कमलिनी-वल्लभ के चरणों में अश्रु-अञ्जलि अर्पित करती हो । कुछ देर ध्यान-मग्न हो वह, ज्यों-की-त्यों, वहीं खड़ी रही । फिर जब वह बाहर आई, तब झुंड-को-झुंड आँखों ने देखा कि जिस तरह बारीक विदेशी वस्त्र की महिमा ने

भारत-माता को दरिद्र बना दिया है, उसी तरह उसकी लज्जा को भी नग्न कर दिया है! अब हमारी आँखों ने पहचाना कि यह वही विधवा युवती है, जिसे उस दिन चाँदनी के प्रकाश में देखकर हमें 'वीणा' का भ्रम उत्पन्न हुआ था। आज भी वैसी ही भ्रान्ति हुई। उस सम्भ्रान्त महिला को देख-देखकर हम दो-दो बार भ्रान्त हो चुके; पर तो भी ऐसा विश्वास नहीं होता था कि वह वही 'वीणा' है। कपड़े बदलकर, धोती कचारकर और चाँदी की झारी में गंगाजल भरकर वह विश्वनाथजी की ओर चल पड़ी। तब हमारे मन में एकाएक यह दृढ़ निश्चय हो गया कि यह वीणा के सिवा दूसरी बाला कदापि नहीं हो सकती।

हमने सोचा कि फिर ऐसा सुअवसर हाथ न लगेगा। अमावस्या का अन्धकार आज हमारे हृदय का अन्धकार दूर करने के लिए ही आया है। हमने दुस्साहस-पूर्वक आगे बढ़कर उस सुन्दरी से कहा—"जैसे अपनी खिड़की पर बैठकर वीणा बजाकर गाती हो, वैसे ही गंगा में किश्ती पर हमारे साथ चलो और अपने कोमल कंठ से केवल एक बार कल-गान सुनाकर हमें कृतकृत्य कर दो।" हमारी बात सुनकर उसने कहा—"इस समय तो मैं विश्वनाथजी की सेवा में जाती हूँ, यदि तुम्हें ललित कला से इतना प्रेम है, तो मेरे घर पर प्रातःकाल आओ, मैं उसी समय भजन गाती हूँ, जी भरकर सुन लेना!" हमने बड़ा आग्रह किया; पर उसने एक भी न सुना। अन्त में लाचारी आकर हमने उसे चमचमाता हुआ छुरा दिखाया; वह चौंक कर काँपने लगी! हमने झपटकर उसका हाथ पकड़ लिया। उसकी घिग्घी बँध गई! हमारे मुँह की ओर वह कातर दृष्टि से देखने लगी। उसके कम्पित अधरों को भेदकर दो-चार स्फुट शब्द निकले—"दया करो, चलती हूँ।"

× × ×

हम गंगा की ओर आगे-आगे चले। वह हमारे पीछे-पीछे आने लगी। तट पर पहुँच कर हम दोनों एक किश्ती पर सवार हुए। किश्ती डोल गई! गंगा का हृदय भी काँप उठा! लहरों ने काँपते हुए हाथों से किश्ती को गंगा के बीच की ओर ठेल दिया। गंगा का हृदय हमारे-जैसे पापी का भार वहन या सहन न कर सका। किश्ती डगमगा रही थी। 'वीणा' गा रही थी—

"अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिर ना डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि, उर-कर ते ना खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित-कंचनहिं कसैहौं॥
पर-बस जानि हंस्यौ इन इन्द्रिन, निज-बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि 'तुलसी' रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥'

वीणा के वीणा-मधुर कंठ-स्वर से वह शून्य जल-लोक भर गया ! प्रेमानन्द के वृष्टि-बाहुल्य से हमारा हृदय भर गया। जिस प्रकार प्यासा पथिक जलाशय के पास पहुँचकर अधीर हो जाता है, उसी प्रकार हम भी आतुर हो गये । हमारी अस्थिरता-असीम हो उठी। उद्विग्नता के सीमा-रहित क्षेत्र में ज्ञान का केन्द्र-बिन्दु लुप्त हो गया ! हम उसका हाथ पकड़कर खींचने लगे। वह हाथ झाड़कर झुँझलाती हुई बड़े क्रोध से बोली--"रे नीच ! तू धोखा देकर मेरे साथ अब बलात्कार करना चाहता है ? क्या तू नहीं जानता कि हिन्दू-विधवा का जीवन ऐकान्तिक उपासना पर अवलम्बित है ? क्या तू नहीं जानता कि मुझ अबला का अनाथ-नाथ यहाँ भी मौजूद है ? तेरे-जैसे दैत्य के दृष्टि-दोष से दूषित यह देह अब हिन्दू-समाज के योग्य नहीं रही ;जा, तू ही हिन्दू-समाज का कलङ्क बना रह ।"

हम तो स्तब्ध थे, वह यहाँ तक कहते-कहते गंगा में धम से कूद पड़ी। हम चकित होकर चिल्ला उठे। आप-से-आप हमारे मन में यह भाव उदय हो आया कि कदाचित् गङ्गा के अञ्चल में आज तक ऐसा पवित्र पुष्प न पड़ा होगा । ऐसा भाव हृदयङ्गम होते ही आत्म-ग्लानि से चित्त क्षुब्ध हो गया । हम भी पतित-पावनी अधमोद्धारिणी गङ्गा की गोद में कूद पड़े ।

धन्य कुसुम के साथ कीट की सुगति हुई यों,
सूर्य्य-किरण के साथ ओस की मुक्ति हुई ज्यों ।

× × ×

इस भाँति ओस ने सत्कर्मों से प्राप्त किया जब से निर्वाण ।
लेकर 'वीणा' हाथों में सुमधुर किया प्रकृति ने तद्गुण-गान ।

—मुकुटधर

विचार-चित्र

१

इस मायामय संसार को लोग प्रेम-फुलवारी कहा करते हैं। इस प्रेम-फुलवारी के जितने भौंरे हैं, उनकी गति ही निराली है! प्रकृति की गोद में पले हुए भौंरे तो चम्पा के विकसित फूल से घृणा करते हैं; पर ये तो उन फूलों की-सी भी कोई वस्तु देखकर अपने-आपको भूल जाते हैं।

प्रेमियों के नेत्रों के सामने प्रतिक्षण नई-नई प्रदर्शनी हुआ करती है। सांसारिक प्रदर्शनी प्रतिक्षण अपना बिस्तर बिछाती है और फिर झट उसे समेट लेती है। जो लोग सूक्ष्म दृष्टि से इस प्रदर्शनी का निरीक्षण करते हैं, उनकी पैनी दृष्टि संसार की तुच्छ रमणीयता से भी कुछ सार-संकलन कर लेती है। प्रेमी की आँखें यदि कहीं चिनगारियाँ देख पाती हैं, तो उन्हें अग्निज्वाला का ध्यान हो आता है। यदि वे वारिबिन्दु देख पाती हैं, तो अनन्त सागर याद पड़ जाता है। चमकीले तारे देखकर उसी अखंड ज्योति के कण स्मरण हो आते हैं। सचमुच, उसी सौन्दर्य-निकेतन का एक-एक करुण-कण पाकर संसार की सारी वस्तुएँ नेत्ररंजक प्रतीत होती हैं।

जिसकी दृष्टि सूक्ष्म है, वह तो 'पश्यतोहर:' की भस्मराशि से भी स्वर्ण-कण निकाल लेता है। एक कहानी भी मशहूर है कि एक मुर्गे ने कूड़े को कुरेदकर मोती पाया था। हाथी को सिर पर धूल डालते देखकर एक कवि को सूझ गया कि 'हाथी उसी धूल की तलाश में है, जिसके स्पर्श से जड़ पत्थर में भी जान आ गई थी।' नगाड़े की आवाज सुनकर एक प्रेमी ने कह दिया था कि 'यह दमामा नहीं बजता, बल्कि पुकार-पुकारकर यही कहता है कि ईश्वर को भूल जाने से पशु होकर भार-वहन करते-करते जान गई और अब मरने के बाद भी चाम कूटा जा रहा है।' प्रेमियों की अन्तर्दृष्टि की गति सर्वतोमुखी है। वह अबाधित गति से संसार की प्रत्येक वस्तु की अन्तर्दशा देख लेती है। उनका कहना है कि संसार की सभी नयनाभिराम वस्तुएँ उसी प्रभु की प्रभा पाकर परस्पर अनन्य हुई हैं। वे यह भी कहते हैं कि यदि संसार में प्रतिक्षण होती रहनेवाली प्रदर्शनियों की विचित्रता पर ध्यान दिया जाय, तो उस अखंड-ब्रह्मांड-नायक के अचिन्तनीय लीला-रहस्य का स्थूल अभिप्राय कुछ-न-कुछ अवश्य अवगत हो सकता है।

२

आषाढ़ का महीना था। देखते-ही-देखते आसमान ने गिरगट की तरह रंग बदल दिया। आसमानी किले पर गरजते हुए मेघों का धावा शुरू हो गया।

हीरालालबाबू पटने जाने के लिए ताबड़तोड़ तैयारी कर रहे थे। आसमान का रंग देखते ही उनका प्रोग्राम बिगड़ गया! बिजली की चमक-दमक और तड़प-झड़प सुनते ही उन्होंने कपड़े उतार दिये। हवा के झोंके से बेपनाह हुई बूँदियों ने बरामदे के कोने-कोने तक में शरण ले ली। फिर एकाएक बूँदा-बाँदी बन्द हो गई। पंजाबमेल के आने में अब सिर्फ पन्द्रह मिनटों की देर थी। हीरालालबाबू फिर कपड़े पहनकर तैयार हो गये। उनके फूलदार मखमली जूते जल्दीबाजी करने के लिए 'मचर-मचर' चिल्ला रहे थे। बाहर की बरसाती में शानदार लैंडो-जोड़ी खड़ी थी। हीरालालबाबू जोड़ी पर सवार होते ही गाड़ीवान से बोले—"डाकगाड़ी से पाँच मिनट पहले पहुँचाना होगा। खूब तेजी से ले चलो।"

रबर-टायरवाली जोड़ी ने, बात-की-बात में, चुपके-से स्टेशन पहुँचा दिया। हीरालालबाबू शान से उतरे और जाकर अव्वल दरजे के वेटिंग-रूम में आराम कुर्सी खींचकर डट गये। हम तो जोड़ी से उतरते ही टिकट-घर में जा घुसे। हम टिकट ले जाकर हीरालालबाबू को दे ही रहे थे कि इतने में एक घंटी बजी और प्लाटफार्म पर जो जन-समुद्र उमड़ रहा था, उनमें खलबली-सी पैदा हो गई। ज्वारभाटा की तरह हाहाकार करती हुई डाकगाड़ी आ पहुँची।

पंजाब-मेल का अव्वल दरजा भी स्वर्ग का नमूना ही है। जैसे गंगा और हिमालय का मानचित्र पुस्तकों में, वैसे ही पंजाब-मेल के अव्वल दरजे में बहिश्त का नक्शा मौजूद है। उसे अलकापुरी या अमरावती का नमूना कहना कोई बेजा बात नहीं है। हीरालालबाबू को अव्वल दरजे चढ़ाकर हमने इंजिन से गार्ड के डब्बे तक दो-दो बार चक्कर लगाया! हर-एक खाने की चीजों पर दुहरी, पर गहरी नहीं, नजर डालते हुए हम चक्कर काट रहे थे। बिजली-बत्तियाँ जल रही थीं। बिजली के पंखे दनादन चल रहे थे। खिड़कियों की राह से जितनी आँखें स्टेशन की ओर झाँकती थीं, सबपर सुनहरी कमानीवाले चश्मे चढ़े थे। कुछ साहब, झालरदार साफ तकियों के सहारे, कमर के बल टेक कर, समाचारपत्रों के पन्ने उलट रहे थे। किसी के दिमाग में 'एमडन' तैर रहा था। किसी के दिमाग में 'दमदम' की गोलियाँ दनदना रही थीं और कोई 'हाविटजर' तोप के गोलों की गड़गड़ाहट सुन रहा था। एक अँगरेज-युवती, जिसके रेशमी बालों में बनावटी गुलाब के फूल गुम्फित थे, एक अँगरेज-युवक के साथ, हाथ-में-हाथ मिलाकर, टहल रही थी। कभी दोनों हँसते-हँसते अपनी-अपनी घड़ियाँ मिलाते थे, और कभी अपने-अपने चश्मे बदल-बदलकर परस्पर आँखों पर आँखें चढ़ाते थे।

दृष्टि और दिमाग का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीलिए कमल-कोरक देखते ही हमारे दिमाग में मराल-मालामंडित पद्माकर का रूप अंकित हो जाता है। हम देखते हैं—गुल्लाला और याद करते हैं गुलशन। हम देखते हैं—प्रस्तरमयी प्रतिमा और ध्यान धरते हैं सच्चिदानन्द भगवान् का। हम देखते हैं—ईंट-पत्थर और स्मरण करते हैं गगनारोही अट्टालिका। हम देखते हैं रेशम के कीड़े और याद पड़ जाता है कौशेय वस्त्र। अद्भुत व्यापार है।

कुम्भकार-रचित विविध-रंग-रंजित देव-मूर्त्तियाँ हमारी शीशे की आलमारियों में सजी हुई हैं। उन्हें देखकर हम भगवान् श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र तथा श्रीचन्द्रमौलि आदि का ध्यान कर लेते हैं और उन्हें पूजकर हम अपनी भक्ति की भी तृप्ति कर लेते हैं; पर उस कुम्हार के मृत्तिका-लिप्त हाथों की पूजा करने का तो हम कभी विचार भी नहीं करते, जिनकी करामात की बदौलत हम अपनी भक्ति सार्थक कर पाते हैं; उसके मृत्तिका-लिप्त शरीर को देखकर हम इतनी भी शिक्षा नहीं ग्रहण करते कि—

खाक से उल्फत हुई है फिर तो मिलना खाक में।
इत्र मिट्टी का लगाना चाहिये पोशाक में॥

३

अकस्मात् चन्द्रमोहन बाबू से भेंट हो गई। भेंट होते ही, बड़े आह्लाद के साथ, हमें गलबहियाँ में पकड़कर, अव्वल दरजे के एक डब्बे के सामने ले जाकर, अलग से इशारा करके, बोले—"देखो, ऐसी कान्त-कलेवरा लावण्य-यष्टिका तुमने कभी देखी थी? मैं तो प्रतिदिन संध्या-समय टहलते-टहलते स्टेशन चला आता हूँ। प्रत्येक दिन डाकगाड़ी में एक-से-एक सुन्दर रूप देखता हूँ; किन्तु ऐसा रूप मैंने कभी डाकगाड़ी में नहीं देखा था। अहा! कैसा मनोमुग्धकर रूप है। यह मानस-सरोवर की कमल-कलिका अथवा नन्दन-कानन का विकसित पारिजात-स्तवक भले ही न हो; पर उस 'परम रम्य आराम' की पाटलि-पटली तो अवश्य है। श्वेत साड़ी ऐसी शोभती है जैसे बगले के पंख में मछली लपटी हुई हो। हरे रंग के रेशमी फूल साड़ी में टँके हुए हैं, उनकी शोभा कहते नहीं बनती। सिर पर से होता हुआ अंचल, कमर तक पहुँच, कमरबन्द से कसकर बेकस हो गया! मालूम होता है कि मन बाँधने के लिए ही कमर कसकर तैयार है! वक्ष-स्थल पर रेशमी फूलों की झालर तो यों जान पड़ती है, मानों पर्वत-शृङ्ग पर मृदुल लतिका आरोहण कर रही हो।"

एक भद्र महिला के सम्बन्ध में ऐसी अनभिमत बातें सुनकर हमसे चुप न रहा गया। हमने उनकी गलबहियाँ छुड़ाकर, उन्हें फटकारते हुए कहा—"चन्द्रमोहन बाबू! आपके मुख से ऐसी अवाञ्छनीय बातें सुनने की आशा हमें नहीं थी। यदि आप वस्तुतः नित्य ही ऐसे अभद्र कार्य के लिए स्टेशन आया करते हैं, तो यह बड़ी ग्लानि और लज्जा का विषय है! आप गिरि-शृङ्ग पर लतारोहण देखकर इतना मोहित हो गये—इसका एक कारण है। यदि आप कभी उस कोटि-कन्दर्प दर्पहारी के मदनमोहन रूप का ध्यान किये होते तो—

चरण-कमल-अवलम्बित राजित बनमाल।
प्रफुलित ह्वै-ह्वै लता मानों तरु चढ़ी तमाल॥

× × ×

उन्नत विसाल हृदय राजत है, ता पर मुक्ता-हार री।
मानहुँ साँवर गिरि ते सरिता, अध आवत ह्वै धार री॥

'सूर' के इन सरस पदों को भूलकर आप इस 'लतारोहण' पर लट्टू नहीं होते।" किन्तु हमारी बातों को हँसी में उड़ाकर चन्द्रमोहन ने कहा—"अरे भाई! तुमने उर्दू या अँगरेजी की कविताएँ नहीं पढ़ी हैं। नहीं तो तुम ऐसी नफीस सूरत देखकर जरूर ही कह उठते कि—

इलाही कैसी-कैसी सूरतें तूने बनाई हैं।
हर-एक सूरत कलेजे से लगा लेने के काबिल है॥

देखो, अपनी सौन्दर्य्य-गर्व-गरिमा से यह बिजली की रोशनी को भी मात कर रही है। जब हँस देती है, तब दन्तद्युति देखकर बिजली-बत्ती भी लज्जित हो जाती है! इसके हाथ का रेशमी रूमाल कभी स्वेद-बिन्दु पीकर अपनी तृषा शान्त करता है और कभी कमर को चूमकर निहाल होता है। मुझे तो महाकवि शेक्सपीयर के रोमियो की तरह यह अभिलाषा होती है कि—Had I been the gloves to rest on those cheeks'—किन्तु क्या करूँ? अभाग्यवश आँखें सेंककर ही रह जाना पड़ता है!

इतने ही में गार्ड ने सीटी बजाई। उसने सिर से ऊँचा उठाकर हरी रोशनी-वाली लालटेन हिला दी। स्टेशन-मास्टर-बाबू 'खलासी' 'खलासी'; 'स्टार्टर', 'स्टार्टर' चिल्लाते हुए अपने कमरे से बाहर निकल आये। खलासी ने 'स्टार्टर' दे दिया। दीवार में एक कटोरा-सा घंटा लगा हुआ था। स्टेशन-मास्टर ने, उसके नीचे लटकते हुए एक तार को, तीन बार खींचा, 'टन्' 'टन्' 'टन्' आवाज हुई। उधर इञ्जिन ने जोर से सीटी दी। भक-भक करती हुई गाड़ी खुल गई। चन्द्र-

मोहनबाबू के मुख की मिसरी घुल गई ! उधर गाड़ी छूटी, इधर तबीतय टूटी ! कुछ दूर तक वे दौड़े; पर मृगतृष्णा से भी कहीं किसी की प्यास बुझी है ? वे प्लाटफार्म के पूर्वीय सीमान्त पर हताश होकर बैठ गये ! उनकी आँखों के सामने हरी-हरी रोशनियाँ थीं; पर उनका हृदय हरा-भरा नहीं था । उनकी दिवाली का देखते-देखते दिवाला हो गया ! धन्य संसार की क्षणिक प्रभा !!

४

पटने से हीरालालबाबू आ गये । एक दिन उनके साथ बैठकर हम 'जलपान' कर रहे थे । रसगुल्ले उड़ रहे थे, साथ ही गुलछर्रे भी उड़ते थे । तबतक चन्द्रमोहनबाबू आ गये । हीरालालबाबू ने उन्हें बड़े सम्मान से अपने पास बैठाया । हमको उस दिन की बात याद पड़ गई । हम मुस्कराने लगे । हीरालालबाबू ने पूछा—"क्या मन-ही-मन मुस्करा रहे हो ? चन्द्रमोहनबाबू को देखते ही तुम चुप रहकर आप-ही-आप हँस रहे हो; माजरा क्या है ? जरूर कुछ दाल में काला है ।" उनकी ऐसी बात सुनकर चन्द्रमोहनबाबू का चेहरा उतर गया । वे लगे बात टालने । हमने भी रहस्योद्घाटन करना उचित नहीं समझा । इसलिए हमने दूसरा ही प्रसङ्ग छेड़ दिया । बात का रुख पलटते ही चन्द्रमोहन बाबू फिर चहकने लगे । थोड़ी देर तक कुछ इधर-उधर की होती रही । गप-शप के बाद, हीरालालबाबू के चले जाने पर, वे दिल खोलकर अपने मनोगत भावों को स्पष्ट व्यक्त करने लगे ।

वे एक कृतज्ञ की तरह बोले—"भाई ! तुमने विश्वकल्याणकारी परमात्मा की प्रेरणा से उस दिन जो उपदेश दिये थे, वे मेरे-जैसे मलिन-मना मनुष्य को वैसे ही मिले जैसे भाग्यवान् को समुद्र-तट पर पड़े हुए रत्न अनायास मिल जाते हैं । उन उपदेशों का अमृताञ्जन मेरे नेत्रों के लिए कितना सदुपकारक हुआ, सो केवल मैं ही समझ सकता हूँ । कहकर समझा नहीं सकता ! सचमुच, यदि इन आँखों में उस लावण्यार्णव लोकललाम घनश्याम की छबि-छटा का एक छींटा भी पड़ा होता, तो ये आँखें कभी क्षुद्र-वीचि-मालिनी हावभावावर्त्तधारिणी नदियों में मज्जन करना पसन्द नहीं करतीं । ब्रजवासी विहङ्ग-गण कभी नन्दन-वन के कल्पद्रुम का स्वप्न भी नहीं देखते । द्रुम-मौलि-निवासशील शुक-सारिकाएँ, खपरैलों पर फैली हुई कद्दू-करैलों की बेल की ओट में, एक क्षण भी नहीं रहतीं । अनन्त नील गगन में जलधर-यूथ देखकर नृत्य करनेवाले मयूर कभी नीले मखमल के चँदोवे के नीचे नहीं नाचते । अब तक मैं समझता था—

'विश्लेषाय सरोजसुन्दरदृशामास्ये कृता दृष्टयः ।
किन्तु शोक ! महाशोक !!
'चिरं ध्याता रामा क्षणमपि न रामप्रतिकृतिः
परं पीतं रामाधरमधु न रामांघ्रिसलिलम् ।

चन्द्रमोहन बाबू का आत्मज्ञान देखकर हम आत्मविस्मृति में डूब गये। हमने कहा—"चन्द्रमोहन बाबू ! इस समय पश्चात्ताप के आँसुओं ने आपका अन्तर्घट पवित्र कर दिया। बहुत दिनों का जमा हुआ अन्तर्मल सुविचार की अन्तर सलिला में धुल गया। आपकी इस अन्तःशुद्धि ने हमारा अन्तस्ताप मिटा दिया। भगवान् करें, आप ही की तरह हमारे देश के अनेक 'रईसों के सपूत' अपना मनोमल पश्चात्ताप के पुण्य प्रवाह में प्रक्षालित कर डालें और अपनी अन्तर्गति की पवित्रता अन्तर्यामी भगवान् को दिखाकर यह प्रतिज्ञा करें—"भारतीय आदर्श का ध्यान रखते हुए आज से हम प्रत्येक महिला को माता-तुल्य मानेंगे।"

× × ×

सबसे बड़ा गौरव यही तो है हमारे ज्ञान का—
जानें चराचर विश्व को हम रूप उस भगवान का।
ईशस्थ सारी सृष्टि हममें और हम सब सृष्टि में।
है दर्शनों में दृष्टि जैसे और दर्शन दृष्टि में।
भगवान कहते हैं स्वयं ही, भेद-भावों को तजे,
है रूप मेरा ही मुझे जो सर्व भूतों में भजे।
जो जानता सब में मुझे सबको मुझी में जानता,
है मानता मुझको वही, मैं भी उसी को मानता॥

—मैथिलीशरण

हतभागिनी चन्द्रतारा

१

षोडशी चन्द्रतारा बैठी-बैठी नखों से पृथ्वी खोद रही थी। नरम-नरम कलाइयों में शरबती चूड़ियाँ थीं। बूटेदार 'चिक्कन' की चुस्त नीमास्तीन शरीर से सटी हुई थी। मखमली कत्था पाड़ की शान्तिपुरी मिहीन धोती थी।

"झीन बसन महँ झलकइ काया।
जस दरपन महँ दीपक छाया।।"

पीठ पर खुले केश पड़े हुए थे, मानों सुमेरु-गिरि के पृष्ठ-देश पर जलद-जाल फैला हुआ हो। सुराहीदार गरदन में एक जड़ाऊ सुनहरी कंठी थी। दीप-शिखा के आकार के-से दो नग-जड़े कुण्डल-किशोर कानों में शोभा पा रहे थे। नाक में यवाकार चपल नासा-मौक्तिक और अंग का गौर-वर्ण चन्दन-सा उज्ज्वल था। वह ज्योत्स्ना का ज्वार, प्रेम की प्रभा, शांति की शिला और चिन्ता के चित्र-सी मालूम होती थी। जान पड़ता था, जैसे काश्मीरी गुलाब में सौकुमार्य और सौन्दर्य तथा माधुर्य का एकीकरण घटित हुआ है, वैसे ही उसमें शोभा और सुशीलता तथा सरसता का समन्वय हुआ है।

उसके पास ही उसकी बूढ़ी माता बैठी हुई बक-बक कर रही थी। कोई सुननेवाला न था; पर वह झक में बकती चली जाती थी—"मेरी तो यही एक पेट-पोंछनी बेटी है। आगे-पीछे और कौन है? इसके विना अकेली कैसे जीती रहूँगी? भगवान् ने मेरी बेटे की साध इसी बेटी से पूरी की है; जिस दिन यह आँखों से ओट हो जायगी, उस दिन मेरी बात पूछनेवाला भी कोई न रहेगा। जब मैं दुनिया से उठ जाऊँगी तब तो इसकी कोई खोज-खबर भी न लेगा, इसके दरवाजे पर यहाँ से एक कुत्ते को भी कोई न भेजेगा। ससुराल में ही इसकी सारी जिन्दगी तमाम होगी। फिर कभी यह 'शाहपुर' का मुँह नहीं देखेगी। भगवान् ने पत्थर पर की दूब की तरह एक बेटी भी दी, तो उसका विवाह ले जाकर पहाड़-तली में करा दिया। अगर जीती-जागती बची भी रहूँगी, तो भर-नजर देखने के लिए तरसती ही रहूँगी। भगवान् ने स्वामी, पुत्र, भाई, भतीजा—सब छीन लिये। कोई ऐसा नहीं जो मेरा चोला छूटने पर, इसे तोष-बोध देने के लिए भी, यहाँ से जायगा। मुँहजली सास रोज-रोज गौने की साइत ही लिख-लिखकर भेजती है। हाँ! किसी का दुख-दर्द दूसरा नहीं समझता। उसको तो भगवान् ने दूध-पूत से निहाल किया है; पर मेरे तो 'मूलधन कठौती' यही एक बेटी है—

निर्धन के धन राम गोसाईं। भला, बाँझ क्या जाने प्रसूती की पीर? जब उस निगोड़ी को भी बेटी की बिदाई करनी होती, तब न वह समझती कि यह कितना कठिन काम है। जैसे उसकी आँखों का तारा एक ही बेटा है, वैसे ही मुझ अभागिन की आँखों की पुतली भी तो यही एक बेटी है। न भेजने का नाम लेने पर वह अंगार पर लोट जाती है; मगर यह नहीं जानती कि इसके चले जाने से मेरी आँखों के आगे अँधेरा छा जायगा।"

बुढ़िया बकती थी, सिसकती थी और कभी सिर पीटकर आह मारती थी। बेचारी चन्द्रतारा भी, ठंढी साँस लेकर, आँसू के घूँट पी जाती थी। जब रहा नहीं जाता था तब झुँझलाकर कहती थी—तू किसलिए विना बात-की-बात बोलती रहती है? हाय-हाय करने से कोयले से लिखी हुई किस्मत सोने के अक्षरों में लिख जायगी? नहीं देखती कि विधाता का करतब सब ठौर उलटा ही है? उसने बेर को मीठी और कड़वी नीम को हितकारिणी ओषधि बना दी। चाँद के मुख में भी कालिमा पोते विना वह नहीं रहा। गुलाब को काँटों की सेज पर सुला दिया। कमल को कीचड़ में गाड़ दिया। समुद्र को खारा बना दिया। जंगल में 'बन-डाढ़ा' लगा दिया। सुख के दिनों में खंजरीटों के पंख लगाकर दुःख के दिनों में मुर्गों के डैने जोड़ दिये। उसने सब जगह तो सरासर अन्धेरा ही किया है। इसलिए झींखना बेकार है। जो बात अपने बल-बूते से बाहर की है, उसके लिए दुखड़े का पचड़ा गाते रहने से क्या लाभ? मेरे ही विना तेरा घर सूना हुआ जाता है, तो ले, मैं तुझे छोड़कर अब कहीं नहीं जाती। तू जहाँ कहेगी, वहीं चुपचाप, मन मारे, सूधी गाय की तरह बैठी रहूँगी। तेरा दुःख मुझसे देखा न जायगा। जो कुछ भली-बुरी अपने ऊपर बीतेगी उसे, तुझे सुखी देखकर, सहती रहूँगी। तू वाम विधाता की बाँकी-टाँकी नहीं मिटा सकती; नाहक दिन-रात रो-रोकर बची-बचाई आँखों को भी फोड़ रही है! दुःख का चर्खा कातना छोड़कर चुप रहा कर। "जाहि बिधि राखै राम, ताही बिधि रहिये।"

इतना कहते-कहते वह बिलखकर रो उठी। हृदय में भीषण ज्वालामुखी का प्रस्फोट हुआ। शरीर आग्नेय पर्वत की तरह जल उठा। आँखों के आँसू रोकते-रोकते दिल का दर्द दुगुना हो गया। धड़कन से छाती दलकती रह गई। काँपते-काँपते कलेजा मुँह को आ गया।

२

शाहाबाद (आरा) जिले का 'सहसराम' नगर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व का है। उसी नगर के निकट 'अमराई' नाम की—कायस्थों की—एक मशहूर

बस्ती है। वहीं चन्द्रतारा की शादी हुई थी। गाँव का नाम तो 'अमराई' है; पर वसन्तकाल में वहाँ एक भी हरा-भरा पल्लव नहीं दीख पड़ता! विवाह में 'चन्द्रतारा' और 'वंशलोचन', दोनों कमसिन थे। दोनों ही आप-आपके सुन्दर थे। वंशलोचन मंडप का मणिदीप था, तो चन्द्रतारा अँधेरे घर का उजाला थी। बाल-विवाह की महिमा के कारण (!) दोनों ही यह नहीं जानते थे कि 'कोहवर' के सुख का स्वाद कितना सरस होता है। वास्तव में, जबतक वर और कन्या दोनों की अवस्था विवाह-जन्य प्रकृत आनन्द का सच्चा अनुभव प्राप्त करने योग्य नहीं रहती, तबतक रसाम्भोधर की पूर्ण वृष्टि किसी तरफ नहीं होने पाती।

विवाह हुए कई साल बीत गये। बूढ़ी माँ कभी गौने का नाम तक नहीं लेती। वंशलोचन की माँ, अपने घर में सुघड़ दुलहिन उतार लेने की लालसा से, दिन-रात व्यग्र रहती थी। तारा की सुन्दरता का सन्देश अमराई के लोगों के कानों तक पहुँच चुका था। टोले-मुहल्ले की लुगाइयाँ, बड़ी उत्सुकता से, वंशलोचन की माँ से पूछा करती थीं—"बहू की बड़ाई सुनते-सुनते तो कान पक गये। न जाने किस दिन 'मुँह-देखी' करके कलेजा ठंढा होगा। अब तो अगर बुढ़िया अपनी बेटी न भेजे, तो वंशलोचन का दूसरा विवाह करा देना चाहिए। कबतक कोई बाट जोहे।" पास-पड़ोस की स्त्रियों की बात सुनकर, वंशलोचन की माँ, झुँझलाकर, अपनी समधिन पर आक्रोश की वर्षा करने लगती थी।

हिन्दू-विश्वविद्यालय बन्द होने पर जब-जब वंशलोचन बनारस से घर आता था, तब-तब उसके माता-पिता, बड़े प्रेम से बुढ़िया के पास गौने का दिन निश्चत करके भेजते थे। किन्तु वह ऐसा पेंच ऐंठती थी कि बराबर तरह-तरह के हेर-फेर करके गौने का दिन बैरंग वापस कर देती थी! दो लहराती हुई स्नेह-सरिताओं का संगम रोकने के लिए बुढ़िया बीच में विशाल-शैल-शृंखला-सी बन जाती थी। न जाने ऐसे गहन पर्वतों के लिए इन्द्र का वज्र कहाँ सोया रहता है!

३

वह बुढ़िया पाताल की डाइन थी। उसने बद-बदकर न जाने कितने घरों का काम तमाम कर दिया था। कितनों की माँग धोकर कोख जला डाला था। कितनों की सेज और गोद सूनी करके बसे-बसाये घरों को उजाड़ डाला था। उसके डर से वन-वन की चिड़ियाँ रोती थीं। किन्तु जितना टोना बुढ़िया जानती थी, उतना तो, बल्कि उससे भी बढ़कर चन्द्रतारा ही जानती थी; परन्तु दोनों के टोने में आकाश-पाताल का अन्तर था। तारा के नोकदार नयनों में ही एक सलोना

टोना था। वह काम-वाण और 'राम-वाण' दोनों का काम कर सकता था ; पर 'लक्ष्य' से सामना भी तो हो ?

विधि-विपाक बड़ा ही विलक्षण है ! ऐसी हृदय-हीना माता के गर्भ से ऐसी सहृदय सुन्दरी ! लोहे की भीम मूर्त्ति से नन्ही-सी कनक-पुतली का आविर्भाव ! धन्य है सृष्टि-वैचित्र्य ! विषधर भुजङ्ग के मस्तक में दीप्तिशाली मणि ! सीपी के उदर में मंजुल मोती ! भिल्लवंश में शबरी-सी साध्वी ; कैवर्त्तवंश-वैजयन्ती सत्यवती केवट की कन्या ! कंटकाकीर्ण शाखाओं में गुलाब ! कँटीले मृणाल तन्तुओं से जकड़ा हुआ जलज ! 'विधि-गति बड़ी विपरीत विचित्रा', 'बिधि-प्रपंच गुन-अवगुन साना', 'कनकौ पुनि पखान ते होई'—'पाट कीट ते होई, ताते पाटम्बर रुचिर !'

४

"उर अभिलाष निरन्तर होई। देखिय नैन परम प्रिय सोई ॥"

—तुलसी

तारा अबोध बालिका तो थी नहीं। बरसों से उसके कमनीय-कलेवर-कानन में वसंत ने बसेरा लिया था। यौवन-वसंत-विभ्रान्त होने के कारण उसके कोमल हृदय पर सतत-शमनशील संसार का सिक्का जम गया था। उसके शरीर और मन की अब वह बीती दशा नहीं रही। सौन्दर्य्य क्षेत्र में पुष्ट बीज उग गये। हास्य की गति मन्द हो गई। चरणों की चंचलता चक्षुओं ने चुरा ली। प्राणों में पुलक का प्रवेश हो गया। बौरे हुए वसन्त-वल्लभ विटपी पर बैठकर जब वन-विहंगिनी वंशी बजाने लगती थी, तब उसे रोमाञ्च हो आता था। जब आकाश प्रेमवारि-धारा से धरणी-तल को अभिषिक्त करता था, तब तारा के नेत्र उससे बाजी मार ले जाते थे। जब धरातल पर धवलोज्ज्वल कौमुदी छिटकती थी, तब उसकी अन्तरात्मा अन्तरज्ञो पीडा के अन्धकार पूर्ण पथ पर भटकती फिरती थी। पथ-प्रदर्शक का पता ही नहीं, अनुयायी अभागा क्या करे ?

आँखों ने अश्रु-समुद्र उमड़ा दिया था ; पर आत्मा की प्यास नहीं बुझती थी। समुद्र की तरह पूर्णचन्द्र को अंकस्थ करने के लिए हृदय बाँसों उछल-उछलकर धरती में लोट जाता था, अन्तरात्मा उसे पुचकारकर उठाती थी, उसके धूलि-धूसरित अङ्ग को प्यार से पोंछती थी ; पर शान्ति कहाँ ? कौशल्या के क्रोड़ में किलकते हुए कौशल-किशोर-कलाधर को करस्थ करने के लिए क्रन्दन करते थे ; वह कहती थी कि अमूल्य रत्नों के प्रकाश-प्राङ्गण में खेलो। किन्तु चकोर क्या कोयले की आग खाकर चन्द्र-दर्शन की चोखी चाट छोड़ता है ?

५

न आँखों में बसा जो क्या, भला मन में बसेगा वह ?
न दरिया में हला जो वह, समुन्दर में हलेगा क्या !

—'हरिऔध'

बलिहारी है बाल-विवाह की ! बचपन की देखी हुई सूरत आज चित्त पर चढ़ाये नहीं चढ़ती । चाहे लाख दिमाग दौड़ाया जाय, आकाश में कुसुम नहीं मिल सकता । जब मंडप और कोहबर में युगल जोड़ी मौजूद थी, तब न तो प्रेम की पक्की रोशनाई ही थी और न मदन-चित्रकार ही था । किसी को कड़ी कोरदार कनखी का कौशल मालूम ही नहीं था । दिल की दीवार पर तसवीर तो खींची नहीं गई, आँखों को बन्दकर दिमाग को चक्कर में डालने से क्या ? आँखों के सामने दिगन्त-व्यापिनी शून्यता झूल रही थी । कोई चित्रलेखा तो थी नहीं, जो हृदय का हाहाकार एक चित्र-पट में केन्द्रित कर देती । अदृश्य मूर्त्ति को भीतर लेने के लिए हृदय का कपाट खुला जा रहा था । चित्त-भित्ति पर चारु चित्र अंकित करने के लिए प्राण व्यग्र थे ।

स्नेह की स्याही, इच्छा की लेखनी और मदन-चित्रकार मौजूद ; मगर वह मधुर मूर्त्ति कहाँ, जिसका चितचोर चित्र अंकित किया जाय ? मानस-सरोवर में कोई साकार सरोज विकसित नहीं, चंचल-चित्त-चंचरीक को कहाँ चैन मिले ? हृदयाकाश में पूर्णेन्दु का अभाव, चित्त-चकोर दत्तचित्त होकर किसकी सुधा-माधुरी हृदयंगम करे ? समुद्र-तल के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी, बिना जहाज के, कहाँ बैठकर विश्राम करे ?

६

चन्द्रतारा की प्यारी सखी जयन्ती, दो-तीन साल के बाद, अपनी ससुराल से आई थी । खुली छत पर दोनों बैठी थीं ; दोनों की अविरल प्रीति चटकीली चाँदनी में खिल रही थी । चूने से पुता हुआ पक्का मकान, चाँदनी रात में, बिल्लौरी महल का भ्रम पैदा कर रहा था । दोनों सखियाँ, सामाजिक बन्धनों की जटिलता पर, अपने-अपने स्वाभाविक हृदयोद्गार प्रकट कर रही थीं ।

जयन्ती ने बातों-ही-बातों में कहा—"प्यारी सखी ! तेरी माता तुझे अच्छे-अच्छे भोजन, अच्छे-अच्छे कपड़े और सुख के सभी अच्छे-अच्छे सामान देती है । तुझे बिना खिलाये वह नहीं खाती । वह देखती रहती है कि कभी किसी कारण से तेरा मुख तो नहीं कुम्हलाया । वह पूछती रहती है कि तुझे कभी किसी वस्तु के

अभाव से कष्ट तो नहीं होता। तेरी तबीयत तनिक भी खराब होती है, तो वह बेहोश-सी हो जाती है। भला कह तो माता के ऐसे अनूठे प्यार को तू क्यों बला समझती है? क्या इसीलिए कि तुझे सयानी होने पर भी वह ससुराल नहीं भेजती? मैं यह भी जानती हूँ कि उसका हठ ऊँट की पकड़ हो गया है; पर क्या उस हठ में निष्ठुरता है? नहीं; उस हठ-रूपी मठ में मातृ-हृदय-रूपी संन्यासी है, जो संसार से विरक्त हो, वात्सल्य का कषाय-वस्त्र पहनकर, अटल भाव से बैठा हुआ है।'

तारा ने कहा--"प्यारी सखी! मेरे हृदय की अवस्था का अनुभव तुझे नहीं हो सकता। तेरे हृदय में जो मूर्त्ति बसती है, उसकी प्रतिकृति अब तेरी गोद में मौजूद है। तू अब दो-दो प्याले अमृत पीती है; मैं एक ही प्याले में निष्ठुरता का विष और प्यार का अमृत मिश्रित करके पीती हूँ। तू संसार में प्रवेश कर चुकी है, मैं उसके द्वार पर, न जाने कब से, सिर टकराती हूँ। पूर्णचन्द्र के अंक में बैठी हुई रोहिणी के लिए संसार में विष ही कहाँ है? तू अमृतमयी हो गई है, इसलिए तेरी नजर में संसार भी अमृतमय ही दीख पड़ता है। मेरी दशा का दरिया तेरी कल्पना-पिपीलिका नहीं पार कर सकती। तेरा हृदय भुक्तभोगी नहीं है; अगर होता तो मेरा हृदय उसी को आलिंगित करके सुख-शान्ति का धनी बन जाता।"

जयन्ती बोली—"प्यारी सखी! घबरा मत। तेरे सुख के दिन हर घड़ी तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। जो नयन-नलिन आज अश्रु-कुंड में डूबे रहते हैं, वे किसी दिन जल-तल भेद कर किसी मानस-सरोवर के हृदय के हार बनेंगे। जिन कानों में आज कल-कंठ-कूजन भी कर्कश मालूम होता है, उन्हीं कानों में एक दिन बिजली की कड़क भी मधुर वीणा-सी बज उठेगी। जो जिह्वा अहर्निश नाम-माला जपते-जपते कृश हो गई है, वह किसी दिन अमृत-कुंड की मीन बनी रहेगी। जो हृदय आज विदीर्ण हुआ जा रहा है, वह एक दिन किसी हृदय पर हार-सा झूलता रहेगा। जो बाहुलता आज वायु-विमर्दित वल्लरी-सी क्षीण हो रही है, वह एक दिन किसी कमनीय कंठ में कनकपाश-सी पड़ी रहगी। जो मुख-कमल आज मुर्झाया हुआ है, वह एक दिन किसी सूर्य से आँख मिलाकर खिल उठेगा और भ्रमरों का आनन्द-केन्द्र बना रहेगा····।"

बीच ही में बात काटकर तारा बोली—

"सजनी! मन पास नहीं हमरे, तुम कौन को का समझावति हो?"

× × ×

"जिय पै जु होइ अधिकार तो विचार कीजै,
लोक-लाज भलो-बुरो भले निरधारिये।

नैन स्रौन कर पग सबै परबस भये,
उतै चलि जात इन्हैं कैसे के सम्हारिये।
'हरीचन्द' भई सब भाँति सों पराई हम,
इन्हें ज्ञान कहि कहो कैसे के निवारिये,
मन में रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपै बसै जामें ताहि कैसे कै बिसारिये।"

"लो देखो, आज यह एक पत्र आया है। न जाने किसने काशी से भेजा है। इसमें दो ही पंक्तियाँ हैं; पर उनके एक-एक अक्षर मेरे हृदय को अनुप्राणित कर रहे हैं।" जयन्ती ने पत्र लेकर देखा, उसमें इतना ही लिखा था—

"न जाने हम किस उमीद पर दिल शाद करते हैं।
न देखा जिसका मुँह हम उसीको याद करते हैं।"
—तुम्हारा 'लोचन'

तारा के हृदय से बढ़कर उसका प्रभाव जयन्ती के हृदय पर पड़ा। बड़ी देर तक जयन्ती मौन रही। उसका मानस-मन्दिर प्रेम के उद्योत से उद्भासित हो उठा। उसकी नस-नस में प्रेमोद्रेक भर गया। उसका चित्त चंचल और चिन्तित हो गया। वह दूसरे दिन पत्रोत्तर लिखवा देने की बात कहकर, तारा को साश्रु-लोचनों से देखती हुई, घर चली गई।

७

पावा परम तत्त्व ज जोगी। अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी॥
भयउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
—'तुलसी'

हिन्दू-विश्व-विद्यालय में पूर्णिमा के दिन बड़ी चहल-पहल थी। महात्माजी का व्याख्यान होनेवाला था। वंशलोचन दीवारों पर फूल-पत्तियाँ सजा रहा था। सहपाठियों में चुहलबाजी हो रही थी। रह-रहकर मोद-विनोद-जन्य अट्टहास से समस्त व्याख्यान-शाला प्रतिध्वनित हो उठती थी। इसी बीच में एक सहपाठी ने, हँसते हुए आकर, वंशलोचन के हाथ में एक चिट्ठी दी। लाल लिफाफे पर एक रंगीन चित्र था। उसमें एक गुलाब के फूल पर भौंरा मँड़ला रहा था। उस चित्र को बड़े आग्रह से सहपाठियों ने देखा। फिर एक बार अट्टहास से समूचा 'हाल' गूँज उठा। पत्र को जेब में रखकर वंशलोचन अपने काम में लग गया; पर पत्र पढ़ने के लिए

उसका हृदय इतना उत्कंठित हो गया कि वह अपने साथियों की आँखें बचाकर धीरे से निकल भागा।

एकान्त में, जाकर, काँपते हुए हाथों से उसने वह लिफाफा खोला। पत्र निकालते ही उसे अपनी उमड़ी हुई आँखों से लगा लिया। हृदय-स्पन्दन सघन हो उठा। अनाड़ी आँसुओं ने अनर्थ कर डाला। बिना पढ़े ही पत्र को जेब में रखकर वह आँसुओं से मुँह धोने लगा। आँसुओं का अरमान पूरा हो गया, वंशलोचन का अरमान यों ही रह गया! बड़ी देर तक अपना-आपा भूलकर वह संज्ञा-हत की भाँति वहीं बैठा रहा। उसके हृदय देश की चिन्ता-नदी शोकावर्त्त-परिपूर्ण थी। उसकी आत्मा उसमें डूबते-डूबते वाह्यज्ञान-शून्या हो गई। वह पत्र पढ़ने की सुध भूल गया। अङ्ग शिथिल हो गये। आँखों में झपकियाँ आने लगीं।

कुछ घंटों के बाद, जब उसकी नींद खुली तब उसे महात्माजी का व्याख्यान याद पड़ा। वह दौड़ने की इच्छा करने लगा, पर दौड़ न सका। वह धीरे-धीरे कालेज की ओर चला। जब उसने अपनी अलसौंहीं आँखों को पोंछने के लिए जेब से रूमाल निकाला तब अनायास वह प्रेमपत्र भी हाथ में चला आया। पत्र में लिखा था—

"सुख और चैन भी तुम हो, करार भी तुम हो।
मेरे आधार भी तुम हो, सिंगार भी तुम हो॥
जो तुम हो मेरे तो सारा जहान मेरा है।
नहीं तो, कुछ भी नहीं, हर तरफ अँधेरा है॥"
"छूट जायें गम के हाथों से जो निकले दम कहीं।
खाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं औ' हम कहीं॥"

—एक हृदयाकाश की ध्रुव 'तारा'

'आरा' जिले के दक्षिण पूर्व-भाग में, यक्षिणी भवानी का एक प्राचीन मन्दिर, घने झाड़खंड के बीच में विराजमान है। चैत्र-नवरात्र में वहाँ, हर साल, एक मशहूर मेला लगता है। प्रति वर्ष असंख्य स्त्रियाँ, अपनी मन्नतें पूरी करने के लिए वहाँ जाती हैं। जयन्ती भी, अपनी पड़ोसिनों के साथ, अपने नवजात पुत्र की मन्नत पूरी करने के लिए, जाने को तैयार हुई। देखा-देखी तारा की भी इच्छा

हुई। उसने अपनी माता के सामने इच्छा प्रकट की। माता ने टोले-मुहल्ले की स्त्रियों और जयन्ती के साथ, केवल दिन-भर के लिए, मेले में जाने की आज्ञा दी। माता का आदेश शिरोधार्य करके 'झम्मान-गाड़ी' पर अपनी सहेली जयन्ती के साथ तारा मेले में चली।

चलने के समय बुढ़िया ने चेतावनी दे दी थी कि 'मेले-ठेले में उचक्के-उठाइगिरे बहुत घूमते हैं। बड़े घराने की बहू-बेटी की तरह, संभलकर रहना, स्वच्छन्द मत घूमना। नहीं तो बड़ी शिकायत होगी और प्रतिष्ठा में बट्टा भी लगेगा। तुम्हारा सिन्दूर देवीजी को माना गया है। चढ़ाकर प्रसाद ले लेना।'

इतना कहते ही, एक लड़के ने, तारा के दक्षिण भाग में, जोर से छींका। बुढ़िया उसे मारने दौड़ी; पर भावी को कौन मेट सकता है? जो होनी होती है, वह होकर ही रहती है। बुढ़िया ने सैकड़ों घर फूँककर तमाशे देखे थे, और जब अपने घर के जलने की सूचना मिली, तब घबराकर एक निर्दोष बालक को मारने दौड़ी।

इधर 'शाहपुर' से तारा चली थी और उधर 'अमराई' से वंशलोचन भी मेले में चला! अपने गाँव के पास का इतना बड़ा मेला दिखाने के लिए वह हिन्दू-विश्व-विद्यालय के कई सहपाठी विद्यार्थियों को भी अपने साथ लेकर चला था। मेले में पहुँचकर वंशलोचन, अपने साथियों सहित, सेवा-समिति के स्वयंसेवकों में मिल गया! वंशलोचन और उसके साथियों की स्तुत्य सेवा-प्रणाली, अदम्य उत्साह और अभि-नन्दनीय साहस तथा निश्चल निर्भीकता देखकर स्वेच्छा-सेवकगण और सेवा-समाज-संचालक-महाशय अतिशय आप्यायित हुए।

वंशलोचन के ललित लोचनों ने न जाने कई बार अपनी आँखों की 'तारा' को देखा होगा; पर मेले में कौन किसको पहचानता है? संसार में ऐसे असंख्य मनुष्य रोज हमारी नजरों के सामने गुजरते हैं, जिनसे किसी-न-किसी दिन अवश्य ही किसी तरह का हमारा सम्बन्ध स्थापित हो जायगा या हो जाता है; पर क्या वे हमें या हम उन्हें पहचानते हैं? फिर मेला मायामय संसार से क्या कम है।

६

दुष्टों की दृष्टि-शृंखला को सगर्व तोड़ती हुई दोनों सखियाँ देवी-दर्शन के निमित्त मन्दिर में गईं। वहाँ एक पाजी पंडे के पंजे में फँसने से दोनों को बचाकर वंशलोचन ने उन्हें ठीक-ठिकाने पहुँचा दिया। शाहपुर की एक स्त्री 'वंशलोचन' को एक टक से निहारने लगी और शेष स्त्रियाँ उसे असीसने लगीं। वंशलोचन के चले जाने पर उस स्त्री ने कहा—"इस लड़के की शक्ल-सूरत कदाचित् परिचित

मालूम होती है। मुझे सन्देह है कि तारा का वर यही तो नहीं है।" जयन्ती ने हँसकर कहा—"हाँ, हाँ, मुझे भी ऐसा ही मालूम होता है, इसीसे न बेचारा यहाँ तक पहुँचा गया है, वह पहचान गया, अपनी माता से कहे बिना अब न मानेगा।" अपनी प्यारी सखी की बात सुनकर तारा ने हँसकर, त्योरी चढ़ाकर, झुँझलाहट के साथ कहा—"तू इसी लिए मुझे मेले में अपने साथ लाई है कि सबके बीच में मेरी फजीहत करेगी?" जयन्ती ने मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा, बस कर, रहने दे, लज्जा निभ गई; सिन्दूर-प्रसाद लेकर पहले पाँच बार माँग भर ले, तब पीछे झनकना।"

एक स्त्री ने तारा से कहा—"तुम्हारे ललाट की बिन्दी आज खूब खुलकर नहीं खिली क्यों? जयन्ती के ललाट पर बिन्दी जैसी खुलती है, वैसी तुम्हारे भाल की बिन्दी उगी हुई नहीं देख पड़ती।" इतने में फिर छींक हुई! जयन्ती कहने लगी—"किसकी नाक में 'पीनस-रोग' हो गया है, जो--जब कभी सखी के सिन्दूर की चर्चा चलती है तब—झट छींक देता है! निगोड़ा नाक मलकर क्यों नहीं रह जाता?"

तारा ने चौंककर कहा—"सखी! जरा कान देकर सुन, मेले में बड़ा हल्ला मचा हुआ है! दोनों, कान लगाकर, गुलगपाड़ा सुनने लगीं। मालूम हुआ कि कुहराम मच रहा है। दोनों सखियाँ घूम-घूमकर पूछने लगीं कि कहाँ और किधर शोर-गुल मचा हुआ है। किसी ने कुछ कहा और किसी ने कुछ। असलियत का पता किसी को मालूम न था। सब-के-सब बीसों तरह की कानों-सुनी बातें कहते थे। परन्तु घटना-स्थल की ओर से आते हुए एक प्रत्यक्षदर्शी ने कहा—"सेवा-समिति के एक स्वयं-सेवक को हैजा हो गया था, वह देखते-देखते चल बसा!"

यह शोक-संवाद बिजली की तरह मेले में फैल गया! हर जगह इसी की चर्चा होने लगी। सेवासमिति की सुव्यवस्था और सुविधा-सम्पन्न सेवा-विधि को सब-के-सब लोग जहाँ-तहाँ सराहते थे और स्वर्गीय स्वयंसेवक की सद्गति के लिए समवेदना-प्रकाश-पूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करते थे। तारा और जयन्ती करुणापूर्ण कौतूहल से कातर हो गई थी। अपने उस सहायक की मृत्यु का सन्देह कर, दोनों सखियाँ, आगे-पीछे, सेवा-समिति-कैम्प की ओर चलीं। वहाँ जाते ही कतिपय पर-दुःख-कातरा-स्त्रियों के मुख से निकले हुए ये अमंगल शब्द तारा के कानों में पड़े—'हाय! हाय!! हाय!!! अभी बेचारे का गौना भी नहीं हुआ था! अभी तो काशी में पढ़ता ही था!" यहाँ तक सुनते ही 'तारा' के हृदय पर एकाएक वज्रातंक छा गया! भूकम्प-भीषण हृत्कम्प से अचेत होकर वह प्रचंड-पवनोन्मूलित लता की

तरह पृथ्वी-तल पर गिर पड़ी ! चारों ओर शोर मच गया। जबतक जयन्ती उस घटनास्थल पर मूर्छित होने के लिए पहुँची, तबतक तारा अपने स्वर्गीय स्वामी की संगिनी बनकर सती-लोक को सिधार गई !

हा ! हन्त !! कौन जानता था कि श्मशान-घाट की सैकत शय्या ही 'तारा' और 'लोचन' की पुष्पशय्या होगी ? किसको मालूम था कि गंगा का पवित्र पुलिन ही, 'तारा' और लोचन का मिलन-मन्दिर होगा ! कब ऐसी आशा थी कि जिनके प्राण विरहानल-ज्वाला में जल रहे थे, उनकी स्थूल काया एक ही चिता की अग्नि में भस्मीभूत होगी ?

"हमने अफलाक को सौ रंग बदलते देखा !
पर ये किस्मत के नविश्ते को न टलते देखा !"

प्रायश्चित्त

Beauty, blemished once, for ever's lost.

—Shakes.

अनुकूल आद्या-शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्त्ति है।
नर-जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वती,
हा दैव ! नारी-जाति की कैसी यहाँ है दुर्गती !

—'भारत-भारती'

× × ×

She's adorned
Amply that in her Husband's eye looks
Lovely—
The Truest Mirror that an Honest Wife
can see her Beauty in.

—John Tobin,

× × ×

It is not a lip or eye we Beauty call
Bur the joint force and full result of all.

—Pope,

१

प्रयाग में यमुना-पुल के पास बम्बई के सेठ तेजपालगोकुलदास की एक धर्मशाला है। उसके सामने फूलपुर की रानी का जगन्नाथ-मन्दिर है। उस जगदीश-मन्दिर के फाटक पर प्रतिदिन तीनों काल शहनाई बजती है। धर्मशाला में उतरने वाले यात्रियों को शहनाई की सुरीली आवाज बड़ी मीठी और सुहावनी लगती है। उसी धर्मशाला के ऊपरवाले सुसज्जित कमरे में हम अपनी पत्नी के साथ बातें कर रहे थे।

आसमान में मेघ कुश्ती लड़ रहे थे। कभी-कभी भुजदंड ठोंककर गरजते थे। रह-रहकर आकाश से जोर-शोर के साथ पानी की बौछार छूटती थी। वर्षा का जोर सिर्फ थोड़ी देर के लिए टिकता था। वर्षा जब बन्द हो जाती थी, तब पृथ्वी से सोंधी सुगन्ध उठकर वायुमंडल को सुवास से भर देती थी।

धर्मशाला के आँगन में मौलिश्री का एक वृक्ष है। उसके हरे-भरे पल्लवों के अंचल में छोटे-छोटे फूल जुगुनू-से जगमगा रहे थे। वे जब उद्धत वायु की चपत खाकर चू जाते थे, तब पल्लव भी उनके लिए आँसुओं की बूँदें टपका देते थे। हमें झट वह दिन याद पड़ जाता था, जिस दिन हम अपनी पहली पत्नी के साथ उसी धर्मशाला की खुली छत पर शरच्चन्द्रिका की मुस्कान-माधुरी चख चुके थे। उस समय मौलिश्री के फूल चू-चूकर आँगन को पुष्पमय बना रहे थे। उनकी भीनी-भीनी महँक हवा को नशीली बना रही थी। हमारी पत्नी हमारे मुखड़े के पास अपना सुकोमल हाथ ले जाकर बड़े अनुराग के साथ कह उठती थी—

'फूल-सी जात ह्वै हौंहूँ तिते, कर तोरत फूल न मेरे अघात हैं।
फूलेई फूल हौं लावति हौं,मुख रावरो देखि कली भयो जात हैं।"

हमारा स्मृति-पट फिर भी आज उसी अभिनव रस-रंग से रंजित हो उठा! हमारे हृदय के नेत्रों के सामने वही धुँधला चित्र था और इन चर्मचक्षुओं के सामने अनन्त शून्यता थी। अनायास मुस्कान की एक पतली रेखा हमारे मुखड़े पर खिंच गई। बीते हुए दिनों का धुँधला चित्र देखकर आँखों ने दो-चार करुणाबिन्दु टपका दिये!

पत्नी—यह क्या? इस समय आप किसी स्वप्न-लोक में विचरण कर रहे हैं क्या? भला हँसी तो हँसी सही, यह रुलाई—बेवक्त की शहनाई—कैसी?

हम—क्यों? बिजली के साथ क्या वृष्टि नहीं होती? मुस्कान जिसे मोती माला पहनाती है, उसके लिए आँखें बेचारी स्फटिकमाला भी न गूँथें? कली के चिटकने पर ओस की बूँदें उसका मुँह नहीं धोतीं?

पत्नी—बातें बनाना छोड़िए, ताड़ गई!

हम—क्या ताड़ गईं।

पत्नी—जिसकी स्वर्ण-खचित प्रतिमा मेरे हृदयतल पर झूल रही है, उसी की मीठी-मीठी स्मृति! और क्या?

हम—सचमुच, यद्यपि वह तुम-सी सर्वाङ्गसुन्दरी न थी, तथापि उसका हृदय जितना सुन्दर था, उसके पासँग में भी तुम्हारी यह सुन्दरता नहीं है। उसका हृदय तुम्हारे कुसुम-सुकुमार अंग से भी कोमल, तुम्हारी विलास-लीला से भी मधुर, तुम्हारी श्वास-वायु से भी सुगंधित और तुम्हारी दाडिम-दन्तावली से भी उज्ज्वल था।

पत्नी—मैं मानती , सब कुछ था। किन्तु उसका आदर करनेवाला, उसका प्रकृत मूल्य जाननेवाला नहीं था! सुनती हूँ, जैसी उनकी शक्ल-सूरत भोली-भाली थी, प्रकृति भी वैसी ही सरल थी; परन्तु इतने पर भी आपको प्रेम और शान्ति का खजाना पाकर संतोष प्राप्त नहीं हुआ था! सच है, वसन्त से भी सुन्दर वस्तु पाकर जिसकी तृष्णा तृप्त नहीं होती, उसे भगवान् श्मशान से भी भयंकर वस्तु प्रदान करते हैं।

हम—क्या तुम्हारा हृदय श्मशान से भी भयंकर है? क्या हम अपनी स्वर्गीया हृदय-देवी का आदर नहीं करते थे? क्या हम उसके अद्भुत गुणों का मूल्य नहीं जानते थे? किस कारण तुम कहती हो कि उसने हमें यथेच्छ रीति से सन्तुष्ट नहीं किया था?

पत्नी—मेरा हृदय श्मशान-सा भयंकर है कि मैं पुरुष-समाज की निन्दा करती हूँ, उससे घोर घृणा करती हूँ। आप मेरे सौभाग्य-सर्वस्व हैं; पर मैं आपको भी हृदय-हीन ही कहती हूँ! इसी से मेरा हृदय मनियारा साँप से भी भयंकर हो गया है! यदि उस अपनी स्वर्गीया हृदय-देवी के लिए आपके हृदय में थोड़ा भी वास्तविक आदर का भाव होता, तो आप उसके अनमोल गुणों का मूल्य अवश्य ही समझते। यदि उसके उदार एवं मधुर भावों से आपकी सारी वासनाएँ और कामनाएँ तृप्त हो गई होतीं, तो आप एक ही सौदा कई हाथों में अदल-बदलकर बेचने का दुस्साहस न करते।

हम—हाँ, यथार्थ है। किन्तु रमणी-लोक में सौन्दर्य्य और माधुर्य्य, कोमलता

और करुणा, सहृदयता और सदयता, प्रेम और शान्ति, आनन्द और पवित्रता का उमड़ा हुआ समुद्र लहरा रहा है। उसमें जब-जब गोते लगाये जायँ, एक-से-एक अनूठे रत्न मिलते हैं। उस रत्न-लाभ का लोभ-संवरण करना पुरुषों की बुद्धि की पराकाष्ठा से परे है।

पत्नी—रहने दीजिए इन थोथी दलीलों को। उन चमकीले रत्नों की ज्योति-लहरी पुरुषों की हृदय-हीनता का कलंक-प्रक्षालन नहीं कर सकती। (टन् टन् टन्) यह लीजिए, घड़ी भी मेरे 'हाँ' में 'हाँ' मिलाकर मेरा पक्ष-समर्थन कर रही है!

२

तीन बज गये। थोड़ी रात रहते ही उठकर हम शौचादि क्रिया से निवृत्त हो गये। नित्य-कृत्य से निबटकर, भोर की गाड़ी से घर जाने के लिए, हम स्टेशन चले गये। गाड़ी में बेढब भीड़ थी। पत्नी को जनाना-कम्पार्टमेंट में, बुढ़िया दासी के साथ, बैठा दिया। बगल में ही मर्दाना-खाना था, उसी में हम बैठ गये। हमारे पास ही बैठकर एक बंगाली महाशय बड़े मधुर स्वर से गा रहे थे। उनकी सुरीली तान सबका ध्यान अपनी ही ओर आकर्षित कर रही थी। अपनी ओर सबको सुरुचिपूर्ण दृष्टिपात करते हुए देखकर, विशेष उमंग के साथ, कोमल कंठ से, वे गा उठे—

बाजिल बाँसेर बाँशरी।
बुझि बने बशि बाजाइछे बन-बिहारी॥
वृषभानु बाला बलि बोले बाँशी बाजीछे।
बाँका बनमाली बिने बाज बुके बिंधिछे॥
ब्रजबाला बिरहेते ब्याकुल बनवारी।
बलियाछि बारे बारे बंकिम वदने॥
वृथा बाँशी बाजायो ना बिजन बिपिने।
वृन्दाबनवासी बाँशिर बैरी।
बसन्त बाताशे बान बिंधेछे॥
बँधुर बाँशीते विष बरषिछे।
बाजीछे बाहार बसन्त टौरि॥

बंगाली महाशय का गान सुनकर एक पंजाबी संन्यासी, जो अबतक चुपचाप बैठे हुए थे, अपनी गाने की उत्सुकता नहीं रोक सके। सबको चकित करते हुए, आप-से-आप, वे बड़े जोशीले स्वर से गा उठे—

किसी दुनिया के बन्दे को अगर शौके-हुकूमत हो।
तो मेरा शौक दुनिया में फकत इनसाँ की खिदमत हो॥

भरम अपना कोई जालिम अगर जोरो-जफा समझे।
मुहब्बत हो धरम मेरा, मेरा ईमान उल्फत हो।।
रुपये को खूबिये किस्मत से गर कोई खुदा समझे।
उसे मैं ठीकरी समझूँ मुझे ऐसी कनायत हो।।
करें रौशन कहीं महलों में गर बिजली की कन्दीलें।
तो मेरी कुटिया में मिट्टी का दिया जलने से राहत हो।।

पंजाबी संन्यासी-बाबा का गान सुनकर सब लोग मुक्त कंठ से धन्य-धन्य कह उठे। इन्हीं रसों के मिश्रण का सुख एकत्र ही अनुभव करते-करते हमारी आँखों में झपकियाँ आने लगीं। हमारी अर्द्ध-निद्रित आँखों में, गाड़ी के साथ-साथ दौड़ती हुई शस्य-श्यामला भूमि की शोभा-लहरी, लहरा रही थी। ऊपर आकाश की निर्मल नीलिमा, और नीचे हमारे दृष्टिपथ पर बड़े वेग से दौड़ती हुई द्रुमावली की हरियाली छटा, बड़ी भली मालूम होती थी। हम तो प्राकृतिक सौन्दर्य्य पर आँखें सेंकते-सेंकते सो गये। बड़ी देर के बाद, हमारी गाढी नींद टूटी। हमने देखा कि आधी रात का समय है और गाड़ी एक स्टेशन पर खड़ी है। हमें मालूम हुआ कि हम एक हाहाकारमय संसार को पार करके एक शान्तिमय लोक में चले आये। सभी मुसाफिर निद्रा-देवी की अंक-शय्या पर पौढ़े हुए थे। जब गाड़ी खुली, तब हमने देखा कि चारों ओर अन्धकार का अटल साम्राज्य स्थापित है। अंजनी-नंदिनी गाड़ी अन्धकारसंसार में आलोक की सवेग धारा-सी प्रतीत होती थी; मानों स्याही के समुद्र में सोने का जहाज सगर्व चला जा रहा हो! हमें अपनी पत्नी की सुध भूल-सी गयी थी। जब हमें वह याद पड़ी, तब हमारे देवता कूच कर गये। न जाने क्यों हमारी छाती में बेतरह धड़कन पैदा हुई; मानों व्याकुल प्राण वज्र-कपाट तोड़कर निकल भागना चाहते हों। हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये।

३

अगले स्टेशन पर फिर ज्यों ही गाड़ी खड़ी हुई, त्यों ही हमने जनाना डब्बे के सामने जाकर जोर से पुकारा-"गुलबिया! सो गई क्या रे?" कोई आवाज नहीं आई! हमारा तो होशहवास ही गुम हो गया! सभी खिड़कियाँ बंद थीं! हमने दुबारा ज्यों ही पुकारा, त्यों ही एक चिर-परिचित कोमल कंठ से निकली हुई मीठी आवाज सुन पड़ी—"हाय! प्राणनाथ! प्राण गये प्यारे!" ताबड़तोड़ दरवाजा खोलने की चेष्टा की; पर उसमें तो ताला बंद था! हम उन्मत्त हो गये। हम खिड़कियों में ठोकरें मारते-मारते थक गये। तबतक बड़े झटके से खिड़की का दरवाजा उठाकर एक गोरे ने दपटकर कहा—"हट जाव यहाँ से बादमाश।" हम

डर गये !!! किन्तु झाँककर देखा, तो हमारी पत्नी वहीं बैठी-बैठी आँसुओं से मुँह धो रही थी। हमें देखते ही वह फूट-फूटकर रोने लगी। जब उसने 'सामनेवाली खिड़की का दरवाजा उठाया, तब तो हमारी इच्छा हुई कि खिड़की पारकर डब्बे के अन्दर घुस जायँ। किन्तु वह कर-बद्ध हो अश्रु-रुद्ध कंठ से बोली—"प्राणेश्वर! आप भीतर न आइए। यहाँ तो केवल व्यभिचारी, अत्याचारी, अन्यायी और स्वत्वाहंकारी दुःशासनों को ही आने का अधिकार है !" भीतर जाते ही उसने हमारे पैरों को पकड़कर कहा—"आप इन वंदनीय चरणों को ऐसे अपवित्र स्थान में मत रखिए। इनके लिए मेरा पवित्र हृदय ही उपयुक्त स्थान था। किन्तु शोक! अब वह रहा ही नहीं!" हमने घबराकर पूछा—"गुलबिया कहाँ है ?" उसने गहरी आह भरकर कहा—"वह तो किसी एक पिछले स्टेशन पर आपको समूची गाड़ी में पुकारकर ढूँढ़ आयी, आप मिले ही नहीं!" वह भी, इस डब्बे को न पहचान सकने के कारण, कहीं इधर-उधर भटकती ही रह गयी! न जाने वह कहाँ छूट गयी! इस खाने की सब औरतें, बीच-बीच में, उतरती चली गई हैं। मैं अकेली इस निगोड़े के पंजे में फँस गयी! मैं चिल्ला उठती थी; पर राक्षस बलात्कारपूर्वक मेरा मुँह बन्द कर देता था! बिलखकर मैं रह जाती थी। हा दैव! मैं पाप के गाढ़े पंक में धँस गई!"

उस गोरे ने हमारी पत्नी को आँखें तरेरकर डाँट दिया—"चोप रहो!" किन्तु वह पगली-सी होकर एक बार फिर हम से बोली—"मैं अब आपसे सम्भाषण करने योग्य नहीं हूँ। इस अपावन शरीर पर अब आप अपनी पवित्र दृष्टि न डालिए। अब यह मदान्ध-मर्दिता लता आपके हृदयोद्यान की शोभा-वृद्धि करने के योग्य नहीं रही! यह दलित कुसुम अब आपके पूज्य चरणों पर चढ़ाये जाने योग्य नहीं है। इस प्रवंचनापूर्ण संसार के रचयिता के प्रति मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ, जिसकी दया से अन्तिम समय में आपके दर्शन प्राप्त हो गये! मैं कृतकृत्य हो गयी।"

इतना कहते-कहते वह अनाथा की तरह रो पड़ी!

इतने में उस गोरे ने हमें पिस्तौल का निशाना बनाकर भयभीत करना चाहा! हमारे जैसे अभागे निःशस्त्र भारतीय पर तमंचा तानकर आतङ्क स्थापित करना उस अत्याचारी गोरे के लिए बाँये हाथ का खेल था। एक निहत्थे हिन्दुस्तानी को निपट भयातुर देखकर वह मदान्ध मुस्कराने लगा और फिर मदनावेश-पूर्ण दृष्टि से हमारी पत्नी की ओर देखकर, एक आलिङ्गनाभिलाषी विलासी की तरह, उसने अपनी भुजाओं को पसारा! हमारी पत्नी ने क्रोध-पर-वश होकर उस कामान्ध के शिथिल हाथ से झपाटे के साथ पिस्तौल छीन ली और झटपट उसे

अपनी ही छाती से भिड़ाकर दबा दिया! पिस्तौल की गोली निर्दयता के ज्वालामय लोक से निकलकर कोमलता के प्रेमामृत-सिक्त क्षेत्र को पार कर गयी!! वह नर-पिशाच, पीछे-वाला दरवाजा खोलकर, बड़ी तेजी से उतर भागा। हमारी दर्द-भरी आह, स्टेशन के शोर-गुल और खुलती हुई गाड़ी के 'फक्-फक्' धूम्र-श्वासोच्छ्वास के साथ शून्य में गायब हो गयी। हम कटे हुए सूखे रूख की तरह मूर्च्छित होकर गिर पड़े! हमारे चैतन्य-शून्य कानों में यम-यातना से उद्विग्न प्यारी की केवल इतनी ही स्फुट वाणी सुन पड़ी—

"इ···स···अ··प···रा···धि···नी···को·ऐ··से···ही··प्रा···य··· श्चि···त्त···की··अ···भि··ला··षा··थी!"

× × ×

लखते ही अँधेरा-सा आगे हुआ, घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी!

—'कमलाकर'

हठ-भगतजी

सस्यानि स्वयमत्ति चेद्वसुमती माता सुतं हन्ति चेद्-
वेलामम्बुनिधिर्विलङ्घयति चेद्भूमिं दहेत्पावकः ।
आकाशं जनमस्तके पतति चेदन्नं विषं चेद्भवे-
दन्यायं कुरुते यदि क्षितिपतिः कस्तं निरोद्धुं क्षमः ॥

× × ×

"वासांसि व्रजचारिवारिजदृशां हृत्वा हठादुच्चकैः
यः प्राग्भूरुहमारुरोह स पुनर्वस्त्राणि विस्तारयन् ।
व्रीडाभारमपाचकार सहसा पाञ्चालजायाः स्वयं
को जानाति जनो जनार्दनमनोवृत्तिः कदा कीदृशी ॥

१

मनोहरपुर के लाला सजीवनदास ऐसे-वैसे हठ-भगत नहीं हैं। आप अपनी हठ-भक्ति के लिए जिले-भर में प्रसिद्ध हैं। जिस आन पर अड़ जाते हैं, चाहे जो हो, उसके लिए बिगड़ जाते हैं; पर एक इंच भी नहीं डिगते। जिस काम के पीछे नोन-सत्तू बाँधकर पड़ जाते हैं, पड़े नौ या छः उसके लिए आखिरी दम तक लड़ जाते हैं। बिना पूरा किये किसी काम का पिंड नहीं छोड़ते। एक बार मनसूबा बाँधकर जिस लकीर पर पैर जमा देते हैं, चाहे आँधी आवे या वज्र गिरे, बालभर भी पीछे हटने का नाम नहीं लेते। इसीलिए आप 'हठभगतजी' के नाम से विशेष विख्यात हैं।

जिस समय भारतवर्ष के सिर पर मुगल-सम्राटों की सघन छत्रच्छाया थी, उस समय लालाजी के पूर्वजों की किस्मत का सितारा बुलन्द था। आपके पूर्वज बड़ी-बड़ी जागीरें छोड़ गये हैं। बहुमूल्य बपौती अभी सुई की नोक-भर भी इधर-उधर नहीं हुई है, ज्यों-की-त्यों बरकरार है। उसीके सबब से आप अपने शहर के इने-गिने रईसों में शुमार किये जाते हैं! आप कट्टर ईश्वर-भक्त और पक्के सनातन-धर्मी हैं। आपके रोम-रोम में 'राम' रम रहे हैं और धमनी-धमनी में धर्म की रुधिरधारा प्रवाहित हो रही है। आपकी आत्मा में प्रभु-भक्ति और चिन्ता में ईश्वराशक्ति भरी रहती है। आपकी कल्पना-वीथि में भगवान् की लीलाओं की भीड़ लगी रहती है। आपके भावना-निकुञ्ज में प्राण-पपीहा 'पी कहाँ' की रट लगाये रहता है। सांसारिक प्रेम-पर्वत को फोड़कर आपकी नेत्र-नर्मदा अनन्त प्रेमाम्बुधि की ओर बहती रहती है।

२

शहर से बाहर लालाजी की एक सुन्दर फुलवारी है। उसी निम्बाम्ब-कदम्ब-जम्बीर-शोभित वकुल-कुल-संकुल वाटिका में, आज से बहुत दिन पहले, आप एक 'ठाकुरबाड़ी' बनवा रहे थे। जिस दिन बाग में उसकी नींव पड़ी, उसी दिन आपके घर में विपत्ति-भित्ति की नींव पड़ी। उधर आपने मन्दिर-प्रतिष्ठा के लिए अपने हाथ का कुश-जलाक्षत-समन्वित संकल्प छोड़ा और इधर आपके ज्येष्ठ पुत्र ने संसार! उधर थपथपी से नींव पीटी जाती थी, इधर पत्थर-सी छाती! उधर सुर्खी-चूने की चहल-पहल थी, इधर शोकाश्रु-प्रवाह की! पास-पड़ोस के लोगों ने लाख समझाया; पर आपने बे-धड़क फरमाया—

"आरभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।

विघ्नैः पुनःपुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति ।।"

एक दिन आपको, आपके गुरुजी ने भी, लौकिक रीति से बहुत समझाया ; पर आप अपनी धुन के बड़े पक्के निकले। आपने स्पष्ट उत्तर दिया—"रावण-सभा में जमे हुए अंगद-पद की भाँति हमारी प्रतिज्ञा अटल है, उसे डिगाने की चेष्टा व्यर्थ है। विघ्नों के बादल वज्र गिराते रहें, कुछ चिंता नहीं। अश्रु-समुद्र में सारा कुटुम्ब डूब जाय, कोई गम नहीं। शोक की प्रचंड ज्वाला में धन-जन स्वाहा हो जाय, कोई डर नहीं। सारे घर में विकराल काल का तांडव-नृत्य होता रहे, बला से, कुछ परवा नहीं। यदि सारा संसार हमसे अलग हो जाय, तो इससे क्या ? हो जाय। पुत्र-कलत्र की आहुति से सर्वनाश-यज्ञ का कुण्ड धधकता रहे, धधकने दीजिए। किन्तु हम विघ्न-भय से आरब्ध कार्य्य को बीच ही में अधूरा नहीं छोड़ सकते।"

डिगै न सम्भु सरासन कैसे। कामी बचन सती मन जैसे।।

३

मन्दिर-निर्माण का काम जारी था। इसी बीच में लालाजी के कनिष्ठ पुत्र का भी देहावसान हो गया! बहुत-से लोग समवेदना-प्रकाश करने के लिए आपके पास आये। सबने यही कहा कि 'अच्छे काम से भी यदि अमङ्गल होता जाय, तो उसे त्यक्त कर देना ही बुद्धिमत्ता है।' किन्तु आप सबकी बातें एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देते थे। पुत्र-वियोग की विषम व्यथा बरदाश्त करते हुए कह दिया करते थे कि 'सूरदास की काली कमरी, चढ़े न दूजो रङ्ग!'

एक दिन सन्ध्या-समय शर्करा-मिश्रित तंडुल-चूर्ण लेकर आप चींटियों को राम-दाना बाँटने के लिए बाहर निकल पड़े। टहलते-टहलते बाबा हनुमन्तदास महन्त के मठ तक चले गये। हनुमन्तदास बड़े धनाढ्य मठाधीश हैं। उनके मठ का नाम रामगढ़ी है। प्रतिदिन उनके मठ में सैकड़ों खाकी नागा धूनी रमाकर भर-भर मुट्ठी गाँजे की कलियाँ फूँका करते हैं। गँजेड़ियों की गोष्ठी देख-देखकर आप जलते रहते हैं और कभी उन जटाधारी जङ्गली जोगड़ों की जमात में जाना पसन्द नहीं करते। शहर के रईस बड़ी श्रद्धा से महन्तजी को मानते हैं ; पर आप कलियुगी 'साधू'-समाज को बड़ी सन्दिग्ध दृष्टि से देखते हैं। उस दिन जब आप महन्तजी के पास पहुँचे, तब उन्होंने बड़ी सहानुभूति के साथ आपको समझाना शुरू किया। वे बोले—"भगतजी! आप तो नाहक हठ करके

अपना सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं। आप गृहस्थ हैं, आपके लिए यह मार्ग दुर्गम है। यह पथ तो हम विरागियों के लिए ही सुगम है।"

महन्तजी की मूर्खतापूर्ण बातें सुनकर लालाजी मन-ही-मन मुस्कुराने लगे। फिर नम्रतापूर्वक महन्तजी से बोले—

महाराज! आपलोग जिस परिवार को बेकार समझकर छोड़ बैठे, हम उसी को प्रभु-पद-पद्मों में प्रेमपूर्वक पुष्पवत् अर्पित कर रहे हैं। आप जिस मार्ग को गृहस्थों के लिए अगम्य बताते हैं, उसी मार्ग पर सत्यसन्ध हरिश्चन्द्र आदि गृहस्थ-सम्राट् सफलतापूर्वक अग्रसर हो चुके हैं। विरक्त-शिरोरत्न नारद भी जिस कसौटी पर खोटे साबित हो चुके हैं, उसपर कसे जाकर हम कभी खरे नहीं निकलेंगे; ऐसा कहा जा सकता है। किन्तु हमारी धारणा है कि जिसने दिया था, वही छीन रहा है और वही फिर देगा भी। इस चलाचल लोक में अचल मनवाले ही विजयी होते हैं। भगवद्-भक्ति के सुमनमय मार्ग में कुटुम्ब-कंटक बड़े बाधक हैं। यदि हमारे भक्ति-पथ के कंटकों को स्वयं भगवान् ही चुनकर पथ परिष्कृत कर दें, तो निस्सन्देह हमारा मनोरथ, सिद्धि की सुगम सड़क पर, अग्रगामी होता चला जायगा। महात्माओं का कहा हुआ है कि—

धर्म करत जो होवै हानि। तबहुँ न तजै धर्म की बानि॥

फिर गुसाईंजी ने भी कहा है कि—

सुत-बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सब ही ते।
अन्तहुँ तोहि तजहिंगे पामर तू न तजसि अब ही ते॥

× × ×

सहि कुबोल साँसति सकल, अँगइ अनख अपमान।
'तुलसी' धर्म न परिहरिय, कहि करि गये सुजान॥

× × ×

सिबि दधीचि हरिश्चन्द नरेसू। सहे धर्म हित कोटि कलेसू॥
गई बहोरि गरीब-नेवाजू। सरल सबल साहब रघुराजू॥

क्या महात्माओं के ये वाक्य केवल आप लोगों के लिए ही कहे गये हैं? क्या हम गृहस्थों के लिए इनमें कुछ भी तथ्य या तत्त्व नहीं है? क्या हमलोगों से बढ़कर आप ही लोग इनसे उपदेश सीख सकते हैं? क्या भगवद्भजन केवल विरागियों के लिए ही शास्त्र-सम्मत है? क्या गृहस्थाश्रम में रहकर हम-

भगवद्भक्ति के बीहड़ रास्ते पर नहीं चल सकते ? क्या हम गृहस्थ भक्तों के लिए ही गुसाईंजी ने यह नहीं कहा है कि—

कर ते कर्म करैं बिधि नाना, मन राखैं जहँ कृपानिधाना ।।

४

लालाजी की बातें सुनकर महन्तजी चुप रह गये। आपकी अविरल भक्ति ने उन्हें मुग्ध एवं चकित कर दिया। इतने ही में आपका नौकर दौड़ा हुआ आया और बोला—"साँप के काटने से बड़ी बहू मूर्च्छित पड़ी हुई हैं !" नौकर की बात सुनकर आप फिर मुस्कुराये और घर की ओर चल पड़े। सहसा सत्संग-सुख-भंग होने से आपको जितना कष्ट हुआ, उतना पुत्रवधू के सर्प-दंश का वृत्तान्त सुनकर नहीं। रास्ते में आप सोचते आ रहे थे कि 'जैसे मुर्दे पर एक मन मिट्टी वैसे पचास मन !' आपके घर पहुँचते-पहुँचते पुत्रवधू पंचत्व को प्राप्त हो गई ! इस दुर्घटना से ठुकराकर आपका हठ-रूपी बम-गोला फूट गया ! उसके प्रकांड प्रस्फोट से ऐसी प्रचंड ज्वाला प्रकट हुई कि वह सर्वस्व की पूर्णाहुति पाकर ही शांत हुई। विपत्ति-विभावरी की विभीषिका आपको विचलित न कर सकी। अपनी मोह-मूर्च्छिता पत्नी को देखकर, 'निपट निरंकुस निठुर निसंकू' की तरह, आपने कहा—क्या तुम नहीं जानती हो कि 'जो फरा सो झरा औ बरा सो बुताना ?'

"कबिरा या संसार में, फूले सो कुम्हिलाय ।
जो चुनिये सो ढहि परै, जामे सो मरि जाय ।।"

× × ×

"केते भये जादव सगरसुत केते भये
जातहु न जाने ज्यों तरैया परभात की ।
बलि बेनु अम्बरीख मानधाता प्रहलाद
कहाँ लौं कहिये कथा रावन जजात की ।
वे हू न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ
भाँति-भाँति सेना रची घने दुख घात की ।
चार-चार दिना को चबाव सब कोउ करौ
अन्त लुटि जैहैं जैसे पूतरी बरात की ।"

पत्नी—"प्राणनाथ ! पुत्र-शोक से बढ़कर संसार में दूसरा कोई शोक नहीं है। पुत्र-शोक की मर्म-वेदना मातृ-हृदय के लिए कितना असह्य है, यह मैं कह भी

नहीं सकती और आप समझ भी नहीं सकते ; कोई मातृ-हृदय ही इसका अनुभव कर सकता है। वह किसी प्रकार भाषाबद्ध होने योग्य नहीं है ; वह कवि की कल्पना का विषय नहीं है ; वह पुरुष-हृदय द्वारा अनुभूत होने योग्य भी नहीं है। आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि आप अब हर्गिज हठ न छोड़ें। अब सारी सम्पत्ति अपने 'सँवलियाजी' की सेवा में सहर्ष समर्पित कर दें। जब कोई भोगनेवाला ही न रहा, तब भोग्य पदार्थ रहकर ही क्या करेगा ? जब बुलबुल उड़ गई, तब सारा चमन जलकर खाक हो जाय, कुछ प्रयोजन नहीं। जब भ्रमरावली ही नहीं रही, तब वसन्त रहे या पतझड़, दोनों एक-से हैं।"

भगतजी—"अब तो कौड़ी चित्त पड़े या पट, ठना हुआ काम समाप्त होकर ही रहेगा। वे भगवद्भक्त भला कैसे थे, जिनकी कीर्त्ति-लतिका आज भी विश्व-विटपी पर आकाश-वल्लरी की तरह छाई हुई है ? क्या उन्होंने पारिवारिक प्रेम-रूपी तुच्छ काँच के पीछे ईश्वर-प्रेम-रूपी अमूल्य मणि का त्याग कर दिया था ? नहीं, यदि ऐसा करते, तो उनकी कीर्त्ति-गाथा आचन्द्रतारक अमर नहीं होने पाती। भक्त तो यही कहा करते हैं कि—

"साँईं का घर दूर है, जैसे लम्ब खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेमरस, नाहिं तो चकनाचूर।"

× × ×

पत्नी—"प्राणनाथ ! मेरे संकटापन्न प्राण अब मरणासन्न हो रहे हैं। किन्तु मैं जानती हूँ कि मुझ अभागिनी को अभी यमराज स्पर्श भी न करेगा। मुर्झाये हुए फूल पर माली का हाथ भूलकर भी नहीं पड़ता। जान पड़ता है कि मेरे प्राणों की भयंकरता ने यमराज को भी त्रस्त कर दिया। दुःखी प्राणी को मौत भी नहीं पूछती। अब आप इस भोग-रहित धन को भगवान् की सेवा में लग जाने दीजिए। किन्तु जब धन का नाश होने लगेगा, तब आप अपने हठ पर पश्चात्ताप करेंगे। जबतक धन की कमी नहीं है, तबतक मन्दिर बनवाइए या यज्ञ कीजिए। मेरे तो जीवन-धन पुत्र चले गये। मुझे जीना न चाहिए ; पर आप ही मेरे प्राणाधार हैं। आपही के चरणों का सहारा पाकर मैं अचल स्थाणु की तरह इस प्रलय की आँधी में भी टिकी हुई हूँ। अब मुझे आप आज्ञा दीजिए। मैंसौभाग्यवती के रूप में ही संसार से विदा होना चाहती हूँ।"

लालाजी—"प्राणप्रिये ! धैर्य्य धारण करो। इस समय असम्भव को भी सम्भव कर दिखाओ। उस चरण-शरण में पूरी-पूरी आस्था रक्खो, अमङ्गल भी

मङ्गल हो जायगा, कुलिश भी तृण हो जायगा, मृग-मरीचिका भी मन्दाकिनी बन जायगी, उत्तप्त मरुस्थल में भी आनन्द-सागर उद्वेलित हो उठेगा और अग्नि-ज्वाला भी पुष्प-माला बन जायगी। उस प्रणतपाल परमेश्वर में प्रतीति रक्खो। वह तुम्हारे 'इस ईश्वर' का भी ईश्वर है ; वह धर्म पर मर मिटनेवालों का एकमात्र सहायक है। उसी से दया की भिक्षा माँगो, उसी की आशा पर अपने क्लेशों को भूल जाओ। बस, तुम्हारे लिए विष भी अमृत हो जायगा, आँधी भी मन्द-मन्द मलय-मारुत बन जायगी, भादो की अमावस्या भी चैत्र की पूर्णिमा हो जायगी, ग्रीष्म का मध्याह्न भी हेमन्त का उषा-काल हो जायगा और पतझड़ में भी वसन्त की आभा देख पड़ेगी। जब हमें परिवार के नाश की चिन्ता नहीं है, तब धन-नाश की चिन्ता की तो कोई बिसात ही नहीं। जिस करुणाकर के करोड़ों कुबेर किंकर हैं, उनके अभय-वरद पाणिपल्लवों की छाया में धननाश का सन्ताप नहीं सता सकता।

"जासु भवन सुरतरु तर होई। सह कि दरिद्र-जनित दुख सोई॥"

× × ×

"साँई सबको देत है, ठाढ़े रहे हजूर।
जैसे रोड़ा राज को, भरि-भरि देत मजूर॥"

× × ×

"चिन्ता न करु अचिन्त रहु देनहार समरत्थ।"

पत्नी—"स्वामिन्! मेरे प्राण शष्पाग्रस्थ शीत-बिन्दु से हो रहे हैं। मैं आपसे तर्क-वितर्क करके आपको झंझट-झमेले में फँसाना नहीं चाहती। किन्तु मैं आपसे यह पूछना चाहती हूँ कि आप ऐसे भक्त-पीड़क भगवान् को भक्त-पालक क्यों कर कहते हैं? यदि इसी प्रकार भगवान् अमृत में विष घोलेंगे, अपने उपासक को भी उलटे छुरे से मूँड़ते रहेंगे, तो कौन ऐसा धीर-धुरन्धर संसारी है जो उनमें प्रीति-प्रतीति बनाये रहेगा? उधर मन्दिर में भगवान् का सिंहासनारोहण और इधर मेरे पुत्रों का चिताधिरोहण! उधर उन्हें पीताम्बर पहनाया जाय और इधर मेरे बच्चे कफन ओढ़ें! उनपर पुष्प-मालाएँ और इनपर चिताग्नि-ज्वालाएँ! उधर मन्दिर में उनकी आरती उतारी जाय और इधर मेरे आँगन में सौभाग्य-सिन्दूर तथा चूड़ियाँ उतारी जायँ! हाय! कौन निर्दय-हृदय यह सहन करेगा? ऐसे निष्ठुर नारायण केवल आप ही के हैं या और किसी के?"

लालाजी—"बस, हमारे सामने उस दयासागर को निष्ठुर मत कहो। 'जासु कृपा नहिं कृपा अघाती'—उसे निष्कृप क्यों कहती हो? 'जाके डर डर कहँ डर

होई'—उससे डरना सीखो। जब तुम स्वयं भगवान को ही अन्यायी प्रमाणित कर रही हो, तब फिर किसके सामने 'न्याय करने की प्रार्थना' लेकर जाओगी? तुम हमारे-जैसे तुच्छ मनुष्य की उपासना में तल्लीन रहनेवाली एक अबला हो, उस लीलामय की अनन्त लीला का तुम रहस्य नहीं समझ सकती। हमें एक पहुँचे हुए फकीर ने बतलाया था कि 'करम ऊ वहा न मी जोयद, करम ऊ बहाना मी जोयद'—'अर्थात् मालिक की मेहरबानी फकीरी नहीं चाहती, वह कोई एक बहाना ढूँढ़ती है।' हम तो उसी फकीर की लकीर के फकीर हो रहे हैं। हमारी भगवद्-भक्ति-भागीरथी में तर्क की तरंगें नहीं उठ सकतीं। देखो—सूर, तुलसी, मीरा आदि सर्वमान्य भक्त-कवियों ने क्या कहा है—

"जुवती सेवा तऊ न त्यागै, जो पति कोटि करै अपकर्म।"
"सब समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा।"
"अब तो बात फैल गई, जानै सब कोई।
'मीरा' राम-लगन लागी, होनी होय सो होई॥"

पत्नी—"प्राणेश! मैं आपसे तर्क करना चाहती भी नहीं। 'हमहिं तुमहिं सरबरि कस नाथा? कहहुँ तो कहाँ चरन कहँ माथा?' मैं तो हाथ जोड़कर यही पूछना चाहती हूँ कि भगवान् को प्रसन्न करने का क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है? क्या मन्दिर में मूर्ति-प्रतिष्ठा करने से ही भगवद्-भक्ति पूरी होगी? क्या गोशाला बनवाने से आपके गोविंद-गोपाल सन्तुष्ट न होंगे? क्या अनाथालय और विधवाश्रम स्थापित करने से अनाथ-नाथ भगवान् की सेवा नहीं हो सकती? क्या पुस्तकालय और औषधालय खोलने से भव-भेषज भगवान् सच्चिदानन्द तृप्त नहीं हो सकते? क्या प्राणी-मात्र की निष्काम सेवा से बढ़कर दूसरा भी कोई भक्तियज्ञ है? क्या पीड़ितों और निराश्रितों की सहायता करने से भगवान् प्रसन्न नहीं होते? क्या ईश्वराराधन का साधन लोकोपकार नहीं है? हाय! आपको कौन समझावे? आप किसी की सुनते भी तो नहीं! न जाने अभी क्या-क्या भाग्य में बदा है!"

लालाजी—"जो बदा था, वह बीत गया। तुम्हारे अङ्काकाश का पुत्र-पूर्णेन्दु काल-राहुग्रस्त हो गया, हमने इन्हीं प्रसन्न आँखों से देखा। उसकी अनुगामिनी—तुम्हारे घर-आँगन की चाँदनी—को बादलों ने ढँक लिया, हमारे मुँह से उफ तक न निकला। तुम्हारे अंगणाकाश की अटा-घटा में छटा छिटकानेवाली बिजली को प्रलय-घन लील गया, हमारी धारणा धरणी की तरह अचल रही; तिल-भर भी हमें विषाद नहीं हुआ। सम्भव है, तुम्हारे आँगन की धूल में लोट-पोटकर मस्त रहनेवाले इस पयाहारी जटिल बम-भोला बाल-योगी को भी शीघ्र ही

अपनी गोद में लेकर क्रूर काल निहाल हो जाय और पौत्र-वियोग से तुम्हारा जीवन-प्रदीप भी, स्नेहशून्य होने के कारण निर्वाण को प्राप्त हो जाय। ईश्वर की इच्छा को कौन जानता है ? न जाने अभी उसे क्या-क्या करना मंजूर है !"

इतना सुनते ही उसकी छाती में छेद हो गया ! वह हाय-हाय कहकर धरती पर लोट गई ! उसने अपने मातृ-पितृ-विहीन पौत्र को छाती से लगा लिया ; रोना चाहती थी ; पर रोया नहीं जाता था ! रोते-रोते आँखें सूज गई थीं। छाती कूटते-कूटते हाथ थक गये थे। शिथिल हाथों के लिए बच्चे को सँभालना भी कठिन हो गया ! मारे शोक के छाती छलनी हो गई थी, उसका दूध भी सूख गया था ! बेचारा बच्चा रोता था ; पर वह दो-चार बूँद दूध पिलाकर भी उसे शान्त न कर सकी ! पुत्र-शोक-वश अनवरत उर-ताड़न से छाती पक गई थी, अतः रोने के समय उसका कलेजा घाव की तरह दुखने लगा—"जनु छुइ गयउ पाक बर-तोरा"—वह अचेत हो गई। अनर्गल आँसुओं ने कपोल की ललाई पहले ही धो डाली थी ; देखते-देखते अधरों की अरुणिमा भी कालिमा में परिणत हो गई ! मृगी की-सी बड़ी-बड़ी आँखें उलट गईं ! कुटिल काल का व्रत भी इसी पवित्र पारणा को पाकर पूरा हो गया !

४

लालाजी का मार्ग निष्कंटक और निर्द्वन्द्व हो गया ! एक पौत्र था, वह भी काल के गाल में चला गया ! वह स्तनंधय शिशु—वह दन्तावली—किरण-विहीन दूज का चाँद—वह स्नेह-परिपोषित वंश-प्रदीप--वह प्रणय-कुसुमाकर का प्रथम कुसुम—वह किसी अदृश्य हृदय-कनक-पंजर का प्यारा तोता—न जाने क्या हो गया ! उसका उदय और अस्त, उसका बलना और बुझना, उसका खिलना और कुम्हलाना, उसका बैठना और उड़ जाना, उसका —किसी बच्चे के खिलौने की तरह—झट बनकर बिगड़ जाना, जिसने देखा, उसीने खून के आँसू बहाये ! किन्तु लालाजी का कलेजा नहीं पसीजा ! आप तो सोच रहे थे कि—

'ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई।
कहा होत अबके पछिताने होनी सिर बितई।"

फिर भक्ति-गद्गद हृदय से कहते थे—

"भील कब करी थी भलाई जिय आप जानि
फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका ?
गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ

व्याध और बधिक निसाफ कहु किसका ?
नाग कब माला लै के बन्दगी करी थी बैठ
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका !
एते बदराहों की बदी करी थी माफ
जन 'मलूक' अलाती पर एती करी रिस का ?"

"दीनदयाल सुनी जब ते तब ते हिय में कछु ऐसी बसी है।
तेरौ कहाय के जाऊँ कहाँ मैं तेरे हितू पट खैंच कसी है॥
तेरोई एक भरोस 'मलूक' को तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है॥"

५

इस आख्यायिका के आधारभूत भगतजी आजतक मनोहरपुर में मौजूद हैं। वह ठाकुरबाड़ी भी बरकरार है, जिसपर इस आख्यायिका का सारा दारमदार है। मन्दिर में प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा होने के बाद, लालाजी ने फिर दूसरा विवाह किया! वह पत्नी आज भी वर्त्तमान है। उससे पुनः दो पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए हैं। उनमें से एक की भार्य्या पुत्रवती है। जो आँगन एक दिन श्मशान हो गया था, वह आज नन्दनोद्यान हो रहा है। जिस घर में एक दिन अविश्वास-राजा के साथ निराशा-रानी राज करती थी, उसी घर में सन्तोष-राजा के साथ शान्ति-रानी आज राज कर रही है। जहाँ एक दिन पुत्र-शोक-विह्वला पतिप्राणा प्रणयिनी का प्राण-प्रयाण हुआ था, वहाँ आज एक प्रियंवदा सुन्दरी—सन्तान-वत्सला जननी के रूप में—अजस्र अमृत-वर्षा कर रही है। जहाँ एक दिन दुःख के कोल्हू में पेरे गये हुए नेत्र-तिल के अश्रु-तैल से प्रज्वलित शोक-दीपक में मनोरथ-पतंग जलकर भस्म हो चुके थे, वहीं-वहीं आज हृदय-तिल के स्नेह से जाज्वल्य प्रेम-प्रदीप में परिताप-पतंग जल रहे हैं। जहाँ किसी दिन तर्क-तरंगिणी लहराती थी, वहाँ आज भक्ति-भागीरथी उमड़ रही है। जहाँ कभी भय और चिंता का बोलबाला था, वहाँ अब अमन्द-आनन्द और श्लाघ्य श्रद्धा की धाक जमी हुई है। जहाँ मानव-हृदय कभी नरक की यम-यन्त्रणाओं से नियन्त्रित था, वहाँ अब उसके सुख-सौध के प्रत्येक सर्ग में स्वर्ग है! किन्तु 'हठ-भगतजी' के हृदय-पट पर पूर्ववत् यही अंकित है—

"हठ न छूटै छूटैं बरु देहू !"

अनूठी अँगूठी

अद्यापि तां कनकचम्पकदामगौरीं
फुल्लारविन्दनयनां तनुलोमराजिम्।
सुप्तोत्थितां मदनविह्वललालसाङ्गीं
विद्यां प्रमादगलितामिव चिन्तयामि ॥

× × ×

शेख ने मसजिद बना मिसमार बुतखाना किया।
तब तो इक सूरत भी थी अब साफ वीराना किया ॥

× × ×

Flowers of the field! how fair ye here?
Love's fragrance in your bloom I find;
From earth emerging ye appear,
Say where is the charmer of my mind?

× × ×

When love attracts two hearts; it's plain--
Its influence will in both remain.

कार्तिक पूर्णिमा थी। आकाश-देवता का 'चन्दन-चर्चित नीलकलेवर' अत्यन्त रमणीय प्रतीत होता था; मानों साँवले-सलोने आकाश ने चाँदनी का चमकीला (जरीदार) चोगा पहन लिया हो। मयूर-चंद्रिका धारण किये हुए श्याम-सुन्दर के समान आकाशदेव का इन्दीवर-श्याम रूप, कुन्द-कुसुमावली की-सी तारा-हारावली की शोभा से, विशेष नेत्ररञ्जक प्रतिभात होता था। तारात्रों को देखकर ऐसा मालूम होता था कि दिक्कुञ्जरों ने स्वर्गङ्गा के तट पर जल-केलि करते समय अपने शुभ्र शुंड में दर्पणोज्ज्वल जल भरकर क्रीड़ा-वश जो स्वच्छ फव्वारे छोड़े हैं, ये तारे उन्हीं से निकलकर उड़े हुए स्फटिक-श्वेत कण हैं। विश्व-वट-वृक्ष के नील-निबिड़ पल्लव-जाल में खद्योत-उद्योत की भाँति जगमगानेवाले नक्षत्रों की शोभा देखकर हमारे लावण्य-लालायित लोचन लुब्ध हो रहे थे। पवित्र-पाथ-परिपूर्ण पुष्करिणी से पङ्कज-पराग चुराकर सरसिस्नाता समीर-सुन्दरी सघन रसाल-कुञ्ज की ओर दबे पाँवों भगी चली जाती थी।

हम अपने दो-चार हमजोली मित्रों के साथ अपने बँगले के बगलवाले चमन में चहलकदमी कर रहे थे। पास ही की सड़क से बहुत-से लोग गङ्गा-स्नान के लिए मेले की ओर खिंचे चले जाते थे। एक तो ज्योत्स्ना की तरंग, दूसरे मेले में शीघ्र पहुँचने की उमंग और तीसरे रंग-बिरंगे आदमियों का संग। सब लोग अपनी-अपनी मौज में मस्त, गप्पें लड़ाते, गाते-गवाते, चले जाते थे। कहीं कोई 'बिरहा' गाता था और कहीं कोई 'बिहाग' अलापता था। स्त्रियों का झुरमुट सम्मिलित स्वर से गाता चला जाता था—"ए गंगा-मैया तोहि चुनरी चढ़इबों, सइयाँ से कर दे मिलनवाँ राम!" हमारे एक मित्र भी देखा-देखी तान छेड़ने लगे—

"तमाशे क्यों न देखें हम तामाशागाह दुनिया के।
जिसे आँखें खुदा ने दीं वह अन्धा हो नहीं सकता॥
बुरे को जो कहे अच्छा वही अच्छा है ऐ 'वासिफ'।
बुराई से किसी की कोई अच्छा हो नहीं सकता॥
हजारों ऐसे दरिया हैं समा जाते हैं कतरों में।
यह एक कतरा हमारा है जो दरिया हो नहीं सकता॥"

सड़क की ओर से 'वाह यार! मस्त बने रहो' की आवाज आई। हम लोगों ने सोचा—बस, यही सबसे बढ़कर रसिया दल जा रहा है, चलें हम लोग भी इसी रँगीले झुंड में शामिल हो जायँ। हमलोग भी बिलकुल छरीदे थे—'फटकचन्द

गिरधारी, जिनके लोटा न थारी'—झट जाकर उस मनोरंजन-मंडली में सम्मिलित हो गये। हम अपनेको बड़ा हँसोड़ समझते थे; पर उस मंडली में तो एक-से-एक बढ़े-चढ़े बावन-वीर निकले! उनकी बात की करामात के सामने हमारी बिसात क्या थी, हमारी तो नानी मर गई! हमारी हाजिर-जवाबी सटक सीताराम हुई! हमारी कचकची दुम दबाकर भाग चली! अपनी दिल्लगीबाजी के जोम में हम पहले यह नहीं समझते थे कि ईश्वर की इस अतर्क्य सृष्टि में कैसे-कैसे मस्त जीव पड़े हैं।

"उसमें मिलकर खो गया मैं, मेरी मति और मेरा बल।
जैसे गुम दरिया में हो, बरसात का एक बूँद जल॥"

२

छैल-छबीले नौजवानों की बात तो अभी ताक पर रहे, उस मंडली का एक बूढ़ा-बाबा ही ऐसा था, जो एक नम्बर का बातूनी और परले सिरे का मसखरा था। वह ऐसी-ऐसी चोजभरी बातें कहता था कि हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाता था। हमारे मित्रों ने जब बार-बार हमें भी कुछ बोलने के लिए उकसाया, तब बहुत सोच-विचारकर हमने शान्त भाव से कहा—"बूढ़े बाबा! हमलोग भी मेले में ही चल रहे हैं, कुछ ज्ञान की बातें कहो, ताकि रास्ता कटे; बूढ़े होकर यह कहाँ का त्रियाचरित्र का पोथा पसारे हुए हो!"

हमारा इतना कहना था कि वह बूढ़ा बड़े गर्व से बोला—"अरे वाह रे बच्चू! अगर हम बूढ़े हैं तो फिर जवान कौन है? नहीं जानते हो कि हम कलियुगी बूढ़े हैं? सिर्फ देखने के लिए हम सौ वर्ष के बूढ़े हैं, मन में तो अभी सोलह साल के सैलानी छोकरे की-सी उमंग भरी हुई है! तुम भी तो नौजवान हो, मगर मजाल क्या कि हमसे एक बार भी पंजा लड़ा लो। अच्छा, जाने दो, आओ, जरा हमारी बाँह तो टेढ़ी करो। अरे बच्चू! हमसे भीड़कर तुम पार नहीं पाओगे। हमने रुपये का पक्का पाँच सेर घी और गोरखपुरिया पैसे से टके सेर का दूध खाया-पिया है। तुम्हें तो आँख में आँजने को भी घी-दूध मयस्सर नहीं होता होगा। तुमसे तो हमारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता। देखने में तुम्हारा शरीर चिकना और मुलायम भले ही हो; पर उसमें कुछ है नहीं, खाली जनानों की तरह नजाकत और नफासत भरी हुई है। हमारा शरीर देखो, गूँधे मैदा की तरह मुलायम है; पर तुम्हारे शरीर की तरह खोखला नहीं है, खूब ठोस है। जरा आजमाइश करके देखो कि हमारा शारीरिक संगठन कितना दृढ है। हम उन्नीसवीं शताब्दी के

नवयुवक हैं, तुम बीसवीं शताब्दी के नवयुवक हो। हमारा जमाना सादगी और सस्ती का था, तुम्हारा जमाना विलासिता और महँगी का है। हमारा भारत 'अन्नपूर्णा का मन्दिर' था, तुम्हारा भारत 'दरिद्रता का अखाड़ा' है। हमारा भारत अन्नकूटमहोत्सव का केन्द्र' था, इसलिए हम अबतक हट्टे-कट्टे हैं; तुम्हारा भारत 'गजभुक्त कपित्थवत्' सार-शून्य है, इसलिए तुम्हारा 'मुँह चिकना और पेट खाली है। हमारा यौवन-युग ब्रह्मचर्य्य-वसन्त से विकसित था, तुम्हारा यौवन-युग बाल-विवाह के पतझड़ से शुष्क है!''

इतना कहकर उस बूढ़े ने कछनी काछ ली और छरककर मंडली से अलग दूर हट गया। वहाँ जाते ही 'ताक-धिना-धिन' कह-कहकर मगन-मन हो नाच-नाच गाने लगा—

''अब हम जानी देह बुढ़ानी।
जर्जर देह फिरत निसि-बासर तन की खाल झुरानी॥
हाथ-पाँव-सिर काँपन लागे नैन नाक बहे पानी।
मिट गई चमक-दमक अँग-अँग की दसनन की भई हानी॥
स्रवन बधिर मुख बचन न आवत तबहुँ न मानत गलानी।
बिनु गारी नारी ना बूझै पुत्र करै कलकानी।
घर में आदर-भाव नहीं है खोंखत रैन सिरानी॥
अबहीं ते नर छाड़ि सकल भ्रम भजि लै सारँगपानी।
'रामदास' यह देह दसा की बल-बुधि सकल नसानी॥

बूढ़े का कूदना, नाचना, गाना और रिझाना देखकर हँसते-हँसते हमलोगों के पेट में बल पड़ गया। इसी प्रकार उमंग की भंग छानते हुए हमलोग मेले में पहुँचे। चारों ओर उमड़े हुए जन-समुद्र से ज्वार-भाटा की तरह कोलाहल उठकर आकाशमंडल को हाहाकारमय बना रहा था। जैसे समुद्र में नदियाँ मिलती हैं, वैसे ही चारों ओर से असंख्य नर-नारियों की अटूट लड़ियाँ मेले में मिल रही थीं। हमलोग भी, जल-कण की भाँति, मेले में विलीन हो गये।

३

मुँह-अँधेरे ही झुंड-के-झुंड लोग गङ्गा-तट की ओर जाने लगे। अपनी मंडली के लोगों को स्नानार्थियों की भेंड़-धसान में धसते देखकर हमलोग भी पीछे हो लिये। समुद्र की तरंगों की तरह हमलोग भी आगे बढ़ते गये। गङ्गा के तीर पर पहुँचकर हमने देखा कि गङ्गा का रूप ही परिवर्त्तित हो गया है, भगवान् कपाली के गले की नर-मुंड-माला मानों गङ्गा के गले में आ पड़ी है। धन्य आर्य-

जन-कीर्त्ति-कल्लोलिनि गंगे! जबतक संसार में हिन्दू-धर्म का अस्तित्व स्थिर रहेगा, तबतक तुम्हारे तट पर आबाल-वृद्ध नर-नारियों की भीड़ लगी ही रहेगी, इसमें सन्देह नहीं। भूतेश्वर-भाल-भूषण भागीरथी की भैरवी मूर्त्ति भी देखकर हृदय में हर्ष हिलोरे लेने लगा! हमारे मुँह से अनायास ही निकल पड़ा—"भागीरथी हम दोस भरे पै भरोस यही कि परोस तिहारे।" तबतक आकंठ जलमग्न बूढ़े-बाबा भी गोते लगाते-लगाते कह उठे—"गङ्गा-बिन्दु-बिन्दु में गोबिन्द दरसतु है।"

जिस प्रकार फोनोग्राफ के रेकर्ड पर सुई पड़ने से सरस संगीत-लहरी लहराने लगती है, उसी प्रकार भूमंडल-रूपी फोनोग्राफ के आकाश-रूपी रेकर्ड-प्लेट पर मन्दिर के चुभीले कञ्चन-कलश की सुई पड़ने से भक्ति-सङ्गीत-सुधा की लोला-लहरी चारों ओर लहरा रही थी। कनक-किरीट-धारी प्राचीन शिवालय की सीढ़ियाँ पखारती हुई गंगा अविरत कल-कल के साथ बहती चली जा रही थी। जब से यह बहती है तब से न जाने कितनों के पाप धो-बहा ले गई। न जाने आज तक कितनों की अभिलाषाएँ इस गंगा की गोद में पली होंगी। और कितनों को आशाएँ इसकी अविश्रान्त धारा-वली में बहकर अनन्त सागर के अतल गर्भ में डूब गई होंगी। इस महामहिम मन्दाकिनी की माया उस मायापति मुकुन्द के सिवा दूसरा कौन जान सकता है?

अभी तक तो हम कल्पना-कावेरी के कमनीय कल्लोलों में अवगाहन कर रहे थे; पर सबको स्नान करके मन्दिर की ओर लपके जाते देख उस अर्द्ध-गङ्गा से निकलकर हमने वैष्णवी गंगा में प्रवेश किया। कौवे की तरह ताबड़तोड़ स्नान करके ओदी धोती काँखासोती किये हुए, लोटे में जल भरकर, हम भी मन्दिर की ओर चले। देह-से-देह छिलती थी। सिर-से-सिर टकराता था। किन्तु धन्य है सेवासमिति के श्रद्धालु स्वयंसेवक! उस अपार धर्म-धक्के में उन्हीं के उद्योग से एक कुसुम कोमलाङ्गी कुचलते-कुचलते बच गई! उसके सजल-सलज्ज लोचनों को देखकर, भक्ति की ज्योति से प्रकाशित हमारे हृदयाकाश में, करुणा की काली घटा घिर आई। उस हमारे हृदयाम्बर की श्रावण-श्यामला घटा के प्रभाव से नेत्र-निर्झर उमड़ चले। जिस जगह असंख्य भक्तों की आँखों ने भक्ति-गद्‌गद अश्रु-धारा बहाई थी, उसी जगह हम न जाने करुणा की धारा क्यों बहाने लगे! जहाँ अगणित भक्तों के कर-कमलों से नित्य बजाया जानेवाला घंटा झूल रहा था, वहाँ हम अपनी हृत्तन्त्री क्यों बजाने गये? कुछ समझ में नहीं आया।

४

जिस उद्यान की वह कुसुमित लतिका थी, सचमुच वह नन्दनोद्यान से भी कहीं अधिक रमणीय होगा। वह मेघ निस्सन्देह स्वाति-बिन्दु से गर्भित होगा,

जिसकी वह अंक-मालिका बिजली थी। जिस गगन-तल की वह चन्द्रलेखा थी, वह निश्चय ही देदीप्यमान हीरक-खंडों से खचित होगा। जिस सरस-सलिला सरसी की वह सरोजिनी थी, वह वस्तुतः किसी प्रेमान्ध भ्रमर की क्रीडास्थली होगी। धन्य होगा वह नन्दनोद्यान, जिसकी वह हरिचन्दन-कलिका थी। धन्य होगा वह माली, जिसने पुष्पचय चुनकर वैसी मनोहारिणी माला बनाई थी।

उसकी रूप-माधुरी मुकुलित बकुल की छाया-सी शीतल थी। इसी लिए उसके दर्शन से हृदय में उत्ताप की जगह शान्ति उत्पन्न होती थी। उसके तीखे तिरीछे तरल लोचन रस-कुंड के मीन थे, लज्जा के जाल में फँसकर वे बेताब हो गये थे। मालूम होता था कि अश्रु-जल से अलग होते ही वे प्राण से हाथ धो बैठेंगे।

हमने उस सहृदय स्वयंसेवक को कोटिशः धन्यवाद दिया जिसने कुशल कारीगर करतार के बनाये हुए उस बे-जोड़ खिलौने को चकनाचूर हो जाने से बचा लिया था। एक स्वयंसेवक-मंडल उसे भुज-मंडल में घेरकर यथास्थान पहुँचाने के लिए बाहर ले चला। हम भी साथ ही चले। हम जब मन्दिर के मंडप से बाहर आये, तब एक बार फिर धुआँ-धार धक्का मिला। उस अन्धाधुन्ध धक्के में पड़कर हम सार्थ-भ्रष्ट हो गये। क्षण-भर पहले हमारे नेत्रों के सामने जो तरंगिणी लहराती थी, वह देखते-देखते हाहाकारमय समुद्र में विलीन हो गई। न जाने हमारे हृदय की कसौटी पर खिची हुई कनक-रेखा किसने मिटा दी! उस रत्न के लिए हमने मेला-महोदधि मथ डाला; पर वह नहीं मिला!! उसके जोड़ का, हाय! उसके नमूने का भी, कोई रत्न नहीं मिला!!!

"बहुत ढूँढा उसे हर्गिज न पाया।
अगर पाया, पता अपना न पाया॥"

५

हम एक पीपल के पेड़ के नीचे, मुहर्रमी सूरत बनाये, बैठे हुए थे। थके-माँदे तो थे ही, दिल की गाँठ में बँधी हुई मणि खो जाने से चित्त और भी उदास था—"फिरेउ बनिक जिमि मूर गँवाई!"

हमें एक अप्रधान स्थान में हताश बैठे देखकर हरएक राह चलते आदमी को बड़ा कुतूहल होता था। क्रमशः हमारे चारों ओर नर-नारियों का जमघट लग गया। इतने ही में एक वृद्धा स्त्री ने, जो हमारे मुख की ओर आँखें गड़ाकर देख रही थी, छूटते ही कहा—"यह आदमी तो 'चमेली' का दुलहा जान पड़ता है!" उसकी इस बात की पुष्टि करती हुई एक दूसरी वृद्धा बोली—हाँ, रूप-रंग तो वैसा

ही मालूम होता है। ब्याह में रेखें भी नहीं भींगी थीं, अब तो बड़ी-बड़ी मूँछें निकल आई हैं।" तबतक उन दोनों वृद्धाओं को अलग हटाती हुई एक तीसरी अधेड़ औरत हमारे पास आकर बोली--"चलो, जाओ, बूढ़ी हो जाने से तुम लोगों की आँखों की जोत मन्द हो गई है, मुझे देखने दो, मैंने ब्याह में उबटन लगाया था, मुझसे बढ़कर कौन पहचानेगा।" इतना कहकर वह बड़े गौर से हमारे चेहरे की ओर देखने लगी। देख लेने के बाद उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा--"मुख्तार साहब का दामाद ही तो है। ब्याह के बाद ही आसाम भाग गया था। पूरब-बंगाल देश का पानी लग गया है। लो, बहुत दिनों पर 'चमेली' का भाग जगा है।" यह सुनकर एक युवती ने मटककर मुस्कराते हुए कहा--"इनको अपने साथ ले चलो, चुनरी आई ही है, 'सइयाँ से मिलनवाँ' हो ही गया, अब दुहरी चुनरी चढ़ाने !" ऐसा कहकर वह युवती अपने मुँह पर अंचल देकर हँसती हुई भीड़ से बाहर चली गई।

हमने झुँझलाकर कहा--"तुम लोग अब अपनी-अपनी राह देखो, हमारे पीछे क्यों पड़ी हो? हम बंगाल या आसाम कभी नहीं गये और न कभी घर से भागे, न हमारे ससुर मुख्तार हैं और न हमारी पत्नी का नाम ही 'चमेली' है। तुम लोग बेकार भ्रम में पड़ी हो। बे-सिर-पैर की बातें न करो। हमारा घर 'पुरुषोत्तमपुर' है। दया करके अब अधिक तंग न करो।"

हम लाख कहते ही रह गये, पर उन हठीली स्त्रियों ने सब अनसुनी कर दी। हमपर वे मधुमक्खियों की तरह टूट पड़ीं ! कोई वृद्धा हमारे पैरों पड़ने लगी और कोई हमारा चिबुक धरकर गिड़गिड़ाने लगी। वे इस कदर गुड़-चींटा की तरह चिपकीं कि हमें अपने साथ ले जाकर ही शान्त हुईं। हमें उनका अनुरोध अङ्गीकार करना अभीष्ट नहीं था; पर हम करते नहीं तो जाते किधर ?

हम अजब असमंजस में पड़ गये। हमने बहुत दूर तक सोचा; पर किसी एक निश्चित परिणाम पर पहुँच न सके। अश्रद्धालु के विपुल दान की तरह हमारे सारे विचार विफल हो गये। कभी ओठों पर एक अनीप्सित हँसी खेल जाती थी और कभी छाती के अन्दर कोई ठोकरें मारने लगता था। उन आग्रहकारिणी अबलाओं के साथ जब हम मूँगालाल पंडे के दोमंजिले मकान की छत पर पहुँचे, तब हमें एक ऐसी जगह में जाकर बैठना पड़ा, जहाँ बैठकर भगवान् रामचन्द्र ने जनकपुर की प्रेमासक्त युवतियों को यह कहकर आश्वासित किया था कि 'तुम लोगों का सारा प्रेमाभिलाष मैं लीला-धारी कृष्ण बनकर पूर्ण करूँगा।'

बातों की रस-वर्षा हो ही रही थी, तबतक अचानक पायलों की झनकार सुन पड़ी, वर्षा के साथ-साथ झिल्ली-झनकार अत्यन्त श्रवण-सुखद प्रतीत हुई ! एक

रमणी ने हँसते-हँसते आकर कहा—"इतने दिनों के बाद बड़े भाग्य से बेचारे मिले भी तो तुमलोग फँसाये लिये बैठी हो। कुछ रीति-रस्म होने पायगी या नहीं?" इतना कहकर उसका जाना था कि हमारे पास बैठी हुई युवतियाँ, हमें पकड़कर बरबस एक ऐसे कमरे में ढकेल आईं, जहाँ वही हमारी खोई हुई सम्पत्ति संचित थी! हमें घर में छोड़कर चारुहासिनी युवतियाँ चंचल चरणों से चली गईं। एक बार उस घर के अगल-बगल के सायबान मधुर हास्य से मुखरित हो उठे! कुछ ही देर के बाद, एक झँझरीदार झरोखे की जाली से छनकर, एक कोमल खिलखिलाहट उस घर में आई। हम अपने जाग्रत स्वप्न का रहस्य समझ न सके। हमारे अन्तःकरण की अन्तःपटी में 'कौतूहल-कौतुक' नाटक हो रहा था। हम उसी अभिनव अभिनय को देख-देखकर मुग्ध हो रहे थे।

"जब प्रेमपात्र अपना मिलता है दिन बिताकर।
सच्चा सुप्रेम दिल का उठता है छलछलाकर॥
उस वक्त दुःख लज्जा भगते हैं भर-भराकर।
सब ऊँच-नीच लघु-गुरु हो जाते हैं बराबर॥"

६

मार्गशीर्ष की पंचमी आ गई। मेला धीरे-धीरे उठने लगा। आधा से अधिक मेला बिखर गया। गाड़ी-छकड़े लद चले। हमारे मित्रों ने तीन दिन तक मेला-महार्णव का मन्थन किया; पर इस 'नन्दन-कानन-चारी' का पता ही नहीं।

हमने पचासों वादे किये। इकरार पर इकरार होते रहे। शपथ और प्रतिज्ञाएँ करते-करते हमारी जीभ बेचारी 'संकट-मोचन' का पाठ करने लगी! अनेक प्रकार के अभिवंचना का आदान-प्रदान हो लेने के बाद हम रुखसद हुए। पीली धोतियों का जोड़ा और एक गिन्नी, जिन्हें बिदाई की सहिदानी कहिए या प्रेम की चुनौती कहिए या यादगार की मुहर कहिए' हमारे हाथों में शोभा पा रही थी। रास्ते-भर वही विद्युल्लता हमारे हृदयाकाश में मचलती आई। न जाने किस जाहिल जौहरी ने ऐसा जगमग जवाहिर गँवाकर आसाम और बंगाल की खाक छानना पसन्द किया था!

घर पहुँचने पर अपने मित्रों से हमने सारी रामायण कह सुनाई। हमारी एकान्त कोठरी मित्रों के अट्टहास से बार-बार मुखरित हो उठी। हमारी 'पीत पुनीत मनोहर धोती' के एक कोने में बँधी हुई गाँठ से एक स्वर्णमुद्रिका खोलकर हमारे एक मित्र ने हमारी अँगुली में हँसते-हँसते धीरे से पहना दी। 'अशोक-वृक्ष के पल्लवान्तराल से चूकर सती सीता को सान्त्वना देनेवाली'—हमारी

अङ्गुली को आलिङ्गत करके धन्य हो गई। कोठरी के बगलवाले कमरे से जो हमारा सुसज्जित शयनागार है, एक बार रुनझुन की मन्द-मधुर-ध्वनि सुन पड़ी। हमने खिड़की खोलकर देखा तो वही हमारी हृदयेश्वरी—वही माधुर्य्य-महोदधि की अमूल्य मणि—स्मितशाली कपोलों को अपने नीलांचल से ढँककर और अपने सुदीर्घ लोचनों की सुधास्निग्ध किरणों का जाल समेटकर बैठती हुई देख पड़ी। हमसे आँखें मिलते ही वह घर के एक कोने में लजीली लता की तरह चिपककर खिलखिला उठी। तबतक तो भाभी ने भीतरवाले सायबान से डाँटते हुए धीमी आवाज में कहा—'बस, होश करके उधर मर्दाना बैठक है।'

७

"मीठी निगह की चाट पै दिल है लगा हुआ।
था उन रसीली आँखों में शरबत घुला हुआ॥"

आज भी हमारे ट्रङ्क में वही केसरिया रङ्ग में रँगी हुई धोतियों का एक जोड़ा, केवड़े के फूलों को गोद में लेकर, रेशमी रूमाल की ओढ़नी में सो रहा है! नहीं, हमारी स्मृतिशाला में जादू जगा रहा है!

× × ×

अब तो उस भुवन-मोहन रूप का एक 'धुँधला-सा चित्र' मात्र हमारे स्मृति-पट पर अङ्कित है। किन्तु उस 'सुगन्धित सुवर्ण की मूर्त्ति' की महिमा आज भी हृदय पर स्वर्णवर्णाङ्कित है! वह लज्जा की लता अब हमारी हृदय-वाटिका में विद्यमान नहीं है; पर उसको सींचनेवाला नेत्र-माली आज भी उसके लिए आठ-आठ आँसू बहा रहा है! हमारे हृदय के अरघे पर आज वह पवित्रता की प्रतिमा पूर्ववत् प्रतिष्ठित नहीं है; पर उसकी पूजा-सामग्री आज भी अरघे के पास ज्यों-की-त्यों पड़ी है!

अधिक क्या कहें, यह घटना हमारे हृदय की संचित सम्पत्ति थी। किन्तु इसे सहृदयों की सेवा में वितरित कर देने की इच्छा तभी हुई, जब कल प्रातःकाल हमने अपनी शय्या से उठते ही करतल निहारते समय देखा कि हमारी अँगुली को घेरकर बैठी हुई है वही—

'अनूठी अँगूठी !!'

मानमोचन

"धन्य है प्यारी तुम्हारी योग्यता, मोहिनी-सी मूर्त्ति मञ्जु मनोज्ञता !
पा सका सौभाग्य से सहवास हूँ ! किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ !"
"दास बनने का बहाना किस लिए ? क्या मुझे दासी कहाना इसलिए ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो—और देवी ही मुझे रक्खो अहो !"

—मैथिलीशरण गुप्त

× × ×

"The peace of God came into my life before the altar when I wedded her".

—*Tennyson.*

× × ×

सुतनु जहिहि मौनं मुञ्च वाचो जडत्वं,
प्रणयिनि मयि कोपं किङ्करे किं करोषि ?
अथ यदि तव चित्ते सापराधोऽस्मि बाले !
निजभुजयुगवल्लीबन्धनं मां विधेहि ॥

१

लावण्यवती 'लीला' 'ललित-ललाम' पढ़ रही थी। मेज पर किताब, किताब पर नजर थी, हाथ पर कपोल था—मानों लाल कमल पर पूनो का चाँद विश्राम कर रहा हो। कुर्सी के पीछे मुकुन्दलाल चुपचाप खड़ा था। लीला को इसकी खबर न थी। वह तो 'ललित-ललाम' के लालित्य पर लट्टू हो रही थी, कवि के आलोकमय भाव-लोक की सैर कर रही थी, कल्पना के विमान पर चढ़कर काव्य-गगन में विहार कर रही थी!

तल्लीनता की उस तरुण मूर्त्ति की सौम्य शांत शोभा देखकर मुकुन्द मुग्ध हो रहा था। शुभ्र सुन्दर दुकूल से ढँकी हुई उस पुष्पराशि पर उसके नयन-मधुप मँडला रहे थे। कुम्भज ऋषि की तरह एक ही घूँट में उस सौन्दर्य्य-सागर को पीकर वह चुपके से पीछे की ओर हट आया।

पलँग पर बैठकर सोचने लगा—

"यह दिन-दिन व्रजभाषा का कीड़ा होती जा रही है। गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा सूरदास और संत-शिरोमणि कबीरदास के ग्रंथों की ओर तो कभी फूटी नजर से भी नहीं देखती। हजार बार कहा, लाख बार समझाया, कानों में तेल डाल लेती है। दादू, मलूक, मीरा और सुन्दर तो सुहाते ही नहीं। जब देखो तब देव, मतिराम, बिहारी, पद्माकर और पजनेस को ही चचोड़ती रहती है। फिर भी इसका मस्तिष्क इतना शुष्क है कि कभी दिल खोल कर हँसती-बोलती तक नहीं। मन तो सदा आदि-रस में डूबा रहता है, और शरीर सदा शान्त रस में! जरा भी चुलबुलाहट नहीं। मस्ती का तो नाम नहीं। लोग कहते हैं, व्रजभाषा पढ़ने से रसिकता बढ़ती है। खाक बढ़ती है, सारी रसिकता सिकता हो जाती है। मधुमक्खियों की तरह शृंगाररस का सारा काव्योद्यान चाट गई, फिर भी 'सहारा'-मरुस्थल ही बनी रही। दिल है कि रेगिस्तान है, रस की उमड़ी हुई नदियों को सोखता चला जाता है। ऐसी स्याही-सोख बीवी न जाने किस पुराकृत पुण्य का परिणाम है।"

"चुहलबाजी से चिढ़ती है, खड़ी बोली से कुढ़ती है, चुटकियाँ लेने से झुँझलाती है, छेड़ने से छटपटाती है। अजीब हालत है। सोलहो आने गोबर-गनेस है। उसपर तुर्रा यह कि साड़ी रेशमी ही चाहिए। बिना मखमली जूतियों के पैर दुखने लगते हैं। मगही पान की तबकदार गिलौरियाँ न हों तो बेचारे पनबट्टे पर सारा गुस्सा खत्म हो जाय। दिन-भर गिलौरीदान खाली करना और उगलदान भरते रहना। बस इतनी ही कमाई है। दाँतून से जबड़े छिल जाते हैं! 'दन्त-प्रभाकर' जरूर चाहिए! 'केशरंजन' और 'जवाकुसुम' की खाली

शीशियों से घर भर गया। 'फूलों का दूध' और 'हिमानी' की शीशियाँ हमेशा मेज पर कंघी-शीशे के पास पड़ी रहती हैं। शौकीनी तो यहाँ तक है, मगर जरा-सी गलबहियाँ डाल दूँ तो भदौआ मेढ़क की तरह उछल पड़ेगी। अगर इस समय कुर्सी खींचकर बगल में चुपचाप भी बैठ जाऊँ, तो इसे खटमल काटने लगेंगे, कुर्सी पटकेगी, नाक-भौं सिकोड़कर नौकर की चपतगाह गरमाने लगेगी।"

"हर तरह से आफत है। बीवी के बदले खुदा मियाँ ने मेरे सिर यह बला मढ़ दी। सब कुछ करते हुए भी अगर खद्दर की साड़ी पहनती, चरखा कातती, 'भारत-भारती' पढ़ती, तो मैं समझता कि मेरा असहयोग व्रत किसी हद तक सफल हुआ। लेकिन यहाँ तो खद्दर देखते ही एक सौ पाँच डिग्री बुखार चढ़ जाता है। व्रजभाषा के चरखे से फुर्सत ही नहीं, रुई-सूत का चरखा कौन चलावे? 'रसराज' और 'पजनेसपचासा' के सामने 'भारत-भारती' की बिसात ही क्या है? इसे तो बस किसी एक कवित्त का यही टुकड़ा याद है—"जो न जानै व्रजभाखा ताहि साखामृग जानिये !" जब कभी बहस में पेश न पायेगी, तब झट यही कवित्त की टूटी टाँग पेश कर देगी। चलो, बस मामला वहीं खत्म हुआ। खड़ी बोलीवाले शाखामृग हैं, तो न जाने व्रजभाषावाले क्या हैं, खुदा जाने। शाखामृग न होंगे, तो धड़मृग या जड़मृग, कुछ तो होंगे ही।"

"व्रजभाषा ने मेरा घर तो चौपट किया ही, सारे देश को तहस-नहस कर दिया। व्रजभाषा के करते सारा देश तो हिजड़ा हुआ ही था, मेरी बीबी भी हिजड़ी हो गई। इतनी नफासत और नजाकत सिर्फ औरों के आँखें सेंकने के लिए है। मेरी आँखें सिकती नहीं, जलती हैं। यह विलासिता का आडम्बर किंशुक-कुसुम की तरह निर्गन्ध है। यह लावण्य-लहरी फल्गु नदी की तरह अन्तःसलिला भी नहीं, बल्कि अंतस्तप्ता है।"

"पढ़ती तो है 'जगद्विनोद'; मगर मनोविनोद की एक भी कला मालूम नहीं। नेत्र-वर्णन के सैकड़ों सवैये सुना देगी, मगर किस काम के? आँखें नचाना नहीं आता! अधर-वर्णन सुनाने के समय जबान डाकगाड़ी बन जाती है, मगर एक बार भी मुस्कराकर 'प्राणप्यारे' कहने के लिए अगर कहीं आग्रह कर बैठूँ, तो निगोड़ी जबान बालिस-ट्रेन को भी मात कर दे। पत्थर पड़े ऐसी जबान पर।"

२

सोचते-सोचते मुकुन्दलाल इतना खिन्न हो गया कि बेतरह ऊबकर उक्त 'अंतिम वाक्य' बड़े जोर से बोल उठा।

मानिनी लीला चौंक पड़ी। व्रजभाषा का अपमान सहन करना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। उसने समझ लिया कि निश्चय ही व्रजभाषा पर यह अभिशाप है। सरोष दृष्टि से मुकुन्दलाल की ओर देखती हुई बोली—"कौन-सी जबान पर पत्थर पड़े ? व्रजभाषा पर ?"

मुकुन्दलाल बड़ा प्रसन्न हो गया कि भला छेड़ने से कुछ बोली तो सही, स्टीम गरम रखना चाहिए, जितना ही भबकेगी, उतना ही दिल बहलेगा, काम निकलेगा। बोला—"तुम्हारी खोपड़ी में तो व्रजभाषा के सिवा और कुछ है ही नहीं। हर-एक बात में व्रजभाषा ! बात-बात में व्रजभाषा ! धत्तेरी व्रजभाषा की ऐसी-तैसी ! चंद्रमा, हिरन, कोयल, खंजन और हंस न होते, तो व्रजभाषा पैदा भी न होती। और अगर हुई भी तो उसमें 'हाय-हाय' के सिवा और है ही क्या !"

लीला—"आज आप इतने झल्लाये हुए क्यों हैं ? क्या किसी सार्वजनिक सभा में आपके व्याख्यान पर तालियाँ नहीं पिटी हैं ? या किसी सभा-समिति के अधिवेशन में आपका प्रस्ताव बहुमत से गिर गया है ? माजरा क्या है ? व्रजभाषा को तो आप कहते हैं कि चंद्रमा और हंसादि के अभाव में पैदा ही नहीं होती, तो क्या देश की दरिद्रता के अभाव में खड़ी बोली पैदा होती ? व्रजभाषा में विरह-वर्णन बहुत है, तो क्या खड़ी बोली में गुलामी का रोना और महँगी की हाय-हाय नहीं है ? व्रजभाषा पर आप सदैव खड्गहस्त रहते हैं। इसका कारण क्या है ? व्रजभाषा के पास जैसी चीजें हैं, वैसी एक भी चीज कहीं दिखलाइएगा !"

मुकुन्दलाल—"शब्द-जाल के सिवा उसके पास और कौन-सी चीज है ? बाहर जितना ही भड़कीला शब्दाडम्बर है, भीतर कहीं उससे भी अधिक खोखलापन है। 'ढोल में पोल' अक्षरशः चरितार्थ है।"

लीला—"दलील में जलील होने के डर से इस कदर सहृदयता का गला न घोंटिए। खड़ी बोली का दम भरने चले हैं, तो बताइए न, उसकी कितनी कविताएँ कंठस्थ हैं ? दो-चार भी तो सुनूँ ? जो आपको सबसे अच्छी जँचे, वही सुनाइए। जरा देखूँ, आपकी कसौटी सचमुच सोना कसने के लिए है या डंडीमार खटिक का बटखरा ही मात्र है।"

मुकुन्दलाल—"तुम्हारी तरह यदि मैं रात-दिन कविताएँ पढ़ता रहूँ, तो एक महीने के अन्दर-ही-अन्दर पागल हो जाऊँ। कविता तो केवल मनोरंजन के लिए है। व्यसन हो जाने पर तो फिर 'सरगौ नरक ठिकाना नाहीं !' मुझे चुनिन्दा कविताएँ याद नहीं हैं, पर मैं पुस्तकें खोलकर दिखला सकता हूँ।"

लीला—"बस ! हेकड़ी हवा हो गई ? क्षण ही भर में डींग डवाँडोल हो गई ! आप इतने ही पानी में हैं ? तब तो व्यर्थ ही फुदकते हैं। याद रखिए—

"पुस्तकेषु च या विद्या, परहस्तेषु यद्धनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने, न सा विद्या न तद्धनम् ।।"

मुकुन्दलाल—"अच्छा, तुम भी कहती ही रहोगी, लो सुनो ; जरा खूब गौर से यह भी देखती चलो कि इस कविता में कैसा नवीन सन्देश है, कितना ऊँचा तथ्य है, कैसी आडम्बर-शून्यता है, और कितनी सामयिकता है—

"है बदलता रहता समय उसकी सभी घातें नई ।
कल काम में आती नहीं हैं आज की बातें कई ।।
है सिद्धि-मूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रंग हो ।
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्य्य-कृति का ढंग हो ।।
प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी ।
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस-जैसी चातुरी ।।
प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है ।
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी 'व्यवस्था' ठीक है ।।"

लीला—"शायद इस कविता को अपने व्याख्यान के बीच में कहकर जनता पर प्रभाव जमाने के लिए याद कर लिया है ! क्यों ? यह चुनिन्दा चीजों में से है न ?"

मुकुन्द—"तुम इस तरह व्यंग्य के तीर क्यों छोड़ती हो ? तर्क और ताने से क्या तअल्लुक ? घबराती क्यों हो ? चुनिन्दा चीज चाहिए न ? यह लो—

"नीलाम्बर-परिधान हरित पट पर सुन्दर है ।
सूर्यचन्द्र युग-मुकुट मेखला रत्नाकर है ।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मंडल हैं ।
बन्दीजन खगवृन्द शेष-फन सिंहासन हैं ।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस वेश की ।
है मातृभूमि तू सत्य ही, सगुण मूर्त्ति सर्वेश की ।।"

लीला—"यही चुनिन्दा चीज है ?"

मुकुन्द—"इससे भी बढ़िया है । दिखाऊँ पुस्तकें ?"

लीला—"कौन-सी पुस्तक दिखलाइएगा ? 'भारत-भारती' और 'त्रिशूल-तरंग' के सिवा और हैं ही क्या ?"

मुकुन्द—"बस करो, तुम्हारी जानकारी की थाह लग गई । अभी तो ऐसी-ऐसी चीजें हैं कि देख लो तो चक्कर आ जाय ।"

लीला—"'प्रिय-प्रवास' और 'पथिक' देखकर तो चक्कर नहीं आया, अब और अगर कोई चकरानेवाली चीज नयी निकली हो, तो बताइए, मैं दुराग्रह न करूँगी ।"

मुकुन्द—"'कविता-कलाप' देखा है ?"

लीला—"और भी कुछ है या 'कविता-कलाप' ही पर इतिश्री का शंख बजेगा ? जो कुछ हो, सब कह डालिए।"

मुकुन्द—"अच्छा, 'कविता-कौमुदी' का दूसरा भाग देखा है ?"

लीला—"आप अपनी जानकारी का हाल बयान कीजिए। मुझसे न पूछिए कि मैंने क्या देखा है और क्या नहीं देखा है। हिन्दी-कविता की कोई अच्छी-से-अच्छी नयी या पुरानी पुस्तक ऐसी नहीं है, जो मेरे देखने में न आयी हो। जनाब, मेरे पिता सभी हिन्दी-प्रकाशकों के स्थायी ग्राहक हैं !"

मुकुन्द—"सो तो मुझे मालूम है। और यह भी मालूम है कि तुम मायके में किताबों के सफे चाट जाया करती थीं। मैंने समझा था तुम्हें विद्यानुरागिनी, और तुम निकल आईं विकट विरागिनी ! अल्लाह मियाँ की कुदरत, मेरी किस्मत का पाँसा उल्टा पड़ गया।"

लीला—"(बीच ही में बात काटकर) चर्चा हो रही है कविता की, और आप ले उठे किस्मत का चर्खा ! वाह जी वाह ! मालूम होता है, 'कविता-कौमुदी' के दूसरे भाग से आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं है। इसीलिए बात टाल रहे हैं। है न बात ऐसी ही ?"

मुकुन्द—"फबती क्यों कसती हो ? अभी 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' तुम्हारा मुँह बंद करने के लिए काफी हैं। 'काश्मीर-सुषमा' और 'राम-चरितचिन्तामणि' तुम्हारी व्रजभाषा के अच्छे-से-अच्छे ग्रन्थों के साथ टक्कर ले सकते हैं। अभी तुम गफलत में भटक रही हो।"

लीला—"माफ कीजिए, अपना दोष व्यर्थ ही मेरे सिर न मढ़िए। आपने अभी-अभी बहुत ठीक कहा था कि आप यदि मेरी तरह रात दिन कविताएँ पढ़ा करते तो एक ही महीने में पागल हो जाते। दर्जनों पुस्तकों के नाम बतला गये; पर किसी एक में से एक पंक्ति भी नहीं सुनाई। रणभूमि में ताल ठोंकने से पहले शस्त्र-प्रहार करना चाहिए। बतलाइए तो, 'कविता-कौमुदी' के दूसरे भाग में कौन-सी कविता आपको सबसे अच्छी जँची ?"

मुकुन्द—"मुझे सिर्फ दो ही निहायत पसंद हैं। एक तो आधुनिक काल के कविता-कामिनी-कान्त शंकरजी की है और दूसरी 'धाराधर-धावन' तथा 'स्वदेशी-कुंडल' वाले 'पूर्ण' जी की। दोनों ही अगड़धत्त कवि हैं। ध्यान से सुनना—

"सब जड़ाऊ भूषणों के सोहने शृङ्गार थे।
कंठ में केवल मनोहर मोतियों के हार थे।
पीन कृश उकसे कसे कोमल कड़े छोटे बड़े।

गुप्त सारे अंग साड़ी की सजावट में पड़े ।।"

और—

"अच्छे-अच्छे फुलवा बीन री मलिनियाँ गूँधि लाव नीको-नीको हार ।
फुलन की हरवा गोरी गरे डरिहौं सेजिया माँ होये रे बहार ।
चैत मास की सीतल चाँदनी रसे-रसे डोलत बयार ।
गोरिया डोलावै बीजना रे पिय के गरे बाहीं डार ।
बागन माँ कचनरवा फूले बन टेसुवा रहे छाय ।
सेजिया पै फूल झरत रे जबहीं हँसि-हँसि गोरी बतराय ।।"

लीला—"बस-बस, रहने दीजिए व्रजभाषा पर तो आप व्यर्थ ही शृङ्गार-रसमयी होने का दोष लगाते हैं । आपके यहाँ भी तो शृङ्गार-रस ही की भरमार है । मालूम होता है, घर में आप सदा शृङ्गार-रस में ही डूबे रहते हैं, सिर्फ बाहर सभा-सुसाइटियों में ही देशभक्ति-रस की धारा बहाते हैं ! उस दिन तो सेवा-समिति के सालाना जलसे में आप बड़े करुणार्द्र स्वर से कह उठे—

'शस्य से श्यामला भूमि में इस तरह, अन्न का वस्त्र का धन का टोटा पड़ा ।
रत्नगर्भा के लालों को परदेश में, कौड़ियों में कुली बन के जाना हुआ ।'

"मगर आज तो आप दूसरा ही राग अलापते हैं । आपका आशय मैं खूब समझती हूँ । 'नारियों के सदुपयोग' पर बेकार ही लेक्चर झाड़ते फिरते हैं । त्याग में ही सच्चा सुख है'—इस नाम की अपनी पुस्तक जला दीजिएगा, क्यों दुनिया को धोखा दे रहे हैं ? 'परोपदेशे पाण्डित्यं' आप-जैसे असहयोगी को शोभा नहीं देता ।"

मुकुन्द—"बस करो, गुरुआनी बनकर शिक्षा मत दो । मेरा आशय समझती हो, तो समझती रहो । समझीं, तो बेकार ; न समझीं, तो भी बेकार । तुम्हारे समझने और न समझने से कुछ आना-जाना नहीं है । यह बताओ कि मैं जो कविताएँ सुना चुका हूँ, उनसे भी अच्छी कोई कविता तुमने 'कौमुदी' में देखी है ?"

लीला—"हाँ, जरूर देखी है, और बहुत अच्छी देखी है । आपने तो 'शंकर' जी के बहुत ही साधारण पद्य को अत्युत्तम मान लिया है । इससे भी उनकी अच्छी-अच्छी लाइनें हैं । देखिए एक-आध—

(माँग-वर्णन)

"कज्जल के कूट पर दीप-शिखा सोती है
कि श्याम घनमंडल में दामिनी की धारा है ;
'शंकर' कसौटी पर कंचन की लीक है
कि तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है ।"

(भृकुटी-वर्णन)

"शंकर की भारती के भावने भवन पर, मोह-महाराज की पताका फहरानी है।"

"और, पूर्णजी का 'बिरहा' जो आपने सुनाया है, उससे मेरे कहे हुए उनके इस वसंत-वर्णनवाले कवित्त का मिलान कीजिए। 'कौमुदी' में उनके एक कविता का अन्तिम चरण कितना सुन्दर है!"

"जिन सों बनी न कछु करत मकानन में, तिन सों बनैगी करतूत कौन कानन में?"

(वसन्त वर्णन)

"चम्पक निवारी दौना मोगरा चमेली बेला गेंदा गुलदाउदी गुलाब सोभासाली है;
केतकी कनैल गुलसब्बो गुलेनार लाला हीना जसवंत कुंज केवड़ा की वाली है;
'पूरन' त्रिविध चारु सुन्दर प्रसूनन की छटा छितिमंडल पै छै रही निराली है;
पूजन को मानों वनमाली के चरन-कंज साजत वसन्त-माली फूलन की डाली है।"

मुकुन्द—"हाँ-हाँ समझ तो गया, व्रजभाषा के छन्दों का तर्ज जहाँ-कहीं होगा, तुम्हें जरूर पसन्द पड़ेगा।"

लीला—"मुझे ही क्यों, हरएक सहृदय मनुष्य व्रजभाषा के छन्दों का तर्ज पसन्द करेगा। आपकी खड़ी बोली के कवि भी जब कभी व्रजभाषा की शरण लेते हैं, उनकी प्रतिभा का चमत्कार अनूठा हो जाता है। खड़ी बोली के महा-काव्य-प्रणेता 'हरिऔधजी' के 'प्रेमाम्बु-प्रवाह' की एक कविता देखिए—

"वेई गुरु वेदन गलित गोप गोपी गाय, गौरव गहत गारि गरव गजब सूल;
वेई तजे तृन तरु बकुल तमाल ताल ताजे होई तोषत दृगन तामरस तूल।
'हरिऔध' आये आज आनंद-अगार ऐन, वेई अकुलाये अंग भये अति अनुकूल;
वेई कल हीन कोक केकी क्रौंच कोकिलादि, कलरव करत कलिंदजा कलित कूल॥"

"अब मिलाइए उनकी उन अन्य रचनाओं से जिन्हें पाकर आपकी खड़ी बोली कृतार्थ हुई है। मैं तो उन्हें इसी कविता के लिए पूजती हूँ।"

मुकुन्द—"तुम इसी कविता को 'कौमुदी' में सर्वोत्तम समझती हो क्या? यह भी तो अनुप्रास का अखाड़ा ही है।"

लीला—"जनाब, 'कौमुदी' को जरा फिर गौर से उलट जाइए। भ्रम दूर हो जायगा। उसमें यह नहीं है! मैं 'कौमुदी' की 'दूसरी किरण' के प्रकाश में इस कविता के अन्दर एक अजीब जगमगाहट देखती हूँ—

"जिनके शुभ्र स्वच्छ हिय-पट पर जग-विकार का लगा न दाग।
भरा हुआ है अटल जिन्हों में केवल मातृ-देवि अनुराग॥
जिनकी मृदु-मुसुकानि सरलता-विकसित गालों की लाली।
देख-देख सुन्दर फूलों को रचता है जग का माली॥

बंधी हुई मुट्ठी को जिनने अबतक नहीं पसारा है।
जिनको हाथों से पैरों का अधिक अँगूठा प्यारा है॥
भावी भारत-गौरव-गढ़ की सुदृढ़ नींव के जो पत्थर।
आर्य-देश की अटल इमारत का बनना जिनपर निर्भर॥
उन्हीं अनूठे कानों में यह मेरी स्वरमय-आत्म-पुकार।
पहुँचे आश लता की जड़ में जिसमें होय शक्ति-संचार॥"

मुकुन्द—"याद रहे, यह खड़ी बोली की रचना है।"

लीला—"मैं कब कहती हूँ कि व्रजभाषा की है? इतनी जल्दी आप अधीर क्यों हो जाते हैं! इससे तो यही साबित होता है कि अभी आपके यहाँ रत्नों का टोटा है। आपने शायद इसलिए घबरा कर खड़ी बोली का दावा पेश कर दिया कि मैं कहीं इसे व्रजभाषा की रचना न कह डालूँ! जनाब! यहाँ तो एक-से-एक बेश-कीमत लाल पड़े हुए हैं; कोई सैकड़ों लूट ले जाय, कुछ परवा नहीं। कारूँ का खजाना है!"

मुकुन्द—"सैकड़ों वर्षों से जिसका शृङ्गार होता चला आ रहा है, उससे खड़ी बोली का मुकाबला करना ही अन्याय है। यह तो अभी हाल ही की है।"

लीला—"अब आये आप सीधी राह पर।"

मुकुन्द—"मैं कभी पथभ्रष्ट नहीं हुआ। मैं तो तुमसे हमेशा कहा करता हूँ कि व्रजभाषा का युग बीत गया, अब आया खड़ी बोली का जमाना। अपने-अपने समय में सबकी शोभा होती है। दोनों दो चीजें हैं। मुकाबला करना बेकार है।"

लीला—"व्रजभाषा का युग बीत गया, तो अच्छा ही हुआ। इस भीख-मंगी के जमाने में बेचारी सूखकर काँटा हो जाती। जिस समय उसकी तूती बोलती थी, उस समय भारतवर्ष अन्नपूर्णा का मंदिर था। आज वह चिरदरिद्र हो गया है। इसीलिए तो आजकल की हिन्दी-कविता का तर्ज और वजन भी फकीराना हो गया है—"एक पैसा पाव-भर आटा दो खुदा की राह पर!"

मुकुन्द—"व्रजभाषा केवल महलों में माखन-मेवा-मिश्री खाकर पली। उसे दरिद्रों के झोपड़े तक पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। वह अमीर-उमरा के मनोरंजन की सामग्री बनी रही। दुर्भिक्ष-दरिद्र्य-दलित देश के साथ उसकी सहानुभूति नहीं रही। किन्तु खड़ी बोली ने भारतवर्ष के हृदय की ध्वनि से दिशाओं को गुँजा दिया। जनता की आह के प्रकट करने में वह एक ही रही। देश की आकांक्षाओं को व्यक्त करने में उसने प्रभात-पवन और संध्या-समीरण को भी मात कर दिया। वह बेजबान निहत्थे गरीबों की आत्म-रक्षा के लिए आकाश-पताल एक कर डालती है। और, व्रजभाषा क्या करती है, सो तो उसकी पहली

करनी-करतूत से ही जाहिर है। नाजुक खयाली के पीछे नजाकत यहाँ तक बढ़ी कि सारा देश नाजनीन से भर गया। विलासिता भी अमृत पीकर निश्चिन्त हो गई। साहित्य की धारा हो पलट गई। पार्थ के सारथी भी केलिकुंज के कुँवर-कन्हैया बन गये। गीता की जगह एक ऐसी बाँसुरी ने ले ली, जो आधी रात को कालिन्दी-कूल पर कुलबधुओं को खींच लाती थी।"

लीला—"जनाब, घबराइए नहीं, उर्दू-बीबी की सोहबत से खड़ी बोली में भी नजाकत आती जा रही है। 'भूख' को 'मूक', 'धोखा' को 'धोका', 'ठंढा' को 'ठंडा', 'ख्वाह-म-ख्वाह' को 'खामुख्वाँ', 'सुभीता' को 'सुबीता', 'घरौंधा' को 'घरौंदा', 'लाठी' को 'लाटी', 'थोथी' को थोती' और 'क्यों' को 'क्यूँ' तथा 'यों' को 'यूँ' लिखने लगे। लक्षण अच्छे नहीं हैं। दो स्त्रीलिंग 'आँखों' के बीच में रहकर जैसे 'नाक' को भी स्त्रीलिंग हो जाना पड़ा और 'कटि' तथा 'भुजा' के संसर्ग से जैसे 'तलवार' को लोगों ने 'नंगी-नारी' कहते-कहते स्त्रीलिंग बना डाला, वैसे ही खड़ी बोली भी उर्दू और ब्रजभाषा के घिस्से खाते-खाते चिकनी चवन्नी बन जायगी। ख, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ और भ से घृणा होने ही लगी, कुछ ही दिनों में देख लीजिएगा, खड़ी बोली ऐसा 'लखनौआ तर्ज पकड़ेगी कि 'पड़ी बोली' हो जायगी। ब्रजभाषा के विषय में अभी जो आपने अपनी राय दी है, उसपर एक पुस्तक लिख डालिए, जैसे कविवर त्रिपाठीजी ने ब्रजभाषा शृंगारी कवियों को लंतरानी सुनाने के लिए 'हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिख डाला है!"

मुकुन्द—"वास्तव में ब्रजभाषा के शृंगारी कवियों ने समाज की नसें ढीली कर दी हैं। त्रिपाठीजी के कथन की वास्तविकता तुम्हारी समझ में नहीं आ सकती। उनकी बातें तुम्हारे लिए अप्रिय सत्य से भी कड़वी हैं।"

लीला—"जनाब, ब्रजभाषा-युग में यहाँ रोज ही घर-घर अन्नकूट था और आज घर-घर चूहों की कुश्ती हो रही है। वह मौज का जमाना था, तब ही तो कल्पना की उड़ान आसमान की आखिरी तह को भी छेदकर निकल जाती थी। आज यह देश 'गजभुक्त कपित्थवत्' हो रहा है, इसलिए लाख सिर मारने पर भी आजकल की कविता 'गजभुक्त कपित्थवत्' ही हो जाती है। देश का पेट खाली है, दिमाग भी खाली है। पेट भरने लगेगा, कवियों से 'भारत' का पिंड छूट जायगा। ब्रजभाषावाले चैन की वंशी बजाते थे, इसलिए ब्रजराज की वंशी के पीछे पड़े रहते थे। जबतक देश के पेट में चूहों का कलाबाजी खेलना बंद न होगा, तबतक खड़ी बोली की कविता का प्रवाह स्वच्छन्द न होगा।"

मुकुन्द—"क्या खूब! तुम ऐतिहासिक सिद्धान्तों और प्रमाणों से खड़ी बोली की कविता को नीचा दिखाना चाहती हो। बेशक बड़ी हिम्मत बाँधी है।"

लीला—"इतिहास की बात अगर जाने दीजिए, तो भाषा की दृष्टि से भी कविता और बोलचाल की भाषा भिन्न-भिन्न होनी चाहिए! रोजमर्रा की भाषा में कवित्व और चमत्कार कहाँ से आ सकता है?"

मुकुन्द—"तुम्हारी समझ में तो बस कवित्व और चमत्कार व्रजभाषा के तुकान्त छंदो के लिए ही रिजर्व है।"

लीला—"इसमें क्या शक? अच्छे मौके से याद पड़ी, खड़ी बोली की एक तुकान्त कविता सुनिए—

"भगवान तेरी माया, सारे जहाँ में छाया!
मुनियों को है नचाया, दुनिया में रंग लाया।"

"कितना शुद्ध तुकान्त है? जान पड़ता है कि इसका लेखक 'बेतावजी' का 'प्रासपुंज' घोख गया है! व्रजभाषा में इस कदर तुकों की तोबातिल्ला नहीं मचती।"

मुकुन्द—"तुक को गोली मारो। देखो कि कविता का भाव कितना सुन्दर है। असल चीज तो भाव है। देहातों में बहुत-सी ऐसी ठेठ कविताएँ प्रचलित हैं, जिनकी भाषा बिल्कुल सीधीसादी और टकसाली है; पर भाव चुभते हुए हैं। देखो, एक ही भाव को तुलसी और कबीर ने कवितावद्ध किया है; मगर भाषा को परखो तो दोनों दूर-दूर हैं—

'कर ते कर्म करै विधि नाना। मन राखे जहँ कृपा निधाना।"
"ठाढ़े, बैठे, पड़े, उताने। कह कबीर मैं उसी ठिकाने॥"

"फिर देखो, एक देहाती दोहा कितना सादा और कैसा भावपूर्ण है—

"सोना लेने पिउ गये, सूना हो गया देस।
सोना मिला न पिउ फिरे, रूपा हो गये केस।"

मानिनी लीला यह दोहा सुनते ही उछल पड़ी। बोली—"वाह-वाह-वाह! जरा मुकर्रर फरमाइए।"

मुकुन्द ने दोहे को दुबारा दुहराकर उसे बुलबुल बना दिया। लोटपोट हो गई। हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया। सुअवसर पाते ही मुकुन्द ने खींचकर भुज-पंजर में चाँप लिया!

———

खोपड़ी के अन्दर

अदृष्टे दर्शनोत्कण्ठा दृष्टे विश्लेषभीरुता ।
नादृष्टे न च दृष्टेन भवता विद्यते सुखम् ॥

× × ×

Her loveliness with shame and with surprise
Froze my swift speech she turning on my face
The star-like sorrows of immortal eyes,
Spoke slowly in her place.

—*Tennyson.*

× × ×

मेहरवाँ होके बुला लो मुझे चाहो जिस वक्त ।
मैं गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ भी न सकूँ ॥

—गालिब

१

केदार के पिता मुन्शी देवीनन्दन पटने के जमींदार लाला हरप्रसाद के पुराने खैरख्वाह नौकर हैं। जमींदारी का सारा इन्तजाम उन्हीं के हाथ में है। लालाजी ने अपना कुल कारोबार उन्हें ही सौंप दिया है। वे नहीं जानते कि जमींदारी में कहाँ क्या हो रहा है। मुंशी देवीनन्दन भी बड़ी ईमानदारी से अपनी जिम्मेदारी निबाहते हैं।

केदार का घर पटने से कुछ दूर देहात में है। घर पर अकेली उसकी माता रहती है; क्योंकि उसे शहरी जिन्दगी बिलकुल पसन्द नहीं। केदार लड़कपन से ही अपने पिता के साथ लालाजी के घर पर रहता है। वह अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा है—चार आँखों में एक ही पुतली है।

लालाजी को सब लोग 'विभु बाबू' कहते हैं। एक लड़की के सिवा उनके और कोई सन्तान नहीं। पुत्र के लिए बड़े-बड़े यत्न किये, पर तकदीर के सामने तदवीर की न चली। केदार को ही अपने लड़के की तरह मानते और लाड़-प्यार करते हैं।

एक बार मुंशीजी चारों धाम की तीर्थयात्रा करने गये, तो एक जड़ी लेते आये। प्रसाद के साथ विभु बाबू को जड़ी भी दी और उसके गुणों का बहुत बखान किया।

विभु बाबू ने उदास होकर कहा—"इन लकड़ियों और घास-पत्तियों पर अब मेरा विश्वास नहीं रहा। इन्हें कूड़े-करकट में फेंक दीजिए।"

मुंशीजी बड़े आस्तिक और श्रद्धालु थे। बोले—"नहीं सरकार! ऐसा मत कहिए। बड़े-बड़े यज्ञ से जो काम नहीं बनता, उसे सिद्ध साधु की एक जड़ी बना देती है। सन्त-महात्मा तो विधाता की टाँकी भी मिटा देते हैं।"

विभु बाबू—"दुनिया में सब पर से मेरा विश्वास उठ गया। कलियुग में कोई शुभ कर्म नहीं फल सकता। सब करके हार गया। अब ईश्वर से प्रार्थना करना भी छोड़ दिया।"

मुंशीजी की सारी चेष्टा बेकार हो गई। किन्तु विभु बाबू की स्त्री ने जब यह हाल सुना, तब तो उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने मुंशी जी से पूछ कर जड़ी का उपयोग किया। मनोरथ का वृक्ष विश्वास के शुद्ध जल से सींचने लगी। ईश्वर की कृपा से फल भी उत्तम मिला!

एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। खुशियाँ मनाई जाने लगीं। मुंशीजी की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। केदार तो हथेली का फूल बन गया। मुंशीजी ने लड़के को पाँच कौड़ियों में खरीदा, इसलिए कि जीता रहे; और विभु बाबू की स्त्री के लिए

वे ईश्वर से कम भी तो नहीं थे। वह तो उनको इष्टदेव की तरह मानने लगी। सब लोग कहने लगे—"आखिर करते तो सब कुछ ईश्वर ही हैं, मगर मुंशीजी ने उजड़ा घर बसा दिया।"

२

विभु बाबू की कन्या 'वसुन्धरा' और 'केदार' एक ही शिक्षक से पढ़ने लगे। विभु बाबू दोनों को कभी मोटर पर हवा खिलाते, कभी दरिया की सैर कराते, कभी तमाशे दिखाते और कभी तरह-तरह के खिलौने खरीदकर खुश करते। मुंशीजी को कभी केदार की चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

केदार भी विभु बाबू के साथ ही प्रसन्न रहता। खेलता भी तो केवल वसुन्धरा के संग। वसुन्धरा की माता भी उसे अपनी तीसरी सन्तान समझती।

कुछ सयानी होने पर 'वसुन्धरा' कन्या-विद्यालय में पढ़ने लगी और केदार सिटी-स्कूल में भर्ती हुआ। केदार की सुन्दरता और प्रतिभा वसुन्धरा से कम न थी। मगर कभी-कभी विभु बाबू के सामने जब दोनों की परीक्षा होने लगती, तब वसुन्धरा नम्बर मार ले जाती! फिर भी केदार को विभु बाबू हरदम उत्साहित करते रहते।

केदार स्कूली शिक्षा पा चुकने पर कालेज में भर्ती हुआ। जिस साल वह कालेज में भर्ती हुआ, उसी साल विभु बाबू के लड़के पचकौड़ी बाबू सिखाने-पढ़ाने के लिए उसके हवाले किये गये। पचकौड़ी बाबू का वह संरक्षक बना दिया गया। वे उसी के साथ टहलते-घूमते, खाते-पीते, पढ़ते-लिखते और सोते-बैठते। मुंशीजी अपने सौभाग्य पर फूले अंग न समाते।

केदार जब बी० ए० में पहुँचा, तब उसकी शादी की सिफारिशें आने लगीं। विभु बाबू ने कहा—"केदार की शादी हौसले से करूँगा। इसलिए वसुन्धरा की शादी करके ही उसकी शादी की सिफारिश सुनूँगा।"

तीन-चार वर्षों से वसुन्धरा की शादी की तैयारियाँ हो रही थीं; मगर कहीं शादी ठीक न हुई। कहीं वर अच्छा मिलता तो घर खराब, और घर अच्छा मिलता तो वर खराब। अगर कहीं दोनों अच्छे मिलते तो लेन-देन में नहीं पटती। तिलक-दहेज के बखेड़े ने वसुन्धरा को सयानी होने पर भी क्वाँरी रहने के लिए वाध्य कर दिया!

केदार ग्रेजुएट हो गया। मुंशीजी प्रायः अपने घर जाया करते थे। केदार की माता बरसों से पतोहू का मुँह देखने के लिए तरस रही थी। जब कभी मुंशीजी घर जाते, वह केदार की शादी के लिए बहुत गिड़गिड़ाती। मुंशीजी

कहते—"केदार की शादी विभु बाबू के हाथ में है। जब वे चाहेंगे, तभी शादी होगी। मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझपर तो बस वसुन्धरा की शादी का भार है। उसकी शादी आज हो जाय, तो कल ही विभु बाबू पर दबाव डालकर मैं केदार की शादी करा लूँगा। मगर इस समय उनके सामने मेरी जबान नहीं खुल सकती। उन्होंने ही केदार को पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया। अब शादी में एक-दो साल देर होने के कारण उनकी इच्छा के विरुद्ध काम करना बड़ी भारी नमकहरामी होगी।"

केदार की माता ने विभु बाबू की स्त्री के पास गुप्त सन्देश भेजा। उसमें यह एक बात बड़े मार्के की थी—"मैं घर में अकेली हूँ। बरसों से सोच रही हूँ कि पतोहू आ जाती, तो सेवा करती, बुढ़ापे में सुख देती, घर में प्रेत की तरह मैं अकेली—न रहने पाती, दिल बहलता, साध पूरी होती और घर भी आबाद होता।"

इसी बात ने विभु बाबू की स्त्री के हृदय पर गहरा प्रभाव डाला। स्त्री की आकांक्षाओं का मूल्य स्त्री ही समझ सकती है। उसने विभु बाबू से कहा—'लड़की की शादी तो अपने काबू की बात नहीं है। जब प्रारब्ध होगा, तब आप-से-आप संयोग जुट जायगा। मुंशीजी के लड़के की शादी अब मत रोकिए। लड़की तो हरदम घर में आँखों के सामने रहती है, पर लड़का चारों ओर घूमता-फिरता है—सयाना हो ही गया—पढ़-लिखकर होशियार भी हो गया—अगर कहीं बदचलन हो जाय, तो मुंशीजी भले ही कुछ न बोलें, उनकी स्त्री तो बड़ा उलहना देगी। केदार का विवाह कर डालिए—"

विभु बाबू बीच ही में बोल उठे—"तुम्हारे कहने से पहले ही मैं मुंशी हलधारीलाल की लड़की से उसकी शादी ठीक कर चुका। इसी साल शादी होगी। मुंशी देवीनन्दन ने इस सम्बन्ध को पसन्द किया है। दोनों ही अपने कारिन्दे हैं और दोनों ही बड़े भलेमानस। अगर ऐसा सम्बन्ध हो जाय, तो फिर क्या पूछना है। इसीलिए मैंने ठीक करा दिया है। केदार की माता के पास भी खबर भेज दी थी। उनकी इच्छा है कि पतोहू को देखकर शादी की जाय। मुंशी हलधारी लाल लड़की दिखाने पर राजी हैं। वे तो केदार को भी दिखाना चाहते हैं। केदार के एक दोस्त से यह बात कह दी गई है। अब शादी में कोई मीन-मेख नहीं है।"

वसुन्धरा की माता ने केदार की माता के पास यह शुभ सन्देश भेज दिया। फाल्गुन चढ़ते ही शादी की तैयारियाँ होने लगीं। विभु बाबू ने उमंग से खूब खर्च भी किया।

केदार की माता भी पटने बुलाई गई। बड़ी धूमधाम से पटने ही में शादी

हुई । मुंशी देवीनन्दन और विभु बाबू की राय थी कि एम० ए० पास कर लेने के बाद केदार का गौना हो। मगर माता की लालसा ने पिता की राय को कायम न रहने दिया ! विभु बाबू की स्त्री ने भी बड़ा जोर लगाया ; बीवियों के आगे बाबुओं को झुक जाना पड़ा !

३

गौना हुआ । बहू आई। वसुन्धरा की माता के हौसले के सामने केदार की माता का हौसला संकोच में पड़ गया। बेटे-पतोहू को दूर ही से देखकर अपनी आँखें ठंढी कर लेती ; क्योंकि वसुन्धरा और उसकी माता प्रायः बहू को घेरे ही रहतीं । वसुन्धरा तो एक क्षण भी उससे अलग न होती।

विभु बाबू के कुटुम्ब-भर की स्त्रियों के लिए केदार की बहू दिलचस्पी का सामान बन गई। बेचारी एक साधारण देहाती गृहस्थ की लड़की; पान बनाना नहीं जानती, सिंगार-पटार करने में उतनी भी निपुण नहीं जितनी वसुन्धरा-- बिलकुल भोली-भाली, शहरी शिगूफे छोड़ना नहीं जानती—वसुन्धरा चुटकियाँ लिया करती, वह सिर्फ मुस्कुराकर रह जाती । एक अल्हड़ देहाती लड़की एकाएक आकर बड़े-बड़े अमीरों की लड़कियों के जमघट में पड़ गई—बेचारी न घबराय तो करे क्या ?

जब कभी उसका जी उचट जाता, सिसक-सिसक कर रोने लगती ! वह घर में रोती और आँगन में वसुन्धरा तथा अन्यान्य स्त्रियाँ हँसा करतीं—मखौल करतीं । केदार को माँ इस विनोद पर मन-ही-मन प्रसन्न होती । वसुन्धरा की माता हँसते-हँसते झुँझला उठती और पास जाकर बहू को पुचकारकर समझाती। कभी-कभी तो वह वसुन्धरा पर बहू को चिढ़ाने के कारण बहुत बिगड़ती ; मगर उसे तो बहू को छेड़ने में ही मजा आता था।

४

इसी प्रकार कुछ दिनों के बाद केदार की बहू सबसे हिल-मिल गई । वह भी सबकी चुटकियों का कस-कसकर जवाब देने लगी। देहातीपन जाता रहा, शहराती ढंग नस-नस में पैठ गया। पान बनाने लगी । फैशन का नशा रंग लाने लगा। जबान भी चुस्त-दुरुस्त हो गई। नफासत और नजाकत में कोई कसर न रह गई । बोदापन मुरझा गया, चुलबुलाहट खिल उठी।

वसुन्धरा से उसकी इतनी घनिष्ठता हो गई कि दोनों ने एक-दूसरे का नाम लेकर पुकारना शुरू किया । केदार की बहू का नाम था :'रामप्यारी' ।

उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। डील-डौल और गठन वसुन्धरा से कहीं अच्छी थी। स्वस्थ शरीर में युवावस्था की छटा ही कुछ और होती है। अंगूर के गुच्छे में रस की, विमल-सलिला गंगा के अतल हृदय पर शरदेन्दु-विम्ब की और वसन्त-ऋतु में नूतन रसाल की जो शोभा होती है, स्वस्थ शरीर में युवावस्था की—युवावस्था में सौन्दर्य्य की—प्रायः वही शोभा देखी जाती है।

वसुन्धरा का सौन्दर्य्य कमल-दल पर पड़े हुए विमल-चंचल जल-विन्दु के समान था और रामप्यारी का सौन्दर्य्य सुपुष्ट यौवन के स्वच्छ दर्पण में झलकती हुई दीप-शिखा के समान प्रत्यक्ष प्रतिविम्बित था। वसुन्धरा का सौन्दर्य्य केवल सुकुमारता की गोद में पला था, रामप्यारी का सौन्दर्य्य सस्यशालिनी प्रकृति-देवी के हरे-भरे अंचल-तले विकसित हुआ था। वसुन्धरा का हृदय नगर के चाकचिक्य और कोलाहल में पला था, रामप्यारी का हृदय देहात की एकांत खुली हवा के शीतल झकोर में। वसुन्धरा की देह मखमल के गदेलों पर पली थी, और रामप्यारी की देह गाँव की गलियों की स्वर्णधूलि में। एक मोटर पर चढ़कर वायस्कोप देख आई थी, दूसरी बैल-गाड़ी पर एक बार गंगा नहाने जाकर रामलीला देख आई थी! दोनों दो साँचे की ढली थीं; पर प्रेम की आग ने दोनों के हृदय को गलाकर एक साँचे में ढाल दिया! किन्तु रामप्यारी के प्रेम में किसी प्रकार की वासना नहीं थी—वह अबोध बच्चे की हँसी की तरह पवित्र और कोमल था; पर वसुन्धरा के प्रेम में एक तीव्र लालसा थी—उसमें एक धनाढ्य घराने की लाड़ली लड़की के नागरिक जीवन का परिणाम प्रतिविम्बित था।

५

कभी-कभी वसुन्धरा की माँ केदार की माता से कहा करती—"केदार की दुलहिन की जैसी भरी देह है, मेरे घर में वैसी किसी की नहीं है। मेरे पचकौड़ी की ऐसी नीरोग बहू आती, तो मैं गली-गली के पत्थर पूजती फिरती। वसुन्धरा भी जिसके घर में जायगी, उसका घर डाक्टर का दवाखाना बन जायगा। दुलहिन के साथ रहने से वसुन्धरा प्रसन्न रहती है, मन-बहलाव का मसाला मिल गया है न, इसलिए आजकल सिर-दर्द और पेचिश की शिकायत नहीं सुनी जाती। आज से कुछ ही दिन पहले मेरा घर अस्पताल बना रहता था।"

रामप्यारी पास ही के घर में बैठी हुई थी। वसुन्धरा की माता का कथन सुनकर खिलखिला पड़ी। झट वसुन्धरा ने घर में जाकर त्योरी चढ़ाते हुए कुछ मुस्कुराकर और कुछ झुंझलाकर कहा—"हँसती क्या हो? मैं भी सयानी होने पर तुम्हारी ही तरह मोटी-ताजी और हट्टी-कट्टी हो जाऊँगी।"

रामप्यारी—"क्या अभी सयानी नहीं हुई हो ? बीस बरस तक ब्याह न होगा, तो क्या तुम बच्ची ही बनी रहोगी ?"

वसुन्धरा—"और क्या, जबतक ब्याह नहीं होता,तबतक सयानी होने पर भी मैं बच्ची ही कहलाऊँगी ।"

रा०—"कहलाने से क्या होगा ? आजकल के जमाने के मुताबिक तुम्हारी तो एक लड़के की उमर बीत गई ।"

व०—"खैर, तुम्हारी तो न बीतने पाई ? पहले तो तुम सौ बार बुलाने पर एक बार बोलती थीं और दिन-रात हाथ-भर का घूँघट काढ़े बैठी रहती थीं; मगर अब तो तुम खूब उड़ने लगीं । शहर की हवा लग गई ?"

रा०—"घबराओ मत । तुम भी एक दिन लाख बार बुलाने पर एक बार बोलोगी और ऐसा लम्बा घूँघट काढ़े बैठी रहोगी कि घूँघट उठानेवाला भी अधीर हो जायगा ।"

व०—"वाह ! तुमको तो 'मास्टर साहब' ने पंडित बना दिया । अच्छा, आज ही पचकौड़ी से कहूँगी कि मास्टर-साहब को अपनी गुरुआनी की पंडिताई सुना दे ।"

रा०—"क्या करेंगे सुनकर ? तुम्हारे मास्टर-साहबकी मैं परवा नहीं करती ।"

व०—"अहा ! कब से ? चुप भी रहो । बड़ी तपस्या से 'मास्टर-साहब' मिले हैं; अपना अहोभाग्य समझो । हजारों रुपये तिलक-दहेज देकर भी कोई उनके ऐसा जमाई नहीं पा सकता, तुम्हारे बाप ने तो कौड़ी के मोल हीरा खरीद लिया—सिर्फ पान-पुङ्गीफल और भर-पत्तल भात देकर मुंशीजी को ठग लिया ।"

रा०—"कैसे ठग लिया ? क्या तुम्हारे मास्टर-साहब मुझसे अधिक सुन्दर हैं ?"

व०—"रहने भी दो; कहाँ तुम, कहाँ मास्टर-साहब ! आकाश-पाताल का अन्तर है । उन्हें देखने पर जी करता है कि देखती ही रह जाऊँ ।"

रा०—"जब वे तुम्हें इतने पसन्द हैं ही, तब क्यों तुम्हारे ब्याह के लिए बरसों से दौड़-धूप हो रही है ? मेरे मा-बाप तो गरीब हैं, इसलिए हीरे का पूरा दाम न दे सके; तुम्हारे मा-बाप तो हीरा देकर हीरे को खरीद सकते थे, बल्कि वे चाहते तो सेंतमेंत में पा जाते । फिर क्यों घर की ऐसी अनमोल चीज बाहर फेंकी गई ?"

व०—"तुम कैसी बातें करती हो ? मेरी पसंद का मूल्य ही क्या है ? और फिर भाग्य तो तुम्हारा चर्राया हुआ था, मुझे कैसे मिलते ? सबसे बड़ी अड़चन तो

यह है कि मुंशीजी मेरे यहाँ नौकर हैं; नौकर के लड़के की शादी मालिक की लड़की से कैसे हो सकती है? फिर वे लड़कपन से ही मेरे घर रहते भी तो हैं।

रा०—"यह तो और अच्छा था। देखी-भाली चीज थी। प्रेम में छोटाई-बड़ाई कैसी?"

वसुन्धरा झुंझला उठी। ठिनककर बोली—"मैं कहे देती हूँ, अच्छा न होगा, मेरे साथ दिल्लगी न करो। मेरे मन का भेद लेने चली हो?"

रामप्यारी हँसती हुई बोली—"अब झुंझलाने से क्या होगा? भेद जो लेना था सो तो ले चुकी। छिपाने से भी कहीं ऐसा भेद छिपता है? प्रेम का भेद तो छप्पर पर चढ़कर चिल्लाता है।"

६

वसुन्धरा उदास होकर कमरे से बाहर चली गई। छत पर एकान्त कमरे में लेटकर सोचने लगी—"मुझे आज कुत्ता काट गया कि इससे बहस करने गई? यदि जानती कि यह भेद ले रही है, तो बात ही न उठाती। अब अगर कभी बात भी छिड़ेगी तो पलट दूँगी। जो बात अब कभी हो ही नहीं सकती, उसके लिए हाय-हाय करना बेकार है। ब्याह की बात अपने बस की नहीं है। माता-पिता जो चाहेंगे, वही होगा। माता-पिता की पसन्द और इच्छा के सामने मेरी पसन्द और इच्छा का कोई मूल्य नहीं हो सकता; इस बारे में मेरी सलाह भी कौन पूछेगा? मैं हूँ क्या चीज? असल तो नसीब है। उसी पर रहना मेरा धर्म है।"

सोचते-सोचते वसुन्धरा बेसुध-सी हो गई। थोड़ी देर के बाद वह लम्बी साँस खींचकर उठी। देखा, आसमान बिलकुल साफ है, दिशाओं में सन्नाटा छा रहा है, पेड़ झूम रहे हैं, गंगा हिलोरे मार रही है, लहरें उठ-उठकर गिर जाती हैं। सोचा, खिड़कियाँ बन्द कर दूँ, प्रकृति की यह शोभा देखी नहीं जाती!

इतनी जोर की हवा उठी कि धड़ाके से आप-ही-आप खिड़कियाँ बन्द हो गईं। दीवार पर लटके हुए चित्र हिल गये। एक चित्र टूटकर जमीन पर गिर पड़ा। शीशा चकनाचूर हो गया। झन-से आवाज हुई। चमकीले टुकड़े चारों ओर बिखर गये। वसुन्धरा चौंक पड़ी। फौरन् चित्र उठाकर देखा। बड़े गौर से देखा। आँखें गड़ाकर। देखते-देखते चेहरा सुर्ख हो आया। एक बार ज्वालामयी आँखों से चित्र की ओर देखते हुए दाँत पीसकर उसे फर्श पर पटक दिया।

उस चित्र में वसुन्धरा, केदार और पचकौड़ी बाबू एक साथ बैठे थे। जिस समय केदार मैट्रिक पास कर कालेज में भर्ती हुआ था—पचकौड़ी बाबू का शिक्षक तथा निरीक्षक नियुक्त हुआ था। उसी समय का फ़ोटो था।

किन्तु एक फोटो की ओर से दृष्टि फेरने के बाद ही दूसरे फोटो पर दृष्टि जा पड़ी। उसमें भी विभू बाबू के साथ केदार और पचकौड़ी! अब जिधर देखती, उधर ही केदार नजर आता। दावानल की ज्वालाओं से घिरी हुई कातर मृगी की तरह छटपटाने लगी। न रहा गया। कल न पड़ी। नीचे उतर आई। माता के कमरे में गई। वहाँ भी केदार के कई फोटो! बाहर के बरामदे में भी वही हाल। अब कहाँ जाय!

फिर छत पर चली गई! एक खुले बरामदे में शीतलपाटी बिछी थी। उसी पर पड़ गई। उसे मालूम हुआ, मानों देह का रक्त सूख गया, सिर घूम रहा है, आँखों के सामने रंगीन प्रकाश की बारीक लकीरें खिंचती चली जा रही हैं, तालू सूख रहा है, आसमान चक्कर काट रहा है, छत काँप रही है!

कुछ देर तक उसी तरह पड़ी रही। फिर लगी सोचने—तर्क-वितर्क करने—"जितने फोटो हैं, सबको फाड़कर फेंक दूँ—जला दूँ; मगर उनमें पचकौड़ी भी तो है। रामप्यारी अगर मेरे घर से चली जाय, तो उसका सौभाग्य देखकर जो कुढ़न पैदा होती है, वह न हो। अच्छा हो यदि पचकौड़ी अब किसी दूसरे मास्टर से पढ़े! कंटक ही दूर हो जाय। पचकौड़ी से आज रात को सलाह करूँ और उसके मन में यह अच्छी तरह जँचा दूँ कि घरू मास्टर की पढ़ाई अच्छी नहीं होती। मगर, यह मैं क्या सोच रही हूँ? क्या ऐसा कभी हो सकता है? मुंशीजी की नेकी मेरे माता-पिता कभी भूल सकते हैं? यहाँ से रामप्यारी को जाते देख क्या मेरा यह भाव स्थिर रह सकेगा? छिः! मैं किस विडम्बना में पड़ी हूँ! इतना पढ़कर मैंने क्या किया, हृदय मलिन ही रह गया! तुच्छ वासना के एक साधारण झकोर ने सारी शिक्षा पर पानी फेर दिया! क्या मेरा मन इतना दुर्बल हो गया! मैं इतनी गिर गई! राम-राम! आज जिसे देखकर आँखें ठंडी कर लेती हूँ, उसे ही सदा के लिए आँखों से ओट कर क्या मैं शान्ति पा जाऊँगी? जब मैं दूसरे का सौभाग्य देखकर जलती हूँ, तब भला अपने भाग्य पर क्यों न रोना पड़े?

७

बस, तूफ़ान निकल गया, बढ़िया बह गयी, हृदय का हाहाकार मिट गया। अपने एकान्त कमरे में चली गई। शीशे के टुकड़ों को एक-एककर चुन डाला। फर्श पर पड़ा हुआ फोटो उठाकर बड़े आदर से टेबिल पर सामने के रुख में रक्खा। कलम-दावात लेकर चिट्ठी लिखने बैठ गई।

हाथ में 'लेटर-पेपर का पैड' लेते ही ओठों पर मधुर मुस्कान की रेखा खिंच गयी। लिखा—

"केदार !

तुम मेरे लड़कपन के साथी हो। मुझे वे दिन याद हैं—तुम्हारे साथ पढ़ती थी, खाती थी, खेलती थी, टहलने जाती थी, तमाशे में जाती थी। कोई भेद न था। आज भेद प्रत्यक्ष है। मैं तुम्हें रोज देखती हूँ, तुम मुझे रोज देखते हो; मगर पहले की तरह हम दोनों में अब स्वच्छन्द बातचीत नहीं होती। मेरे माता-पिता तुमपर पूर्ण विश्वास करते हैं। पर तुम डरते हो, मैं केवल संकोच करती हूँ। यह हम दोनों के दिल की कमजोरी है। इससे साबित होता है कि हम दोनों का हृदय अशुद्ध है। मैं अपने हृदय का विश्वास करती हूँ। तुम भी अपने हृदय का विश्वास करो। दिखाऊ बन्धन तोड़कर हमलोग अपनी पहली स्वच्छन्दता को अपनावें और इस बनावटी लोकाचार को धता बतावें। तुम्हारी-'वसु'

एक दासी द्वारा वसुन्धरा का पत्र पाकर केदार चौंका। मगर खोलकर पढ़ने पर अनायास हँस पड़ा। उसी दम जवाब लिखकर भेजा—

"वसु !

तुम्हारी बातों से तुम्हारी सरलता टपक रही है। अपनेको सँभालो। लोकाचार को अनादर करने से कोई लाभ न होगा। अब कोई ऐसा प्रसंग या विषय ही नहीं रह गया, जिस पर तुम मुझसे या मैं तुमसे बातें करूँ। मैं ईश्वर के सिवा किसी से नहीं डरता—केवल समाज की मर्यादा बचाये रखने के लिए ही अपनी स्वच्छन्दता से काम नहीं लेता। तुम्हें भी ऐसा ही करना चाहिए। अपनी वर्त्तमान अवस्था में यदि तुम्हें अपने हृदय का विश्वास है, तो तुमसे कहीं अधिक मुझे अपने हृदय का विश्वास है। दिखाऊ बन्धन का कारण हृदय की अशुद्धता मत समझो। यह दिखाऊ बन्धन ही हृदय को शुद्ध रखने का साधन है। और बन्धन को बनावटी भी न समझो। यह परम्परा की रीति है। दर-असल यह बन्धन नहीं, बन्धन से बचने का उपाय है। अगर तुम्हें मुझसे कुछ बोलने की इच्छा होती है, तो सबके सामने खुलासगी के साथ बोला करो, मैं बोलूँगा; मगर तुम्हारी बातों का जवाब उसी भाव से दूँगा, जिस भाव से पचकौड़ी की बातों का दिया करता हूँ।" —केदार

८

वसुन्धरा के पास पत्र भेजकर केदार सोचने लगा—"बड़ा भारी अनर्थ हुआ चाहता है। वसु का चित्त चंचल होने लगा। वह मुझसे बातचीत करने की

स्वच्छन्दता चाहती है। इससे साफ जाहिर होता है कि पुरुष से खुल्लम-खुल्ला बातें करने में उसे दिलचस्पी मालूम होती है। अनेक अंशों में यह बिलकुल स्वाभाविक है। वह सयानी हो गई। धनाढ्य घराने की लड़की ठहरी। खान-पान, ठाट-बाट, चाल-ढाल, रहन-सहन सब कुछ अमीराना ही ठहरा। लेकिन खाली अमीरी का ही कसूर नहीं है, बहुत-कुछ कसूर समाज का भी है। इतने बड़े घराने की लड़की इतनी उम्र तक क्वाँरी क्यों रही? साठ-सत्तर हजार की रियासत के मालिक होकर भी विभु बाबू अगर दस हजार तिलक और पाँच हजार दहेज नहीं दे सकते, तो इस पतित समाज में इन्हें रहना ही न चाहिए। इसमें रहने पर तो इतना दंड देना ही पड़ेगा। कितने लोग तो अपना सर्वस्व बेचकर इस अत्याचारी समाज का टैक्स चुकाते हैं। इनके तो यही एक लड़की है। अगर बीस-पचीस हजार खर्च ही कर देंगे,तो इनका क्या बिगड़ जायगा? रियासत पर कर्ज नहीं है, कुछ रुपये भी जमा हैं,खर्च कम है, बचत बहुत है, मन्दिर का खर्च एक हजार मासिक है, दान-खाते में हर साल लगभग चार हजार रुपये खर्च होते हैं; मगर सब बेकार है—मालूम नहीं, घर में युवती क्वाँरी कन्या देखते हुए भी इन्हें कैसे मन्दिर और खैरात में इतना खर्च करना सुहाता है। या तो समाज का बन्धन तोड़ दें, या उसके शासन के सामने सिर झुकावें। दो में एक होना चाहिए। मैं ही खुद इनसे क्यों न कहूँ कि इस साल आषाढ़ के अन्त तक भी वसु का विवाह कर डालें? अगर वर ढूँढ़ने के लिए कहेंगे, तो मैं कालेज का लेक्चर छोड़कर एक महीने के अन्दर शादी ठीक कर दूँगा। अहा! बड़े मौके से बात याद आई। चन्द्रज्योति मेरे साथ बी० ए० में पहले साल पढ़ता था। कहीं के सरकारी वकील का लड़का था। शायद जमींदार भी था। तभी तो इतनी शानशौकत से ठाटदार बँगले में रहता था। सब लड़के उसे शाहजादा-साहब कहा करते थे। रूप-रंग का तो कहना ही क्या, होनहार भी था। खासे विलायती अँगरेज की तरह धड़ल्ले से अँगरेजी बोलता था। मगर आजकल कहाँ पढ़ता है, कुछ पता नहीं। अच्छा, कल कालेज क्लर्क से पुराना रजिस्टर माँगकर उसका पता देखूँगा। सम्भव है, किसी लड़के को भी उसका पता मालूम हो। निरञ्जन उसके साथ बहुत रहता था। उसीसे चलकर क्यों न पूछूँ? अब जैसे भी हो सके, 'वसु' का विवाह इस साल कराकर ही छोड़ूँगा। जबतक उसका विवाह नहीं हो जाता, तबतक अपनी पत्नी के पास जनाना मकान में न जाऊँगा। जिस मकान में एक ही उम्र की दो स्त्रियाँ हैं—जब एक सांसारिक सुख-भोग में लिप्त रहती है, तब दूसरी क्यों न उसका स्वप्न देखे? अपनी पत्नी को भी एक पत्र लिखकर समझा दूँ कि वह मेंहदी लगाना, पान खाना, रंग-बिरंग कपड़े बदलना, इत्र लगाना और 'वसु' से मेरी चर्चा करना बिलकुल छोड़

दे। उसे अपने न मिलने का कारण भी बता दूँ, ताकि 'वसु' से उसका मनमुटाव न हो।"

बड़ी देर तक केदार इसी सोच में डूबा रहा। सोचते-ही-सोचते उठा और साइकिल पर कहीं बाहर निकल गया। पहले कालेज के क्लर्क के पास गया। क्लर्क घर पर न मिला। तब गया निरंजन के पास। वह बैठा पढ़ रहा था। उससे 'चंद्रज्योति' का पता पूछा। निरंजन ने बताया—"आजकल वह काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में पढ़ रहा है; अभी हाल में उसकी चिट्ठी आई थी।"

केदार ने इसी प्रसंग में पूछा—"उसकी शादी अभी हुई कि नहीं?"

निरञ्जन ठठाकर हँसा और केदार के कन्धे पर हाथ पटकते हुए कहा—"तुम भी कैसा अचम्भे की बातें करने लगे, शादी होती तो वह हमलोगों को निमंत्रण न देता?"

केदार मुँह बिचकाकर बोला—"एक चिट्ठी तो कभी लिखता ही नहीं, खाक निमंत्रण देगा। बड़े आदमी का लड़का है, घमंडी!

निरञ्जन—"हर्गिज नहीं, तुम उसकी संगति में कभी पड़ते तो देखते कि वह कैसा मिलनसार, खुशदिल, मिठ-बोलिया और दोस्तपरस्त था। बुलन्दशहर के सरकारी वकील का लड़का था तो क्या, घमंड उसे छू नहीं गया था।"

केदार—"लेकिन कालेज में तो 'दोस्तपरस्त' की परिभाषा ही कुछ और है! जानते हो? मिलनसार और मिठबोलिया होकर एक खूबसूरत शौकीन लड़का कालेज में कैसे जीवन बिताता है, यह क्या तुम नहीं जानते?"

निरञ्जन—"खूब जानता हूँ, कालेज का वायुमंडल दुनिया-भर से निराला है; मगर यह बात नहीं है कि कालेज में सुशील लड़के होते ही नहीं। चन्द्रज्योति का चरित्र इतना पवित्र है कि कालेज के मनचले लड़के कभी उससे बोलने की हिम्मत नहीं करते। स्वेच्छापूर्वक वह चाहे जिससे बातें कर ले; मगर उसकी मर्जी के खिलाफ कोई उसे छेड़ नहीं सकता! मैं यहाँ उसकी वकालत नहीं करता। गर्मी की छुट्टियों में वह यहाँ आनेवाला है। शायद मुजफ्फरपुर में उसकी कोई रिश्तेदारी है। वहीं से यहाँ आवेगा। मैं तुम्हारे ही पास उसे ठहरा दूँगा। उस समय देखना कि वह वास्तव में 'सूरदास की काली कमली' है या नहीं।"

केदार अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"हाँ भाई, मेरे ही यहाँ ठहराना, मैं उसी समय तुम्हारी बातों को कसौटी पर कसकर देख लूँगा।"

निरञ्जन—मेरी समझ में नहीं आता कि आज इतने दिनों के बाद एकाएक तुम्हें 'चन्द्रज्योति' कैसे याद पड़ गया। रोज ही तुम आते थे; मगर कभी उसकी चर्चा नहीं होती थी। आज आते ही तुमने उसीकी बात छेड़ी। आखिर माजरा क्या है?"

केदार ने स्पष्ट शब्दों में निरञ्जन पर अपना अभिप्राय प्रकट किया और इस विषय में पूरी सहायता देने के लिए उससे आग्रह भी किया। निरञ्जन ने चन्द्रज्योति के नाम से एक विनोद-भरी चिट्ठी लिख दी। केदार ने लजाकर अपने हाथ से उस चिट्ठी को डाक में छोड़ा। फिर मन-ही-मन प्रसन्न होता विभु बाबू के पास गया। उन्हें चन्द्रज्योति का परिचय बताया। निरञ्जन से जो बात-चीत हुई थी, उसका भी जिक्र किया।

विभु बाबू बड़े प्रसन्न हुए। केदार की पीठ सहलाते हुए बोले—"बेटा, तुम आज ही उस लड़के को एक पत्र लिखो। मैं कल सुबह की डाक से ही बुलन्दशहर के लिए पुजारीजी को रवाना करूँगा। क्या तुम्हारे कहने से निरञ्जन काशी जा सकता है? तुम भी उसके साथ चले जाना।"

केदार—"आप पुजारीजी को वहाँ कल भेज दीजिए। मैं आज उसे चिट्ठी लिखने जा रहा हूँ। काशी जाने की जरूरत नहीं है। गर्मी की छुट्टी एक-दो सप्ताह के बाद ही होनेवाली है। वह यहाँ आयगा। मेरे ही साथ ठहरेगा।"

विभु बाबू तो बुलबुल हो गये। मालूम हुआ, केदार ने उनके सिर से चिन्ता की भारी गठरी उतार ली। केदार पर उनका विश्वास और प्यार चौगुना बढ़ गया।

केदार अपने कमरे में चला गया। एक पत्र चन्द्रज्योति को लिखा और एक अपनी पत्नी को। एक डाकखाने में भेज दिया, दूसरा पचकौड़ी बाबू के हाथ घर में।

रामप्यारी पत्र पढ़कर बहुत उदास हो गई। सोचने लगी—"वसुन्धरा ने उस दिन की दिल्लगी का बदला चुका लिया। केवल वही उनके रूप पर लट्टू नहीं है, वे भी उसके रूप के गाहक हैं। उसका ब्याह नहीं होता, मेरा क्या दोष? मैं क्यों अपना सुख छोड़ दूँ? जब क्वारी रहकर वह अपनेको नहीं सँभाल सकती, तब ब्याही होकर मैं कैसे वैराग्य ले लूँ? कुछ-न-कुछ दाल में काला जरूर है। मेरे पास न आने का बहाना अच्छा सोच निकाला! यह सब वसुन्धरा की सलाह से हुआ है। अच्छा, अगर मैं असल बाप की बेटी हूँ, तो आज ही इस भेद का पता लगा लूँगी। मैं नहीं जानती थी कि वसुन्धरा का रूप इतना सुन्दर और हृदय ऐसा भयंकर है। मेरे सामने मीठी-मीठी बातें करती है और पीठ-पीछे मेरी गिला करती है। मगर अब यह कैंची की चाल कारगर न होगी। दो में एक होगा—या तो वह मेरी सौत होगी या मैं जहर खाकर सो रहूँगी।"

यह सब सोचते हुए ही वह वसुन्धरा के कमरे में छत पर चली गई। बड़ी प्रसन्नता से बातें करने लगी। हृदय में ज्वाला थी; पर मुँह से फूल झड़ने लगे—"वसु, पचकौड़ी बाबू के मास्टर साहब आज से मेरे पास न आवेंगे। न जाने क्यों मुझसे इतनी जल्दी उनका जी ऊब गया।"

वसु०—"तुमसे किसने कहा कि अब न आवेंगे?"

रा०—"दूसरा कौन कहेगा? खुद उन्होंने ही पत्र लिखा है।"

वसु०—"कहाँ है वह पत्र? दिखाओ तो।"

रा०—"फाड़कर फेंक दिया, जी में बहुत रंज हो आया।"

वसु०—"सुहागिनी स्त्री अपने पति का पत्र नहीं फाड़ सकती, तुम झूठ बोलती हो; प्यार की गालियाँ भी रसीली होती हैं।"

रा०—अच्छा, झूठ ही बोलती हूँ; न दिखाऊँगी पत्र।"

वसु०—"मत दिखाओ, मैं भी सिफारिश न करूँगी।"

रा०—"उनसे बोलती तो हो नहीं, सिफारिश कैसे करोगी!"

वसु०—"तुम्हारे सुख के लिए मैं सब कर सकती हूँ।"

रा०—"दिल से कहती हो या मनगढ़न्त!"

वसु०—सिर्फ दिल ही से नहीं, तहे दिल से कहती हूँ।

रा०—"अच्छा, सिफारिश करो, काम सिद्ध होने पर पत्र दिखाऊँगी, मिठाइयाँ खिलाऊँगी।"

रामप्यारी चली गई। वसुन्धरा चिन्ता में डूब गई। सोचने लगी—"भार तो झट उठा लिया; वादा पूरा कैसे होगा? बोलूँगी कैसे? मुलाकात कब होगी? ऐसी जगह कहाँ है? पहले क्या कहूँगी? कह सकूँगी?"

६

वसुन्धरा सोचती ही रह गई! लाख हिम्मत की, मगर केदार से खुलकर बोलने या एकान्त में मिलने का साहस न हुआ। रामप्यारी रोज ही उकसाती थी, रोज ही तकाजे करती थी; मगर वसुन्धरा अपने दिल को इतना पोढ़ न बना सकी कि केदार से कुछ कह सके।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। गर्मी की छुट्टियाँ पहुँच गईं। बुलन्दशहर से पुजारीजी लौट आये। चन्द्रज्योति के आने की तारीख रोज ही पचासों ऊँगलियों पर गिनी जाने लगी। घर में रोज ही चर्चा होने लगी कि वसुन्धरा की शादी केदार के एक मित्र से होने जा रही है। रामप्यारी के सन्देह पर गाढ़ा रंग चढ़ने लगा—वह दिन-रात असमञ्जस के हिंडोले पर झूलने लगी। निश्चित तिथि

की शाम को एकाएक चन्द्रज्योति के साथ निरञ्जन आ पहुँचा। विभु बाबू का घर आनन्द की चहल-पहल से भर गया।

चन्द्रज्योति अगर सचमुच विभु बाबू का जमाई होता, तो भी उसका इतना आदर-सत्कार न होता। आदर-सत्कार की अतिशयता देखकर उसके मन में बड़ा कौतूहल और संकोच होने लगा। किन्तु निरञ्जन और केदार ने उसपर यह रहस्य प्रकट न होने दिया; मगर निरञ्जन की उस विनोद-भरी चिट्ठी की बातें याद कर कभी-कभी वह बड़े संकोच में पड़ जाता और बार-बार घर जाने की उत्सुकता प्रकट करने लगता।

१०

दूसरा सप्ताह बीतते-बीतते घर से तार आया और चन्द्रज्योति रवाना हो गया। वहाँ जाकर देखा, शादी की तैयारियाँ हो रही हैं!

हमजोलियों ने कहना शुरू किया—"ससुराल शादी ठीक करने गये थे। बारात घर ही पर है, दूल्हा ससुराल हो आया!'

हमजोलियों की बातों पर मन-ही-मन हँसकर चन्द्रज्योति ने जब पटने के मित्रों की दी हुई 'प्रेमोपहार की पेटी' खोली, तब फलों के साथ वसुन्धरा का फोटो भी देखा! आश्चर्य और प्रसन्नता के भाव उसके चेहरे पर झलक उठे—मुस्कुराहट की एक बारीक रेखा उसके होठों पर खिच गई!

शादी बड़े हौसले से हुई। केदार के तो पैर ही जमीन पर न पड़ते थे! बारात के साथ ही वसुन्धरा ससुराल के लिए घर से रुखसत हुई। केदार को मालूम हुआ कि हृदय की गाँठ से कोई मणि छूट पड़ी!

पंजाब-मेल के 'रिजर्व' डब्बे में वसुन्धरा को बिठाकर केदार 'स्टार्टर-सिगनल' की ओर देखने लगा। गाड़ी खुलते-खुलते वसुन्धरा ने उसपर एक ऐसी गम्भीर दृष्टि डाली, जिसमें कृतज्ञता और सन्तोष के अगाध भाव भरे हुए थे!

वसुन्धरा के वे अमृत-कटाक्ष आज भी केदार के हृदय-पट पर 'खोपड़ी के अक्षर' की तरह अंकित है।

कहानी का प्लाट

१

मैं कहानी-लेखक नहीं हूँ। कहानी लिखने-योग्य प्रतिभा भी मुझमें नहीं है। कहानी-लेखक को स्वभावतः कला-मर्मज्ञ होना चाहिए और मैं साधारण कलाविद् भी नहीं हूँ। किन्तु कुशल कहानी-लेखकों के लिए एक 'प्लाट' पा गया हूँ। आशा है, इस 'प्लाट' पर वे अपनी भड़कीली इमारत खड़ी कर लेंगे।

× × ×

मेरे गाँव के पास एक छोटा-सा गाँव है। गाँव का नाम बड़ा गँवारू है, सुनकर आप घिनाएँगे। वहाँ एक बूढ़े मुंशीजी रहते थे—अब वे इस संसार में नहीं हैं। उनका नाम भी विचित्र ही था—"अनमिल आखर अर्थ न जापू"—इसलिए उसे साहित्यिकों के सामने बताने से हिचकता हूँ। खैर, उनके एक पुत्री थी, जो अबतक मौजूद है। उसका नाम—जाने दीजिए, सुनकर क्या कीजियेगा? मैं बताऊँगा भी नहीं! हाँ, चूँकि उसके सम्बन्ध की बातें बताने में कुछ सहूलियत होगी, इसलिए उसका एक कल्पित नाम रख लेना जरूरी है। मान लीजिए, उसका नाम है 'भगजोगनी'। देहात की घटना है, इसलिए देहाती नाम ही अच्छा होगा। खैर, आगे बढ़िए—

मुंशीजी के बड़े भाई पुलिस दारोगा थे—उस जमाने में जब कि अँगरेजी जाननेवालों की संख्या उतनी ही थी, जितनी आज धर्मशास्त्रों के मर्म जाननेवालों की है; इसलिए उर्दूदाँ लोग ही ऊँचे-ऊँचे ओहदे पाते थे। दारोगाजी ने आठ-दस पैसे का करीमा-खालिकबारी पढ़कर जितना रुपया कमाया था, उतना आज कालेज और अदालत की लाइब्रेरियाँ चाटकर वकील होनेवाले भी नहीं कमाते।

लेकिन दारोगाजी ने जो कुछ कमाया, अपनी जिन्दगी में ही फूँक-ताप डाला। उनके मरने के बाद सिर्फ उनकी एक घोड़ी बची थी जो थी तो महज सात रुपये की; मगर कान काटती थी तुर्की घोड़ों की—कम्बख्त बारूद की पुड़िया थी! बड़े-बड़े अँगरेज-अफसर उसपर दाँत गड़ाये रह गये; मगर दारोगाजी ने सबको निबुआ-नोन चटा दिया। इसी घोड़ी की बदौलत उनकी तरक्की रुकी रह गई; लेकिन आखिरी दम तक वे अफसरों के चपले में न आये—न आये। हर तरह से काबिल, मेहनती, ईमानदार, चालाक, दिलेर और मुस्तैद आदमी होते हुए भी वे दारोगा-के-दारोगा ही रह गये—सिर्फ घोड़ी की मुहब्बत से।

किन्तु घोड़ी ने भी उनकी इस मुहब्बत का अच्छा नतीजा दिखाया—उनके मरने के बाद खूब धूम-धाम से उनका श्राद्ध करा दिया। अगर कहीं घोड़ी को भी बेच खाये होते, तो उनके नाम पर एक ब्राह्मण भी न जीमता। एक गोरे अफसर के हाथ खासी रकम पर घोड़ी को ही बेचकर मुंशीजी अपने बड़े भाई से उऋण हुए।

दारोगाजी के जमाने में मुंशीजी ने भी खूब घी के दीये जलाये थे। गाँजे में बढ़िया-से-बढ़िया इत्र मलकर पीते थे—चिलम कभी ठंढी नहीं होने पाती थी। एक जून बत्तीस बटेर और चौदह चपातियाँ उड़ा जाते थे; नथुनी उतारने में तो दारोगाजी के भी बड़े भैया थे—हर साल एक नया जल्सा हुआ ही करता था।

किन्तु जब बढ़िया बह गई, तब चारों ओर उजाड़ नजर आने लगा। दारोगाजी के मरते ही सारी अमीरी घुस गई। चिलम के साथ-साथ चूल्हा-चक्की भी ठंढी हो गई। जो जीभ एक दिन बटेरों का शोरबा सुड़कती थी, वह अब सराह-सराह कर मटर का सत्तू सरपोटने लगी। चुपड़ी चपातियाँ चाबनेवाले दाँत अब चन्द चने चबाकर दिन गुजारने लगे। लोग साफ कहने लग गये—थानेदारी की कमाई और फूस का तापना दोनों बराबर है।

हर साल नई नथुनी उतारनेवाले मुंशीजी को गाँव-जवार के लोग भी अपनी नजरों से उतारने लगे। जो मुंशीजी चुल्लू-के-चुल्लू इत्र लेकर अपनी पोशाकों में मला करते थे, उन्हीं को अब अपनी रूखी-सूखी देह में लगाने के लिए चुल्लू-भर कड़वा तेल मिलना भी मुहाल हो गया। शायद किस्मत की फटी चादर का कोई रफूगर नहीं है!

लेकिन जरा किस्मत की दोहरी मार तो देखिए! दारोगाजी के जमाने में मुंशीजी के चार-पाँच लड़के हुए; पर सब-के-सब सुबह के चिराग हो गये। जब बेचारे की पाँचों उँगलियाँ घी में थीं, तब तो कोई खानेवाला न रहा, और जब दोनों टाँगें दरिद्रता के दलदल में आ फँसी और ऊपर से बुढ़ापा भी कन्धे दबाने लगा, तब कोढ़ में खाज की तरह एक लड़की पैदा हो गई! और तारीफ यह कि मुंशीजी की बदकिस्मती भी दारोगाजी की घोड़ी से कुछ कम स्थावर नहीं थी!

सच पूछिए तो इस तिलक-दहेज के जमाने में लड़की पैदा करना ही बड़ी भारी मूर्खता है। लेकिन युगधर्म की क्या दवा है? इस युग में अबला ही प्रबला हो रही हैं। पुरुष-दल को स्त्रीत्व खदेड़े जा रहा है। बेचारे मुंशीजी का क्या दोष? जब घी और गरम मसाले उड़ाते थे, तब तो हमेशा लड़का ही पैदा करते रहे, पर अब मटर के सत्तू पर बेचारे कहाँ से लड़का निकाल लायें! सचमुच अमीरी की कब्र पर पनपी हुई गरीबी बड़ी ही जहरीली होती है।

२

भगजोगनी चूँकि मुंशीजी की गरीबी में पैदा हुई और जन्मते ही माँ के दूध से वंचित होकर 'टूअर' कहलाने लगी। इसलिए अभागिन तो अजहद थी, इसमें

शक नहीं ; पर सुन्दरता में वह अँधेरे घर का दीपक थी। आजकल वैसी सुघर लड़की किसी ने कभी कहीं न देखी!

अभाग्यवश मैंने उसे देखा था! जिस दिन पहले-पहल उसे देखा, वह करीब ग्यारह-बारह वर्ष की थी। पर एक ओर उसकी अनूठी सुघराई और दूसरी ओर उसकी दर्दनाक गरीबी देखकर, सच कहता हूँ, कलेजा काँप गया। यदि कोई भावुक कहानी-लेखक या सहृदय कवि उसे देख लेता, तो उसकी लेखनी से अनायास करुणा की धारा फूट निकलती। किन्तु मेरी लेखनी में इतना जोर नहीं है कि उसकी गरीबी के भयावने चित्र को मेरे हृदय-पट से उतारकर 'सरोज' के इस कोमल 'दल' पर रक्खे। और, सच्ची घटना होने के कारण, केवल प्रभावशाली बनाने के लिए, मुझसे भड़कीली भाषा में लिखते भी नहीं बनता। भाषा में गरीबी को ठीक-ठीक चित्रित करने की शक्ति नहीं होती, भले ही वह राजमहलों की ऐश्वर्य्य-लीला और विशाल वैभव के वर्णन करने में समर्थ हो!

आह! बेचारी उस उम्र में भी कमर में सिर्फ एक पतला-सा चिथड़ा लपेटे हुई थी, जो मुश्किल से उसकी लज्जा ढँकने में समर्थ था। उसके सिर के बाल तेल बिना बुरी तरह बिखरकर बड़े डरावने हो गये थे। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में एक अजीब ढंग की करुण-कातर चितवन थी। दरिद्रता-राक्षसी ने सुन्दरता-सुकुमारी का गला टीप दिया था!

कहते हैं, प्रकृत सुन्दरता के लिए कृत्रिम शृंगार की जरूरत नहीं होती; क्योंकि जंगल में पेड़ की छाल और फूल-पत्तियों से सजकर शकुन्तला जैसी सुन्दरी मालूम होती थी, वैसी दुष्यन्त के राजमहल में सोलहो सिंगार करके भी वह कभी न फबी। किन्तु शकुन्तला तो चिन्ता और कष्ट के वायुमण्डल में नहीं पली थी। उसके कानों में उदर-दैत्य का कर्कश हाहाकार कभी न गूँजा था। वह शान्ति और सन्तोष की गोद में पलकर सयानी हुई थी, और तभी उसके लिए महाकवि की 'शैवाल-जाललिप्त कमलिनी' वाली उपमा उपयुक्त हो सकी। पर 'भगजोगनी' तो गरीबी की चक्की में पिसी हुई थी, भला उसका सौन्दर्य्य कब खिल सकता था! वह तो दाने-दाने को तरसती रहती थी, एक बित्ता कपड़े के लिए भी मुहताज थी। सिर में लगाने के लिए एक चुल्लू अलसी का तेल भी सपना हो रहा था। महीने के एक दिन भी भर-पेट अन्न के लाले पड़े थे। भला हड्डियों के खँडहर में सौन्दर्य्य-देवता कैसे टिके रहते!

३

उफ! उस दिन मुंशीजी जब रो-रोकर अपना दुखड़ा सुनाने लगे, तब कलेजा टूक-टूक हो गया। कहने लगे—

"क्या कहूँ बाबू साहब, पिछले दिन जब याद आते हैं, तब गश आ जाता है। यह गरीबी की तीखी मार इस लड़की की वजह से और भी अखरती है। देखिए, इसके सिर के बाल कैसे खुश्क और गोरखधन्धारी हो रहे हैं। घर में इसकी माँ होती, तो कम-से-कम इसका सिर तो जूँओं का अड्डा न होता। मेरी आँखों की जोत अब ऐसी मन्द पड़ गई कि जूँएँ सूझती नहीं। और, तेल तो एक बूँद भी मयस्सर नहीं। अगर अपने घर में तेल होता, तो दूसरे के घर जाकर भी कंघी-चोटी करा लेती, सिर पर चिड़ियों का घोंसला तो न बनता? आप तो जानते हैं, यह छोटा-सा गाँव है, कभी साल-छमासे में किसी के घर बच्चा पैदा होता है, तो इसके रूखे-सूखे बालों के नसीब जगते हैं!"

"गाँव के लड़के, अपने-अपने घर भर-पेट खाकर जब झोलियों में चबेना लेकर खाते हुए घर से निकलते हैं, तब यह उनकी बाट जोहती रहती है – उनके पीछे-पीछे लगी फिरती है, तो भी मुश्किल से दिन में एक-दो मुट्ठी चबेना मिल पाता है। खाने-पीने के समय किसी के घर पहुँच जाती है तो इसकी डीठ लग जाने के भय से घरवालियाँ दुरदुराने लगती हैं! कहाँ तक अपनी मुसीबतों का बयान करूँ, भाई साहब! किसी की दी हुई मुट्ठी-भर भीख लेने के लिए इसके तन पर फटा आँचल भी तो नहीं है! इसकी छोटी अंजुलियों में ही जो कुछ अँट जाता है, उसीसे किसी तरह पेट की जलन बुझा लेती है! कभी-कभी एकाध फँका चना-चबेना मेरे लिए भी लेती आती है; उस समय हृदय दो टूक हो जाता है।"

"किसी दिन, दिन-भर घर-घर घूमकर जब शाम को मेरे पास आकर धीमी आवाज से कहती है कि बाबूजी, भूख लगी है—कुछ हो तो खाने को दो; उस वक्त, आपसे ईमानन कहता हूँ, जी चाहता है कि गल-फाँसी लगाकर मर जाऊँ या किसी कुँए-तालाब में डूब मरूँ। मगर फिर सोचता हूँ कि मेरे सिवा इसकी खोज-खबर लेनेवाला इस दुनिया में अब है ही कौन? आज अगर इसकी माँ भी जिन्दा होती, तो कूट-पीसकर इसके लिए मुट्ठी-भर चून जुटाती—किसी कदर इसकी परवरिश कर ही ले जाती; और अगर कहीं आज मेरे बड़े भाई साहब बर-करार होते, तो गुलाब के फूल-सी ऐसी लड़की को हथेली का फूल बनाये रहते। जरूर ही किसी 'रायबहादुर' के घर इसकी शादी करते। मैं भी उनकी अन्धाधुन्ध कमाई पर ऐसी बेफिक्री से दिन गुजारता था कि आगे आनेवाले इन बुरे दिनों की मुतलक खबर न थी। वे भी ऐसे खर्राच थे कि अपने कफनकाठी के लिए भी एक खरमुहरा न छोड़ गये—अपनी जिन्दगी में ही एक-एक चप्पा जमीन बेंच खाई—गाँव-भर से ऐसी अदावत बढ़ाई कि आज मेरी इस दुर्गत पर भी कोई रहम करने-

वाला नहीं है, उलटे सब लोग तानेजनी के तीर बरसाते हैं। एक दिन वह था कि भाई साहब के पेशाब से चिराग जलता था, और एक दिन यह भी है कि मेरी हड्डियाँ मुफलिसी की आँच से मोमबत्तियों की तरह घुल-घुल कर जल रही हैं।"

"इस लड़की के लिए आसपास के सभी जवारी भाइयों के यहाँ मैंने पचासों फेरे लगाये, दाँत दिखाये, हाथ जोड़कर बिनती की, पैरों पड़ा—यहाँ तक बेहया होकर कह डाला कि बड़े-बड़े वकीलों, डिप्टियों और जमींदारों की चुनी-चुनाई लड़कियों में मेरी लड़की को खड़ी करके देख लीजिए कि सबसे सुन्दर जँचती है या नहीं, अगर इसके जोड़ की एक भी लड़की कहीं निकल आये तो इससे अपने लड़के की शादी मत कीजिए। किन्तु मेरे लाख गिड़गिड़ाने पर भी किसी भाई का दिल न पिघला। कोई यह कहकर टाल देता कि लड़के की माँ ऐसे घराने में शादी करने से इनकार करती है, जिसमें न सास है, न साला और न बारात की खातिरदारी करने की हैसियत। कोई कहता है कि गरीब-घर की लड़की चटोर और कंजूस होती है, हमारा खान्दान बिगड़ जायगा। ज्यादातर लोग यही कहते मिले कि हमारे लड़के को इतना तिलक-दहेज मिल रहा है, तो भी हम शादी नहीं कर रहे हैं; फिर बिना तिलक-दहेज के तो बात भी करना नहीं चाहते। इसी तरह, जितने मुँह उतनी ही बातें सुनने में आईं। दिनों का फेरा ऐसा है कि जिसका मुँह न देखना चाहिए, उसका भी पिछाड़ देखना पड़ा।"

महज मामूली हैसियतवालों को भी पाँच सौ और एक हजार तिलक-दहेज फरमाते देखकर जी कुढ़ जाता है—गुस्सा चढ़ आता है; मगर गरीबी ने तो ऐसा पंख तोड़ दिया है कि तड़फड़ा भी नहीं सकता। सारे हिन्दू-समाज के कायदे भी अजीब ढंग के हैं। जो लोग मोल-भाव करके लड़के की बिक्री करते हैं, वे भले आदमी समझे जाते हैं; और कोई गरीब बेचारा उसी तरह मोल-भाव करके लड़की को बेचता है तो वह कमीना कहा जाता है! मैं अगर आज इसे बेचना चाहता तो इतनी काफी रकम ऐंठ सकता था कि कम-से-कम मेरी जिन्दगी तो जरूर ही आराम से कट जाती। लेकिन जीते-जी हरगिज एक मक्खी भी न लूँगा। चाहे यह क्वाँरी रहे या सयानी होकर मेरा नाम हँसाये। देखिए न, सयानी तो करीब-करीब हो ही गई है—सिर्फ पेट की मार से उकसने नहीं पाती, बढ़न्ती रुकी हुई है। अगर किसी खुशहाल घर में होती, तो अबतक फूटकर सयानी हो जाती—बदन भरने से ही खूबसूरती पर भी रोगन चढ़ता है, और बेटी की बाढ़ बेटे से जल्दी होती भी है।"

"अब अधिक क्या कहूँ, बाबू साहब! अपनी ही करनी का नतीजा भोग रहा हूँ। मोतियाबिन्द, गठिया और दम्मा ने निकम्मा कर छोड़ा है, अब मेरे पछतावे

के आँसुओं में भी ईश्वर को पिघलाने का दम नहीं है। अगर सच पूछिए, तो इस वक्त सिर्फ एक ही उम्मीद पर जान अटकी हुई है—एक साहब ने बहुत कहने-सुनने से इसके साथ शादी करने का वादा किया है। देखना है कि गाँव के खोटे लोग उन्हें भी भड़काते हैं या मेरी झाँझरी नैया को पार लगने देते हैं। लड़के की उम्र कुछ कड़ी जरूर है—इकतालिस-बयालिस साल की; मगर अब इसके सिवा कोई चारा भी नहीं है। छाती पर पत्थर रखकर अपनी इस राज-कोकिला को…।"

इसके बाद मुंशीजी का गला रुँध गया—बहुत बिलखकर रो उठे और भगजोगनी को अपनी गोद में बैठाकर फूट-फूट कर रोने लग गये। अनेक प्रयत्न करके भी मैं किसी प्रकार उनको आश्वासन न दे सका। जिसके पीछे हाथ धोकर वाम विधाता पड़ जाता है, उसे तसल्ली देना ठट्ठा नहीं है।

× × ×

मुंशीजी की दास्तान सुनने के बाद मैंने अपने कई क्वाँर मित्रों से अनुरोध किया कि उस अलौकिक रूपवती दरिद्र कन्या से विवाह करके एक निर्धन भाई का उद्धार और अपने जीवन को सफल करें; किन्तु सबने मेरी बात अनसुनी कर दी। ऐसे-ऐसे लोगों ने भी आनाकानी की, जो समाज-सुधार-सम्बन्धी विषयों पर बड़ शान-गुमान से लेखनी चलाते हैं। यहाँ तक कि प्रौढ़ावस्था के रँडुए मित्र भी राजी न हुए!

आखिर वही महाशय डोला काढ़कर भगजोगनी को अपने घर ले गये और वहीं शादी की; कुल रस्में पूरी करके मुंशीजी को चिन्ता के दलदल से उबारा।

बेचारे मुंशीजी की छाती से पत्थर का बोझ तो उतरा, मगर घर में कोई पानी देनेवाला भी न रह गया। बुढ़ापे की लकड़ी जाती रही, देह लच गई। साल पूरा होते-होते अचानक टन बोल गये। गाँववालों ने गले में घड़ा बाँधकर नदी में डुबा दिया।

× × ×

भगजोगनी जीती है। आज वह पूर्ण युवती है। उसका शरीर भरा-पूरा और फूला-फला है। उसका सौंदर्य उसके वर्त्तमान नवयुवक पति का स्वर्गीय धन है। उसका पहला पति इस संसार में नहीं है। दूसरा पति है—उसका सौतेला बेटा!!

कुंजी

इतो न किंचित्परतो न किंचिद्यतो यतो यामि ततो न किंचित् ।
विचार्य पश्यामि जगन्न किंचित्स्वात्मावबोधादधिकं न किंचित् ॥

× × ×

कहते हो कि और को न चाहो ।
मालूम हुआ कि तुम खुदा हो ॥

—आसी

× × ×

सुतबनितादि जानि स्वारथरत न करु नेह सबही ते ।
अन्तहुँ तोहि तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते ॥

—तुलसी

The world is all a fleeting show,
For man's illusion given;
The smiles of joy, the tears of woe,
Deceitful shine, deceitful flow;
There's nothing true but Heaven.

—*Tom Moore.*

१

अगर मौके से टैक्सी-मोटर न मिल जाती तो समझ लीजिए कि गाड़ी छूट ही चुकी थी। मोटर ने तो एक का डेढ़ लेकर ठीक समय पर हवड़ा पहुँचा दिया, मगर वहाँ स्टेशन के कुली असबाब उठाने में हुज्जत करने लगे। पहले तो वे कंक की तरह असबाब पर टूट पड़े। फिर बारी-बारी करके एक रुपया, डेढ़ रुपया तक नीलामी डाक बोल गये! कुली क्या हैं, तीर्थ के पंडे हैं!

एक संन्यासी ने झट आकर मेरी पेटी उठा ली और कहा—"तुम बिस्तर ले लो, जल्दी करो, नहीं तो गाड़ी छूट जायगी।"

यह कहकर संन्यासी बाबा आगे बढ़े। मैं बिस्तर लेकर ताबड़तोड़ उनके पीछे दौड़ा। कुली बेचारे मुँह ताकते रह गये!

ज्यों ही संन्यासी बाबा के साथ में डेवढ़े दरजे में सवार हुआ त्यों ही गाड़ी खुल गयी!

२

संन्यासी—"तुम-जैसे नवयुवक को तो स्वावलम्बी होना चाहिए। तुम कुलियों का मुँह क्यों ताकते थे? क्या दूसरे पर आश्रित रहकर तुम सुखी होना चाहते हो? क्या अमीरी का यह कोई खास लक्षण है? तुम्हें तो स्वयंसेवक की तरह दूसरों की सहायता के लिए खुद मुस्तैद रहना चाहिए। जब तुम्हें स्वयं दूसरे की सहायता की दरकार है तब तुम औरों की सहायता क्या करोगे?"

मैं—"गठरी भारी थी। गाड़ी खुलने का वक्त हो चुका था। इसीलिए मैं कुलियों के फन्दे में फँसा था। ईश्वर की कृपा से आप यदि सहायक न मिलते, तो मैं अभी हवड़ा-स्टेशन के मुसाफिरखाने में ही पड़ा झँखता रहता।"

संन्यासी—"तुम जाते कहाँ हो?"

मैं—"काशी जाता हूँ। मेरे एक सम्बन्धी बीमार हैं। मरने के लिए काशी आये हुए हैं। आज ही उनका तार मिला है। यह गाड़ी छूट जाती तो मेरा सर्वनाश हो जाता।"

संन्यासी—"ऐसी कौन-सी बात है?"

मैं—"मरनेवाले सज्जन बम्बई के बड़े भारी सेठ हैं। मैं उनका मुनीम हूँ। मरने से पहले पहुँच जाऊँगा तो कुछ हाथ लग जायगा।"

संन्यासी—"क्या हाथ लगेगा?"

मैं—"किस्मत भी फूट जायगी तो दो लाख से कम नहीं!"

संन्यासी—"तब तो तुम दो लाख के लिए जा रहे हो, अपने मालिक के लिए नहीं।"

मैं—"दोनों के लिए समझ लीजिए।"

संन्यासी—"किन्तु प्रधान दो लाख ही समझें। क्यों?"

मैं—"आप संन्यासी हैं। हमलोग संसारी हैं। हमलोगों के लिए तो नगद-नारायण ही सब-कुछ हैं।"

मेरी बात सुनकर संन्यासी बाबा शान्त और गम्भीर हो गये। उन्होंने दीर्घ निःश्वास खींचकर कहा—'भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते!"

यह कहकर उन्होंने आकाश की ओर देखा, और हाथ जोड़कर आँखें बन्द किये हुए सिर झुकाया; फिर मेरी ओर देखने लगे।

मैं—"महाराज! अभी आपने यह क्या किया है?"

संन्यासी—"उस परमात्मा की वन्दना की है, जिसकी यह लीला है।"

मैं—"लीला कौन-सी?"

संन्यासी—"स्वार्थ की विकट लीला के सिवा इस संसार में दूसरी लीला कौन-सी है?"

मैं—"क्या स्वार्थ के सिवा इस संसार में कुछ है ही नहीं!"

संन्यासी—"है क्यों नहीं? किन्तु प्रत्यक्ष तो स्वार्थ ही है। और जो कुछ है, वह अन्तरिक्ष है। उस अदृश्य लीला को ये आँखें नहीं देख सकतीं।"

मैं—"तो फिर उन्हें देखने के लिए क्या ईश्वर ने इन दो के सिवा कोई तीसरा आँख भी बनाई है?"

संन्यासी—"हाँ; वही ज्ञानचक्षु है। उसके खुल जाने पर ये दोनों बन्द हो जाती हैं।"

मैं—"तो क्या मनुष्य अंधा हो जाता है?"

संन्यासी—"नहीं, सूर्योदय के बाद दीपक की आवश्यकता नहीं रहती।"

मैं—"अच्छा, तो वह ज्ञान की आँख खुलती कब है?"

संन्यासी—"जब ईश्वर की दया होती है।"

मैं—"आप पर पहले-पहल कब ईश्वर की दया हुई थी?"

इतना पूछते ही संन्यासी बाबा फिर शान्त और गम्भीर हो गये। थोड़ी देर पूर्ववत् ध्यानस्थ हो, मेरी तरफ मुखातिब होकर कहने लगे—

"जिस विधाता ने हंस को श्वेत वर्ण, शुक को हरित वर्ण, कोकिल को कृष्ण वर्ण, कोकनद को अरुण वर्ण, चम्पा को पीत वर्ण और इन्द्रधनुष को विविध वर्णों से रंजित किया तथा मयूरपुच्छ को सुचारु चमकीले रंगों से चित्रित किया, उसी विधाता ने इस संसार पर स्वार्थ का गाढ़ा रंग चढ़ा दिया। जिस प्रकार अग्नि से ताप, सूर्य्य से प्रकाश, चन्द्रमा से चन्द्रिका, पृथ्वी से गन्ध, जल से शीतलता, बिजली से चंचलता, मेघ से श्यामता और पुष्प से सुकुमारता नहीं दूर की जा सकती; उसी प्रकार संसार से स्वार्थ-परता भी अलग नहीं की जा सकती।"

"दरिद्रता और दुःख का जैसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस संसार से स्वार्थ का भी वैसा ही गहरा सम्बन्ध है। जिस प्रकार आलस्य सब रोगों का घर है, उसी प्रकार यह संसार भी समस्त स्वार्थों का अखाड़ा है। यहाँ यदि स्वार्थों के संघर्ष

से दारुण दावानल न धधकता होता, तो यह नन्दन-कानन से भी अधिक रमणीय और शीतल समझा जाता। इस विलक्षण संसार के प्रत्येक कण में स्वार्थ की सत्ता भरी है। यदि स्वार्थ निकल जाय, तो इस संसार की विचित्रताएँ रहस्य-शून्य हो जायँ।"

"जो स्वार्थ का फन्दा तोड़ देता है, वह इस संसार-कारागार से मुक्त हो जाता है। वह संसार को परास्त कर देता है। संसार उसके चरणों में झुक जाता है और वह संसार के सिर पर अभयवरद हाथ रख देता है। किन्तु स्वार्थ आकाशवल्लरी की तरह इस विश्व-विटप पर छा रहा है। उस उलझनदार जाल को तोड़ना सहज नहीं है।"

मैं—"महाराज! आपने उस जाल को कैसे तोड़ा था?"

संन्यासी—"अभी तक मैं तोड़ नहीं सका! हाँ, तोड़ सकूँगा, ऐसी आशा है। उस आशा की ज्योति मेरे पिता की धधकती हुई चिता की ज्वाला ने जलाई थी।"

मैं—"आपकी रामकहानी सुनने के लिए उत्सुकता हो रही है। क्या आप कृपा करके सुनायेंगे?"

संन्यासी—"यदि उसके सुनने से तुम्हारा कुछ उपकार हो सकता है, तो मैं संक्षेप में सुना सकता हूँ।"

मैं—"आपके आदर्श जीवन-वृत्तान्त से मेरा अवश्य ही उपकार होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है। सत्संग की महिमा सबसे बढ़कर है। आपकी बातों से मेरा कौतूहल भी शान्त होगा और मैं बहुत-कुछ उपदेश भी प्राप्त करूँगा।"

संन्यासी—"एवमस्तु! मैं मध्यप्रदेश के एक बहुत बड़े जमींदार का पुत्र था। मेरे पिता चार भाई थे। जब मेरे पिता मृत्युशय्या पर पड़े-पड़े अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे, तब मैं बिलकुल मदान्ध नवयुवक था। मेरे पास सांसारिक चिन्ताएँ फटकने नहीं पाती थीं।"

"कभी-कभी मैं अपने पिता की रोग-शय्या के पास बैठकर उनके सजल नेत्रों के आँसू पोंछा करता था। वे रह-रहकर बड़े स्नेह से मेरे हाथों को चूम लिया करते थे। उनके स्नेह का अन्तिम उच्छ्वास देखकर मेरा हृदय उमड़ आता था। उनके पवित्र वात्सल्य की मन्दाकिनी आज भी मेरे हृदय से उमड़कर आँखों की राह प्रवाहित हो रही है।"

इतना कहते-कहते उनकी आँखें भर आईं। मेरी आँखों में भी आँसू छल-छला उठे। मैंने अधीर होकर पूछा—"आप संन्यासी क्यों हुए?"

संन्यासी—"वही तो कह रहा हूँ। मेरे पिता जिस दिन मरने लगे, उस दिन वे पूर्ण चैतन्य थे। वे अपने सामने की दीवार में टँगे हुए श्रीराधाकृष्ण के

चितचोर चित्र को देख रहे थे, इतने में, देखते-ही-देखते, उनकी आँखें उलट गईं। घर में हाहाकार मच गया। मेरा बना-बनाया संसार बिगड़ गया।"

"माता ने मेरा मुख देखकर धैर्य-धारण किया। वह मुझे अपनी गोद में लेकर अपने दुःखों को भूल गई!"

"मेरी पत्नी ने दिखावे के आँसू ढालकर कहा--"आप शोक करके अपने शरीर को मत गलाइए।"

"वहीं से मेरा माथा ठनका।"

"माता ने अपने स्नेहाञ्चल से जब मेरे आँसुओं को पोंछा और मेरी छाती पकड़कर कहा--'मैं तुम्हारे लिए जीती हूँ, नहीं तो मुझे जीना नहीं चाहिए'—तब भी अन्दर से मेरे हृदय में कोई ठोकरें मार गया। किन्तु उस ठोकर से मोह का घड़ा न फूट सका।"

"पहले भी जब चाचाजी मेरे पिता की रोगशय्या के पास बैठकर धीरे-धीरे उनसे रुपये-पैसे और लेन-देन की बातें पूछते थे, तब मैं पिताजी को बड़े कष्ट से उत्तर दे सकने में भी असमर्थ देखकर अशान्त हो उठता था। किन्तु हृदय की वह घोर अशान्ति भी मोह-निद्रा को भंग न कर सकी।"

मैं—"तो क्या आप अपने चाचा के दुर्व्यवहारों से ऊबकर घर से भाग निकले?"

संन्यासी—"बीच ही में मत छेड़ा करो। मैं जो कुछ कहता जाता हूँ, उसे शान्त भाव से सुनते चलो। जब मेरे पिता की रथी श्मशान में पहुँची, तब उनका शव चिता पर रखकर मुझे अग्नि-संस्कार करना पड़ा। हृदय को वज्र बनाकर मैंने वह भी कर डाला। देखते-ही-देखते चिताग्नि धधक उठी!"

"तबतक मेरे ताऊ ने चिल्लाकर कहा—'उफ! कमर का धागा तो तोड़ा ही नहीं गया! उसी में तिजोरी की कुंजी भी रह गई है। हाय! सर्वनाश हो गया!"

"बड़े चाचा का चिल्लाना था कि छोटे चाचा ने रथी के बाँस से सजाई हुई चिता बखेर दी। मेरे पिता का अर्द्ध-दग्ध शरीर चिता से कुछ खिसक पड़ा। कमर का धागा जल गया था। कुंजी आग में गिरकर लाल हो गई थी। उसे झट बाहर निकालकर छोटे चाचा ने धूल में ढँक दिया।"

"वही कुंजी! वही कुंजी!! वही कुंजी मेरे अज्ञान का ताला खोलने में समर्थ हुई। वहीं मैंने इस संसार का असली रूप देखा। वहीं मेरी तीसरी आँख खुली। वहीं मेरे जीवन की ज्योति का विकास हुआ।"

इतना कहते-कहते संन्यासी बाबा ध्यानस्थ हो गये; और मैं एक अपूर्व—किन्तु तीव्र—चिन्ता-स्रोत में डूब गया!

शरणागत-रक्षा

सोऊँगा न शान्ति-शय्या पर यदि स्वदेश हो सुखो नहीं,
कभी न देख सकूँगा अपने देशबन्धु को दुखी कहीं।
शरणागत के अभय-दान-हित कर्कश कष्ट उठाऊँगा,
अपने पूज्य पूर्वपुरुषों की शुभ सन्तान कहाऊँगा।
वसुधे ! यदि प्रण-भंग-भाव का ध्यान मात्र भी उठे कभी,
मेरा मुँह न दिखाई दे फिर फट जाना कर दया तभी।
दिव्य दिशाओ ! साक्षी हो तुम, पुण्य प्रतिज्ञा करता हूँ,
परमपिता ! बल देना, तेरी ज्योति हृदय में भरता हूँ।

—गोकुलचन्द्र शर्मा

× × ×

Little deeds of kindnees. Little words of Love,
Make our earth an Eden, Like the heaven above.
Little seed of mercy, Sown by youthful hands;
Grow to bless the nations, Far in fairy lands.

—*Cobham Brewer.*

× × ×

श्रद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्त शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणंगतः ।
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सवभूतेभ्यो ददाम्येद्व्रतं मम ॥

—वाल्मीकीय रामायण (युद्धकांड)

१

पठान-सम्राट् अलाउद्दीन को शिकार का बड़ा शौक था। कहते हैं, वह आखेट का ऐसा अनुरागी था कि सल्तनत के बड़े-बड़े जंगल खास इसी मसरफ के लिए सुरक्षित रक्खे जाते थे। इतना ही नहीं, कभी-कभी तो वह अपनी महलसरा बेगमों को साथ लेकर, जंगल में, शिकार की गरज से महीनों पड़ाव डाले पड़ा रहता था।

भारतवर्ष में विन्ध्याटवी की बड़ी प्रसिद्धि है। विन्ध्यकानन का सुदीर्घ-व्यापी विस्तार भारत के कटि-प्रदेश को आच्छादित कर रहा है। उसकी सघनता अगम्य है, नैसर्गिक शोभा दर्शनीय है। कहीं हरीतिमा और शीतलता परस्पर लिपटकर सो रही हैं, कहीं सघनता और विकरालता भीषण तांडव-नृत्य कर रही हैं। कहीं पल्वल के स्वच्छ जल से प्यास बुझाकर मृग-दल जंगल में मंगल मना रहा है, कहीं मृगी प्राणाधार मृग का उष्ण रक्त पान कर शेर दहाड़ रहा है। कहीं रंग-विरंग की चिड़ियों का कल गान और कहीं परम भयावह अजगरों की फुफकार! उफ!—'डरपहिं धीर गहन सुधि आये!'

विन्ध्यारण्य के एक प्रान्त में शाही छोलदारियाँ पड़ी हुई थीं। कुछ खेमे तो कश्मीरी दुशालों के थे। उनमें गंगा-जमनी चोबें और रेशमी डोरियाँ लगी हुई थीं; बेगमों के बड़े सजीले पलँग पड़े हुए थे। उन्हीं तम्बू-कनातों के बीच में एक गोल मखमली शामियाना था, जिसके चारों ओर चमन बनाया गया था।

मध्याह्न-कालीन मार्त्तण्ड का यौवन ढल चुका था। अलाउद्दीन मृगया के निमित्त निकल चुका था। बीचवाले शामियाने में बेगमें ताश और शतरंज खेल रही थीं। कभी पान का नहला रंग लाता था, कभी बीवी पर गुलाम हमला कर बैठता था। कभी टेढ़ी चाल से प्यादा वजीर हो जाता था, कभी बादशाह पाखाने में कैद हो जाता था! कहकहे से चमन गूँज उठता था। उस कहकहे के कमनीय कोलाहल में एक शुभ्र शान्त मृदु-मन्द मुस्कान की ज्योति झलक उठती थी। वह ज्योति की रमणीय रेखा 'ऐसे सुकुमार अधरों' को रंजित करती थी, जिनकी मधुर मदिरा में सम्राट् को बे-सुध करने के लिए काफी मादकता थी।

२

बेगमों की इच्छा जल-क्रीड़ा करने की हुई। बाँदियों ने पता लगाया, पास ही में एक अच्छा-सा तालाब था। बेगमें एक साथ ही निकल पड़ीं। उनके खीमों पर कड़ा पहरा बैठ गया। बाँदियाँ साड़ियाँ वगैरह लेकर पीछे-पीछे चलीं। पर बेगमों ने उन्हें वापस कर दिया।

अलाउद्दीन की अनुपस्थिति में पूर्ण स्वच्छन्दता की तरंग तबीयत में आ गई। सब-की-सब सिर्फ साड़ी पहनकर, झुंड बाँधकर, परस्पर गलबहियाँ डालकर, पैदल ही जंगल में घुस गईं। मन की मौज ही तो है, एक भी बाँदी साथ न आने पाई।

बेगमें चहकती, फुदकती, मटकती चली जाती थीं। कोई मखौल करती, कोई खिलखिलाती, कोई चौंकती। कोई मंदस्मितयुक्त तीक्ष्ण कटाक्षपात से अंचल पकड़नेवाली प्रगल्भ झाड़ियों का, उपहास करती। कोई कूकने में कोयल से बाजी मार ले जाती और 'एक कोई' रंग-बिरंग तितलियों को पकड़ने के लिए उस वन की सघन श्यामता में विद्युल्लता की तरह चंचल हो उठती।

तालाब के तीर पर पहुँचकर सबने साड़ियाँ उतारकर किनारे रख दीं।

पद्म-पराग से पुष्करिणी का जल सुवासित था। सुस्थिर सरोवर के प्रशान्त वक्षःस्थल पर कोमल-कमल-कलिकाएँ मुस्कुरा रही थीं। मधुप-मंडली मँड़रा रही थी। जलकुक्कुट जल-तरंग बजा रहा था।

बेगमें पुलकित हो उठीं। एक दूसरे को ताकने और मुस्कुराने लगीं। उनकी स्वच्छन्दता और प्रफुल्लता आनन्दोन्मत्तता में परिणत हो गई। देखते-ही-देखते प्रकृति की गोद में पले हुए कासार-किशोर कमल, 'पठान-सम्राट् के मानस-सर में खिले रहनेवाले स्वर्ण-कमलों' से तिरस्कृत और लज्जित होकर, सम्पुटित हो गये।

आकाश में घन घुमड़ आये। मालूम हुआ, प्रलय-काल की वर्षा होगी। पर यह क्या! मेघ छँट गये, आसमान हँस उठा। फिर हाहाकार सुन पड़ा। जान पड़ा कि दो क्रोधित विषधर पास ही की झाड़ी में लड़ रहे हैं।

बेगमों ने जल उछालना और किलोलें करना बंद कर दिया। सब-की-सब कान देकर सुनने लगीं। हाहाकार प्रचंड हो उठा। वे शंकित हो गईं। धीरे-धीरे तालाब से निकलने लगीं। हाहाकार सघन और गंभीर होता गया। एकाएक झाड़ियाँ काँप उठीं। बेगमें बाहर निकलने को दौड़ीं। आँधी ने राह बन्द कर दी। आँखों के आगे लाल-पीला अन्धकार छा गया!

तरुण तूफान बड़ा रसिक निकला, तरुणियों की साड़ियाँ उड़ा ले गया! जो जिधर समा सकी, भाग निकली। साड़ियों की सुध भूल गई, जान की खैर मनाने लगीं। काँटों से अंग छिल गये, मगर जरा भी दर्द न हुआ, सम्राट् का खौफ जो था!

जब वे नंगी-धड़ंगी खेमे में पहुँचीं, बाँदियाँ मन-ही-मन मुस्कुराने लगीं— उन्हें साथ न ले जाने का मजा मिल गया!

'नई बेगम' की बाँदी परेशान थी। उसकी स्वामिनी का कहीं पता नहीं! तमाम सन्नाटा छा गया। काटो तो किसी के खून नहीं। घुड़सवार छूटे। चारों ओर जंगल में फैल गये। कहीं कोई नहीं! नयी बेगम लापता!!

घुड़सवार खाली हाथ लौट आये। बेगमों के कलेजे धड़कने लगे। पहरेदार सिर पीटने लगे। वह बाँदी अपने कलेजे में कटार भोंकने चली।

बड़ी बेगम ने हाथ पकड़ लिया—"अभी ठहरो, सवार तो लौट आये; पर सवारों का सरदार अभी नहीं लौटा, शायद किस्मत अच्छी हो।"

३

सवारों का सरदार उसी तालाब के आसपास चक्कर काट रहा था। हर-एक झाड़ी छान डाली, कुछ हाथ न आया।

एकाएक इत्र की सुगंध से वायुमंडल भर उठा। सरदार चौकन्ना हो गया। सावधानी से आहट लेने लगा।

अनायास आँखें चकित हो गयीं, सिर झुक गया। सिर का साफा सामने फेंकते हुए नीची नजरों से कहा—"पहले इसे पहन लीजिए।"

बेचारी सुकुमारी बेगम ठंढक से काँप रही थी। केश बिखरे हुए थे। अलक झूल रहे थे। जान पड़ता था, जंगल में श्वेत चंदन के वृक्ष पर भुजंग झूमते हों।

सरदार का साफा सौभाग्यवश सुन्दरी की साड़ी बन गया। उसमें पुरुषत्व की उत्कट गंध थी। बेगम विह्वल हो उठी। बोली—"मैं सर्दी से जकड़ रही हूँ, कोई ऐसी तदबीर करो कि सेहत हासिल हो।"

सरदार—"मैं फौरन चकमक से आग जलाता हूँ।"

बेगम—"आग तो खुद मेरे दिल में धधक रही है।"

सरदार—"तो ताबेदार को जो हुक्म हो, बजा लाये।

बेगम—"मुझे अपनी गोद में लेकर प्यार करो!"

सरदार—"(आश्चर्यित होकर) इसमें मेरी जान का खतरा है!"

बेगम—"यों भी अब तुम खतरे से बच नहीं सकते।"

सरदार—"लेकिन आपकी इज्जत मुझे अपनी जान से भी प्यारी है।"

बेगम—"मेरी इज्जत प्यारी है, मेरी जान नहीं?"

सरदार—"वह तो और भी प्यारी है। उसीके लिए मैं इतनी गुस्ताखी कर रहा हूँ।"

बेगम—"मेरी जान का खौफ छोड़ दो, मैं चुटकियों में मौत को उड़ा दूँगी। और तुम नाहक अपने सिर बला मोल ले रहे हो, लबों से लगा हुआ आबे-हयात का प्याला फेंककर जहर के घूँट पीने जा रहे हो। क्या तुम नहीं जानते कि मैं इशारे पर तुम्हारे बादशाह-सलामत को नचाती हूँ?"

सरदार—"मुझे सब-कुछ मालूम है। लेकिन गुनाह गहरा है, रुह काँप उठती है, ईमान छटपटा रहा है।"

बेगम—"लेकिन मेरी बेचैनी सबसे बढ़ी-चढ़ी है। हीला-हवाला कारगर न होगा। सिपह-सालारी तुम्हारे ही बाँटे पड़ेगी।"

सरदार—"ओहदे के लिए बेहूदा हरकत करना मुझे पसंद नहीं। मैं माफी चाहता हूँ।"

बेगम—"नागिन को छेड़कर मत छोड़ो। खबरदार!"

सरदार—"हिम्मत की भी हद होती है।"

बेगम—"अच्छा, तो पहले मैं ही तुम्हें प्यार करूँगी।"

सुनते ही सरदार संकोच से सिकुड़ गया। बेगम आत्मविस्मृति में डूब गयी। वह एकान्त वनस्थली दो मुग्ध हृदयों की क्रीडास्थली बन गयी।

बेगम की वासनाएँ तृप्ति की ओर बढ़ी चली जा रही थीं, और पास ही की झाड़ी से निकलकर एक शेर इनकी ओर बढ़ा चला आ रहा था।

सरदार ने मुस्कराते-ही-मुस्कराते तीर-कमान साधा। शेर भूमिसात् हो गया, बेगम भी शान्त हो गई!

उद्वेग संतोष में बदल गया। चंचलता और चुहल शिथिलता में परिणत हो गई। दन्तक्षत और नख-क्षत के रूप में जिन्दगी-भर के लिए मुहब्बत का दमामी पट्टा लिखा गया। उसे अंत में गाढ़ालिङ्गन के लिफाफे में बन्द कर उसपर चुम्बन की पक्की मुहर लगाई गई।

बेगम घोड़े पर सवार होकर शाही कैम्प में चली गई।

सरदार ने अपने प्रेम-पुरस्कार को—मोतियों के बेशकीमत हार को—अनेक बार आँखों से, छाती से, लगाया; चूमा और उसे हँसते-हँसते खलीते में डालकर आगे बढ़ते हुए मन-ही-मन कहा—"न जाने आज मेरी खुशकिस्मती का इतना जबरदस्ती तूफान किधर से आ गया!"

४

दिल्ली के शाही महल के सामने, चाँदनी रात में, अलाउद्दीन, अपनी नई बेगम के साथ, यमुना में जल-विहार कर रहा था।

चंदन की किश्ती चमेली के गजरों से सजाई गई थी। दूर-दूर पर गायिका सुन्दरियों की किश्तियाँ थीं। यमुना के अतल श्यामल हृदय पर पूनो के चाँद की किरण-कुमारियाँ गुप्त-हीरक खेल खेल रही थीं। नैश गगन की शुभ्र विभूतिधरातल पर दूध बरसा रही थी। समस्त दृश्यमान् जगत् क्षीर-सागर में नहा रहा था।

अलाउद्दीन ने बेगम की सुबुक चिबुक को दबाते हुए कहा—"जान मन! तुम्हारे इस लासानी मुखड़े को देखकर चाँद निहायत शर्मिन्दा हो गया है। देखो, वह यमुना में डूब मरा।"

बेगम ने अपनी सुराहीदार गरदन झुकाकर देखा। हँस पड़ी। सौन्दर्य-गर्व-गरिमा से आँखें खिल उठीं। चेहरे पर चौगुना रौनक छा गया। गाल गुल्लाला हो उठे।

अलाउद्दीन का नशा खिलने लगा। शराबी की शरारत और विलासिनी की भाव-भंगिमा ने दरियाई सैर की सरसता में उत्कट उत्तेजना भर दी।

उन्मत्त अलाउद्दीन नई बेगम को दृढ भुज-पंजर में कसकर स्फीत चुम्बन का रसास्वादन कर रहा था। अकस्मात् किश्ती की बगल ही में दो विशाल जल-जन्तु लड़ पड़े। जल में एकाएक घोर शब्द उत्पन्न हुआ। निशीथ में यमुना जग पड़ी। उथल-पुथल मच गया। किश्ती हिल उठी। भुज-पाश अचानक शिथिल हो गया। चुम्बन का चाव चंपत हो गया। बेगम अनायास हँस पड़ी।

अलाउद्दीन—"तुम्हें इतने जोर की हँसी क्यों आई?"

बेगम—"यों ही, इसकी कोई खास वजह नहीं।"

अलाउद्दीन—"है तो जरूर और तुम्हें बतलाना भी पड़ेगा जरूर; लेकिन इस वक्त तुम झूठ बोल रही हो, इसका नतीजा अच्छा न होगा।"

बेगम—नतीजा चाहे जो हो, मेरी हँसी की कोई खास वजह नहीं।"

बेगम की हँसी ने बादशाह के पुरुषत्व का उपहास किया था। वह अपनी झेंप और झुंझलाहट के झकोरे में पड़कर क्षुब्ध हो उठा। सुन्दरी युवती प्रेयसी द्वारा पौरुष का तिरस्कार सर्वथा असह्य होता है।

अलाउद्दीन—"अगर सच-सच अभी न बताओगी, तो कल फाँसी की सजा दे दूँगा। याद रहे!"

बेगम—"महज छोटी-सी बात पर आप इस कदर आपे से बाहर हो गये, यह निहायत अफसोस की बात है।"

अलाउद्दीन—"बस, तुम्हारी शेखी और गुस्ताखी बहुत देख चुका, अब पशोपेशी छोड़कर साफ-साफ कह डालो, नहीं तो खैरियत न होगी।"

बेगम—"जान-बख्श पाऊँ, तो साफ-साफ कह सुनाऊँ।"

अलाउद्दीन—"मैं जबान हारता हूँ, पक्का वादा करता हूँ, सब बातें सुनकर तुम्हें इसी जगह कलेजे से लगाकर सुबह तक प्यार करता रहूँगा।"

बेगम—"एक जान और बख्श दीजिए, मैं शुरू से पूरा किस्सा बयान करती हूँ।"

अलाउद्दीन—"खैर, यह भी सही, देर न करो।"

किस्सा कोताह, बेगम ने उस सरदार की मरदानगी और दिलेरी का ऐसा खाका खींचा कि अलाउद्दीन का चेहरा सुर्ख हो गया। कभी वह दाँत पीसता, कभी हाथ मलता, कभी कलेजा पकड़ता, कभी सिर पीटता। अजीब परेशानी थी।

बेगम ताड़ गई। सोचने लगी—"बड़ी नादानी हुई; भंडा भी फूटा, किस्मत भी फूटी!"

५

होनी होकर रही। बेगम और सरदार कैदखाने में सड़ने लगे। एक घूँट पानी के लिए तरसने लगे। फाँसी का दिन निश्चित हो गया।

सरदार का भाई सन्तरी था, बेगम का भाई कोतवाल। दोनों सहमत होकर जान पर खेल गये। बेगम और सरदार कठोर कारागार से भाग निकले।

सुबह में बादशाह को दिखला दिया गया, जेल की दीवार पर बाहर की ओर कमंद लटक रही थी!

बेगम और सरदार भारतवर्ष के शक्तिशाली राजाओं के यहाँ पनाह माँगते फिरे। राजपूताने के राजाओं ने भी शरणागत-रक्षा के क्षात्र-व्रत से मुँह मोड़ लिया। वे हताश होकर 'हम्मीर' की शरण में पहुँचे।

दरबार लगा हुआ था। सरदार ने कातर स्वर से शरण की याचना की। 'हम्मीर' की भुजाएँ फड़क उठीं। प्रशस्त ललाट से तेजस्विता की जगमग जोत छिटकने लगी। उठकर शरणागत के पास आये और उसे उठाकर छाती से लगाते हुए बोले—"संसार की कोई शक्ति तुम्हारा बाल बाँका नहीं कर सकती। जबतक शरीर में प्राण है, शरणागत-रक्षा का व्रत पालन करूँगा, क्षात्र-धर्म का उद्धार करूँगा, राजस्थान की लाज रखूँगा। अभय हो जाओ, किले के अन्दर निश्चिन्त पड़े रहो, इन भुजाओं के साये में प्रत्येक त्रस्त प्राणी त्राण पा सकता है। अपनेको सर्वथा सुरक्षित समझकर सारा वृत्तान्त सुनाओ।"

आद्यन्त वृत्तान्त सुनकर सारी सभा चकित हो गई। एक ही इशारे पर हजारों हाथों ने म्यान खाली कर दी। सरदार को विश्वास हो गया, वह कृतकृत्य हो गया।

महाराणा की छत्रच्छाया में किले के अंदर निष्कंटक जीवन-यापन करने लगा। क्षत्राणियों के तेज-ओज के सामने बेगम निष्प्रभ हो गई।

शाही जासूसों ने अलाउद्दीन के कान भर दिये। दिल्ली से संवाद आया—"नेस्त-नाबूद कर दूँगा"

चित्तौर-गढ़ की एक गगनारोही अट्टालिका पर अट्टहास करता हुआ एक मनस्वी वीर स्वाभिमान के साथ गरज उठा—"ऐसी गीदड़-भभकियाँ किसी और को दिखा। यहाँ तुझ-जैसों की कोई खाक परवा नहीं करता।"

आस-पास की पहाड़ियों ने इस गगन-भेदी गर्जन को दुहरा दिया, मानों चित्तौर की चहारदीवारियों ने भी स्वर-में-स्वर मिलाकर कहा—"पुर्जे-पुर्जे कट जाने पर भी अपने अंक में आये हुए की हम रक्षा करेंगी।"

प्रतिकूल वायु ने यह स्वाभिमानपूर्ण संदेश दिल्ली-पर्यन्त वहन किया। इसकी उग्रता को अलाउद्दीन ने कलेजा थामकर सहन किया।

वजीर की बुलाहट हुई। फौरन फरमान निकला—"चढ़ चलो, चित्तौर को चकनाचूर कर डालो।"

चुने हुए पचास हजार पठान जवान शान-शौकत के साथ चित्तौर-गढ़ पर चढ़ चले।

६

अपने हाथों से हम्मीर ने उस शरणागत सरदार के सिर पर सेनापतित्व का सेहरा बाँधा। राजपूतों ने बहुत रोका, हम्मीर ने एक युद्ध-कुशल वीर की प्रचंड लालसा को जबरन दबाना अनुचित समझा।

रण-परिच्छद से सुसज्जित होकर हम्मीर अपनी जननी के आशीर्वाद ग्रहण करने गये। माता ने माथा सूंघकर स्नेहपूर्वक कहा—"जाओ, विजयी होकर मेरे दूध की लाज रक्खो, और क्षात्रधर्म की मर्यादा का पालन करो।"

हम्मीर मचल उठे। धनुष, तीर, तलवार अलग फेंककर खंभे से खड़े हो गये।

माता विस्मित होकर बोली—"यह अनवसर अनावश्यक औदासीन्य कैसा?"

हम्मीर—"मुझे वही पुराना आशीर्वाद नहीं चाहिए। तुम-जैसी वीर-जननी से मैं नवीन स्फूर्ति पैदा करनेवाला शुभाशिष चाहता हूँ। मुझे वर दो कि जाकर शत्रु का सिर काट लाओ या रणचंडी की भेंट हो जाओ।"

माता के स्तनों से दूध की धारें निकल पड़ीं। गद्गद कंठ से बोली—"तथास्तु!"

× × ×

हफ्तों लड़ाई चली। राजपूतों ने दिखा दिया कि हम कितने पानी में हैं। अलाउद्दीन जिसे घुना चना समझता था, वह लोहे का चना निकला। मद का ज्वर उतर गया। छठी का दूध याद पड़ने लगा!

हम्मीर हरदम उस सरदार की रक्षा में रत रहते थे। उन्होंने अन्त तक अपना व्रत निबाहा।

अंतिम दिन उस सरदार पर आफत का पहाड़ टूट पड़ा। पठान-सेना ने उसे अकेले ही घेर लिया। उसने भयानक मार-काट मचाई, फिर भी शत्रुओं के घेरे से रिहाई न पाई। उत्साहित पठान-सेना हैरत में आ गई।

दुर्ग-द्वार की मोर्चाबन्दी छोड़कर लू के समान घोड़ा दौड़ाये हम्मीर पहुँच गये। हजारों को तलवार के घाट उतारा, शरणागत को मौत के पंजे से उबारा।

सुअवसर पाकर सुरक्षित सेना उमड़ आई। रणभूमि रक्त-प्लावित हो गई। दोनों वीरों का स्वागत करने के लिए मृत्यु सोल्लास खड़ी थी।

सरदार कह रहा था—"मा मृत्यु! पहले मुझे अपनी गोद में उठा ले! मैं तेरे आदेशानुकूल अपने इस आश्रयदाता की अगवानी करूँगा।"

हम्मीर कहते थे—"मा मृत्यु! यदि मैं तेरा सच्चा भक्त हूँ, तो मेरी प्रार्थना पहले स्वीकार कर, पहले मुझे ही अपनी गोद में विश्राम करने दे, ताकि मैं अपनी शरण की गोद में विश्राम करनेवाले इस सरदार को अपने पीछे-पीछे स्वर्ग तक ले जा सकूँ।"

हम्मीर की प्रतिज्ञा और सरदार की कृतज्ञता में होड़-सी मच गई। अगत्या हम्मीर का हठ और हौसला पूरा हुआ।

सरदार ने हम्मीर-हन्ता को यमपुर पठाया। मृत्यु ने सरदार को प्यार-भरे इशारे से अपने पास बुलाया और दोनों को अपनी गोद में बिठाकर हँसते-हँसते कहा—"महाराणा! यवन-सरदार! तुम दोनों धन्य हो। यदि तुम दोनों की तरह हिन्दू और मुसलमान परस्पर प्रतिज्ञावद्ध होकर प्रेमपूर्वक रहने लगें, तो आज जो भारतवर्ष मारकाट और खून-खराबी से मरघट बन रहा है, तथा मैं भी अजीर्णता की पीड़ा से बेचैन हो रही हूँ, वह न हो। आज तुम-जैसे दृढप्रतिज्ञ, शरणागत रक्षक और यवन-सरदार-जैसे वीर-व्याघ्र कर्त्तव्य-पालक को अपनी गोद में लेकर मैं कृतकृत्य हो गई। मालूम नहीं, तुम-जैसों से फिर यह गोद कब अलंकृत होगी!"

बुलबुल और गुलाब

फ़० न० २३

Love ! What a Volume in a word !
An Ocean in a tear ;
A Seventh heaven in a glance
A Whirlwind in a sigh !
A Lightening in a touch !
A millennium in a moment !

—*Tampper.*

× × ×

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्-
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
काले नावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥

—भवभूति

× × ×

इब्तिदा ही में मर गये सब यार।
इश्क की पाई इन्तहा न कभू ॥

—मीर

कहता है कौन नालाए बुलबुल को बेअसर।
परदे में गुल के लाख जिगर चाक हो गये।

—गालिब

न गुल अपना न खार अपना न जालिम बागबाँ अपना।
बनाया आह किस गुलशन में हमने आशियाँ अपना ॥

—नजीर

× × ×

It was the nightingale, and not the lark,
That pierced the fearful hollow of thine ear;
Nightly she sings on you pomegranate tree.
elieve me, love, it was the nightingale.

—*Shakespeare.*

उसने कहा—"यदि तुम मेरे लिए लाल गुलाब का फूल ला दोगे, तो मैं तुम्हारे साथ नाचूँगी ।"

युवक ने कहा—"हाय ! मेरे बगीचे भर में कहीं लाल गुलाब का फूल है ही नहीं !"

अपने घोसले में बैठी हुई बुलबुल ने युवक की बात सुनी। वह विस्मित होकर पल्लवों की आड़ से झाँक रही थी।

युवक की सुन्दर आँखें छलछला उठीं। वह शोकातुर होकर कहने लगा—"हाय! मनुष्य का आनन्द कैसी तुच्छ वस्तु पर निर्भर करता है। मैंने बड़े-बड़े विद्वानों के लिखे ग्रन्थ पढ़ डाले, दर्शनशास्त्र के रहस्य भी समझ लिये; किन्तु आह! आज एक लाल गुलाब के विना मेरा जीवन कितना दुखमय हो गया!"

बुलबुल बोल उठी—"सचमुच यह सच्चा प्रेमी है! मैं दिन-रात प्रेम का गीत गाती हूँ, तो भी मैं प्रेम करना नहीं जानती। रोज रात को मैं आसमान के तारों से प्रेम की कहानी कहती हूँ; पर! आज ही उस प्रेम के दर्शन हुए हैं। कैसा सुन्दर युवक है! जामुन से काले-काले बाल, लाल गुलाब-से होंठ! प्रेम की पीड़ा से मुखड़ा पीला पड़ गया है! भँवों पर व्यथा की छाप पड़ गई है।"

युवक फिर मन्द स्वर से कहने लगा—"राजकुमार कल रात को उसे पुष्पगुच्छ देगा और मेरा प्रेम हवा हो जायगा! यदि मैं उसे लाल गुलाब लाकर दूँ, तो सुबह तक वह मेरे साथ नाचेगी। मैं उसे अंक में भरूँगा। वह मेरे कन्धे पर सिर रखकर प्रेम जतायेगी, मेरे हाथों को अपने हाथों में चाँपेगी। किन्तु हाय! सारे बगीचे में कहीं एक भी लाल गुलाब नहीं! अब मैं अकेला बैठता हूँ। वह इधर ही से निकलेगी और मेरी ओर ताकेगी भी नहीं, बस मेरा दिल टूक-टूक हो जायगा!"

बुलबुल फिर बोल उठी—"वास्तव में यह सच्चा प्रेमी है! मेरे प्रेम-संगीत में जो वेदना होती है, उसे यह सह रहा है। जो मेरे लिए आनन्दप्रद है, वही इसके लिए व्यथा बन गई है। निश्चय ही प्रेम एक अद्भुत पदार्थ है। यह रत्नों से भी बढ़कर मूल्यवान् है। हीरे-मोतियों से यह खरीदा नहीं जा सकता। बाजार में इसकी दूकान नहीं लगती। धनकुबेर सेठ भी इसे मोल नहीं ले सकते। इसकी बराबरी में सोना भी तोला नहीं जा सकता।"

युवक बोला—"राजमहल की रंगशाला में संगीतज्ञों की मंडली वीणा और वंशी बजायेगी, वह सुर-ताल पर थिरक-थिरककर नाचेगी। वह ऐसी बारीकी से नाचेगी कि पृथ्वी को उसका चरण-स्पर्श भी नसीब न होगा। सुन्दर-सुन्दर पोशाक

पहनकर दरबारी लोग उसे चारों ओर से घेर लेंगे, किन्तु हाय ! 'मेरे साथ वह नहीं नाचेगी ; क्योंकि मैं उसे लाल गुलाब की भेंट नहीं दे सकता ।"

यों ही बड़बड़ाता हुआ युवक, हरी-हरी घासों के फर्श पर, बेसुध-सा गिर पड़ा । हाथों से अपना मुँह छिपाकर फूट-फूट रोने लगा ।

पंख फरफराता हुआ भौंरा उधर से निकला । पूछा-"तुम क्यों रो रहे हो ?"

सूर्य-किरणों को चूमती फिरती हुई तितली ने भी पूछा—"सचमुच तुम क्यों रोते हो ?"

अति मन्द सुकुमार स्वर में मधुमक्खी ने भी कहा—"सचमुच तुम रोते क्यों हो ?"

बुलबुल बोल उठी—"वह लाल गुलाब के फूल के लिए रो रहा है !"

सब-के-सब साश्चर्य कहने लगे-"महज लाल गुलाब ही के लिए ? हरे राम ! हरे राम !!"

सब-के-सब हँस पड़े । किन्तु बुलबुल उस युवक की वेदना का रहस्य समझती थी । वह चुपचाप पल्लवों की ओट में छिपी बैठी रही । वह प्रेम के रहस्य-चिन्तन में डूबी हुई थी ।

२

एकाएक बुलबुल ने सुन्दर पंखों को फैलाया, और फुर से उड़ चली ! कुंजों और बगीचों को पार करती हुई वह कहाँ निकल गई ? लहलही घासों से भरे मैदान के बीच में गुलाब का एक पेड़ था, उससे जाकर बोली—"मुझे एक लाल फूल दो, मैं तुम्हें अपना मधुर गान सुनाऊँगी !"

गुलाब के वृक्ष ने अपना सिर हिलाते हुए कहा—"मेरे फूल तो समुद्र के फेन के समान—पहाड़ी बर्फ के समान—सफेद हैं । किन्तु मेरे एक भाई के पास जाओ, वही तुम्हें मनचाही चीज देगा !"

बुलबुल वहाँ उड़कर गई । उसी तरह याचना की । उस गुलाब के वृक्ष ने भी सिर हिलाकर कहा—"मेरे फूल तो सुन्दरी रमणी के सुनहले बालों के समान पीले हैं—प्यारी सूरजमुखी के सदृश हैं, तुम मेरे उस भाई के पास जाओ, जो उस युवक की खिड़की के सामने खड़ा है; वह तुम्हें लाल फूल देगा ।"

बुलबुल वहाँ भी उड़कर पहुँची । उन्हीं शब्दों में याचना की । उस गुलाब के वृक्ष ने कहा—"मेरे फूल तो लाल हैं—उतने ही लाल—जितने कि हंस के चरण-तल—ठीक मूँगे के समान ; किन्तु शीत-काल ने मेरी नसों को सिकुड़ा दिया है, पाले ने मेरी कलियों को कुम्हला दिया है, हवा के तुन्द झोंकों ने मेरी डालों को तोड़-मरोड़ डाला है; इसलिए इस साल एक भी फूल नहीं खिला !"

बुलबुल बोली—मैं सिर्फ एक ही लाल फूल चाहती हूँ—सिर्फ एक ! क्या किसी उपाय से मैं उसे पा नहीं सकती ?

गुलाब का वृक्ष बोला—"एक उपाय है ; पर वह इतना भयंकर है कि मैं तुमसे कहने का साहस नहीं कर सकता।"

बुलबुल बोली—"कहो, मैं डरूँगी नहीं।"

गुलाब के वृक्ष ने कहा—"यदि तुम लाल फूल चाहती हो, तो खुली चाँदनी में अपने मधुरतम प्रेम-संगीत से उसकी सृष्टि करो और अपने हृदय के रक्त से उसे रँगो। अपनी छाती में मेरे काँटे को चुभाकर मेरे पास गाओ। रात-भर गाना पड़ेगा। मेरा काँटा जब तुम्हारी छाती को छेदकर पार हो जायगा, तब तुम्हारे हृदय का रक्त मेरी नसों में भिनकर मुझे संजीवनी शक्ति प्रदान करेगा।"

बुलबुल ने आह भरकर कहा—"लाल गुलाब के लिए जीवन-दान देना तो बहुत बड़ा मूल्य चुकाना है। जीवन बहुत ही प्रिय वस्तु है। यद्यपि हरे-भरे जंगल में बैठकर सुवर्ण-रथारूढ़ सूर्यदेव के दर्शन करना बड़ा सुखकर है—मुक्ता-दल-मंडित रथ पर आसीन चन्द्रदेव के दर्शन करना भी बड़ा ही मनोहर है—पहाड़ की तराई के खेतों में तीसी के फूलों की श्यामलता और रजनी-गन्धा की मस्तानी सुगन्ध भी अत्यन्त मुग्धकारिणी होती है, तथापि जीवन से 'प्रेम' कहीं बढ़कर है, और फिर मनुष्य-हृदय के साथ पक्षी के हृदय की समता ही क्या ?"

३

वह पंख फैलाकर उड़ चली। कुंजों और क्यारियों पर अपनी छोटी-सी छाया डालती हुई वहाँ पहुँची, जहाँ वह युवक अबतक उसी भाँति घास के गलीचे पर पड़ा था। उसके शोभन नेत्रों के आँसू अभी सूखे न थे।

बुलबुल बोल उठी—"ऐ युवक ! उठो, प्रसन्न हो, लाल गुलाब तुम्हें मिलेगा। मैं चाँदनी रात में अपने प्रेम-संगीत से उसकी सृष्टि कर अपने हृदय-रक्त से उसे रंजित करूँगी। उससे मैं सिर्फ इतना ही चाहती हूँ कि तुम सच्चे प्रेमी बने रहो, क्योंकि 'प्रेम' दर्शन-शास्त्र से भी गहन है—सर्वशक्तिमान् से भी प्रबल है। उनके पंख अग्नि-शिखा के समान दीप्तिमान् हैं। उसका शरीर इस ज्वाला के सदृश तेजस्वी है। उसके होंठ शहद की तरह मीठे और उसकी साँस मलय-पवन की भाँति सुरभिपूर्ण !"

युवक छात्र चौंक उठा। बड़े ध्यान से सुनने लगा। पर बुलबुल की बोली समझ न सका। केवल किताबों में लिखी बातों को ही वह समझ सकता था। किन्तु बुलबुल की बातों को वह अशोक-वृक्ष समझ गया, जिसकी डालों पर बुलबुल ने

बसेरा लिया था। वह बुलबुल को बहुत प्यार करता था। शोक से उसके पत्ते मुरझा गये। उसने क्षीण स्वर में कहा—"ऐ बुलबुल ! अब अपना अन्तिम संगीत सुनाओ, तुम्हारे चले जाने पर फिर तो सूना हो ही जायगा !"

बुलबुल गाने लगी। जैसे चाँदी की झारी से निर्मल जल का सोता झर रहा हो, वैसे उसके कंठ से रस की धार फूट चली। जब वह गा चुकी, तब वह युवक उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी जेब से नोट-बुक और पेन्सिल निकाली। कुंजों के बीच से टहलता हुआ वह मन-ही-मन कहने लगा—"इस बुलबुल की आकृति तो बड़ी सुन्दर है, पर क्या इसमें कुछ हृदय भी है ? मुझे तो इसमें शंका है। वास्तव में यह उन चित्रकारों के समान है, जिनमें एक विशेष शैली तो होती है; पर सहृदयता नहीं ! यह दूसरों के लिए आत्मत्याग नहीं कर सकती। यह केवल गाने की धुन में मस्त रहती है। प्रायः सभी कलाएँ स्वार्थपरायण हुआ करती हैं। फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इसका कंठ बड़ा मधुर है। यह कैसी दयनीय बात है कि ऐसे सरस-हृदय प्राणी भी कोई वास्तविक हित का काम नहीं कर सकते।"

यह कहते-कहते अपने कमरे में जाकर लेट गया। चुपचाप पड़े-पड़े प्रेम की चिन्ता में निमग्न होकर सो गया। रात को जब आकाश में चन्द्रमा उदित हुआ, तब बुलबुल उड़कर उस गुलाब के वृक्ष के पास गई—उसके काँटे से अपनी छाती भिड़ा दी और सारी रात गाती रही। शीतल शुभ्र चन्द्रमा झुककर उसके गान पर कान दिये रहा। वह सारी रैन गाती ही रही। काँटा चुभता ही चला गया। जीवन-रक्त निकल चला !"

४

पहली बार उसने एक बालक और एक बालिका के हृदय में प्रेम की उत्पत्ति का संगीत सुनाया। बस उस पुष्पवृक्ष की चोटीवाली फुनगी पर एक अपूर्व गुलाब खिल उठा। ज्यों-ज्यों संगीत-लहरी उठती गई, त्यों-त्यों उसमें दल-के-दल उभड़ते चले गये। आरम्भ में वह फीका था, जैसे नदी के ऊपर छाया हुआ कुहरा—जैसे उषा का पदार्पण ; किन्तु वह चमकीला भी था—जैसे प्रभात का आलोक। वह वैसा ही सुन्दर था, जैसा रजत-दर्पण में पाटलि-पुष्प का प्रतिबिम्ब—स्फटिक-स्वच्छ पुष्करिणी में अभिनव कमल की कान्ति !

वह गुलाब का पेड़ अचानक चीख उठा—"ऐ छोटी बुलबुल ! जरा अपनी छाती को और सटाकर दबाओ, मेरे काँटे में गहरा चुभाओ; नहीं तो फूल के तैयार होने से पहले ही भोर हो जायगा।"

बुलबुल ने काँटों की नोक पर अपनी छाती को खूब जोर से दबाया। इससे उसका संगीत-स्वर अधिकाधिक उच्च हो चला। उस समय युवक-युवती के हृदय में वासना की उत्पत्ति का गान अलाप रही थी। देखते-ही-देखते कोमल पत्तियों के बीच में सुकुमार लाली-सी दौड़ आई—ठीक वैसी ही लाली, जैसी पति-चुम्बित नई दुलहिन के मृदुल कपोलों पर दौड़ आती है। किन्तु, हाय! अभी तक काँटा बुलबुल के हृदय तक नहीं पहुँचा था! इसलिए उस नव-जात गुलाब का अन्तस्तल अभी तक श्वेत ही था; क्योंकि केवल बुलबुल के हृदय का रक्त ही गुलाब के अन्तस्तल को रंजित कर सकता है!

पुनः वह गुलाब का वृक्ष चीख उठा—"ऐ प्यारी बुलबुल! काँटे पर अभी और अपनी छाती दबाओ, अच्छी तरह चिपकाकर दबाओ; नहीं तो फूल के खिलने से पहले ही भोर हो जायगा।"

बुलबुल ने अपनी छाती को काँटे पर इतने जोर से दबाया कि काँटा कलेजे तक चुभ गया—एक तीक्ष्ण पीड़ा उसकी नसों में व्याप्त हो गई। इधर वेदना क्षण-क्षण तीव्र होती गई, उधर संगीत-स्वर का उच्चतर आरोहण होता चला गया। वह उस प्रेम की तान अलाप रही थी, जिसे मृत्यु ही पूर्ण एवं पवित्र करती है और जो चिताग्नि की ज्वालाओं में भी नहीं जलता!

उसी समय वह अपूर्व गुलाब लाल हो उठा—जैसे प्राचीन दिशा का नवोदित सूर्य। पुष्पदलों के अंचल तो लाल थे ही, पुष्प का अन्तरंग भी रत्न-कान्ति से रंजित था।

बुलबुल का स्वर मन्द हो चला। छटपटाने से पंख फड़फड़ करने लगे। चल-चित्र-सा विश्व का दृश्य उसकी आँखों के सामने नाच उठा। उसका कंठ-स्वर धीमा पड़ता चला गया—जान पड़ा, गला रुँध रहा है। तब उसने संगीत की अन्तिम लहर छेड़ी, जिससे प्लावित होकर उज्ज्वल चन्द्रमा उषा-मिलन की बात भूलकर आकाश में भटकता फिरा। जब उस लाल गुलाब ने भी वह अन्तिम संगीत-लहरी सुनी, तब आन्तरिक आनन्द से आन्दोलित होकर, शीतल-मन्द प्रभात-समीर में, वह अपने मृदुल दलों का दुकूल फहराने लगा। डहडही लताओं और रंगीन फूलों से ढँकी हुई पर्वत-गुफाओं तक वह संगीत-लहरी जा पहुँची, जहाँ उसके गूँजने से सोये हुए चरवाहे अपनी सुख-निद्रा से जग पड़े। इतना ही नहीं, वह संगीत-लहरी नदी के प्रवाह पर नाचती हुई समुद्र तक प्रेम-सन्देश ले पहुँची।

गुलाब का वृक्ष बोल उठा—"देखो, देखो, फूल तैयार हो गया!"

अब कौन देखे? कोई उत्तर न मिला!

घनी घास पर बुलबुल मरी पड़ी थी—काँटा कलेजे तक चुभा हुआ था।

५

दूसरे दिन दुपहरी में खिड़की खोलकर वह युवक बाहर निकला। बड़े आनन्दोल्लास के साथ वह चिल्ला उठा—"यह है लाल गुलाब का फूल! वाह रे भाग्य! ऐसा सुन्दर फूल तो मैंने अपने जीवन-भर में नहीं देखा!"

लपककर उसने फूल तोड़ लिया। फूल लेकर दौड़ता हुआ प्रोफेसर के बँगले पर पहुँचा। प्रोफेसर की लड़की बरामदे में कुर्सी पर बैठी हुई थी। उसका प्यारा कुत्ता उसके पैरों पर लोट रहा था।

युवक ने उसके पास पहुँचते ही कहा—"तुमने लाल गुलाब पाकर मेरे साथ नाचने का वादा किया था। देखो, यह है संसार का सर्वश्रेष्ठ लाल गुलाब! आज रात को अपने वक्षःस्थल पर इसे धारण करके जब तुम मेरे साथ नाचोगी, तब यह बताएगा कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ।"

लड़की ने झिड़क दिया। कहा—"मेरे सुन्दर कपड़ों के साथ यह नहीं खिलेगा। इसके सिवा एक और बात है—राजकुमार ने मेरे लिए कुछ सच्चे हीरे-जवाहर भेजे हैं। फूलों से हीरे-जवाहर कहीं बेशकीमत होते हैं।

युवक ने क्रोध-भरी झुँझलाहट के साथ कहा—"तुम बड़ी कृतघ्न हो! मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यह फूल लेकर आया था।"

इतना कहकर उसने फूल को सड़क पर फेंक दिया। वह पनाले में जा गिरा। उसी समय उसपर से गाड़ी का एक पहिया निकल गया!

लड़की बोली—मैं कृतघ्न हूँ? मैंने तुमसे क्या कहा था? तुम बड़े गुस्ताख हो। तुम होते कौन हो? तुम तो महज एक विद्यार्थी हो, और वह है राजकुमार। तुम्हारे जूतों पर तो चाँदी के भी बकलस नहीं हैं!"

वह उठकर कमरे के अन्दर चली गई।

युवक भुनभुनाता हुआ घर चला—"उफ!! प्रेम भी कैसा तुच्छ पदार्थ है। यह तो तर्कशास्त्र का आधा भी उपयोगी नहीं है; क्योंकि इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता! असम्भव बातों की चर्चा और असत्य बातों पर विश्वास दिलाने के समान यह सर्वथा निष्प्रयोजन है। वस्तुतः यह नितान्त अव्यावहारिक है। और, अब चूँकि इस युग में व्यावहारिकता ही सब कुछ है, इसलिए मैं प्रेम-पन्थ से मुँह मोड़कर दर्शनशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र के अध्ययन में प्रवृत्त होऊँगा।"

यही सब सोचता हुआ वह घर पहुँचा और अपने कमरे में बैठकर किताब पढ़ने लगा।

देहाती दुनिया

[ठेठ देहात का औपन्यासिक चित्र]

श्रीमान् राजासाहब की सेवा में सादर समर्पित



हिन्दी के गद्य-कवि राजा राधिकारमणप्रसाद सिंह
(सूर्यपुरा)

१

माता का अंचल

जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग
जहाँ बुड्ढों का संग, तहाँ खरचे का तंग

हमारे पिता तड़के उठकर, निबट-नहाकर पूजा करने बैठ जाते थे। हम बचपन से ही उनके अंग लग गये थे। माता से केवल दूध पीने तक का नाता था। इसलिए पिता के साथ ही हम भी बाहर की बैठक में ही सोया करते। वह अपने साथ ही हमें भी उठाते और साथ ही नहला-धुलाकर पूजा पर बिठा लेते। हम भभूत का तिलक लगा देने के लिए उनको दिक करने लगते थे। कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर और कुछ डाँटकर वह हमारे चौड़े लिलार में त्रिपुंड कर देते थे। हमारे लिलार में भभूत खूब खुलती थी। सिर में लम्बी-लम्बी जटाएँ थीं। भभूत रमाने से हम खासे 'बम-भोला' बन जाते थे।

पिताजी हमें बड़े प्यार से 'भोलानाथ' कहकर पुकारा करते। पर असल में हमारा नाम था 'तारकेश्वरनाथ'। हम भी उनको 'बाबूजी' कहकर पुकारा करते और माता को 'मइयाँ'।

जब बाबूजी रामायण का पाठ करते तब हम उनकी बगल में बैठे-बैठे आइने में अपना मुँह निहारा करते थे। जब वह हमारी ओर देखते तब हम कुछ लजाकर और मुस्कुराकर आइना नीचे रख देते थे। वह भी मुस्कुरा पड़ते थे।

पूजा-पाठ कर चुकने के बाद वह राम-नाम लिखने लगते। अपनी एक 'रामनामा बही' पर हजार राम-नाम लिखकर वह उसे पाठ करने की पोथी के साथ बाँधकर रख देते। फिर पाँच सौ बार कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों पर राम-नाम लिखकर आटे की गोलियों में लपेटते, और उन गोलियों को लेकर गंगाजी की ओर चल पड़ते थे।

उस समय भी हम उनके कन्धे पर विराजमान रहते थे। जब वह गंगा में एक-एक आटे की गोलियाँ फेंककर मछलियों को खिलाने लगते तब भी हम उनके कन्धे पर ही बैठे-बैठे हँसा करते थे। जब वह मछलियों को चारा देकर घर की ओर लौटने लगते तब बीच रास्ते में झुके हुए पेड़ों की डालों पर हमें बिठाकर झूला झुलाते थे।

कभी-कभी बाबूजी हमसे कुश्ती भी लड़ते। वह शिथिल होकर हमारे बल को बढ़ावा देते, और हम उनको पछाड़ देते थे। यह उतान पड़ जाते और हम उनकी

छाती पर चढ़ जाते थे। जब हम उनकी लम्बी-लम्बी मूँछें उखाड़ने लगते तब वह हँसते-हँसते हमारे हाथों से मूँछों को छुड़ाकर उन्हें चूम लेते थे। फिर जब हमसे खट्टा और मीठा चुम्मा माँगते तब हम बारी-बारी कर अपना बाँया और दाहिना गाल उनके मुँह की ओर फेर देते थे। बायें का खट्टा चुम्मा लेकर जब वह दाहिने का मीठा चुम्मा लेने लगते तब अपनी दाढ़ी या मूँछ हमारे कोमल गालों पर गड़ा देते थे। हम झुँझलाकर फिर उनकी मूँछें नोचने लग जाते थे। इसपर वह बनावटी रोना रोने लगते और हम अलग खड़े-खड़े खिल-खिलाकर हँसने लग जाते थे।

उनके साथ हँसते-खेलते जब हम घर आते तब उनके साथ ही हम भी चौके पर खाने बैठते थे। वह हमें अपने ही हाथ से, फूल के एक कटोरे में गोरस और भात सानकर खिलाते थे। जब हम खाकर अफर जाते तब मइयाँ थोड़ा और खिलाने के लिए हठ करती थीं। वह बाबूजी से कहने लगती—आप तो चार-चार दाने के कौर बच्चे के मुँह में देते जाते हैं; इससे वह थोड़ा खाने पर भी समझ लेता है कि हम बहुत खा गये; आप खिलाने का ढंग नहीं जानते—बच्चे को भर-मुँह कौर खिलाना चाहिए।

"जब खायेगा बड़े-बड़े कौर, तब पायेगा दुनिया में ठौर।"

—देखिए, मैं खिलाती हूँ। मरदुए क्या जाने कि बच्चों को कैसे खिलाना चाहिए, और महतारी के हाथ से खाने पर बच्चों का पेट भी भरता है।

यह कह वह थाली में दही-भात सानती और अलग-अलग तोता, मैना, कबूतर, हंस, मोर आदि में बनावटी नाम से कौर बनाकर यह कहते हुए खिलाती जाती कि जल्दी खा लो, नहीं तो उड़ जायँगे; पर हम उन्हें इतनी जल्दी उड़ा जाते थे कि उन्हें उड़ने का मौका ही नहीं मिलता था।

जब हम सब बनावटी चिड़ियों को चट कर जाते थे तब बाबूजी कहने लगते—अच्छा, अब तुम 'राजा' हो गये, जाओ खेलो।

बस, हम उठकर उछलने-कूदने लगते थे। फिर रस्सी में बँधा हुआ काठ का घोड़ा लेकर नंग-धड़ंग बाहर गली में निकल जाते थे।

जब कभी मइयाँ हमें अचानक पकड़ पाती तब हमारे लाख छटपटाने पर भी एक चुल्लू कड़वा तेल हमारे सिर पर डाल ही देती थी। हम रोने लगते और बाबूजी उसपर बिगड़ खड़े होते; पर वह हमारे सिर में तेल बोथकर हमें उबटकर ही छोड़ती थी। फिर हमारी नाभी और लिलार में काजल की बिन्दी लगाकर चोटी गूँथती और उसमें फूलदार लट्टू बाँधकर रंगीन कुर्ती-टोपी पहना देती थी। हम खासे 'कन्हैया' बनकर बाबूजी की गोद में सिसकते-सिसकते बाहर आते थे।

बाहर आते ही हमारी बाट जोहनेवाला बालकों का एक झुंड मिल जाता था। हम उन खेल के साथियों को देखते ही, सिसकना भूलकर, बाबूजी की गोद से उतर पड़ते और अपने हमजोलियों के दल में मिलकर तमाशे करने लग जाते थे।

तमाशे भी ऐसे-वैसे नहीं, तरह-तरह के नाटक! चबूतरे का एक कोना ही नाटक-घर बनता था। बाबूजी जिस छोटी चौकी पर बैठकर नहाते थे, वही रंग-मंच बनती। उसी पर, सरकंडे के खम्भों पर कागज का चँदोआ तानकर, मिठाइयों की दूकान लगायी जाती। उसमें चिलम के खोंचे पर कपड़े के थालों में ढेले के लड्डू, पत्तों की पूरी-कचौरियाँ, गीली मिट्टी की जलेबियाँ, फूटे घड़े के टुकड़ों के बताशे आदि मिठाइयाँ सजायी जातीं। ठीकरों के बटखरे और जस्ते के छोटे-छोटे टुकड़ों के पैसे बनते। हमीं लोग खरीदार और हमीं लोग दूकानदार! बाबूजी भी दो-चार गोरखपुरिये पैसे खरीद लेते थे।

थोड़ी देर में मिठाई की दूकान बढ़ाकर हमलोग घरौंदा बनाते थे। धूल की मेंड़ दीवार बनती और तिनकों का छप्पर। दातून के खंभे, दियासलाई की पेटियों के किवाड़, घड़े के मुँहड़े की चूल्हा-चक्की, दीये की कड़ाही और बाबूजी की पूजा-वाली आचमनी की कलछी बनती थी। पानी के घी, धूल के पिसान और बालू की चीनी से हमलोग ज्योनार तैयार करते थे। हमीं लोग ज्योनार करते और और हमीं लोगों की ज्योनार बैठती थी। जब पंगत बैठ जाती थी तब बाबूजी भी धीरे-से आकर, पाँत के अन्त में, जीमने के लिए बैठ जाते थे। उनको बैठते देखते ही हम लोग हँसकर और घरौंदा बिगाड़कर भाग चलते थे। वह भी हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते और कहने लगते—फिर कब भोज होगा भोलानाथ?

कभी-कभी हमलोग बरात का भी जुलूस निकालते थे। कनस्तर का तम्बूरा बजता, अमोले को घिसकर शहनाई बजायी जाती, टूटी चूहेदानी की पालकी बनती, हम समधी बनकर बकरे पर चढ़ लेते, और चबूतरे के एक कोने से चलकर बरात दूसरे कोने में जाकर दरवाजे लगती थी। वहाँ काठ की पटरियों से घिरे, गोबर से लिपे, आम और केले की टहनियों से सजाये हुए छोटे आँगन में कुल्हिये का कलसा रक्खा रहता था। वहीं पहुँचकर बरात फिर लौट आती थी। लौटने के समय, खटोली पर लाल ओहार डालकर, उसमें दुलहिन को चढ़ा लिया जाता था। लौट आने पर बाबूजी ज्यों ही ओहार उघारकर दुलहिन का मुख निरखने लगते, त्यों ही हमलोग हँसकर भाग जाते।

थोड़ी देर के बाद फिर लड़कों की मंडली जुट जाती थी। इकट्ठा होते ही राय जमती कि खेती की जाय। बस, चबूतरे के छोर पर घिरनी गड़ जाती और उसके नीचे की गली कुँआ बन जाती थी। मूँज की बटी हुई पतली रस्सी में

एक चुक्कड़ बाँध गराड़ी पर चढ़ाकर लटका दिया जाता, और दो लड़के बैल बनकर 'मोट' खींचने लग जाते। चबूतरा खेत बनता, कंकड़ बीज और ठेंगा हल-जुआठा। बड़ी मेहनत से खेत जोते, बोये और पटाये जाते। फसल तैयार होते देर न लगती, और हमलोग हाथों-हाथ फसल काट लेते थे। काटते समय गाते थे—

"ऊँच नीच में बई कियारी, जो उपजी सो भई हमारी।"

फसल को एक जगह रखकर उसे पैरों से रौंद डालते थे। कसोरे का सूप बनाकर ओसाते और मिट्टी के दीये के तराजू पर तौलकर राशि तैयार कर देते थे। इसी बीच बाबूजी आकर पूछ बैठते थे—इस साल की खेती कैसी रही भोलानाथ?

बस, फिर क्या, हमलोग ज्यों-का-त्यों खेत-खलिहान छोड़कर हँसते हुए भाग जाते थे! कैसी मौज की खेती थी!

ऐसे-ऐसे नाटक हमलोग बराबर खेला करते थे। बटोही भी कुछ देर ठिठक कर हमलोगों के तमाशे देख लेते थे।

जब कभी हमलोग ददरी के मेले में जानेवाले आदमियों का झुंड देख पाते तब कूद-कूदकर चिल्लाने लगते थे—

"चलो भाइयो ददरी, सातू पिसान की मोटरी।"

अगर किसी दूल्हे के आगे-आगे जाती हुई ओहारदार पालकी देख पाते, तब खूब जोर से चिल्लाने लगते थे—

"रहरी में रहरी पुरान रहरी, डोला के कनिया हमार मेहरी।"

इसी पर एक बार बूढ़े वर ने हमलोगों को बड़ी दूर तक खदेड़कर ढेलों से मारा था। उस खूसट-खब्बीस की सूरत आज तक हमें याद है। न जाने किस ससुर ने वैसा जमाई ढूँढ निकाला था! वैसा घोड़मुँहाँ आदमी हमने कभी नहीं देखा।

आम की फसल में कभी-कभी खूब आँधी आती है। आँधी के कुछ दूर निकल जाने पर हमलोग बाग की ओर दौड़ पड़ते थे। वहाँ चुन-चुनकर घुले-घुले 'गोपी' आम चाबते थे।

एक दिन की बात है, आँधी आई और पट पड़ गई। आकाश काले बादलों से ढँक गया। मेघ गरजने लगे। बिजली कौंधने और ठंढी हवा सनसनाने लगी। पेड़ झूमने और जमीन चूमने लगे। हमलोग चिल्ला उठे—

"एक पइसा की लाई, बजार में छितराई, बरखा उघरे बिलाई।"

लेकिन बरखा न रुकी; और भी मूसलधार पानी होने लगा। हमलोग पेड़ों की जड़ में धड़ से सट गये, जैसे कुत्ते के कान में अँठई चिपक जाती है। मगर बरखा जमी नहीं, थम गई।

बरखा बन्द होते ही बाग में बहुत-से बिच्छू नजर आये। हमलोग डरकर भाग चले। हमलोगों में बैजू बड़ा ढीठ था। उसने बड़े ढंग से एक बिच्छू को धागे में बाँधकर लटका लिया। रास्ते भर में वह हमलोगों को उससे डरवाता आया। संयोग की बात, बीच में मूसन तिवारी मिल गये। बेचारे बूढ़े आदमी को सूझता कम था। बैजू उनको चिढ़ाकर बोला—

"बुढ़वा बेईमान माँगे करैला का चोखा।"

हमलोग ने भी, बैजू के सुर-में-सुर मिलाकर यही चिल्लाना शुरू किया। मूसन तिवारी ने बेतहाशा खदेड़ा। हमलोग तो बस अपने-अपने घर की ओर आँधी हो चले।

जब हमलोग न मिल सके तब तिवारीजी सीधे पाठशाला में चले गये। वहाँ से हमको और बैजू को पकड़ लाने के लिए चार लड़के 'गिरफ्तारी वारण्ट' लेकर छूटे। इधर ज्यों ही हमलोग घर पहुँचे, त्यों ही गुरुजी के सिपाही हमलोगों पर टूट पड़े। बैजू तो नौ-दो-ग्यारह हो गया; मगर हम पकड़ गये। फिर तो गुरुजी ने हमारी खूब खबर ली, छठी का दूध याद करा दिया!

बाबूजी ने यह हाल सुना। वह दौड़े हुए पाठशाला में आये। गोद में उठाकर हमें पुचकारने और फुसलाने लगे। पर हम दुलराने से चुप होनेवाले लड़के नहीं थे। रोते-रोते उनका कन्धा आँसुओं से तर कर दिया। वह गुरुजी की चिरौरी करके हमें घर ले चले। रास्ते में फिर हमारे साथी लड़कों का झुण्ड मिला। वे जोर से नाचते और गाते थे—

"माई पकाई गरर-गरर पूआ, हम खाइब पूआ, ना खेलब जूआ।"

फिर क्या था, हमारा रोना-धोना भूल गया। हम हठ करके बाबूजी की गोद से उतर पड़े और लड़कों की मंडली में मिलकर लगे वही तान-सुर अलापने। तबतक सब लड़के सामनेवाले मकई के खेत में दौड़ पड़े। उसमें चिड़ियों का झुंड चर रहा था। वे दौड़-दौड़कर उन्हें पकड़ने लगे; पर एक भी हाथ न आयी। हम खेत से अलग ही खड़े होकर गा रहे थे—

"रामजी की चिरई, रामजी का खेत, खा लो चिरई, भर-भर पेट।"

हम से कुछ दूर बाबूजी और हमारे गाँव के कई आदमी खड़े होकर तमाशा देख रहे थे और यही कहकर हँसते थे कि 'चिड़िया की जान जाय, लड़कों का खिलौना'। सचमुच 'लड़के और बन्दर पराई पीर नहीं समझते।'

इतने में बैजू दो गौरैयों को पकड़कर लाया ही तो। उसने बड़ी फुर्ती से, अँगोछे से ढँककर, उन्हें पकड़ा था। बस, उसके पीछे-पीछे लड़कों का झुंड चला। कुछ दूर आगे बढ़कर हमलोगों ने उसे घेरा, चिड़ियों को देखना चाहा।

मगर वह सबसे सयाना था। झपाटे से ऊपर की ओर हाथ उठाकर अँगौछा फहरा दिया और कहा, वह देखो उड़ गई !

हमलोग आसमान ताकने लगे और वह आगे बढ़कर हँसने लगा। पर उसके लाख चकमा देने पर भी हमलोगों ने उसका पिंड न छोड़ा। जब वह चकरबे में पड़ गया तब उसे दिखलाते ही बना। फिर तो लड़कों ने चिड़ियों को बन्दर के घाव की तरह गींज डाला।

इसपर बैजू बहुत बिगड़ा। वह उन्हें छिपाकर यह कहते हुए ले भागा कि जाता हूँ, उन्हें पकाकर खाने। बस, हमलोग निराश होकर उसकी ओर देखते ही रह गये।

अब हमलोगों के मन में इस बात की डाह पैदा हो गई कि अकेले बैजू ही कैसे शिकार खायगा और हमलोग यों ही रह जायँगे। यह बात मन में आते ही शिकार खाने के लिए ऐसी जीभ चली कि एक टीले पर जाकर हमलोग चूहों के बिल में पानी उलीचने लगे।

नीचे से ऊपर पानी फेंकना था। हम सब थक गये। तब तक गणेशजी के चूहे की रक्षा के लिए शिवजी का साँप निकल आया ! रोते-चिल्लाते हमलोग बेतहाशा भाग चले ! कोई औंधा गिरा, कोई अंटाचित ! किसी का सिर फूटा, किसी के दाँत टूटे ! सभी गिरते-पड़ते भागे। हमारी सारी देह लहू-लुहान हो गई ! पैरों के तलवे काँटों से छलनी हो गये।

हम एक सुर से दौड़े हुए आये और घर में घुस गये। उस समय बाबूजी बैठक के ओसारे में बैठकर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। उन्होंने हमें बहुत पुकारा ; पर उनकी अनसुनी करके हम दौड़ते हुए मइयाँ के पास ही चले गये। जाकर उसी की गोद में शरण ली।

'मइयाँ' चावल अमनिया कर रही थी। हम उसी के आँचल में छिप गये। हमें डर से काँपते देखकर वह जोर से रो पड़ी और सब काम छोड़ बैठी। अधीर होकर हमारे भय का कारण पूछने लगी। कभी हमें अंग भर कर दबाती और कभी हमारे अंगों को अपने आँचल से पोंछकर हमें चूम लेती। बड़े संकट में पड़ गई।

झटपट हल्दी पीसकर हमारे घावों पर थोपी गई। घर में कुहराम मच गया। हम केवल धीमे सुर से 'साँ···स ···साँ' कहते हुए मइयाँ के आँचल में लुके चले जाते थे। सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। रोंगटे खड़े हो गये थे। हम आँखें खोलना चाहते थे ; पर वे खुलती न थीं। हमारे काँपते हुए होठों को मइयाँ बार-बार निहारकर रोती और बड़े लाड़ से हमें गले लगा लेती थी।

इसी समय बाबूजी दौड़े आये। आकर झट हमें मइयाँ की गोद से अपनी गोद में लेने लगे। पर हमने मइयाँ के आँचल की—प्रेम और शान्ति के चँदोवे की—छाया न छोड़ी। तब बाबूजी उलटे हमीं पर खफा होकर कहने लगे—

मैं बार-बार मना करता था कि बेकार इधर-उधर बिललाते मत फिरो; बरसात का दिन है, चारों ओर साँप-बिच्छू का दौर-दौरा है; पर मेरी बात सुनता कौन है? जहाँ पेट में दाने पड़े कि लापता हुए। पाठशाला जाने का नाम सुनकर ही जर चढ़ जाता है।

फिर मइयाँ पर बिगड़ कर गरजते हुए बोले—एक लड़का होता है, बात मानता है; पर यह तो इतना हठी हुआ जाता है कि कभी मेरी बातों पर कान ही नहीं देता। जरा-सा कुछ होता-जाता है, तो तुम भी सिर पर आसमान उठा लेती हो। अगर मैं डाँट-डपट करता हूँ, तो तुम आकाश-पताल एक कर डालती हो। लड़का क्या है, नाक का फोड़ा है। लड़के का लाड़-प्यार तो हद-से-हद खाने-पीने और पहनने तक है। पढ़ने-लिखने में लड़के को दुलार करना उसे कौड़ी का तीन बनाना है। तुम्हारी ही करनी से इसकी यह दुर्गति हुई है। लो, अब उसका फल भोगो, रात-भर देवी-देवता गुहराती रहो। हाय भूत, हाय प्रेत कह-कहकर मन्नतें मानो, बैद-हकीमों के पैर पूजो, प्रसादी चढ़ाओ। और तो तुम्हारा किया कुछ होगा नहीं, जरा-सी बात पर घर में बैठी-बैठी मुफ्त के आँसू बहाया करो; गया तो मैं।

बाबूजी की बातें सुनते ही मइयाँ झल्ला उठी। बिलखकर बोली—आप मुझपर इतने लाल-पीले क्यों हो रहे हैं? आखिर लड़का ही तो है। बरसात हो या जाड़ा, दिन हो या रात, इसको क्या खबर है? रोज तो खा-पीकर आप ही के साथ रहता है। न जाने आज इसको कैसे कुत्ता काट गया कि दिन-भर पाजी लड़कों के साथ लगा फिरा। मैं तरसती ही रहती हूँ कि तनिक मेरे पास आकर बैठता, मुझसे कुछ भी भर-मुँह बोलता; मगर यह तो आदि से आप ही की नींद सोता-जागता और आप ही की बात बोलता-बतराता है। मैं तो जानती भी नहीं कि कब आप इसे पाठशाला भेजते हैं और कब यह वहाँ से आकर क्या करता-धरता है। हाँ, आज तो सुना है कि हत्यारे गुरु ने इसको पकड़वाकर छड़ी से पीटा है। देखती हूँ कि रोते-रोते इसकी आँखें सूज गई हैं। वह गुरु है कि कसाई! उसे क्या ईश्वर ने लड़के-बच्चे नहीं दिये हैं? जान पड़ता है, उसके दिल में तनिक भी नेह-छोह नहीं है। निगोड़े ने ऐसा बेदरद होकर मारा है कि इसकी पीठ पर छड़ी की सांटें उखड़ आई हैं! न जाने आपका कितना पोढ़ कलेजा है कि आपने इसे सटासट छड़ी खाते देखा! मैं होती, तो उस मुँह-जले का

हाथ चूल्हे में झोंक देती। वह होता कौन है जो मेरे बच्चे को दूब की साट से भी छूएगा? मेरी बस चलती तो मैं हरगिज ऐसे चांडाल गुरु के पास अपने लड़के को न भेजती। मेरा लड़का विना पढ़े ही रहेगा। जीता बचेगा, तो बहुत पढ़ेगा। मुझे इसकी जिन्दगी की भूख है, कमाई की नहीं। सुख से जीता रहेगा, तो मजूरी करके गुजर कर लेगा। आधा पेट ही खायगा, मैं बिपत ही झेलूँगी, बला से, यह तो आँखों के सामने तो बना रहेगा। मैंने ही इसे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है तो अब आप भी बबुआ के बाबूजी बने फिरते हैं। मैंने जनमाया है, तो दुलार करेगा कौन? आज जरा-सी बात पर आपने इसका खाना-पीना और पहनना तक उघट दिया। जिसको भगवान् खाने-पीनेवाला देते हैं, वही न खिलाता-पिलाता है। जिसके कोई है ही नहीं, वह क्या खाक खिलावेगा? मेरी ही करनी से इसकी यह दशा हुई है, तो रहने दीजिए अपनी माया-ममता। यह बाप का सुख देख चुका। जैसे मैंने नौ महीनों तक दुःख सहकर, अपना खून पिलाकर, इसको अपनी जिन्दगी का सहारा बनाया है, वैसे ही इसके लिए अब भी रात-रात भर जागूँगी, जन्तर-मन्तर और झाड़-फूँक कराऊँगी, ओझा और बैद के पैर पड़ूँगी, देवी-देवता मनाऊँगी, जैसे-तैसे सब कुछ कर लूँगी। आप जो बने सो कीजिए, नहीं तो इसके जले घाव पर नमक मत छिड़किए। जिसने एक बूँद से इतना बड़ा पिंड सँवारा है, वह तो इसकी खोज-खबर लेगा न? या वह भी आप ही तरह बिगड़ उठेगा? आप तो ऐसी बातें कर गये हैं, जिनसे मालूम होता है कि आप कभी इसकी तरह लड़के रहे ही न हों? क्या आप वह दिन इतनी जल्दी भूल गये जब ठाकुरदुआर जाने की बेर, इसी बेटे के लिए, तारकेश्वर-नाथ के मन्दिर में धरना देकर, दो दिन तक आप विना अन्न-जल के ही पड़े रह गये थे?

बाबूजी ने शान्त भाव से मुस्कुराते हुए कहा—मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ और न कभी भूल सकता हूँ, सब कुछ याद है। मगर तुमने तो मेरी बातों का मतलब ही नहीं समझा, मेरे कहने का अर्थ ही पलट दिया। भोलानाथ को मैं तुमसे किसी कदर कम प्यार नहीं करता, पर तुम्हारा प्यार अन्धा है, और मेरा प्यार आँखवाला। तुम अगर पढ़ी-लिखी होती, दिन-दुनिया देखे रहती, भला-बुरा समझे रहती, तो भूलकर भी ऐसी रूखी बातें न करती। बच्चे की पैदाइश से तुमलोगों की नीयत खोटी हो जाती है। कहो तो कैसा नीच विचार है कि जीता रहेगा तो मजूरी करके भी आधा पेट खायेगा। जिसे तुम कलेजे का टुकड़ा कहती हो, आँखों का तारा समझती हो, उसी की होनहारी के लिए ऐसी बढ़िया असीस? तुम अभी गुरुजी को गंडों गालियाँ बक गई हो। क्या, इससे तुम्हारे बच्चे का

कल्याण न होगा ? तुमको क्या पता है कि उस्ताद की छड़ी में कैसा जादू भरा है ? तुमको तो सिर्फ 'बेटेवाली' कहलाने की साध पूरी करनी है। पर मूर्ख सन्तान पैदा करने से तो माता का निपूती रहना ही अच्छा है। जो माता अपने बच्चे के भावी सुख की चिन्ता न करके उसे केवल अपनी साध पूरी करने का साधन बना डालती है, वह माता अन्त में बहुत पछताती है। और सच पूछो, तो वह माता कहे जाने योग्य है भी नहीं। तुम्हारी राह में 'बेटेवाले' नाम धराना नहीं चाहता। मैं इसकी कमाई खाने के लिए दुनिया में बैठा न रहूँगा। इसे सदा के लिए संसार में सुखी बना जाने की इच्छा से ही मैं इसको बराबर अपने साथ रखता हूँ—अपने ही सुझाव पर चलना सिखाता हूँ। पर इधर मैं सुधारता जाता हूँ, इधर तुम चौका लगाये चली जाती हो। करो जो रुचे सो, मेरा तो कहते कहते गला बैठ गया। होगा वही जो परमात्मा चाहेगा, मैं कहाँ तक सिर धुनूँ।

मइयाँ—मुझे आपकी बात सुनने और समझने की सुध नहीं है! मेरा लड़का जब से दौड़ा हुआ आया है, तभी से काँप रहा है। इसका दम फूल रहा है। कुछ बोलता भी नहीं। आँखें भी नहीं खोलता। न जाने कहीं डरा है या कहीं गिर पड़ा है या किसी लड़के ने मारा है, कुछ मालूम नहीं होता! पंडितजी को बुलाकर दिखला दीजिए। महन्थजी को भी बुला लीजिए। वह भी गण्डा-ताबीज करते हैं। मेरा विश्वास है कि पंडितजी के भभूत देने से यह जरूर अच्छा हो जायगा। बाबाजी को बुलवाकर कालीजी और महावीरजी के यहाँ संपुट पाठ का संकल्प करा दीजिए। जो करना हो, जल्दी कीजिए। मेरा दिल घबरा रहा है! न जाने आज किसका मुँह देखकर उठी हूँ। मेरे जाने में तो कुछ 'बतास' का फेर है। आजकल हवा-बयार बिगड़ी हुई है। परसों ही महँगू के बेटे को आसेब के फेर से अनायास दाँत लग गया था।

बाबूजी—सचमुच तुम लड़के को बिलकुल डरपोक बनाये जा रही हो। यह तो अभी लड़का ही है, पर तुम तो इससे भी नादान हो गई हो। यह एक-भर डरा है, तो तुम दस-भर हल्ला मचाकर इसको घबराहट को बढ़ा रही हो। अभी से इसके मन में इस तरह डर समाया रहेगा, तो बड़ा होने पर, डरकर छिपने के लिए, यह कहाँ तुम्हारा अँचरा ढूँढ़ता फिरेगा ? भरम से भूत पैदा होता है। सन्देह छोड़ दो! नरम बिछौने पर हवा में सुलाकर सिर में गुलरोगन मालिश करो। पैरों में नागफनी के काँटे चुभे हुए देख पड़ते हैं, हरी दूब पीसकर गाय के गाढ़े दही के साथ तलवों में लेप दो, और घावों पर कपूर मिलाया हुआ गाय का कच्चा घी लगा दो, आराम से नींद आ जायगी।

मइयाँ—नहीं, मैं इसको अभी सोने न दूँगी। आजकल कीड़े बहुत निकलते हैं। हो सकता है कि उसी ने काटा हो। आज मेरी आँखों में नींद कहाँ? जब तक यह आँख न उठावेगा, तब तक मेरी आँख न लगेगी। आप बाहर का काम देखिए, मेरी तो इसका मुख निरखते-ही-निरखते रात सिरा जायगी। जहाँ इसकी पलकें खुलीं और एक बार भी इसने 'मइयाँ' कहकर पुकारा कि मेरी जान में जान आयी।

बाबूजी—अच्छा, तो अब रोना-कलपना छोड़कर मेरे कहने के मुताबिक तदबीर करो। मैं फौरन सब इन्तजाम करके आता हूँ।

बाबूजी बाहर चले गये। मइयाँ उनकी बताई तदबीरें करने लगीं।

सचमुच उनकी बात सच निकली। पैरों की जलन और घावों का दर्द कम होने लगा। हमारी आँखें झपकने लगीं। अंग-अंग में ठंढक छा गई। छाती का धड़कना बन्द हो गया। साँस की चाल धीमी हो गयी। मइयाँ ने कोमल हाथों से मीठी-मीठी थपकियाँ देकर हमें अपना अँचरा उढ़ा दिया, और आँखों में ही रात काटती रही। हमें क्या पता कि फिर क्या-क्या गुल खिला। हम तो मइयाँ के अँचल में—करुणा के क्रोड़ में—शान्ति के शिविर में—ममता की मंजूषा में—वात्सल्य की वाटिका में—स्नेह के सुख-सदन में—चैन से सोये पड़े थे!

२
बुधिया का भाग्य

'जाके पग पनही नहीं, ताहि दीन्ह गजराज ।'

रामसहर बहुत बड़ा गाँव है । बस्ती के चारों ओर आम के घने बाग हैं । दूर से गाँव नजर नहीं आता । हाँ, बाबू रामटहल सिंह के घर के सामने जो एक ऊँचा मन्दिर है, उसका कलस बड़ी दूर से देख पड़ता है । वह बाबू साहब के पिता सरबजीत सिंह का बनवाया हुआ पत्थर का पंचमन्दिर है । गाँववाले उसे 'पंचमन्दिल' कहते हैं । वह टीकासन-भर ऊँचे चौतरे पर एक पोखरे के किनारे बड़ा सुन्दर बना है । पोखरे में चारों तरफ पक्के घाट हैं ।

मन्दिर के पुजारी हैं पसुपत पाँड़े । उनके लिए काले अच्छर भैंस बराबर भले ही हों, पर वह माने जाते हैं—बड़े भारी पंडित । आसपास के कई गाँवों में वही अकेले अगड़धत्त ज्योतिषी, तांत्रिक, कर्मकांडी और कथक्कड़ समझे जाते हैं । ज्योतिष की पोथियाँ तो उनकी उँगलियों पर नाचती रहती हैं । तंत्र-मंत्र भी वह चुटकियों में कर डालते हैं । कर्मकांड मानों उनके कंठागर है, और अठारहों पुरान तो मानों जबान पर हैं ।

उनके लड़के का नाम गोबरधन है । वह बड़ा चलता-पुर्जा है । उसे वह स्वयं पढ़ाते हैं । भोर ही उठकर वह घोखने लगता है—

'हे हे जसोदा तव बाल केसो, मुरारि नामा वसुदेव सूनो ।
अदाय वत्सा भरनी मदीयं, गतोपि दूरे जमुना निकुंजे ।।'

जाड़े के दिनों में पाँड़ेजी कुछ रात रहते ही उठकर जोर-जोर से 'पराती' गाने लगते हैं । घंटों गला फाड़कर चिल्लाते हैं । बहुत को सुबह की नींद हराम हो जाती है । सूरदास और तुलसीदास की प्रभातियों की टाँगें तोड़कर वह भजनों पर टूट पड़ते हैं । उनका सबसे प्यारा भजन है—

'सुगना सुमिरो हरी हरी, दिल में दीनता करी-करी
पाँच तत्व का बना पींजड़ा, तामें रहियो डरी-डरी
एक दिन ऐहैं काल बिलैया, दुनिया जाती मरी-मरी
हाथ जोरि के बिनय सुनावा, प्रभु के पैयाँ परी-परी
करुना कंठ रोम करि ठाढ़े, नयनों से जल झरी-झरी
बहुतेक जोरे माल खजाना, घर में राखे धरी-धरी
मरती बेर तो परिहैं बेरिया, काले जैहैं भरी-भरी
जो कोइ भगति किये भगवन् की, तेसब गये हैं तरी-तरी
मनूदास श्रीकृस्न कृपा से, सब दुख जैहैं टरी-टरी'

भजन गाकर वह नसदानी के पीछे पड़ जाते हैं। नस सूँघते-सूँघते आधी नसदानी खाली कर डालते हैं! फिर उसी समय गोबरधन को जगाकर सुरती बनवाते, अपने भी खाते, उसे भी खिलाते और सिरहाने की ओर पिचपिचाते जाते हैं। कभी-कभी जब गोबरधन की गाढ़ी नींद उचटा देते हैं, तब वह झुँझला कर कहता है—बाबूजी, सुरती खाना छोड़ दीजिए । लोग एक मसल कहते हैं--

'जब न माँगे आवे भीख, तब तू सुरती खाना सीख।'

इस पर पाँड़ेजी चकित होकर गोबरधन को समझाते हुए कहने लगते हैं, अरे! तुम्हें उल्टी बात किसने बतायी? यह तो 'चैतन्य चूरन' है! इसका नाम ही है 'स्रुति'! साँसकिरित में स्रुति का अर्थ 'वेद' है। सुरती खाने से फुरती बढ़ती है। दिल भी बहलता है। मन चंगा रहता है। क्या तुमने नहीं सुना है--

"कृस्न चले बैकुंठ को, राधा पकड़ी बाँहि।
यहाँ तमाकू खाइ लेहु, उहाँ तमाकू नाँहि॥
चून तमाकू सानि के, बिन माँगे जे देइ।
सुरपुर नरपुर नागपुर, तीनु बस करि लेइ॥"

सुरती पर इसी तरह की सैकड़ों कहावतें कह डालते हैं। फिर जंगल-मैदान होकर तलाब में खूब डुबकियाँ लगाते हैं, और सर्दी के मारे दाँत खटखटाते रहने पर भी कहते चले जाते हैं—

"घर में घनसाम कहो आँगन अनन्त कहो
द्वारे दामोदर के दास होइ रहु रे।
ठाढ़ होत ठाकुर औ बैठत बिसम्भर कहो
चलत चतुरभुज के चरन चारु गहु रे॥
पंथ पुरुसोत्तम औ' बिदेश बसुदेव कहो
नदी नारसिंघ कहो पाप सकल दहु रे।
दिन दयासागर कहो रात राधारमन कहो
आठो जाम सीताराम सीताराम कहु रे॥"

इसके बाद जब पूजा और आरती करने लगते हैं, तब नाचने-गाने की करामात दिखाने में कमाल कर देते हैं। आरती नचाने में कलाबाज नट की भी नाक काट लेते हैं, और जब ऊँचा 'अलाप' लेते हैं, तब विधवा-विलाप से भी बढ़ जाता है! पर जब नाच-गाकर स्तुति करने लगते हैं, तब विना लगाम की जीभ अंधाधुंध सरपट दौड़ने लगती है—

"नीलाम्भुजं सामल कोमलांगं सीता सँवारो पितु बामभागं।
पाणउच महा सायक चार चापं नमामि रामं रघुबंस नाथम्॥

आदो राम तपो बनाधि गमनं हत्वा मृगा कंचनं
बैदेही हरनं जटायु मरनं सुग्री संभाखनं ।
बाली नीग्रहनं समुन्द्र तरनं लंकापुरी दाहिनं
पश्चात् रावन कुम्भकर्न आदि हननं एतोहि स्रीरामायनं ॥
आदो देवकिदेव गर्भजनमं गोपीगृहें बरधनं
माया पूतन जीव ताप हरनं गोबरधना उधारनं ।
कंसाछेदन कौरवाधि हननं कुन्तीसुता पालनं
एतो स्रीमदभागती पुरान कथितं स्रीकृस्नलीलामृतं ॥
कस्तूरी तिलकं ललाट पटलं वक्षस्थले कुस्तुभं
नाशाग्रे गज मूक कंकड़ तलं बेनू करे कंगनं ।
सरबांगं हरचन्दनं सुललितं कण्ठं च मोक्तावली
गोपाष्ठी परबेष्टीतं बिजयनं स्रीगोपाल चूड़ामनिम् ॥
हे गोपाल कहे कृपाजलनिधे हे सेन्धुकन्यापतिं
हे कंशान्त कहे गजेन्द्र करुना पारिंग हे माधवं ।
हे रामानुज हे जगत्तर गुरू हे पुण्डरीकाक्षमा
हे गोपीजननाथ पाल अपरं जीना बिना तुम बिना ॥
पापोऽहं पापकर्त्ताऽहं पापात्मा पापस्यंभवम् ।
पाहि मां पुण्डरीकाक्षं सकल पापं हरो हरी ॥
बन्दौं पवनकुमार, खलबल पावक ज्ञान घन ।
जासु हृदे अंगार, बसहिं राम सिर चाँप धर ॥
कहौं कहौं छबि आज की, भले बने हो नाथ ।
पसुपति माथा जब नवे, कि धनुख बान लो हाथ ॥"

इतनी दूर के बाद आपकी जीभ की घुड़दौड़ खतम होती है । तब साष्टांग दण्डवत् और परिक्रमा करके जोर से चिल्लाते हैं—

'जै जै सीताराम

धनुखधारी औधबिहारी, सुन्दर जोड़ी मंगलकारी ।'

यह सुनते ही लोग चरणामृत लेने दौड़ते हैं । पाँड़ेजी झट मंत्र पढ़कर देने लगते हैं—

"अकाल मृत्त हरनं सर्बो व्याध बिनासनं ।
स्रीरामजी चरनोदकं पितवा सिरसा धारयामि हम् ॥"

बाबू रामटहल सिंह के घर में पाँड़ेजी की बड़ी पूछ है। बाबू साहब उनकी सलाह के बिना कोई छोटा-मोटा काम भी नहीं करते। सुखी हो या गमी, पुजारीजी पहले बुलाये जाते हैं। बाहर की तो बात ही क्या, अन्दर हवेली तक उनकी पैठ है, और वहाँ उनका बाहर से भी एक बित्ता अधिक आदर होता है।

हवेली में जाते ही उन्हें छोटी चौकी पर कम्बल का आसन मिलता है। घर-भर की स्त्रियाँ बारी-बारी से आकर, अंचल से पैर छूकर, सिर नवाती हैं। वह उनके सिर पर हाथ फेर-फेर असीसते जाते हैं। सबसे कुसल-छेम भी पूछते हैं। कोई कहती है, राउर आसीस चाही। कोई-कोई तो कुछ न बोलकर मुस्कुराती और पायल झनकारती ही चली जाती है। पर उनको ओर से बाबू साहब की बूढ़ी माता कहती हैं—आपके चरणों का एकबाल है।

बाबू साहब बड़े भारी जमीन्दार हैं। लेकिन उनके मकान में एक भी ईंट नहीं लगी है। तो भी मिट्टी की दीवार इतनी चौड़ी है कि चोर अगर सेंध मारने लगें, तो जाड़े की सारी रात बीत जाने पर भी दीवार आर-पार न होगी! मकान खपड़ैल ही है, मगर उसमें नाम लेने को भी एक बाँस नहीं लगा है—खाली पक्की लकड़ी की भरमार है। छप्पर तो इतना मजबूत है कि एक बार तीस बरस पर छांजन दुरुस्त की गयी थी।

हाँ, मकान में अगर किसी चीज की कमी है, तो बस झरोखे की। घरों के किवाड़ 'चूर' पर लगे हुए हैं। सिर्फ सदर दरवाजे का किवाड़ 'हुक' पर लगा है। वह इतना दबीज है कि घूरन सिंह के सिवा उसका खोलना और बन्द करना किसी और का काम नहीं! अगर एक दिन के लिए भी घूरन सिंह कहीं बाहर चले जाते हैं, तो बाबू साहब के नौकरों की नानी मर जाती है—किवाड़ बन्द करते और खोलते वे काँपने लगते हैं। लेकिन घूरन सिंह बाँयें हाथ से ही उसे ठेल-ठालकर ठिकाने लगा देते हैं। बाबू साहब के यहाँ घूरन सिंह को दरबानी करते चालीस बरस बीत गये।

रामसहर में बाबू साहब का जनाना मकान 'बड़ी हवेली' के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी गौसाला को गाँववाले 'बाबू की गोठ' कहा करते हैं। गौसाला के पास जो बैठकखाना है, वह 'बड़ी देवड़ी' कहलाता है। बैठकखाना और गौसाला के बीच में एक और मकान है, जिसमें बाबू रामटहल सिंह की रखेली 'बुधिया' रहती है।

बुधिया उसी गाँव की है। उससे तीन लड़कियाँ पैदा हुई हैं—सुगिया, बतसिया और फुलगेनिया।

बाबू सरबजीत सिंह के समय में बुधिया गोबर पाथती थी। गौसाला का गोबर

पाथना और दिन-भर नदी के तीर-तीर गोबर बीनना ही उसका काम था। पर जब वह सयानी हो गई, तब घर-घर घूमकर, कूट पीसकर कमाने-खाने लगी।

पहले तो वह बाबू साहब के यहाँ दिन में खेसारी का सत्तू और रात में चोकर की मोटी रोटी खाकर ही, फटे टाट के टुकड़े पर सो जाती थी; पर जब कुछ बल-बूता हुआ, हाथ-पैर चलाने लगी, तब खाने-पीने और कपड़े-लत्ते से निश्चिन्त हो गई। अब गौशाला की एक कोठरी में रहकर खुद खाने-पकाने और सुजनी पर सोने लगी।

अपनी मौज से कमाने-खाने के कारण उसका अंग-अंग खिल उठा। तब वह कंडे बनाने और गोबर बीननेवाली बुधिया नहीं रही। जब पेट भरने लगा, तब मन भी चौकड़ी भरने लगा। देह चिकनाने लगी। बरसात का जल जैसे जाड़े में निर्मल हो जाता है, वैसे जवानी चढ़ते ही बुधिया का रूप मधुर हो गया। वह अब सहज ही आँखें चुराने और मुस्कुराने लगी।

बाबू रामटहल सिंह चिकना देख फिसल पड़े। उनकी भी उठती जवानी थी। घर में बुधिया का दिन-रात आना-जाना लगा ही रहता था। दोनों का मन मिल गया। लोगों की आँखें बचाकर दोनों मिलने-जुलने लगे। परन्तु ऐसे प्रेम का जादू सिर पर चढ़कर बोलता है। आखिर भगड़ा फूट ही गया।

अब बाबू साहब उसके पास खुले-खजाने आने-जाने लगे। वह भी एक खास मकान में रहने लगी। जो किसी दिन गोबर में से अनाज के दाने चुन-चुनकर खा जाती थी, वह अब पेड़ा-बरफी भी छील-छीलकर खाने लगी। जिसका चुड़ैल का-सा झोंटा एक दिन जूओं का अड्डा था, उसका सिर-दर्द अब गुलरोगन से भी दूर नहीं होता। जो कभी अच्छी तरह दातून भी नहीं करती थी, वह अब दाँतों में सुगन्धित मंजन लगाने लगी। जो पैसा-भर गुड़ खाकर भी घंटों ओठ चाटती रह जाती थी, वह अब आईने के सामने पलंग पर पड़ी-पड़ी अपने ओठों पर पान की ललाई निहारने लगी।

जमाना एकबारगी पलट गया। कहाँ वह गली-गली मारी-मारी फिरनेवाली फूहड़ बुधिया और कहाँ यह छैल-चिकनियाँ जमीन्दार की पर्दानसीन रखेली! धन्य है भगवान की लीला!

बाबू सरबजीत सिंह ने एक बीघा खेत के लिए ब्रह्महत्या की थी। वह ब्राह्मन उन्हीं के गाँव का रहनेवाला था। एक तो ब्राह्मन, दूसरे प्रजा, तीसरे निर्धन और चौथे अपने घर का अकेला! मारे जाने पर प्रचंड ब्रह्मपिसाच होकर उपद्रव मचाने लगा।

पुलिस की मुट्ठी गरम करके—धन के प्रताप से—राजदंड से तो बाबू साहब बाल-बाल बच गये ; पर उस ब्राह्मन की अनाथ विधवा और बूढ़ी माता की आह से न बच सके ! पुलिस तो घूस खाकर मामला पचा गई, पर तांत्रिक लोग महीनों माल चबाकर भी कुछ न कर सके, कितने दुम दबाकर भाग गये। कितने तो पागल होकर जान से हाथ धो बैठे। बड़े-बड़े जोतिषी-पंडितों को उस ब्रह्मपिसाच ने पटक मारा—बेचारे किसी-किसी तरह उस जान के गाहक से जान छुड़ाकर भागे।

अब सरबजीत सिंह 'ब्रह्मदोषी' कहलाने लगे। लोगों ने उनके यहाँ का जल पीना भी छोड़ दिया। बिरादरीवालों ने रोटी-बेटी का सम्बन्ध भी तोड़ दिया ; क्योंकि उनके साथ किसी तरह का सरोकार रखनेवाले की जान पर भी आ बनती थी। कोई गोतिया-दयाद भी मददगार नहीं रह गया। केवल पसुपति पाँड़े का भरोसा था।

पर पाँड़ेजी तो एक हजार रुपये लेकर कमरू-कमच्छा में तंत्र-मंत्र कराने के लिए पहले ही निकल पड़े थे। उन्हें तो जजमान के कल्यान से कुछ मतलब था नहीं, गोबरधन को मंदिर सौंप कर कमरू-कमच्छा के बहाने 'चारो धाम' की यात्रा करने चले गये। इसीलिए बाबू रामटहल सिंह का ब्याह न हो सका था।

उनके ब्याह की बात तो उनके लड़कपन में ही एक जगह पक्की हो चुकी थी ; पर ब्रह्मपिसाच का उत्पात देख-सुनकर बेटीवाले ने उस ब्याह का सपना देखना भी छोड़ दिया ! भाग्य से इसका लाभ बुधिया ने उठाया। बिल्ली के भाग से छीका टूटा।

पिता के मरने पर बाबू साहब ने रुपये के जोर से ब्याह करना चाहा। बड़े-बड़े गोइन्दे, इसी बहाने से कुछ टके सीधे करने के लिए निकल पड़े। बात की बात में ब्याह ठीक हो गया, परन्तु बुधिया आदि से ही ब्याह की बात काटती रही। जब बाबू साहब ब्याह की बात चलाते थे, वह अंगार पर लोट जाती थी !

मसल है, काठ की सौत भी नहीं सुहाती। फिर जीती-जागती सौत की तो बात ही क्या। तीन लड़कियों की पैदाइश के बाद सचमुच बुधिया का पहले-जैसा आदर-भाव नहीं रहा। इसीलिए, उसके लाख मुँह लटकाने पर भी ब्याह हो ही गया। इस ब्याह ने उसकी देह में और भी आग फूँक दी। वह 'त्रिया-चरित्र' का प्रपंच पसारने लगी। बड़ा पाखंड रचा। पर नया बन्धन पड़ते ही पुराना बन्धन सहज ही ढीला हो जाता है।

बाबू साहब के ससुर मनबहाल सिंह बड़े गरीब आदमी हैं। उनके नौ लड़कियाँ हैं। वे उनकी जायदाद हैं। उन्हें बेचकर वह कुछ पूँजी भी जमा कर चुके हैं। परन्तु इतने पर भी वह दरिद्र ही हैं। न अच्छा खाते, न अच्छा

पहनते। जब देखिए तब मैली-कुचैली मिरजई में उनचास पेबंद और पीठ पर सत्तू की पोटली! पूँजी पुरसा-भर जमीन के नीचे गड़ी हुई है। खर्च चलता है, चोरी की चीजों से। लड़कियाँ अपनी-अपनी ससुराल से सब चीजें चुराकर चुपके भेजा करती हैं।

वह अपनी आठ लड़कियों का ब्याह पहले ही कर चुके हैं। नवीं 'पेट-पोंछनी' लड़की महादेई, जिसे वह सबसे अधिक प्यार करते हैं, बड़ी सुन्दरी है। उससे उन्हें गहरी रकम पाने की पूरी आशा थी। आशा सफल हो गई। महादेई ऐसे घर में पड़ी कि शुरू में भी उँगलियाँ घी में रहीं और आगे के लिए भी तोड़े ऐंठने का सामान हो गया।

गाँववाले कहने लगे कि ब्याह तो हो गया; पर बंस न चलेगा। हाँ, हमलोगों को बड़ी सुविधा हुई। जब कभी बैलों और गाय-भैंसों के घावों में कीड़े पड़ते थे, तब बेटी बेचनेवालों के सात नाम लिखकर उनके गले में बाँधने के लिए नामों का पता लगाना पड़ता था। पर अब तो केवल 'मनबहालसिंह' का नाम ही काफी होगा।

बाबू साहब को कानों-कान खबर हो गई कि गाँववालों में आजकल इस तरह की बड़ी गरम चर्चा चल रही है। वह दिन-रात इसी फिराक में रहने लगे—किसी को ऐसा कहते-सुनते पकड़ पाऊँ, तो उसकी पीठ की खाल उधेड़ डालूँ।

एक दिन उन्होंने खेदू कहार को मारते-मारते बेहोश कर डाला। पीटते-पीटते आप भी थक गये। इसी बीच उसकी स्त्री 'सोनिया' गिड़गिड़ाती हुई आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी। थके और हाँफते रहने पर भी उसका झोंटा पकड़कर नालदार जूते से पीटने लगे। इतने में उनके नौकर-चाकर भी डंडे और लाठियों के साथ पहुँचकर खेदू के घर पर टूट पड़े।

'सोनिया' अपने जवान बेटों के सामने ही नंगी करके डंडों से पीटी गयी। उसके लड़के डर के मारे काँपते और फूट-फूट कर रोते रह गये। उन्हें बाबू साहब के नौकरों ने गाय-गोरू की तरह पीटा। उनकी स्त्रियों की इज्जत तक उतार ली।

गाँव के लोगों का कलेजा ही कितना जो बाबू साहब को खेदू की छाती पर कोदो दलते देखकर भी जीभ हिलाते! बेचारे चुपचाप तमाशा देखते रहे। किसी में इतना भी जीवट नहीं था, जो खेदू की जान छुड़ाने के लिए बाबू साहब के आगे आता।

खेदू अलग कराहता था, उसके लड़के अलग रोते-कलपते थे, उसकी स्त्री अलग काँखती थी और उसकी पतोहुएँ अलग आँसुओं से मुँह धोती थीं! कोई आँसू पोंछनेवाला भी नहीं था। पर जिस बेबस को आँसू पीकर रह जाना पड़ता है, उसका आँसू वही पोंछता है जो—

'छोड़ि कमलासन पिछौड़ि गरुड़ासन हूँ, कैसे हौ बखानौं दौर दौरे मृगराज की।
जाय सरसी में यों छुड़ाय गज ग्राह ही ते, ठाढ़े आइ तीर इमि सोभा महाराज की।
पीत पट लै लै कै अँगोछत सरीर, कर-कंजन तें पोंछत भुसुण्ड गजराज की।'

और जिसने

'गीध को गोद में राखि दयानिधि, नैन सरोजन में भरि बारी।
बारहिं बार सुधारत पंख, जटायु की धूरी जटान सों झाड़ी।'

कुछ दिनों के बाद पलटू चमार की भी खेदू की दशा हुई। पर खेदू की तरह पलटू लाचार नहीं था। वह जूतियाँ गाँठकर पेट पालनेवाला चमार नहीं था। वह था ईसाई चमारों का सरदार। अपने समाज में उसकी बड़ी साख और धाक थी। उसपर मार पड़ते ही ईसाइयों के कान खड़े हो गये। वे तुरत पलटू को बाल-बच्चे सहित अपने अड्डे पर ले गये।

पर खेदू की बात कौन पूछे! वह बेचारा तो जूतियाँ उठानेवाला गरीब था। उसका घर-भर गाँववालों का हल चलाकर, खेत जोतकर, पानी भर कर और गोबर पाथकर जीता था। सिर्फ उसका बड़ा लड़का 'बहोरन' कलकत्ते में एक अँगरेज के यहाँ खानसामा था। वह गाँव छोड़कर जहाँ जाता, वहीं कमाता खाता; क्योंकि सब-के-सब मेहनती और कामकाजी थे।

पलटू के ईसाई हो जाने पर खेदू के बेटों ने लड़केवालों के साथ कलकत्ते भाग चलने के लिए बड़ा हठ किया। पर खेदू का मन नहीं डिगा। उसने अपने लड़कों से साफ कह दिया—मैं जिन्दगी भर रामसहर छोड़ कहीं दूसरी जगह न जाऊँगा। इसी गाँव में पैदा हुआ हूँ, इसी गाँव की धूरि में लोट-पोटकर सयाना हुआ हूँ, इसी गाँव के अन-जल से यह देह पली है, और इसी गाँव में कई पीढ़ी से रहता आया हूँ। अब मरने के दिन करीब आये, तो भागकर कहाँ जाऊँ? जैसे इतने दिन कट गये, वैसे ही बाकी दिन भी कट जायेंगे। जिसकी जूतियाँ सीधी करते-करते इतनी बड़ी उमर बीत गई, वही जब सता रहा है, तब भगवान ही इसका इन्साफ करेंगे। तुमलोग जाओ, मैं तो यहीं रहूँगा।

इतना कहते-कहते खेदू की आँखें डबडबा गयीं। उसकी बातें सुनकर उसके लड़के भी झुँझला उठे। इरखे में आकर कलकत्ते भाग गये। साथ ही, अपनी जोरुओं को भी लेते गये। उनका नया खून था, मार खाते ही खौल उठा। बेचारों से बेइज्जती सही न गयी।

बहोरन हिन्दी-मिडिल पास था। उसके मन में तो और भी ग्लानि पैदा हुई। वह अपने भाइयों से कहने लगा—क्या, हमलोग कहार होने से ही इतने गये-बीते हो गये कि हमारी ही आँखों के सामने हमारी स्त्रियाँ बेइज्जत की गयीं, और

हम चूँ भी नहीं कर सके ? धिक्कार है हमारे जीने को ! हमें उसी जगह जान दे देना उचित था। क्या हमलोग डोम-चमार हैं कि अपनी इज्जत का कुछ खयाल नहीं है ? मगर पलटू भी तो चमार ही है ; उसने अपनी इज्जत की लाज से ही अपना धर्म तक छोड़ दिया। जब डोम-चमार-जैसे अछूत भी अपनी इज्जत के लिए प्राण-समान प्यारा धर्म छोड़ देते हैं तब हम तो कहार हैं। हमारा गड़ा पाक है। हमारा छुआ पानी तो ब्राह्मण पीते हैं।

उसके छोटे भाई सजीवन ने कहा—जो हुआ सो हुआ, जाने दो। ठीक ही कहते हो कि डोम-चमार की भी अपनी आबरू जान से बढ़कर प्यारी होती है। अगर पलटू को अपनी इज्जत प्यारी न होती, तो वह बाल-बच्चों के साथ ईसाई क्यों हो जाता ? अभी तो बाबू साहब अपने सामने किसी को तिनका बराबर भी नहीं समझते ; मगर एक दिन 'अबर देवी जबर बोका' से काम पड़ जायगा, तब बिना समझाये समझ जायँगे।

बहोरन और सजीवन इसी तरह बातचीत करते हुए अपनी स्त्रियों के साथ कलकत्ते चले गये। पर खदू को छोड़कर सोनिया नहीं गयी। इससे उसके लड़के इतने खिसिया गये कि बरसों कोई संदेशा नहीं भेजा। गाँव की स्त्रियाँ उससे कहने लगीं—यहाँ क्या पड़ी हो ? चली जाओ बेटे-पतोहुओं के पास। जिसने सैकड़ों आदमियों में तुम्हारा पानी उतार दिया, उसका मुँह तुमसे कैसे देखा जाता है ? राम ! राम ! हमलोगों पर कहीं ऐसी बीतती, तो हमलोग कभी ऐसे आदमी की परछाईं तक नहीं छूतीं।

सोनिया रोएँ गिराकर कहती--भगवान न करे आपलोगों पर ऐसी बीते। राम जानें, जब-जब पुरवा बहती है, तब-तब देह दुखती है। मैं तो कलकत्ता जाना चाहती थी, मगर 'मालिक' यहाँ से एक दिन के लिए भी कहीं हिलना-डोलना नहीं चाहते। न जाने रामसहर में क्या धरा है ! यहाँ तो दिन-भर हड़तोड़ मेहनत करने पर भी पेट नहीं भरता। साग-सत्तू या टटका-बासी--जो कुछ मिल जाता है, वही खाकर रहना पड़ता है। काम करानेवाले बहुत हैं, मगर मजूरी देने की बेर सबकी छाती फटने लगती है। जिस दिन से बाबू साहब ने मारा है, उस दिन से हमलोगों को खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता। मालिक तो उठ-बैठ भी नहीं सकते। वह उसी दिन से खाट पड़े हुए हैं। मैं भी किसी-किसी तरह उठती-बैठती आपलोगों के पास चली आती हूँ। सच पूछिए तो चला नहीं जाता। कमर पिराती है। पीठ की हड्डी चिलकती है। कपार टनकता रहता है। हाथ की मुट्ठी नहीं बँधती। लेकिन इतने पर भी पेट के लिए गाँव में एक-दो बार फेरा लगाना ही पड़ता है। नहीं तो पेट कैसे भरेगा ? घर बैठे कौन देगा ? चुटकी-भर

चूना तो कोई देगा ही नहीं। दुनिया में काम प्यारा है, चाम नहीं। जब जाँगर में दम था तब मैं 'घर-घर की मौसी' थी। अब जाँगर थक गई, तो दर-दर की भिखारिन हूँ। जो हो, उनको छोड़कर मैं वैकुंठ में भी न जाऊँगी।

बुधिया ने सोनिया की विपद का हाल सुना। जिस समय वह दाने-दाने को तरसती फिरती थी, गली-कूचे में पड़ा हुआ दाना भी उठाकर खा जाती थी, उस समय सोनिया ने कई बार टटका माँड़-भात खिलाया था। वह आदर और प्रेम से खिलाया हुआ माँड़-भात वह भूली नहीं थी। उसने चुपके से सोनिया को बुलवाया।

सोनिया कमर पर हाथ धरे धीरे-धीरे आयी। बुधिया रोकर उसके गले में लिपट गयी। उस समय सोनिया सिसक-सिसककर खूब रोयी। बुधिया भी अपने को सम्हाल न सकी। सोनिया अपनी पीड़ा भूल-सी गयी। अपने भाग्य को कोसने लगी। बुधिया के बार-बार पूछने पर दुखड़े का पचड़ा कह सुनाया।

बुधिया तो बाबू साहब पर पहले से ही जली हुई थी, सोनिया की बातें सुनकर वह लगी उन्हें गिन-गिनकर सुनाने! सोनिया को भी अपने दिल का बुखार निकालने का अच्छा मौका मिल गया। वह इस समय की बुधिया को एकदम भूल गयी। पहली बुधिया का खयाल करके बोली—

बहिन! बड़े आदमी किसी के नहीं होते। जब देखा कि तुम्हें तीन लड़कियाँ हो गयीं, उन्हें दान-दहेज देकर ब्याहना पड़ेगा, तब कन्नी दबाने लगे। जब तक हाड़ में हरदी नहीं लगी थी तक तक जो कुछ रही सो बुधिया। और अब, मुँह-झौंसे मनबहाल की बेटी के सिवा किसी को पासंग के बराबर भी नहीं जानते। जब से वह उनके घर में आयी है, तब से तो मैं उनका चौकठ लाँघने भी नहीं गई हूँ, और न कभी जाऊँगी। सुना है कि नहीं? आते ही सास से झोंटा-झोंटी होने लगी! अभी चार दिन की बहुरिया है, मगर जो कोई आँगन में चला जाता है, उसी के साथ गपड़चौथ करने लगती है। भिखमंगे बाप की बेटी ठहरी, बड़े घराने में पड़ते ही उतान हो गयी। मगर जब ब्रह्मपिसाच नाच नचाने लगेगा, तब सब गुमान और दिमाक तेलहंडे पर चला जायगा। जानती हो? उसके दूध पीने के लिए नई गाय खरीदी गई है। तेल लगाने के लिए नाईन को रोज हवेली में जाने का हुकुम हुआ है। तमोलिन रोज पान पहुँचा आती है। भला मकई के खेतों के कौए उड़ानेवाली के लिए इतना इन्तजाम! 'छुछुन्दर के सिर में चमेली का तेल?' जाँत पीसते-पीसते और धान कूटते-कूटते घिस्सों के मारे जिसके हाथ-पैर में सैकड़ों छाले पड़ गये हैं, वह अब उबटन और अतर-फूलेल लगाने लगी। ठीक है—'जिसको पिया चाहे वही सुहागिन।' यह सब न जाने तुमसे कैसे देखा जाता है। मैं होती

तो इसी पर आग बो देती। बाबू साहब ने तुम्हारी इज्जत भी बिगाड़ी, जब तक जी में आया तब तक चैन भी किया, ब्याह की साध भी पूरी कर ली, और जब परवरिश करने का दिन आया, तब लाकर छाती पर पत्थर की एक मूरत बैठा दी। तन का परदा भी गया, मिट्टी भी खराब हुई। अब तक तो तुम अकेली थी, एक दिन की कमाई दो दिन बैठी खाती थी ; पर अब तो एक से चार-चार तन हो गये। दस बरस के बाद ये लड़कियाँ छाती पर पहाड़ हो जायँगी। फिर तुम हाथ मल-मलकर याद करोगी कि एक दिन सोनिया ने जो कहा था सो ज्यों-का-त्यों आगे आया।

बुधिया के मन में सोनिया की बातें अच्छी तरह बैठ गयीं। बुधिया को बड़ी दूर की सूझने लगी। उसने सोनिया का बड़ा उपकार माना। पुराना-धुराना उतारन और कुछ अनाज देकर उसको बिदा किया। उसी समय से वह उदास रहने लगी।

इधर बाबू साहब को लोगों ने जुल दे दिया की बुधिया को निकाल दीजिए—क्योंकि पहले तो वह अकेली, अब उसके तीन लड़कियाँ पैदा हो गयीं ; जब उनका ब्याह होगा, तब आपकी हँसी होगी, एक तो यों ही बिरादरीवाले फिरंट हैं, दूसरे इससे और चिढ़ जायँगे।

बाबू साहब झाँसे में आ गये। और बुधिया को यह खबर मिल गई कि यहाँ तक नौबत पहुँच चुकी। अब तो उसे आग नहीं कि जल मरे, और जहर नहीं कि खाय! रोसियाई हुई घर से बाहर निकली और बाबू साहब के घर में बैठकर लंका-कांड मचाने लगी।

सदर दरवाजे पर चूरन सिंह ने हवेली में पैठने से रोक दिया। बस वहीं बैठकर महादेई को गालियाँ सुनाने लगी। भीतर से बाबू साहब की बुढ़िया माता निकल आयीं। बड़े किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर बोली—तू अपने घर से निकल कर यहाँ क्यों आयी?

बुधिया हाथ मटकाकर गरजती हुई बोली—मैं अब इसी घर में रहूँगी। यही मेरा घर है। तुम्हारे बेटे ने मुझको रख लिया है, तो अब मैं किसके दरवाजे जाऊँ?

बुढ़िया ने डाँटकर यहा—मेरे बेटे ने तुझे रख लिया है, तो तू रखेली की तरह अलग मकान में रह। यहाँ तेरा घर कैसा? जब तक मैं जीती हूँ, तब तक यह मेरा घर है। जब मैं आँख बंद कर लूँगी, तब चाहे यह तेरे काम आवे या और किसी के।

बुधिया मुँह बिचकाकर बड़े तपाक से बोली—तुम्हारे कहने से मैं यहाँ से न उठूँगी। आवेगा वही असल बाप का बेटा, तो मुझे उठावेगा। उसकी दाढ़ी नोच लूँगी। अब वह सीधी तरह नहीं मानेगा। गाँव-भर के सामने उसका पानी

उतारूँगी। उसे इजलास पर चढ़ाऊँगी। हाकिम के सामने, हाथ में गंगाजल, गाय की पूँछ और पीपर का पत्ता देकर हलफ उठवाऊँगी। जब भरी कचहरी में पगड़ी उतरेगी, तब रखेली रखने का मजा मालूम होगा। अभी तो पैंतरे बदलता फिरता है, जब हाथ में हथकड़ी भरकर लाल पगड़ीवाला काले घर की ओर ले चलेगा, तब चौकड़ी भूल जायगी। अब मैं इसी जगह गलफाँसी डालूँगी। जब थानेदार आकर झींगा मछली की तरह रुपये गिनने लगेगा, तब आँखें खुलेंगी।

बाबू साहब की बूढ़ी माता डर गयीं। सोचा अगर कहीं यह जहर खा गयी या कुएँ में डूब मरी, तो मेरा लड़का बाँधा जायगा। किसी तरह इस मामला को यहीं दबा देना अच्छा है। नहीं तो फिर 'तिल का ताड़ और राई का पहाड़' होने पर सम्हाले नहीं सम्हलेगा। जहाँ तक हो सके, बड़े आदमी को ऐसे मामले से हाथ खींच ही लेना चाहिए। यह जब जान पर खेलने चली है तब जो चाहे सो कर सकती है। 'मरता क्या न करता, जीता क्या न भरता।' यह तो चाहती ही है कि मामला 'सूई से भगन्दर' हो जाए, ताकि बदनामी हो, बेइज्जती हो और बरबादी भी हो। इसलिए इसको घर में रख लेने में ही कल्याण है।

यह सोचकर बाबू साहब की माता ने उसको हवेली में रख लिया। पर बुधिया की यह विजय महादेई कब देख सकती थी! उसके कलेजे में आग लग गयी। उसको देखकर बुधिया का कलेजा भी दिन-रात सुलगने लगा।

बाबू राम टहल सिंह ने हवेली में आना-जाना छोड़ दिया। इसी बात पर बुधिया और महादेई में खटपट हो गयी। हवेली का आँगन कुरुक्षेत्र बन गया! झाड़ू बना धनुष और मूसर बना गदा! बेलना और लोढ़ा तीर-तलवार बने। भाले की जगह धमाधम घूँसे चले। झोंटे नुचे। कितने ही घड़े फूटे। बड़ी घमासान की लड़ाई हुई। पर कोई बीचबान नहीं बना। भर-पेट लड़-झगड़ कर दोनों अलग-अलग घरों में बैठकर रोने लगी।

बाद को उधर महादेई ने सिल पर सिर पटक-पटक कर अपना सिर फोड़ डाला, इधर बुधिया भी पोखरे में डूबकर मरने चली। यह देख बाबू रामटहल सिंह की तो अक्ल ही मारी गयी! घर के कलह से ऊब कर उन्होंने साधु हो जाने का निश्चय किया, पर चालीसा बीतने पर नया ब्याह हो जाने से सिर मुड़ाने और कपड़े रँगाने का विचार छोड़ दिया।

वह बुधिया को मनाने लगे। उन्हें निहोरा करते देख वह आसमान पर उड़ने लगी। वह जितना ही गिड़गिड़ाते थे, उतना ही पाखंड पसारती जाती थी। अन्त को उसके पैरों पड़कर किसी तरह मनाया। जिस घर में पहले रहती थी, उसी घर में आदर के साथ रखा।

इन सारे टंटे-बखेड़े की खबर मनबहाल सिंह के कानों तक पहुँची। उन्हें बड़ी दूर की सूझी। महादेई का दुःख भी उनके चित्त पर न चढ़ा। केवल बुधिया की तीनों क्वाँरी लड़कियों पर उनकी आँख गड़ गयी। अब न उन्हें दिन को चैन, न रात को नींद—उदवेग हो गया कि लड़कियाँ कैसे हाथ लगेंगी। उनके लिए वे कम-से-कम छः हजार का माल थीं।

रातों-रात रामसहर पहुँचे। चुटकियों में बुधिया को अपनी मुट्ठी में कर लिया। इस काम में बाबू रामटहल सिंह ने उनकी बड़ी सहायता की; क्योंकि उनको तो किसी तरह अपने सिर का बोझ हलका करना था। यदि वह हाथ न बटाते, तो बुधिया इतनी जल्दी मनबहाल सिंह के घात पर नहीं चढ़ती। पर होनी कुछ और ही थी। बुधिया गूँगी गाय की तरह मनबहाल सिंह के साथ चली गयी। भावी कौन मिटा सकता है?

बाबू साहब की बला टल गयी। महादेई के दिल में चुभा हुआ काँटा निकल गया। मनबहाल सिंह का भी पौ बारह रहा। वह तो 'पराये धन पर लक्ष्मी-नारायण' करने के आदी थे ही। उनके लिए यह कोई नई बात नहीं थी। उन्होंने बुधिया को अपने ही घर में रख लिया। आप सत्तू और मठा घोल कर पी लेते; पर बुधिया को बासमती और मोदक का भात खिलाने लगे। हाँ, जितने दिन बुधिया खाती रही, वह आपे में न रहे।

वह बुधिया को अपने घर में ही छोड़कर 'कोई आँख का अन्धा गाँठ का पूरा' जजमान ढूँढ़ने निकल पड़े। ढंग तो मालूम था ही, एक-आध दिन की दौड़-धूप में ही एक मोटा आसामी फँस गया। वह ऐसा खरा आसामी था कि पहले ही उसने उसकी मुट्ठी गरम कर दी। उमर उसकी सठिया गयी थी। देह में चरक फूटने से अब तक व्याह नहीं हुआ था। मनबहाल सिंह की कृपा से उसके माथे पर मौर चढ़ गयी।

सुगिया को खपाकर अब वह बतसिया के पीछे पड़े। पर बुधिया को पता लगा कि सोलह सौ रुपये में सुगिया एक बूढ़े के हाथ बेची गई है। यह भी उसको पता लग गया कि यह महादेई के बाप का घर है। सोचा, अब तो बतसिया और फुलगेनिया भी हाथ से गयी।

यह सोचते ही उसको बाबू रामटहल सिंह की धोखेबाजी पर बड़ा क्रोध हुआ। अपनी दोनों लड़कियों को साथ लेकर थाने में चली।

रास्ते में वह सुगिया की याद कर रोती जाती थी। एक जगह सड़क के किनारे कालीजी का एक मन्दिर मिल गया। उसके सामने बैठकर बाबू रामटहल सिंह को सरापने लगी—आँचल पसारकर रोते-रोते बोली—'ऐ काली माई!

'सरबजीत के दमाद' को उठा लो। वह नवाब का नाती आग मूत रहा है। उसके लिए हैजा भेजो। जिस दिन उसके मुँह में आग लगेगी, उसी दिन कलेजे की कसक कढ़ेगी। दुहाई काली मैया की!'

एक बटोही ने उसका रोना सुना। पास जाकर देखा, एक अधेड़ स्त्री कालीजी के सामने हाथ जोड़े बैठी है। रूप देखने से मालूम होता है, किसी समय वह बड़ी सुन्दरी रही होगी। पर इस समय उसका मुँह कुम्हला गया है। उसके साथ दो लड़कियाँ हैं। उनका रूप भी बड़ा लुभावना है।

बटोही ने पूछा, 'तुम किसे सरापती हो? तुम्हें क्या दुःख है? मेरे साथ चलो, किसी बात की तकलीफ न होगी। मेरे घर में किसी बात की तकलीफ न होगी। मेरे घर में किसी बात का टोटा नहीं है। जैसे घर के दस आदमी खाते-पीते और पहनते-ओढ़ते हैं, वैसे ही तुम भी रहना। कोई चिन्ता न करो। माल-लदी बैलगाड़ी मेरे घर जा रही है, चलना हो तो उसी पर बैठकर चलो।'

बुधिया—'मैं इस घड़ी थाने के सिवा और कहीं न जाऊँगी। अपने सारे गहने बेचकर 'सरबजीत के दमाद' को जेहल की हवा खिलाऊँगी। 'भँडुए के पूत' ने मेरा कलेजा काढ़ लिया है। काली माई की मर्जी से उस पर मेरी आह जरूर पड़ेगी। वह जितना ही मेरी आह ले रहा है, उतना ही भगवान का आसन डोल रहा है। भगवान चाहेंगे तो इस साल के भीतर ही उसपर चक्र गिरेगा। उसकी मारी आज मैं बवंडर हुई फिरती हूँ। जैसे उसने मुझे बे-सरन किया है, वैसे ही भगवान उसका संघार करेंगे।'

बटोही को बुधिया की दशा पर बड़ी ही दया आयी। उसने पूरा ब्योरा पूछा। बुधिया ने सारी रामकहानी कह सुनायी।

बटोही मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हुआ। सोचा, यह सोने की चिड़िया फँसाने लायक है। इसके पास गहने भी हैं, और दो-चार साल में हो जानेवाली दो सुघर लड़कियाँ हैं।

बटोही था बड़ा होशियार। मालदार भी था। गाजीपुर में सरकारी कचहरी के पास ही उसकी खिचड़-फरोश की दूकान थी। नाम था सोहावन मोदी। बड़ा नामी गँजेड़ी और सितारिया था। इससे उसकी दूकान खूब चलती थी।

बुधिया से कहा—'दरोगाजी और कोटबाबू तो मेरी मुट्ठी में हैं। मैं ही उन लोगों का मोदी हूँ। थाने में दरोगा या इंसपीटर आते हैं, तो उनका मोदी-खर्चा मैं ही चलाता हूँ। कचहरी के बड़े-बड़े अमले मेरी ही दूकान से रसद खरीदते हैं। मैंने कितने मुख्तारों का खर्च उठा लिया है। महीने के अन्त में वे मेरा सब पुर्जा

चुकता कर देते हैं। तुम आँख मूँदकर मेरे साथ चलो। आगा-पीछा मत करो। मैं सेंतमेंत में तुम्हारा सब काम करा दूँगा। कचहरी के अमलों के पास जाओगी, तो वे तुम्हें बहुत खर्च में डाल देंगे। अगर नाहक खर्च में पड़ना और बरसों झूलना चाहो, तो मुख्तारों की झाँसा-पट्टी में जाकर पड़ो। मैं तुमसे सच कहता हूँ, ऐसी कोसिस लड़ाऊँगा कि एक पखवारे के भीतर ही बाबू साहब तकुए की तरह सीधे हो जाएँगे। मैं दरोगाजी का हाथ पकड़कर जो चाहूँ सो लिखवा सकता हूँ। 'बड़ा साहब' के पास तक मैं सिफारिस पहुँचा सकता हूँ। उनसे भी मन-माफिक हुकुम लिखा लेने की तरकीब मुझे खूब मालूम है। अफसरों और हाकिमों की कुंजी तो मेरे हाथ में है। बड़े-बड़े मामलेदार मेरी दूकान पर दिन-रात पड़े रहते हैं। उनसे सलाह करके मैं ऐसा संगीन मुकदमा खड़ा कर दूँगा कि एक ही तीर से दोनों चिड़ियों का शिकार हो जायगा। ससुर और दमाद—दोनों—जहन्नुम में चले जाएँगे।'

सोहावन ने जाल बिछा दिया। शिकार हाथ में आ गया। बुधिया को विश्वास हो गया। वह अपनी दोनों लड़कियों के साथ बैल-गाड़ी पर सवार होकर सोहावन के घर चली गयी।

सोहावन का घर पास ही के एक गाँव में था। उसके घरवाले घर पर ही रहते थे। केवल वही गाजीपुर में अपनी दूकान पर रहता था। थोड़े ही दिनों में मोदी से महाजन बन गया था—सोहावन राम से सोहावन साहू हो गया था।

रात को अपने घर रहकर, कुछ रात रहते ही, उसने गाजीपुर के लिए गाड़ी खोल दी। पर घरवालों से बुधिया का भेद नहीं बताया। घरवालों ने समझा, थकी-माँदी कोई स्त्री गाड़ी-भाड़ा देकर गाजीपुर जा रही है।

बुधिया जब गाजीपुर की दूकान पर पहुँची, तब सोहावन ने उसे अपनी सारी थाती-पूँजी सौंप दी। दूकान भी उसी के हवाले कर दिया। मौजी जीव था, निश्चिन्त हो गया।

सोहावन का सरबस पाकर बुधिया भी निहाल हो गई। बाबू साहब तो माँगने पर भी उसे कुछ ही रुपये देकर टरका देते थे, और सोहावन ने तो बिना माँगे चाहे अपनी कुंजियों का गुच्छा सौंप दिया। इससे बुधिया का विश्वास और भी पक्का हो गया।

जब से वह आई, तब से सोहावन की दूकान चमक उठी। गाहक खूब जुटने लगे। सब मोदियों से बढ़कर दूकान चल निकली। पड़ोस के दुकानदार बड़ी डाह करने लगे। सोहावन की गाँजे की चिलम दिनभर गरम रहने लगी। तड़के

गंगा नहाकर पहला दम लगाता था। तब बड़े जोर से पड़ोसियों को सुनाकर कहता था—

'बम संकर, दुश्मन को तंगकर।
आमद बढ़ाकर खरचे को कमकर।'

फिर रात को खाकर सोने से पहले भी गाँजे का दम मारता था। तब भी जोर से चिल्लाकर कहता था—

'अगड़बम अलख, जगा दो सारा खलक।
खोल दो पलक, दिखा दो दुनिया की झलक।
बम संकर टन गनेस, नगद माल भेजो हर हमेस।
जो न पीये गाँजे की कली, उस लड़के से लड़की भली।।'

—*—

३

ननिहाल का दाना-पानी

'जो नहि जाय कबौ ननिऔरा।
सो गदहा हो या गोबरौरा।।'

'माता के अंचल' से निकलकर दूसरे दिन तड़के जब हम बाबूजी के पास आये, तब उन्होंने आते ही कहा—पहले कान पकड़कर उठो-बैठो। कल तुमने बड़ी बदमाशी की है। अगर आज से फिर कभी उन आवारा लड़कों के साथ गये, तो दोनों कान गरम करके कनपटों में चार-चार चपत धर दूँगा। कान धरकर मेरे सामने कहो कि बाबूजी, अब गुरुजी की पाठशाला के सिवा कहीं न जाऊँगा, हमेशा आपके साथ रहूँगा। आज से यह कहकर अगर कान ऐंठ लो, तो इस समय तुम्हारी जान छूट जाय। नहीं तो यहाँ भी कनेठी लगाकर चपत जमाऊँगा, और गुरुजी के यहाँ भी छड़ी से पीठ की पूजा होगी।

हम खम्भे से लिपटकर खड़े थे। चुपचाप नखों से खम्भे का रंग खरोंच रहे थे। बाबूजी ने सटक पीते-पीते फिर जोर से डाँटते हुए कहा—बोलते क्यों नहीं? क्या मुँह में घाव हुआ है? जल्दी बोलो, नहीं तो अब मेरा हाथ छूटना ही चाहता है। हाथ छोड़ दूँगा, तो फिर रोते-रोते ठिकाने लग जाओगे। लड़के को तो बोलने में ढीठ होना चाहिए। गावदी की तरह खम्भे से सटकर खड़े होने से काम न चलेगा। मैंने जो कहा है उसे दुहराना ही पड़ेगा।

हमने बाबूजी की बात मान ली। ज्यों ही अपने कान उमेठकर चार-पाँच बार उठे-बैठे और धीमे स्वर से बोले कि बाबूजी, आज से आपको छोड़कर कहीं न जाऊँगा, त्योंहीं उन्होंने अपने हाथ की सटक छोड़ दौड़कर हमें छाती से लगा लिया। माथा सूँघकर मेरी पीठ पर मीठी-मीठी थपकियाँ देने लगे। जब उन्होंने हमको गोद में उठा लिया, तब हमारी आँखें डबडबा आईं। वह हमें यह कह-कहकर फुसलाने लगे कि ददरी के मेले से एक घोड़ा खरीद लाऊँगा। उसी पर चढ़ाकर तुम्हें ननिऔरा भेजूँगा। वहाँ पढ़ने का बड़ा सुभीता है। वहाँ मौलवी साहब का मदरसा है। मिडिल स्कूल भी है। सुबह मकतब में पढ़ना, खा-पीकर स्कूल में। जब उर्दू और हिन्दी पढ़ जाओगे तब तुम्हें गाजीपुर ले चलूँगा। वहाँ तुम्हें अँगरेजी स्कूल में भर्ती करा दूँगा। अँगरेजी पढ़कर तुम मुख्तार होगे, वकील

होगे, मुन्सिफ होगे, खूब रुपये कमाओगे। भोलानाथ! उस रुपये में से मुझे कुछ दोगे या नहीं?

हमने छूटते ही कहा—हम आपको एक घोड़ा खरीद देंगे। उसी पर चढ़कर आप भी ननिऔरा जाइएगा।

बाबूजी हँस पड़े। हमारी हँसी भी रोके नहीं रुकी—ठिनकते-ठिनकते खिलखिला ही उठे। बाबूजी गुदगुदाने लगे। गुदगुदी से और भी खुलकर हँसी आई।

रोज की तरह आज भी गंगा-नहान, कुश्ती, पूजा-पाठ, भोजन आदि हुआ। पर आज मइयाँ हमें पकड़कर जबरदस्ती हमारे सिर में कड़वा तेल न बोथ सकी। हमने आज बाबूजी के हाथ से गोरस-भात भी नहीं खाया, केवल मुँह जुठाकर उठ आये; क्योंकि खाने जाते समय देखा, बैजू गधे पर सवार होकर चारों ओर मैदान में चक्कर लगा रहा है, उसके पीछे-पीछे लड़के दौड़ रहे हैं।

बाबूजी ने ददरी से घोड़ा खरीद देने का वादा किया था। ददरी को अभी दो-तीन महीने बाकी थे। तब तक घोड़े पर चढ़ने का अभ्यास कर लेना जरूरी था। इसी इच्छा से हम ताबड़तोड़ दो-चार कौर मुँह में डालकर बैजू के दल में जा मिले।

बैजू का 'घोड़ा' सचमुच बड़ा तेज था। जब सब लड़के मिलकर पीछे से हल्ला करते थे, तब वह बड़े जोर से दौड़ता था। एक साथ दो-दो तीन-तीन लड़के उसपर सवार हो जाते थे। पर तो भी वह बेधड़क दुलकी चाल चलता था।

बैजू ने हठ करके हमें गधे पर चढ़ाया। अँगोछा ऐंठकर गधे का मुँह बाँधा। अँगोछा के छोरों को हमारे हाथों में लगाम की तरह पकड़ा दिया। फिर अँगोछा ऐंठकर एक कोड़ा भी बनाया। हमारे चढ़ जाने पर वह पीछे से गधे को कोड़े मारने लगा। हमने अपने दोनों पैरों को गधे के पेट में सटाकर अँकुसी की तरह फँसा लिया। गधा तो कान और पूँछ सटाकर हवा हो गया। उसकी सरपट चाल देखकर लड़के चिल्ला उठे—

'गदहा चढ़े धरे धनु बान
कहाँ चले डिल्ली सुलतान।
गदहा मारो अलफ उड़ान
चले जाहु सरपट सुलतान॥'

लड़के चिल्लाते रहे। हम कुछ दूर जाकर गिर पड़े। पर गधा अपनी ही चाल से जा रहा था! हमें गिरा देख लड़के दौड़े। कुछ तो गधे के पीछे पड़ गये। कुछ लगे हँस-हँस कर हमें चिढ़ाने—पीछे कानी कौड़ी है, उठा लो।

हम रोते-रोते उठ खड़े हुए। अपनी देह झाड़ने लगे। सब लड़के उँगली पर उँगली चढ़ाकर कहने लगे—तुमको हमलोग नहीं छू सकते, पहले जाकर धोबघाट पर नहाओ। नहीं तो अब हमलोगों की जमात में नहीं आ सकते।

हम दौड़-दौड़कर लड़कों को छूने लगे। वे उसी तरह उँगली पर उँगली चढ़ाये भागने लगे। जब हम उन्हें न छू सके, तब मारे खीस के रोने लगे।

इतने में चिरकुट धोबी दूर ही से लड़कों को ललकारता हुआ पहुँचा। उसने दो-चार लड़कों को खदेड़कर पकड़ा और पीटा। बहुतेरे लड़के भाग निकले। बैजू तो पास ही के पेड़ पर चढ़ गया। और हम—ऐसी राह से घर की ओर भागे कि चिरकुट हमें देख ही न सका।

भोजन करके बाहर आते ही बाबूजी हमारी खोज करने लगे। जो कोई सामने की गली से गुजरता, उसीसे पूछते—उधर भोलानाथ कहीं देख पड़ा है?

चिरकुट के खदेड़े हुए कुछ लड़के उसी गली से भागते चले जाते थे। उन्हीं लड़कों से बाबूजी को हमारा पता मालूम हो गया। सोचने लगे, आज ही इतना सिखलाया है। थोड़ी ही देर में सब सिखाया-पढ़ाया ताक पर रखकर यह फिर आवारा-गर्द लड़कों के साथ निकल भागा। बड़ा बेहंगम लड़का है। तनिक आँख बिचली कि फुर्र से उड़ा। अच्छा, आज इसे खम्भे से बाँधकर खजूर की छड़ी से पीटूँगा।

बाबूजी यह सोच ही रहे थे कि हम उनकी आँख बचाकर झट घर में घुस गये। पर उन्होंने घर में घुसते-घुसते हमें देख ही लिया। फिर तो आग-बबूला होकर हमारे पीछे ही पीछे दौड़े आये। ज्योंही हमने उनकी खड़ाऊँ की आवाज सुनी, त्योंही मइयाँ के पास तक पहुँचने का अवसर न पाकर डर के मारे देवढ़ी के पास एक जबरे में छिप गये।

बाबूजी भीतर आते ही मइयाँ से कड़क कर बोले—कहाँ गया भोलानाथ? अभी तो आया है। किधर छिप गया? यह तुम्हारी ही कारसाजी है। आज ही उसे चिताया कि खा-पीकर गुरुजी के पास पढ़ने जाना; पर मेरी बात तो उसके चित्त में धँसती नहीं, सिर्फ एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। आज जो पकड़ पाऊँगा, तो उसे छठी का दूध याद करा दूँगा। जितना ही मैं सहता हूँ, उतना ही उसका मन बढ़ता जाता है। दुनिया में वही एक लड़का है या और भी किसी के लड़का है? देखती रहो, मैं तुम्हारी और उसकी सारी कारस्तानी आज भुला देता हूँ। उसको तो अब यहाँ रहने ही न दूँगा। कल ही उसे रामसहर भेज दूँगा। वहीं अपने नाना के पास पढ़ेगा। मुझसे ऐसे लड़के की देख-भाल न हो सकेगी। मैं तो आजिज़ हो गया, पढ़ना-लिखना गया चूल्हे में, दिन भर खेलने में ही चित्त देता है। भगवान ने एक लड़का भी दिया, तो वह ऐसा खेलाड़ी

निकला कि मेरे घर में जितने एक-से-एक मीर-मुंशी हो चुके हैं, सब का नाम डुबा देगा।'

हम उसी छोटे कोठिले में बैठे-बैठे सब सुन रहे थे। बाबूजी की बातें सुनकर मइयाँ ने उन्हें बहुत झाड़ा। यहाँ तक कि वह कड़कड़ाते हुए बाहर चले गये।

उनके चले जाने पर मइयाँ हमें ढूँढ़ने लगी। हमने जब देखा कि बाबूजी बैठकखाने में चले गये, तब धीरे से जबरे में से निकल पड़े। मइयाँ ने हमें देखते ही दौड़कर अपनी गोद में उठा लिया, धीमे स्वर से बोली—'जल्दी चलकर भण्डार-घर में सो रहो। नहीं तो आज तुम्हारे बाबूजी इतने बिगड़े हुए हैं कि भेंटेंगे तो बड़ी मार मारेंगे।'

हमें तो सुबह की बात याद पड़ रही थी कि हमने आप ही अपने कान ऐंठकर वादा किया है—अब फिर कभी लड़कों के साथ खेलने न जायँगे। पर याद पड़ने से क्या हुआ। गधे पर चढ़ने का शौक चर्राया, सब कुछ भूल गया! लड़कों की जमात में यह थोड़े याद पड़ता था कि किससे क्या वादा किया है। वहाँ तो सिर्फ अपनी मौज की मस्ती थी।

हाँ, घर पहुँचने पर वादा जरूर याद पड़ा। मगर अब लुक-छिपकर जान बचाने के सिवा हो ही क्या सकता था।

खैर, जान बच गई। मइयाँ के कहने से हम भण्डार-घर में जाकर एक खटोले पर सो रहे।

बाबूजी फिर आये। कहने लगे—'चिरकुट धोबी उलाहना देने आया है। बैजू के साथ भोलानाथ भी गधे पर चढ़ा था। गधे की छान खोलकर न जाने लड़कों ने किधर खदेड़ दिया है। बेचारा चारों ओर हैरान हुआ फिरता है। भोलानाथ घर ही में कहीं होगा। देखो, ढूँढ़कर उसे नहलाओ-धुलाओ। कोई खाने-पीने की चीज उससे न छू जाय; मैं बाज आया उसे मारने से। वह जरा-सा छूने से रोने लगता है, और तुम उसे डाँटने पर भी आग-भभूका हो जाती हो। अरे, अब भी तो उसे राह पर लाने की कोशिश करो। लड़कपन से ही उसका मन सहक जायगा, तो सयाना होने पर एकदम बेकाबू हो जायगा। कल तुम महँगू के लड़के की बात कह रही थी। जानती हो, उसके लड़के कैसे छटे बदमाश हैं? बड़ा लड़का, जो चीनी डाँट से महँगू के साथ आया है, शुरू में घर-घर सराहा जाता था। जिसके मुँह से सुनो, वह उसकी बड़ाई ही करता था। अब तो वह महँगू की कमाई में आग लगाना चाहता है। उसीके साथ बैजू भी बिगड़ता चला जाता है। वह टोले-महल्ले के सब लड़कों को खराब करके छोड़ेगा। वह तो चाहता ही है

कि मेरी तरह सब लड़के 'खाने-खराब गदहे-सवार' हो जायँ। उसे गदहपचीसी लगी है—

'बड़ा हुआ तो क्या हुआ, बढ़ गया जैसे बाँस।
ऊँच-नीच समझे नहीं, किया बंस का नास॥'

तुम भी चाहती हो कि भोलानाथ खूब खेले-खाये, मगर पढ़े एक अच्छर भी नहीं। तभी तो जब मैं उसपर खीझता हूँ, तब खुनसाने लगती हो। इसीलिए वह घरघुसना हुआ जाता है।

मइयाँ ने इस बार कुछ जवाब नहीं दिया। बाबूजी बाहर चले गये। भण्डार-घर के दरवाजे पर बैठी-बैठी मइयाँ मुँह-ही-मुँह में न जाने क्या-क्या बुदबुदाती रही। कुछ देर के बाद झमककर उठी और कहने लगी—जान पड़ता है, अब इसी लड़के के पीछे एक दिन इनसे झमेला करना पड़ेगा। जब मौका पाते हैं, मुझे ही दस बातें सुना जाते हैं। कबतक इनकी खरी-खोटी सुनती रहूँगी। कल इसके साथ नैहर चली जाती हूँ, तब इनका रोज-रोज का झड़पना आप ही भूल जायगा। अपने लड़के की आग किसको नहीं होती? कौन ऐसी महतारी है, जो अपने लड़के को खेलने-खाने से रोकती है? अभी तो इसकी उमर ही है खेलने-खाने की। अभी से इसको बँधुए की तरह बाँधकर रखना चाहते हैं। यह कैसे हो सकता है? क्या आज ही से दुनिया पलट जायगी? लड़कपन में कौन नहीं चुलबुलाता? आज इनको जितनी सिखाने-पढ़ाने की बुद्धि हो गयी है, क्या इतनी ही उन दिनों भी थी, जब—सुनती हूँ—पीपर का गोदा खाने के लिए दिन-दिनभर पेड़ पर ही रह जाया करते थे, और पेट चलने लगता था, तो घर-आँगन में नाक नहीं दी जाती थी। बड़े होने पर सब कोई इसी तरह कानून छाँटने लगता है, मगर अपनी करनी-करतूत याद नहीं पड़ती।

यह कहती हुई मइयाँ धीरे से किवाड़ खोलकर हमें देखने के लिए आई। हम जगे हुए थे। पर आँख बन्द किये पड़े थे। वह हमारी देह पर दो-चार थपकियाँ देकर चादर उढ़ाकर किवाड़ बन्द करती हुई घरबार देखने चली गई।

उसके जाते ही हमने चादर के अन्दर से मुँह निकालकर चारों ओर देखा, धीरे-धीरे उठकर भीतर से किवाड़ लगा दिये। बाबूजी के साथ आज सुबह खाने बैठे थे, तो हमें खाने की सुध नहीं थी। उस समय तो हम बैजू की घुड़दौड़ में जाने के लिए उतावले हो रहे थे। किसी तरह ताबड़-तोड़ दस-बारह कौर खाकर चंपत हो गये थे, इसलिए आँते कुलकुला रही थीं। खाने लायक कोई चीज ढूँढ़ने लगे। सामने ही 'अन्दरसे' नजर आये। बस, पूरी थोक ही उठा ली। चार-पाँच गप्फे में सब उड़ा गये।

पर पेट नहीं भरा। कुछ और खाने की चीजें ढूँढ़ने लगे। अचानक अचार के घड़े पर हाथ पड़ गया! अपनी पसन्द से मीठा और नमकीन अचार गपकने लगे। दोनों अचारों में मीठा अचार ही बहुत बढ़िया था। खा चुकने पर चादर से मुँह पोंछ कर पहले की तरह सो गये। जल्दी में अचार के घड़ों के मुँह खुले ही छोड़ दिये।

बिल्ली पहले से ही घर में घुस आई थी। मइयाँ हमें सुलाकर जाने लगी थी, तो घर में नजर दौड़ाकर बिल्ली को देख गई थी। पर हम तो पहले ही देख चुके थे कि 'बाघ की मौसी' कोने में बैठी हुई है। अँधेरे में उसकी आँखें लुत्ती-सी चमक रही थीं।

ज्यों ही हम चादर तान कर सोये, बिल्ली ने अचार के घड़े में मुँह लगा दिया। उसका मुँह लगाना था कि एक गज की ऊंचाई से घड़ा भड़ाम से नीचे गिर पड़ा। आवाज सुनते ही मइयाँ बिलबिलाती हुई दौड़ी। हम किवाड़ खोलना भूलकर चुपचाप सो रहे।

मइयाँ ने देखा, भीतर किवाड़ बन्द है! हमें पुकारने लगी। पर हमें उसके पुकारने से क्या मतलब? हम कुछ और ही सोचने लगे—अबतक मइयाँ हमारी पच्छ लेती थी, पर आज से वह भी हमें नटखट समझेगी; क्योंकि जितना वह हमें प्यार करती है, अचार के घड़ों को उससे कम नहीं करती। विना नहाये-धोये और साफ कपड़ा बदले उन्हें वह कभी नहीं छूती। बीमार रहने पर भी वह उनमें किसी और को हाथ डालने नहीं देती। धूप दिखाने की जरूरत होती है, तो आँगन में तुलसी चौतरे के पास गोबर का चौका देकर उन्हें रखती है। अचारों को जितना जुगाती है, उतना किसी चीज को नहीं। अब अगर देखेगी कि अचार तहस-नहस हो गये, तो बिना पूछताछ किये ही हम पर बिगड़ उठेगी। उसका झनकना सुनकर बाबूजी भी हमें बात सुनाने लगेंगे।

अफसोस! अचार खाने के समय तो हमें यह सुझा ही नहीं कि अचारों को मइयाँ बड़ी सफाई से रखती है, बरसों का संचा हुआ अचार एक दम ताजा बनाये रहती है। बड़ी-बड़ी दूर के रोगियों के लिए हमारे ही घर से नीबू का पुराना अचार जाता है। गाँव-जवार में किसी के घर पाहुन आता है, हमारे ही घर के अचार इज्जत रखते हैं।

हम अगर भीतर किवाड़ बन्द करके न सोये होते तो सारा दोष बिल्ली के सिर मढ़ा जाता। पर हमने तो किवाड़ भिड़ाकर चटकनी भी लगा दी थी। मइयाँ ने किवाड़ खटखटा कर बीसों बार पुकारा। हम बड़ी दुविधा में पड़ गये। छक्का-पंजा भूल गये।

मइयाँ किवाड़ के पास से निराश होकर रोती हुई बाबूजी को खबर देने चली। हमने सोचा, अब अगर हम किवाड़ खोलने में देर करेंगे, तो बाबूजी फौरन् पहुँचकर सेंध पर ही चोर पकड़ लेंगे, फिर तो ऐसा तूफान मचावेंगे कि सब दिन की कसर आज ही निकल जायगी।

सोच-समझकर हमने किवाड़ खोल दिया। भगवान की दया से बुद्धि ने ऐन मौके पर काम दिया। सारा काम ही बन गया। नहीं तो काम बिगड़ने में देर ही क्या थी?

माता आँगन पार कर देवढ़ी के पास पहुँच चुकी थी! ज्योंही उसने देवढ़ी में पैर रक्खा, हमारे किवाड़ खोलने का शब्द उसके कानों में पड़ा। वहीं से उलटे पाँव दौड़ी आई। हमें आँख मलते हुए बाहर आते देखकर झट गोद में उठा लिया। गोद में लेकर लगातार कई सवाल पूछा—कहीं चोट तो नहीं लगी है? तुम्हारी देह पर तो कोई चीज नहीं गिरी है? सिटकनी किसने लगाई थी?

हमने इन सवालों का कुछ भी जवाब नहीं दिया। सिर्फ सिर खुजलाते-खुजलाते और ठिनकते रह गये। उसने हमारी आँखें धोकर अपने आँचल से हमारा मुँह पोंछा। फिर चूम-चाटकर कंधे पर सुला लिया।

हमारा मुँह चूमते ही मइयाँ को मालूम हो गया कि हमने जरूर अचार खाया है। संदेह होते ही उसने पूछा—बच्चा, तुमने अचार कहाँ खाया?

हमने नजर नीची करके धीमे स्वर से मुस्कुराते हुए कहा—अचार कैसा? हमने तो कुछ भी नहीं खाया है!

उसने फिर हमारा मुँह सूँघकर अचंभे के साथ कहा—सचमुच कुछ नहीं खाया है?

यह कहकर उसने हमारे ओठों को अपनी उँगलियों से चीरकर देखा, देखते ही ताड़ गई! हमें गोद से उतार कर झट घर में गई। वहाँ मीठे अचार का घड़ा नीचे पड़ा देखकर छाती पीटने लगी। रोती-कलपती तुरन्त आ गई। फिर झट-पट हाथ-पैर धोकर घर में गई। हाय-हाय करते घड़े को उठाया। घुमा-फिराकर देखा-भाला। देखकर वहीं सिर पीटने लगी।

फिर घड़े को ठीक जगह पर रखकर दाँत पीसती हुई बाहर आई। हमारी देह को दोनों हाथों से पकड़कर जोर से झकझोरती हुई बोली—अरे बोलता क्यों नहीं, कैसे अचार खाया है? घड़े में से निकाल-निकाल कर खाता गया है या पहले ही घड़े में से निकाल कर अलग बैठकर खाया है? सच बोल, तो आज तुझे चार पैसे दूँगी। जो कहेगा सो करूँगी! जल्दी बता।

हम चुपचाप नीची नजर किये अपने गले में पड़ी हुई चाँदी की ताबीजों के बीच का 'बघनखा' उलटते-पलटते रहे। वह बार-बार हमारी ठुड्डी पकड़कर पूछती ही रह गई। हम अन्त तक 'बमभोला' ही बने रहे।

उसका बरसों का सँजोया हुआ अचार अशुद्ध हो गया था। इससे वह बड़ी अनमनी-सी हो रही थी। उद्वेगी की तरह कभी घर में जाती थी, कभी बाहर आकर पछताने लगती थी। अन्त में जाकर हमारे खटोले का बिछौना उड़ासने लगी। देखा, बिस्तर पर पोस्ते के दाने पड़े हुए हैं। झट 'अँदरसे' की ओर आँख उठाई, तो थोक ही गायब!

बिछौना समेटना छोड़कर फिर बाहर आई। हमारे पेट में उँगलियाँ गड़ाती हुई बोली—अरे तू अँदरसे भी खा गया? बाप रे बाप! तेल के बने अँदरसे थे! आज जरूर पेट फूलेगा। इसी समय तासा की तरह पेट चढ़ गया है, ऐसा तन गया है कि उँगली भी नहीं गड़ती! देखने में टिटिहरी-सा मालूम होता है, उतने अँदरसे और अचार न जाने कैसे खा गया! 'देखने को बुलबुल, लीलने को गूलर'—टीमकी-सा पेट और खा गया बेअन्दाज। कहीं पेट चलने लगा, तो लाख गण्डे बात सुनूँगी। अगर 'बैद' बुलवाऊँगी, तो भी बाहर से भीतर तक हल्ला मचेगा। खंजरी-सा चढ़ा पेट देखकर बाहर 'वह' भी दो हाथ ऊँचा उछलने लगेंगे। आज मैं सब ओर से गई।

इसी समय बाबूजी की खड़ाऊँ की चटक सुन पड़ी। मइयाँ ने झट हमें गोद में उठा अपने अँचरे से छिपा लिया। लपककर घर में चली गई। बाबूजी ने आँगन में आकर पूछा—क्या भोलानाथ का अबतक पता नहीं चला?

हमे घर में बैठाकर मइयाँ बड़ी तेजी से बाहर चली आई। बोली—पता क्यों नहीं चला? पता न लगे दुश्मन का। आप लड़के को ऐसा क्यों कहते हैं? असगुन की बात मुँह से न निकालिए। वह कहीं नहीं गया है। घर ही में है। आपके डर से कोने में सटका हुआ है। जबान दीजिए कि मारूँगा नहीं तो फुसला-बहलाकर सामने लाऊँ।

बाबूजी हँसते-हँसते जबान हार गये। मइयाँ ने भी हँसते-ही-हँसते कहा—देखिए जबान न बदलियेगा, मर्द की बात एक होती है।

बाबूजी ने हँसकर कहा—तुमने आजतक मेरा स्वभाव नहीं पहचाना! कई बार देख चुकी हो कि लाख खिसलाये रहने पर भी भोलानाथ जब सामने चला आता है, मेरा क्रोध हवा हो जाता है। फिर भी छनकती हो! उसे मेरे सामने लाओ तो सही। मैंने क्या भाँग पी ली है कि आते ही उसे पीटने लगूँगा?

मइयाँ हमें गोद में उठाकर बाहर लाई। उसके कन्धे पर अपना सिर रखकर हम उसकी पीठ की ओर देख रहे थे। बाबूजी ने मइयाँ के पीछे खड़ा हो अपने हाथ से हमारा सिर ऊँचा कर मुसकुराते हुए कहा—कहाँ थे हजरत?

हमने बाबूजी की ओर नहीं देखा; आँखें बन्द कर लीं। मगर हमारे ओठों पर जो मुस्कान की रेखा खिंची हुई थी, वह लाख मिटाने पर भी न मिटी। बाबूजी ने हँसकर कहा—आँखें खोल दो। डरो मत। सच बताओ, आज मेरे पास क्यों नहीं आये?

हमने बड़ी कोशिश से धीरे-धीरे आँखें खोलीं। अधखुली आँखों के ठीक सामने ही बाबूजी नजर आये। हमने झट पलक गिरा दी। पर अब हँसी किसी तरह नहीं रुकी। बाबूजी तो हँसे ही, मइयाँ भी हँस पड़ी। हम तो खूब खिल-खिला उठे।

बाबूजी ने झट हमें मइयाँ की गोद से अपनी गोद में ले लिया। हमें गोद में लेते ही बाहर बैठकखाने की ओर चले। मइयाँ पीछे-पीछे गिड़गिड़ाती हुई चली—आपको मेरा सौगन्द है, मारियेगा मत। अपने साथ लेकर गुरुजी के पास जाइयेगा, फिर अपने सामने कुछ देर लिखवा-पढ़वाकर साथ ही लेते आइयेगा।

बाबूजी ने पीछे घूमकर मइयाँ को झिड़कते हुए कहा—बस रहने दो, अब अधिक छोह मत दिखाओ। क्या समझती हो, मेरे मन में इसके लिए कुछ प्रेम नहीं है? सिर्फ तुम्हीं इसका दुलार करती हो—मैं नहीं? मालूम होता है, जैसे यह मेरा लड़का ही न हो!

मइयाँ—यह कौन कहता है कि यह आपका लड़का ही नहीं है? आपका न होता, तो छन-भर भी आपसे सटता? मुझसे बढ़कर यह आपको जानता है। जितना आपसे इसका जी मिलता है, उतना और किसी से नहीं। हर घड़ी आप ही के लिए जान दिये रहता है। हाँ, जब आप रुख बदलकर डाँटते हैं, तब अलबत्ता मारे डर के सटक-सीताराम हो जाता है।

बाबूजी ने मइयाँ की बातों का कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप बाहर चले आये। बैठकखाने के ओसारे में चौकी पर मूसन तिवारी बैठे हुए थे। उनसे पा-लागन करके बाबूजी ने कहा—यहीं बैठिए तिवारीजी, मैं जरा लड़के को नहला लाऊँ।

तिवारीजी—कौन लड़का है?

बाबूजी—मेरे भोलानाथ है?

ति०—इतना दिन चढ़ गया, अभी तक नहाया भी नहीं?

बा०—नहाना-धोना, पूजा-पाठ, खान-पान, सब हो चुका है। लेकिन आज कई दिनों से यह लड़का तंग कर रहा है। देखते-देखते खिलवाड़ी लड़कों के साथ

फुर्र-से उड़ जाता है। आज चिरकुट धोबी के गदहे पर चढ़कर उसे दौड़ाये फिरता था! भला कहिए, गदहे की सवारी में क्या मजा मिलता होगा?

ति०—उस मजा को आप नहीं समझ सकते। हाँ, अगर लड़कपन की आँखमिचौनी और कबड्डी याद होगी, तो गदहे की सवारी भी जरूर याद होगी।

बा०—हाँ, और सब खेल तो जरूर याद हैं; मगर गदहे की सवारी मुझे याद नहीं है। मैं गुल्ली-डण्डा, गुच्चापारा, गेंदबल्ला और कौड़ी-गुड़गुड़ खूब खेलता था। मगर जब स्कूल में पढ़ने लगा, तब शहरी लड़कों के साथ लट्टू नचाया करता, गोली खेलता और गुड्डी उड़ाता था। लेकिन तिवारीजी, सच पूछिए तो अपने गाँव के लड़कों के साथ खेलने में जो आनन्द था, वह शहरी लड़कों के साथ कहाँ? आपका वह भतीजा रामू, जो काशीजी में पढ़ता था, मेरा लँगोटिया यार था। लड़कपन में वही मेरा खेल का गोइयाँ था। हमलोग जोड़ बाँधकर खेलते थे। हमलोगों से कोई पार नहीं पाता था। उन दिनों हमलोगों के जोड़ का कोई था भी नहीं। रामू सब लड़कों का सेठ था। वह चिट्ठा देखकर दो लड़कों को लड़ा देता था, और अलग बैठा हँसा करता था! इधर वह गाँव के संस्कृत-टोल में पढ़ने लगा, उधर मैं भी स्कूल में नाम लिखाने के लिए पिताजी के पास चुनारगढ़ चला गया। जब रामू काशीजी पढ़ने गया, तब भी छठे-छमासे मुझसे मुलाकात हो जाया करती थी।

ति०—जाने दीजिए इन बातों को। रामू की याद आते ही कलेजे में आग लग जाती है। पुराना घाव हरा हो जाता है। वैसा होनहार लड़का अब मेरे घर में एक भी नहीं है। आजकल तो जितने हैं, सब-के-सब कीट-पतंग हैं—

हाथ गोड़ सिरकी, पेट नदकोला
एक चटकन मार दें, तो छूट जाय चोला

उसके ऐसा गठीला बदन अब मैं किसी लड़के का नहीं देखता। भगवान ने जैसी उसकी सुडौल देह सँवारी थी, वैसे ही उसकी बुद्धि को भी सँवारा था। कहाँ तक कहूँ आपसे, वह गाय था। कोई दो बात कह भी देता था, तो चुपचाप सह लेता था। औलिया की तरह, अपनी मौज में मस्त घूमता-फिरता था। आपका बैठकखाना ही तो उसका अड्डा था। घर से छूटने पर यहीं आकर दम लेता था। मेरी बड़ी सेवा करता था। कहाँ तक मैं उसके गुन बखानूँ? यह सब कहने सुनने से कलेजे के घाव में टीस उठती है। मगर बात छिड़ जाने पर कहे बिना मन भी नहीं मानता। उसके बिना अब मेरी खौरहे कुकुर की दशा हो रही है। अब घर में जितने हैं, सब कहने-भर को लड़के हैं। उनकी बातें दस-दस पसेरी की होती हैं। बड़े भाईजी थे, तो सबपर काबू करते थे। उनके मरते ही सब बे-नथे

बैल हो गये। अब तो बिना मेंह की दँवरी हो रही है। ठीक कहा है कि निरबंस अच्छा, बहुबंस नहीं। बहुबंस ही से घर चौपट होता है। रावन का क्या हाल हुआ?

एक लाख पूत सवा लाख नाती
उसके घर में दिया न बाती

—मेरे घर का भी वही हाल होगा, देख लीजियेगा। आप अपने लड़के को अभी से सुधारिए। कच्चे घड़े पर खिंची हुई रेखा पक जाने पर नहीं मिटती, पत्थर की लकीर हो जाती है। जो लोग अपने लड़के को मारे दुलार के चंग पर चढ़ाये रहते हैं, उन्हें कभी लड़के का सुख नसीब नहीं होता। बैजू साला इतना पाजी लड़का है कि एक दिन मुझे भी खिजाता था। अब मेरी आँख की जोत मन्द हो गई। नहीं तो उस दिन साले को पकड़ पाता तो खून पी जाता। अपने घर के लड़कों को ललकार दूँ, तो साले को कच्चा ही चबा जायँ। आप अपने लड़के को उसके साथ कभी मत खेलने दीजिए। नहीं तो फिर यह किसी काम का न रहेगा।

बा०—तिवारीजी! आपका कहना बहुत दुरुस्त है। दुनिया में सीधे का कहीं गुजारा नहीं। सूधे का मुँह कुत्ता चाटता है। गुसाईंजी ने भी कहा है—'कतहु सुधाइहुँ ते बड़ दोसू।' लेकिन अब तो आपके बाल पक गये, आँखों ने जवाब दे दिया, मांस ने हड्डी छोड़ दी, दाँत पहले ही गिर पड़े, ऊँचा सुनते भी हैं, सब तरह से चलने की तैयारी हो गई है। कोई चिन्ता न कीजिए। दिन करीब है, परवाना निकल चुका। जब तक नहीं पहुँचता तब तक 'जाही बिधि राखे राम वाही बिधि रहिये।'

ति०—सो तो ठीक ही है। अब तो मुर्दे पर जैसे एक टोकरी मिट्टी वैसे ही सौ टोकरी। अब क्या, कूच का नगाड़ा बजना ही चाहता है—

बहुत गई थोड़ी रही नारायन अब चेत,
काल चिरैया चुग रही आयु रूपी खेत।

बा०—सचमुच तिवारीजी किसी ने ठीक कहा है कि माँगने से मौत नहीं मिलती, और ज्यादा दिन मरौवत नहीं निबहती।

ति०—क्या कहूँ बबुआजी, न जाने भगवान मुझे जल्दी क्यों नहीं उठा लेते! मालूम होता है कि वहाँ मेरा कागद ही भूल गया है या जमदूत इधर का रास्ता ही भूल गये हैं; अब तो मरने के लिए मेरा रोम-रोम तरसता है। आज जो रामू जीता रहता और उसके बदले में गुजर जाता, तो मेरे ऐसा भाग किसका था? मगर भाग साला तो रेंड़ की कलम से लिखा गया है—मर जाता तो यह जीते-जी नरक-भोग करने कौन आता?

बा०—यह हिसाब-किताब जमराज समझें तब तो ? अब तो ऐसा जमाना आ गया कि नौजवान बेटा चला जाता है, बूढ़ा बाप खुत्थ की तरह बैठा रह जाता है। उस खेलाड़ी के अजब खेल हैं। वहाँ भी उसी की माँग है, जिसकी यहाँ। काल भी देख-देखकर नई गोटी मारता है। हमलोग भी दातून तोड़ने के लिए बाग में जाते हैं, तब खूब छरहरा गोजा तजबीज करके ही तोड़ते हैं। घुना हुआ अनाज खाना कोई पसन्द नहीं करता। कुम्हलाया हुआ फूल माली नहीं तोड़ता। लकड़हारा सीधे पेड़ों की तलाश में जंगल में घूमा करता है।

ति०—बहुत ठीक कहा आपने। अच्छे की खोज-पूछ हर जगह है। अच्छा बबुआजी, अब आप जाइए। बेर बहुत ढल गई, लड़के को नहलाइए। मैं भी घर जाता हूँ, नहीं तो जाते ही सब एक मुँह होकर कहने लगेंगे—दिन-भर कौन-सी कमाई करते रहे ? जहाँ बैठकर बात गढ़ते रहे, वहीं जाकर खाओ, यहाँ क्या सठौरा धरा है ?

बा०—तो हर्ज ही क्या है ? यहीं रहिए। यह भी तो आप ही का घर ठहरा, अहो भाग्य समझूँगा।

ति०—भगवान आपको बनाये रहें। बेली-चमेली की तरह फूले रहिए। वंश बढ़े। बरकत हो। आपका ही दिया न खाता हूँ ! भगवान एक से इक्कीस करें, यही मनाता रहता हूँ।

बा०—आप बड़े बूढ़े हैं। आपकी असीस जरूर फलेगी। मुझे तो इसी एक लड़के को देखकर सन्तोष रहता है। यही आँखों का उजाला है। मेरे लिए इसे पत्थर पर की दूब समझिए, यह अगर आँखों के सामने रहता है, तो सारी चिन्ताएँ भूली रहती हैं। पल-भर भी आँखों से ओझल होता है, तो कलेजा निकल जाता है। कितना गुस्साता हूँ, धमकाता हूँ, पीटने का इरादा करता हूँ; पर जब ठुमुकता हुआ आगे आ जाता है, तब सिवा इसके कि गोद में उठाकर चूम लूँ और कुछ नहीं बन पड़ता; इसको कहानी सुनने का बड़ा शौक है। रात को रोज मुझसे कहानी कहवाता है। विना कहानी सुने सोता ही नहीं। आपको तो बहुत कहानियाँ याद हैं। इसको कभी-कभी सुनाया कीजिए। फिर तो यह आपका पिण्ड नहीं छोड़ेगा।

ति०—आपका कहना बावन तोले पाव रत्ती ठीक है। बेटे से बढ़कर दुनिया में कोई धन नहीं। ईश्वर करें यह लड़का भी मेरी ही तरह बूढ़ा हो। इसकी औलाद बढ़े। मैं जरूर किसी दिन इसको कहानी सुनाऊँगा।

इतना कहने के बाद तिवारीजी हमारी ठुड्डी पकड़कर हिलाते हुए बोले—बबुआ, मन लगाकर पढ़ो। पढ़ने में ही सब कुछ है, न पढ़ोगे तो कोई बात न पूछेगा।

पढ़ोगे तो सब लोग पीछे लगे फिरेंगे। बदमाश लड़कों के फेर में मत पड़ो—

खेलोगे-कूदोगे होगे खराब,
पढ़ोगे-लिखोगे होगे नवाब।

—बैजू तो तुमको अपने रंग में रंगना ही चाहता है। वह पल्ले सिरे का बदमाश है। महँगू के दोनों लड़के तो उससे भी बढ़े-चढ़े हैं। वे तो 'बाँस के बंस में घमोई' हैं। महँगू जैसे बाप को न जाने ईश्वर ने क्यों ऐसे बेटे दिये हैं—उनका कारबार भी बड़ा गोरखधंधा है! तुम अपने बैठकखाने में और अपने चौतरे पर ही खेला करो। किसी साले लड़के को चौतरे की सीढ़ी पर पैर मत रखने दो। गाँव में बदमासी की हवा बह गई है। लगभग सब लड़के एक ही राह पकड़ते चले जाते हैं—

केहि केहि के हम लेई नाँव,
कमरी ओढ़े सउँसे गाँव।

इतनी देर तक खोपड़ी चाटकर मूसन तिवारी राह टटोलते-टटोलते अपने घर की ओर चले गये। हमें कंधे पर बैठाये हुए बाबूजी गंगा-तट चले आये। फिर नहाने-धोने के बाद हमें सीधे पाठशाला में ले गये।

दूर से देखते ही गुरुजी बोले—लाइए, लाइए, मैं तो इसी की खोज में था। आज इसका भूत झाड़ूँगा। कहाँ था?

बाबूजी ने हँसते हुए कहा—पहले पाठ सुनिए। यदि पाठ याद न हो, तो दंड दीजिए। पहले पहाड़ा पूछिए, तब किताब पढ़वाइए, फिर बाद को हिसाब पूछिएगा!

गु०—अच्छा, यही सही। तारक, इधर तो आ।

हम बाबूजी की ओर देखते और अपनी सरकती जाती हुई धोती को बार-बार सँभालते हुए, धीरे-धीरे, गुरुजी के पास गये। उन्होंने हाथ पसारने को कहा।

हमने एक बार उनकी तरफ और एक बार बाबूजी की तरफ सकपकाई हुई नजरों से देखकर हाथ पसार दिया। उन्होंने हमारी हथेली पर अपनी छड़ी रखकर कहा, बोलो तो—'छड़ी मीठी, या गुड़ मीठा?'

हमने फिर उसी तरह एक बार बाबूजी और एक बार गुरुजी की ओर देखकर नजर नीची कर ली। हमारी हथेली पर छड़ी पड़ी ही रही। छड़ी के नीचे से हम हाथ हटा न सके। मालूम होता था, हाथ में छड़ी सट गई है। सचमुच बाल-भर भी अगर हम हाथ हटाते, तो सटासट छड़ी पड़ने लगती।

ईश्वर की कृपा से उसी समय झट गुरुजी के मुँह से निकल गया—बरतावन तो सुनाओ।

उनके मुँह से इतना निकलना था कि हमने बरतावन की डाकगाड़ी छोड़ दी—

क से करम करो, ख से खाओ, ग से गोबिन्दा के गुन गाओ
घ घर में मिलजुल के रहना, च चिकनी-चुपड़ी मत कहना
छ छल छन्द भूलि मत गहिए, ज जग में जस पावन लहिये
झ झगड़ा मत करिए भाई, ट टुटपुँजिया छोड़ कमाई
ठ ठट्ठेबाजी मत करना, ड डर छोड़ देस-रिन भरना
ढ ढकोसला से बच रहना, त तन-मन-बच से सच कहना
थ थूको मत घर में भैया, द दरिद्र को देहु रुपैया
ध से धरम करो मन लाई, न नहीं तो परलोक नसाई
प से पिता-पैर निज पूजो, फ से फल यहि सम नहिं दूजो
ब बन में जनि जाहु अकेला, भ भाई से न कर झमेला
म माता को सीस नवाओ, य युग-युग हरि के गुन गाओ
र रामायन रोजहिं पढ़ना, ल लसकर में आगे बढ़ना
व विद्या चित देकर सीखो, श शुभ-शांति-स्वाद नित चीखो
ष षटरस भोजन तज देना, स सादा भोजन कर लेना
ह से हवा साफ में टहलो, क्ष से क्षमा करो दुख सह लो
त्र से त्रान करो दुखियों का, ज्ञ से ज्ञान गहो मुखियों का
अनुस्वार से 'ओम्' उचारो, घर विसर्ग से 'शिवः' पुकारो

एकै—राम,	दूज के—चाँद
तीन—तिरलोक	चारो—वेद
पाँचो—पांडव,	छओ—शास्तर
सात—समुन्दर	आठो—वसु
नव—कविता-रस,	दसो—अवतार
ग्यारहो—रुद्दर,	बारहो—सूरज
तेरह—कुरी,	चौदहो—भुवन
पन्द्रह —तिथि,	सोलहो—सिंगार
सतरह—जवानी,	अठारहो—पुरान
उनीसो—कन्या,	बीसो—वर

बरतावन समाप्त होते ही बाबूजी ने लपककर हमें अपने अंक में भर लिया। गुरुजी हमारी पीठ ठोकने लगे। लड़के हमारा मुँह ताकने लगे। हमारे ओठों पर गरबीली मुस्कान छा गई।

आदि से अंत तक, एक सुर से, बरतावन कर जाने के कारण हमारा कुछ दम फूल गया। हमें गोद में उठाकर बाबूजी सामने की फुलवारी में ले गये। वहाँ हम खुली हवा में खेलने लगे और पौदों पर बैठी हुई रंग-बिरंगी तितलियों को पकड़ने के लिए उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

तब तक बाबूजी ने जोर से पुकारा—भोलानाथ! मिठाई लो।

मिठाई का नाम सुनते ही हमने तितलियों का पीछा छोड़ दिया! 'मिठाई' शब्द में जितना जादू उस समय था, उतना अब कहाँ? अब तो शहरी हवा लगने से वह जादू भी हवा हो गया!

बाबूजी ने बड़े प्रेम से दो पैसे के छः बताशे हमारे हाथों में देते हुए कहा—यह लो इनाम।

हमें इनाम देकर बाबूजी घर की ओर चले। हम भी उनकी ऊँगली पकड़कर उनके साथ-ही-साथ चले। उन्होंने कहा—बताशे जेब में क्यों रख लिये? खाते चलो।

हम—घर चलकर इनके साथ चूरा खायँगे।

बा०—क्या घर पर दूसरी मिठाई नहीं मिलेगी?

हम—मइयाँ से इसको दिखाकर खायँगे।

बा०—क्यों?

हम—इनाम जो पाया है!

वह हँस पड़े। 'शाबाश' कहते हुए हमें गोद उठाकर चूम लिया। हमारी हँसी ओठों की राह न निकलकर आँखों की राह फूट पड़ी।

जब हमलोग घर पहुँचे, तब और ही दृश्य देखा। मइयाँ रो रही थी। रामसहर से एक हजाम आया था। उसने बाबूजी को देखते ही सलाम करके एक चिट्ठी दी; बाबूजीने उसको पढ़कर फाड़ दिया।

हमारे नाना का गंगा-लाभ हो गया।

वहाँ से बुलाहट आई है—चीठी बाँचते ही चले आइए।

खाइए वहाँ, अंचाइए यहाँ। अपने आने का सँदेसा देकर हजाम को धुरिआये पाँव लौटाइए?

घर में मइयाँ रोती थी, बाहर बाबूजी उदास बैठे थे, और हम उनसे बताशे के साथ उड़ाने के लिए चूरा या चबेना माँग रहे थे। हमारे बार-बार ठिनकने पर एक बार बाबूजी ने बड़ी उदासी के साथ झुँझलाकर कहा—ठहरो भाई, चूरा-चबेनी मगाये देते हैं। तुम तो एक ही बात को कई बार फेरकर जी मठा कर डालते हो—मौका-बेमौका समझते ही नहीं।

इस पर हमारे ननिहाल के नाई ने अपने अँगोछे के छोर में बँधी हुई चूरे की गठरी हमारी ओर बढ़ाते हुए कहा—लो चूरा, हम तुम्हारे लिए लेते आये हैं।

हमने एक बार बाबूजी की ओर देखा, एक बार नाई की ओर; फिर चुप हो रहा। जब उसने आगे बढ़कर गठरी खोलते हुए कहा, आओ, तुम्हारे अँगरखे के जेबों में भर दूँ, तब हमने धीरे से अपने एक जेब का मुँह फैला दिया। उसने दो मुट्ठी चूरा और चार तिलकुट मेरे जेब में डाल दिये।

हम बैठकखाने से बाहर निकलकर खेलने लगे। जो दो-चार साथी आये, उन्हें भी एक-एक मुट्ठी चूरा दे दिया। एक ने कहा—तुम्हारे नाना सरग पर चले गये, तुम्हारी मइयाँ रो रही है।

हमने अपने मुँह में तिलकुट और बताशे के साथ चूरा का एक डबल फाँका लगाते हुए कहा—ऊँ, नाना तो रामजी से भेंट करने गये हैं। वह देखो बदरी के हाथी पर रामजी चढ़े चले जाते हैं। बाप रे बाप! सूँड़ कितनी बड़ी लटक रही है! उसी से यह रामजी का हाथी समुन्दर का पानी ऊपर-ही-ऊपर सोखकर नीचे बरसाता है। देखो, रामजी कितने जोर से हाथी दौड़ाते हैं।

उसी समय चार कहार एक पालकी लेकर पहुँचे। हम अपने साथियों के साथ दौड़कर जा बिराजे। ज्योंही हमलोगों ने आँखमिचौनी शुरू की, त्योंही स्त्रियों के झुंड से घिरी हुई मइयाँ रोती-धोती आ पहुँची।

कहारों ने हमारे साथियों को डाँट-डपटकर पालकी से अलग हटा दिया। हमको एक स्त्री ने अपनी गोद में उठा लिया। वह भी डबडबाई हुई थी, हमारी लटों को धीरे-धीरे सुधारती हुई बोली—अरे बच्चे को अभी मालूम ही नहीं है कि हमारी मइयाँ क्यों रो रही है!

एक बोली—अभी अबोध बालक है, जीने-मरने का सुख-दुख क्या जाने। इससे कुछ मत कहो, नहीं तो रास्ते-भर वहाँ तक रोता ही जायगा।

इतने में बाबूजी घोड़े पर चढ़े हुए आये और कहारों से पालकी उठाने के लिए कहकर आगे बढ़े। हम उन्हें देखते ही उनके साथ घोड़े पर जाने के लिए हाथ-पैर हिला-हिलाकर ठिनकने लगे। अन्त को उनके साथ घोड़े पर ही हम ननिहाल चले।

रास्ते के गाँवों में लोगों के पूछने पर जब बाबूजी यह बतला देते थे कि लड़का ननिहाल जा रहा है, तब मन-चले निमूछियों की टिटकारी पाकर लड़कों का झुंड यह गाता हुआ घोड़े के पीछे लग जाता था—

चल चल घोड़ा मधुरी चाल
अठवें दिन पहुँचे ननिहाल

४

दारोगाजी का चोर-महल

तेरे दयाधरम ना तन में
मुखड़ा क्या देखे दरपन में

मेरे दिन अब न बहुरेंगे। भगवान ने मेरी किस्मत में न जाने क्या लिखा है। जब से आई हूँ, चिड़िया का एक पूत भी इस आँगन में आने नहीं पाता। घर में अकेली बैठे-बैठे जी ऊब जाता है। न सास, न देवर, न गोतिनी, कोई भी तो नहीं—न आगे नाथ, न पीछे पगहा। भगवान ने ओर से छोर तक चौका लगा दिया है। यही अभागा मेरी किस्मत में कोयला से लिखा गया था, सो आकर आखिर सिर पर पत्थर पड़ा ही। आँगन में आता है, तो देखकर रोएँ जल जाते हैं। अभागा कहता है कि दूध-दही खाया करो; रुपये-पैसे का काम पड़े, तो सन्दूक में से—दस-बीस, सौ-पचास जो दरकार हो—निकाल लिया करो। मगर जब दूध-दही अच्छा लगे तब न खाऊँ या जबरदस्ती गला में ढरका लूँ? सन्दूक में और इसके रुपये-पैसे में दियासलाई लगा दूँगी। प्रेत के ऐसा मुँह लेकर आता है, मेरा मुँह चूमने! जी में तो आता है कि झाड़ू लेकर मुँह में मार दूँ! मुझे अपनी नतनी के बराबर देखकर भी तनिक नहीं लजाता। मुँहझौंसे के किसी अंग में छूकर भी लाज नहीं है। मुझे अपनी खुरखुरी दाढ़ी और पिचके हुए गाल दिखाने आता है। सुरती-तमाकू खाते-खाते तो अभागे का मुँह सूअर की खोभार हो गया है, बातें करते भी जी घीनाता है। बोलने लगता है, तो थूक के फुहारे पड़ने से मेरा मुँह भर जाता है, नाक फटने लगती है। न जाने इसके साथ मेरे दाना-पानी का मेल जुटाते समय भगवान का कपार क्यों नहीं फट गया। उनसे भेंट होती, तो मैं जाँत उठाकर उनके कपार पर पटक देती। हे सूरज बाबा! तुम्हीं प्रतच्छ देवता हो। तुम्हीं भले-बुरे को हाथ का हाथ फल देते हो। मनबहाल को कोढ़ी कर दो। उसके बीसों नहँ गलकर चू जायँ। जीते-जी उसकी आँख बैठ जाय। वह पानी विना तरस-तरस कर मरे। पिल्लू पड़ जायँ। मरने पर उसे कफन न जुरे।

यही कह-कहकर घर में बैठी अकेले सुगिया झख रही थी, अपने दिन को रो रही थी। उस घर में दूसरा कोई न था। कभी कुढ़ती, कभी झुँझलाती, कभी बौखलाकर आँगन में निकल आती, कभी खाट पर लेटकर चिन्ता करते-करते

अनायास रो पड़ती, कभी दाँत पीस-पीसकर मनबहाल सिंह को सरापती और कभी नाक-भौं सिकोड़कर कहीं भाग निकलने की बात सोचते-सोचते बेचैन हो जाती थी।

उधर घर में सुगिया सिर धुनती और पछताती थी, इधर मरदानी बैठक के चबूतरे पर गुदरी राय अपने बैलों को भूसा और खल्ली मिलाकर सानी गोतता था। एक बैल अगर दूसरे बैल के नाद में मुँह लगा देता था, तो गुदरी उसकी पूँछ ऐंठकर दो घूँसे लगाता था।

एक हट्टे-कट्टे हरहे बैल की कोख में गुदरी ने ऐसा कसकर घूँसा मारा कि वह जीभ निकालकर बैठ गया! उसके मुँह का कौर हलक के भीतर न जा सका। मुँह से गाज निकलने लगा। आँखें मानों उलट-सी गईं।

गुदरी ने उसकी पूँछ मरोड़कर बड़े जोर से खींचा। पर बेचारा उठ न सका, लेटकर हाँफने लगा।

इतने में बैठकखाने के ओसारे से गुदरी के चचेरे भाई झूमक राय ने चिल्लाकर कहा—अरे हत्यारा! गरदन में जो पगहे की घुंडी लगी है, उसे खोल क्यों नहीं देता? कसाई कहीं का! बाछीमार की तरह तमासा देखता है!

यह कहकर झूमक दौड़ा हुआ बैल के पास गया। गुदरी को अलग ढकेलकर बैल को उठाया—उसका शरीर काँपता था, वह शिथिल होकर चुपचाप खड़ा हो गया। अगल-बगल के बैलों ने उसकी दशा देखकर खाना छोड़ दिया! वे डरकर उसकी ओर देखने लगे।

गुदरी राय यह कहता हुआ ओसारे में चला गया कि जब न तब साला बड़ी गरियारी काछता है, इसकी दवा मैं ही जानता हूँ!

गुदरी ज्यों ही ओसारे में जाकर कंकड़ की चिलम भरने लगा, त्यों ही दारोगाजी घोड़े की पीठ पर से चौतरे पर उतरकर ओसारे की ओर आगे बढ़े।

दारोगाजी को देखते ही गुदरी का खून सूख गया। झूमक गौओं के पास खड़ा था। उसके भी काटो तो खून नहीं। वह ऊँचे चौतरे के किनारे-किनारे झुककर बड़ी जल्दी से भागा।

गाँव का चौकीदार दारोगाजी के घोड़े की लगाम थामकर खड़ा था। उसने झूमक को भागते हुए देखा तो; पर डर के मारे चुप साध गया; क्योंकि चौधरी लोग ही गाँव के जेठ-रैयत थे। तबतक उधर की गली से आते हुए पुलिस सिपाहियों ने भागता हुआ फिलाड़ी समझकर बेचारे झूमक राय को पकड़ लिया।

पकड़ो-पकड़ो का हल्ला सुनकर ज्योंही दारोगाजी चौतरे पर से गली की ओर कोड़ा लेकर उतरे, त्योंही गुदरी उनसे आँख चुराकर भाग चला।

गुदरी को भागते देखकर चौकीदार बेचारा चिल्ला उठा—दोहाई चौधरीजी की। ऐसी जबरदस्ती मत कीजिए। यह मेरे ऊपर सरासर जोर-जुलुम हो रहा है। मेरी रोजी चली जायगी। दारोगाजी फाँसी दे देंगे। मरौअत के बदले में सीनाजोरी क्यों करते हैं।

चौकीदार लाख चिल्लाता ही रहा, गुदरी नौ दो ग्यारह हो गया। घोड़ा छोड़कर चौकीदार गुदरी के पीछे दौड़ा।

दारोगाजी उधर भूमक पर कोड़े बरसा रहे थे, इधर असली खिलाड़ी सिर पर पैर रखकर भाग निकला। जब चौकीदार का चिल्लाना सुनकर दारोगाजी चौतरे पर उछलकर आये तब हाथ की चुहिया बिल में गई देखकर बगलें झाँकने लगे। उन्हें और कुछ तो नहीं सूझा, घोड़े पर चढ़कर अन्धाधुन्ध सरपट छोड़ दिया।

गुदरी राय सुगिया का पति था। वह असल में चोरों का मेठ था। बड़े-बड़े डकैत उसके हाथ में रहते थे। पूरा पनहा लेकर वह बड़ी-से-बड़ी डकैती का माल ऊपर कर देता था। चोरी का माल उतारने के लिए वह डंके की चोट हजार-हजार रुपये तक पनहा लिया करता था। कितने पुलिस-अफसरों को उसने चूना लगाया था। आज बुधिया की नालिश पर आये हुए दारोगाजी को भी उसने सूखे घाट उतार दिया।

दारोगाजी नये थानेदार थे। उन्हें ठीक पता नहीं था कि गुदरी राय इतना बड़ा चोरकट है। वह घोड़ा दौड़ाते हुए गाँव से बाहर कुछ दूर निकल गये। वहाँ अहीरों का बथान था। चौकीदार वहीं बैठकर रो रहा था। उसके कपड़े खून से तर थे। सिर फूट गया था! लोग घेरे हुए थे।

दारोगाजी के पहुँचते ही भीड़ छँट गई। उनको देखकर चौकीदार और भी फूट-फूटकर रोने लगा। हाथ जोड़कर रुँधे गले से कहा—दोहाई सरकार की, अब मैं गाँव में बसने न पाऊँगा। गुदरी राय के पट्टीदार ने लाठी से मारकर कपार फोड़ दिया है!

अहीरों के देवता कूच कर गये। सबने झुक-झुककर दारोगाजी को सलाम किया। कोई एक अच्छी-सी खाट लेकर दौड़ा, कोई दौड़कर उसपर बिछौने के लिए सुजनी ले आया, कोई दौड़कर पंखा ले आया और कोई कुछ लाने के बहाने से भाग निकला!

घोड़े को देखकर बथान में बँधी हुई भैंसें भड़क गईं। कितने तो छान-पघे तोड़कर और खूँटे उखाड़कर बँवाती हुई भाग चलीं। घोड़ा भी चंचल हो उठा—उछल-कूदकर हिनहिनाने लगा।

दारोगाजी घोड़े से उतर पड़े। उसकी अयाल पकड़ कर गरदन ठोकते और पुचकारते हुए बोले—बस बेटा !

घोड़ा शान्त हो गया ; पर बथान की भैंसों में उथल-पुथल मचा ही रहा। और अहीरों ने ताबड़तोड़ भैंसों को खोलकर चरने के लिए मैदान की ओर हाँक दिया।

दारोगाजी ने अहीरों से कहा—तुम लोगों को इस मामले में गवाही देनी पड़ेगी।

जो अहीर वहाँ हाथ बाँधे खड़े थे, वे एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

एक बूढ़े ने लड़खड़ाती जबान से कहा—दोहाई सरकार की ! हमलोग इस गाँव में बसे नहीं रहेंगे। कल ही चौधरी लोग उजाड़ देंगे। छप्पर पर एक खपड़ा भी नहीं बचेगा। हमलोग बिना नाधा-पैना के हो जायँगे। माल-मवेसी का पता नहीं लगेगा।

दारोगाजी ने जोर से डाँटकर कहा—चुप रह बदमाश ! मैं तुमलोगों की नस-नस पहचानता हूँ। तुम सब-के-सब चोरहटिया अहीर हो। तुमलोगों के देखते-देखते मेरा चौकीदार पीटा गया और अब 'दुहाई सरकार की' कहकर चोर से साधु बनना चाहते हो? ठहरो आज मैं फौरन तुमलोगों को थाने पर चालान करता हूँ।

एक दूसरा बूढ़ा अहीर रोएँ गिराकर बोला—दोहाई राजाजी ! अब तो आप ही बाप-महतारी हैं। आप अरज-गरज न सुनेंगे, तो कौन सुनेगा? जो इन्साफ समझिए सो कीजिए। पाँसा पड़े सो दाँव, राजा करे सो न्याव।

दारोगा—बस, अब मैं तुमलोगों का अरज-गरज सुनने नहीं आया हूँ या तो गवाही करने के लिए कमर कसो या थाने का रास्ता पकड़ो। दो में से एक होगा। तीसरा तो मैं कुछ जानता ही नहीं।

फिर वही पहला बूढ़ा हाथ जोड़कर और अपने बेटे को आगे करके बोला—पिरथीनाथ ! हमको यही एक औलाद है। इसी के माथे पर हाथ धरकर कहते हैं कि हमलोगों ने अपनी आँखों किसी को नहीं देखा है। आप अपने चौकीदार ही से पूछ लीजिए। उसी के कहने पर हमलोगों को मालूम हुआ है। दोहाई धरमावतार की ! समूचा गाँव 'तीन-तागा' लोगों का है, रेज-पैया बहुत कम हैं। गाँव में जैसे दो-चार-दस पवनी-पवाई हैं, वैसे ही एक कोने में हमलोग भी किसी तरह गुजर-सफर करते हैं। हमलोगों के मुँह से कोई जोखिम की बात निकल जायगी तो आज के बिहान ही चौधरी लोग सलाह करके सूरज-अछत ही लूट लेंगे।

दारोगा—तुमलोगों के सिर पर काल नाच रहा है। लात का आदमी बात से नहीं मानता। जब अच्छी तरह बेभाव की पड़ेगी, तब आप ही भूत की तरह बकोगे। सब कथनी भूल जायगी, अभी तो मैं सीधी तरह बात करता हूँ।

दूसरा बूढ़ा अहीर—सरकार का तो राज ही है। सरकार के हुकुम से हम-लोग बाहर नहीं जा सकते। जायँगे तो रहेंगे कहाँ? पहार से समुन्दर तक तो सरकार ही की गौरमिंटी है। भागने से भी तो जान नहीं बचेगी। आपही पनाह देंगे, तो हमलोग बसे रहेंगे। नहीं तो अनदेखी बात की चसमदीर गवाही देने पर गाँव के चौधरी लोग नाच नचाकर मार डालेंगे। ऐसे तो आप अपसर हैं, हाकिम हैं, सरकार-बहादुर की देह हैं। आपही का सब अखतियार है। हमलोग तो काम पड़ने पर आपके जूते उठानेवाले आदमी हैं। मार, गारी, लात, जूता—सब सहने को तैयार हैं।

दारोगा—इसीलिए तो तुमलोगों से जूतों से बात करूँगा। अगर बिना जूते से खबर लिए ही तुमलोग सीधी राह पर चले आते तो मैं क्यों यहाँ से थाने तक तुमलोगों को हैरान-परेशान करता? मैं तो जानता हूँ कि गुदरी राय बड़ा भारी डकैत है। मुझे सब बातों का पता लग गया है। अब मैं उसका पिंड न छोड़ूँगा।

चौकीदार—सरकार गुदरी राय गाँव ही में हैं, कहीं दूसरी जगह नहीं गये हैं। तहकीकात कीजिए।

दारोगा—चलो, गाँव में तहकीकात करूँगा। उसके घर की भी तलाशी लूँगा।

चौकीदार—अब गुदरी राय जल्दी हाथ न लगेंगे। रहेंगे तो इसी गाँव-जवार में घुम-फिरकर, मगर उनको कोई देख नहीं सकता।

दारोगा—अच्छा, देखा जायगा। यह गाँव-जवार ऐसा मिर्च का टापू नहीं है कि गुदरी राय का मिलना मुश्किल हो जायगा। माल की जब्ती होने पर आप ही हाजिर होगा।

यह कहकर दारोगाजी झट घोड़े पर सवार होकर गाँव की ओर चले। साथ ही, पीछे-पीछे चौकीदार और बूढ़े-बूढ़े अहीर भी चले। रास्ते में घोड़े को पीछे की ओर घुमाकर दारोगाजी ने जोरों से कहा—सब अहीरों को मेरे साथ थाना तक चलना पड़ेगा, नहीं तो मैं सबपर बदमाशी चला दूँगा। पहले तो यहीं मारते-मारते चेहरा बिगाड़ दूँगा।

दारोगाजी की बात सुनकर सब अहीरों का खून सूख गया। एक तो—बेचारे बेकसूर फँसाये जाते थे, दूसरे—गाँव के बड़े आदमियों को मामले में पड़ना उनके लिए बड़ा खतरनाक था और तीसरे—उसके मन में दारोगाजी का बड़ा भारी डर भी समा गया।

जब दारोगाजी गाँव में पैठे, तब देखा कि इधर-उधर काना-फूसी हो रही है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि लोगों पर मेरे रोब-दाब का प्रभाव नहीं है। कितने आदमी मिले, पर कहीं सलामी न दगी। कुछ लोग उन्हें देखकर आपस में

हँसे भी। कुछ लोगों ने बड़ी हुज्जत के बाद निडर होकर अपना नाम बतलाया और बतलाया भी तो अंड-बंड बतला दिया।

जब दारोगाजी गुदरी राय के दरवाजे पर पहुँचे, तब देखा कि सिपाही गायब हैं, गुदरी के माल-मवेशी का पता नहीं है।

यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। समझ गये कि गाँववालों की कारसाजी है। सोचने लगे—या तो सिपाहियों को मार-पीटकर गिरफ्तार किया हुआ मुद्दालह जबरदस्ती छुड़ा लिया गया है या असली मुद्दालह न समझकर सिपाहियों ने कुछ घूस लेकर उसे छोड़ दिया है; पर मेरे हुक्म के विना ये ऐसा कभी कर नहीं सकते।

दारोगाजी का पहला अनुमान ठीक निकला। गाँववालों ने सिपाहियों को खूब गोधन कूटा था! उनसे मुद्दालह को भी छीन लिया था। वे बेचारे जान छुड़ाकर भाग गये थे।

दारोगाजी को यह हाल एक लड़के से मालूम हुआ। उसने हँसते-हँसते यह भी कह दिया कि लोग दारोगा को मारने की तैयारी कर रहे हैं।

लड़के की बात सुनकर दारोगाजी का माथा ठनका। उन्होंने झट घोड़ा ठोंका और देखते-देखते कई कोस उड़ गये।

कान-पूँछ सटकाकर घोड़ा सरपट दौड़ा चला जाता था, इतने में सिपाही देख पड़े। उन्हें देखते ही दारोगाजी ने घोड़े की लगाम खींचकर उसकी गरदन पर जोर से थपकी लगाई। वह हाँफता हुआ खड़ा हो गया। मुँह से गाज फेंकने लगा। देह पसीने-पसीने हो गई।

दारोगाजी का भी तालू चटक गया। उन्हें देखते ही सिपाही रो उठे। एक तो रोते-ही-रोते घोड़े की लगाम थामकर उसे टहलाने लगा। दूसरा अपने शरीर पर लाठियों के घाव दिखलाने लगा।

दारोगाजी ने घबराहट के साथ कहा—कण्ठ सूख रहा है। पहले थोड़ा पानी पिलाओ। जो होनी थी, सो हो चुकी। परवा नहीं, देख लूँगा।

सिपाही—अभी थोड़ी देर तक ठंढे हो लीजिए। ठहरकर पानी पीजिएगा। नहीं तो कलेजे में लग जायगा। गरमाये हुए आये हैं। पोखरे का पानी पीते ही खाँसी हो जायगी।

दारोगा—क्या कहीं आसपास में कोई कुँआ नहीं है? तालाब का पानी मुझे नुकसान पहुँचावेगा!

सिपाही—कुँआ तो पास ही है, मगर लोटा-डोरी नहीं है। लोगों ने मारकर छीन लिया। अच्छा, मैं अपनी पगड़ी में पेड़ की पत्तियाँ बाँधकर कुँए से जल

निकालता हूँ। आप मेरे साथ वहाँ तक चलने की तकलीफ कीजिए; क्योंकि उससे यहाँ तक पानी आ नहीं सकता।

दारोगाजी ने कुँए पर जाकर जल पिया और बरगद के साये में लेट गये। जो सिपाही घोड़े को टहला रहा था, उसे बुलाकर बरगद की जड़ में एक तरफ घोड़े को बँधवा दिया। फिर दोनों सिपाहियों से व्योरेवार हाल सुनाने के लिए कहा। वे एके-बाद-दीगरे कहने लगे।

पहला—जिस वक्त हमलोगों से एक लड़के ने आकर कहा कि गुदरी राय के एक पट्टीदार ने चौकीदार को बड़ी मार मारी है और गोजी लगने से उसका सिर खुल गया है, उसी वक्त हमलोग समझ गये कि गाँव बड़ा खड़यंत्री है, यहाँ से टल जाने में ही खैरियत है। जिस आदमी को हमलोगों ने पकड़ा था, उसका एक भाई गोजी भाँजता हुआ आया और अंट-संट बकने लगा। जब उसकी गरमी न सही गई, तब हमलोग भी गरमा गये। दोनों ओर से आधे घंटे तक खूब गरमा-गरमी हुई। इतने में उसने गोजी चला दी। मैंने अपने सोटे पर उसकी गोजी रोककर सोटा चलाया। संयोग बिगड़ा हुआ था, मेरे हाथ से सोटा छूट पड़ा। फिर तो वह बाघ हो गया। मुझपर दनादन लाठी चलाने लगा। मैं भागकर ओसारे में चला गया। वह भी मेरे पीछे पड़ गया, ओसारे तक में घुसकर मेरे साथ बाजने लगा। एक तो खेलाड़ी जवान, दूसरे रोष से भरा हुआ, तीसरे अपने गाँव में था, चौथे कछनी मारकर पहले ही से झगड़ा करने के लिए सजग होकर आया था। मेरा तो जिन्दगी भर का पाला हुआ सोटा जब हाथ से छूट गया, तभी मैं समझ गया कि आज बिधाता बाम है। अगर मेरा वह दुखभंजन मेरे हाथ में होता, तो मैं कितनों की खोपड़ी रंग देता। उस सोंटे को एक लड़का उठाकर ले भागा। मैं ताकता ही रह गया! उसे उठा लेने के लिए मुझे झुकना पड़ता। मैं इस डर से नहीं झुका कि ऊपर से लाठी हन देगा, तो वहीं-का-वहीं पसर जाऊँगा। सोटे को दूध पिला-पिलाकर मैंने लाल किया था। उसमें ऐसी गुसी थी कि वह अगर मेरे हाथ में होता, तो उसी जगह मैं कितनों की लाश गिरा देता।

दारोगा—अच्छा, अब तुम चुप रहो। इसको कहने दो। तुम दोनों का बयान सुनकर मैं इस मामले को नये साँचे में ढालूँगा। गाँववालों को मैं नंगा-नाच नचाऊँगा कि उन्हें जिन्दगी-भर न भूलेंगे। वे भी जानेंगे कि किसी दारोगा से काम पड़ा था। अगर मैं गाँववालों को करवा-कोपीन न कर छोड़ूँ, तो आज से मेरे जनेऊ को ताँत समझना।

दूसरा—अगर ऐसा न कीजिएगा, तो फिर हमलोगों की पुलिस की नौकरी कौड़ी की तीन हो जायगी। मामूली राह चलता आदमी भी हमलोगों को मार

बैठेगा। रास्ता चलना कठिन हो जायगा। इस गाँव में तो मालूम हुआ कि सरकार का राज ही नहीं है! उधर इनके साथ असामी का भाई बाजने लगा, इधर मेरे साथ खुद असामी ही भीड़ गया। हाथापाई होते-होते उसने छीना-झपटी में मेरा डंडा छीन लिया। मगर मैंने उसका गट्टा न छोड़ा। इतने में एक दूसरा आदमी बजरबोंग की-सी लाठी लेकर दौड़ आया। तब तक मैंने इनको धोबी-पछार खाकर गिरते देखा। बस झटपट असामी छोड़कर मैं इनकी मदद करने के लिए लपका। सोचा, इनको छुड़ा लेने पर मैं अकेला न रहूँगा, और अगर हम दोनों डटकर खड़े हो जायँगे, तो किसी की लाठी छीनकर भी बहुतों को घायल कर डालेंगे। लेकिन पीछे से जो बजरबोंग लेकर दौड़ा आया, उसने और असामी ने भी ऐसा सरियाकर मुझे मारा कि मैं मुँह के बल वहीं गिर पड़ा—इनके पास तक भी न पहुँच सका। जब हम दोनों दो जगहों पर गिर पड़े तब एक बूढ़े ने आकर हमलोगों की जान बचाई। फिर हमलोग का वहाँ पाँव न जमा। वहाँ के छूटे हमलोग यहीं आकर बैठे हैं। मगर चोट मालूम नहीं हुई थी। अब तो अंग-अंग दुख रहा है। थाने तक पहुँचने की हिम्मत नहीं रही। रास्ते में डेग देने की इच्छा ही नहीं होती। यहाँ तक तो जान के खौफ से किसी तरह भाग आये हैं। आगे के लिए अब फाल नहीं उठता।

दारोगा—तुमलोग यहीं ठहरो। मैं घोड़े पर जाता हूँ। थाने पर पहुँचते ही फौरन कोई तेज एक्का भेजूँगा। उसी पर तुमलोग आराम से चले आना। तब तक चौकीदार भी पीछे से आ जायगा। उसको भी साथ लेते आना। पहले मेरी वर्दी-पेटी फाड़कर इस तालाब में डाल दो। मेरे और कपड़े-लत्ते भी नोच-चोथकर फाड़ डालो। मैं बड़े साहब को अपनी दुर्दशा दिखलाऊँगा। उनसे किसी तरह हुक्म लेकर कल या परसों तक इस गाँव पर जरूर छापा मारूँगा।

सिपाहियों ने दारोगाजी के कहने के मुताबिक ही काम किया। उनके कपड़े-लत्ते चिथड़े कर डाले। वर्दी-पेटी के टुकड़े-टुकड़े करके तालाब में डाल दिया!

घोड़े पर सवार होकर दारोगाजी ने एँड़ी लगाई। घोड़ा हवा से बातें करने लगा, थाने में पहुँचते देर न लगी। उन्होंने उसी समय एक एक्कावान को पकड़ मँगाया। उसे सख्त ताकीद करके हुक्म दिया—फौरन जाकर सिपाहियों को थाने में ले आओ।

उधर एक्कावान एक्का लेकर रवाना हुआ, इधर दारोगाजी ने चारपाई पकड़ी। थाने में तहलका मच गया। पुलिस के बड़े साहब खबर पाते ही दौड़े आये। मजिस्टर साहब भी घबराये हुए पहुँचे। कोट बाबू और इन्सपेक्टर साहब भी दफ्तर छोड़कर पैर-गाड़ी दौड़ाते हुए आये। तमाम सनसनी फैल गई।

दूसरे ही दिन दल-बल के साथ बड़े साहब ने उस गाँव पर छापा मारने के लिए कूच किया। गाँववालों को उड़ती हुई खबर मिली कि आज हरवा-हथियार के साथ पुलिस इस गाँव पर छापा मारने के लिए आ रही है।

सारे गाँव में घर छोड़कर भागने की कानाफूसी होने लगी। स्त्रियाँ घबरा उठीं। जैसे मेघनाद की अवाई सुनकर देवलोक में भगदड़ मच गई थी, वैसे ही गाँव में पुलिस के खौफ का जबरदस्त तूफान आ गया।

किसी से किसी ने सलाह तक न पूछी। अपनी-अपनी जान लेकर सब भागे। बेटे ने माँ-बाप को, भाई ने भाई को, मित्र ने मित्र को, नौकर ने मालिक को, और बाप ने बेटे को छोड़ दिया। पर बहनें अपने भाइयों को, बहुएँ अपने पतियों को और माताएँ अपने पुत्रों को गाँव ही में घूम-घूमकर ढूँढ़ती रह गईं।

जो स्त्रियाँ कभी घर से बाहर भी नहीं निकली थीं, जो गाँव की दो-चार गलियों में ही घूम-फिरकर भूल जा सकती थीं, जो कभी मौका पड़ने पर किसी से बोलना तो दूर की बात—तनिक आँख भी बराबर नहीं कर सकती थीं, वे भी अपने भाइयों, पतियों और पुत्रों को ढूँढ़ने के लिए गाँव की गली-गली में हाय-हाय करती और बिलबिलाती फिरीं।

पर जो स्त्रियाँ अनेक बार भृगुरासन और हरिहर-क्षेत्र के मेले में धक्के खा चुकी थीं, जो काशी के गरहन-नहान के धरम-धक्के में पड़कर मेले-ठेले की बहार देख चुकी थीं, जो प्रयाग और पंचकोसी कर चुकी थीं, वे तो भाग निकलीं—कोई नैहर चली गईं, कोई ससुराल चली गईं, कोई आसपास के गाँवों में जा छिपीं। लेकिन परदे में रहनेवाली स्त्रियों से भागते न बना। वे गाँव में ही भटकती रह गईं।

देखते-ही-देखते पुलिस-दल गाँव में पहुँच गया। निगोड़े पुरुष तो गाँव छोड़-कर भाग ही चुके थे, बच गई थीं—बेचारी स्त्रियाँ। उन्हीं को उजड्ड पुलिस-सिपाहियों के पंजे में फँसना पड़ा। हरिनियों के दल पर शिकारी कुत्तों की तरह पुलिस-सिपाही बेचारी अबलाओं पर टूट पड़े। उन्हें माल-मवेशी या जमा-जथा से क्या मतलब, बहू-बेटियों की लाज लूटने लगे।

स्त्रियों की चिल्लाहट से सारे गाँव में कुहराम मच गया। माँ के सामने बेटी की आबरू पर पानी फिर गया। सास के सामने पतोहू की इज्जत चली गई। घर के माल-असबाब का पता बतलाने पर भी बेचारियों का पत-पानी न बचा। गिड़गिड़ाने पर गला दबा दिया गया। दाँत दिखाने पर कन-चप्पड़ मारकर पटक दिया गया। प्राणों की भीख माँगने पर जबरदस्ती करके प्राण ले लिये गये। 'बिना माथ की फौज' ने गजब ढा दिया।

इतना ही नहीं, कितने घरों में आग लगा दी गई, कितनों के छप्पर उजाड़ दिये गये--किवाड़ तोड़कर जला दिये गये। मल-मूत्र से गाँव के कुँए तक भ्रष्ट कर दिये गये।

जहाँ तक अन्धेर मचाते बना, मचाया गया। टट्टी में खूब छेद किया गया। छाती पर खूब मूँग दली गई। कितनों ने गहरा हाथ मारा। पर बहुतों ने केवल बेचारी स्त्रियों के सताने में ही अपनी बहादुरी दिखाई।

सब कुछ हुआ, परन्तु अभी तक गुदरी राय पकड़ा नहीं गया। पुलिसवाले ढूँढ़ते-ढूँढ़ते हैरान हो गये, और वह अपने घर के तहखाने में ही छिपकर बैठा हुआ था!

चोरी का माल छिपाने के लिए उसने अपने घर ही में एक गुप्त तहखाना बना रखा था। उसी तहखाने में उसके साथ बेचारी सुगिया भी छिपी हुई थी! वह बेचारी अपने पड़ोस की स्त्रियों की चिल्लाहट सुनकर डर से थर-थर काँप रही थी। जब कभी उसे रुलाई आती थी, गुदरी दाँत पीसकर घूँसा तानता था—वह डर से दबक जाती थी। कभी-कभी वह डरकर गुदरी से लिपट जाती; पर झट घिनाकर अलग हो जाती। गुदरी उसका सिसकना भी सुनता, तो दाँत कटकटाकर उसकी गरदन दबाने लगता!

कई बार गुदरी ने सुगिया को झकझोर कर ढकेल दिया। वह गिर पड़ी। पर मार खाने के डर से तनिक ठिनकी भी नहीं।

सुलोचना के साथ पाताल में बिराजते हुए मेघनाथ की तरह सुगिया के साथ गुदरी राय तहखाने में बैठा हुआ था। उसे विश्वास था कि पुलिस इस तहखाने का पता न पा सकेगी।

परन्तु इस लोक में पुलिस से छिपकर बच जाना बड़ी टेढ़ी खीर है। पुलिस केवल भूलोक का ही नवग्रह नहीं है, पाताल की भी डाकिनी है। सनीचर की नजर से बच जाना आसान है, नदी में मगर से पिण्ड छुड़ा लेना सहज है, पर यमलोक में छिपकर भी पुलिस के चंगुल से बचना बड़ा कठिन है।

जब पुलिस को पता लग गया कि असल आसामी का घर यही है, तब ताला तोड़कर वह भीतर समा गई। पहले खुद दारोगाजी घर में पैठे। घर के कोने-कोने तक की तलाशी ली, पर गुदरी राय का पता न लगा।

अब सिर्फ एक घर बाकी था। पर उस घर में संडास के सिवा अगर और कुछ था तो घोर दुर्गन्ध और अंधकार भी ऐसा कि सूई न समा सके।

दारोगाजी रूमाल से नाक बन्द किये उस संडासवाले अंधेरे घर में भी घुस गये। उसका दरवाजा इतना छोटा था कि धनुही की तरह कमर झुकाकर उनको अंदर जाना पड़ा।

अब तक बेचारे ने कहीं किसी देवता के मन्दिर के सामने भी इस तरह सिर न झुकाया था। पर संयोग ऐसा कि सिर भी झुका, तो संडास के सामने।

बेचारे की कमर दुख गई। मगर भीतर जाने पर भी उन्हें कुछ सूझ न पड़ा। बज्रमूर्ख के हृदय में भी शायद ही वैसा अंधकार हो? हाँ, अगर कहीं हो, तो हिन्दू-विधवा की आँख के सामने वैसा अंधार हो सकता।

सचमुच ऐसा गाढ़ा अंधकार था कि दारोगाजी को अपना हाथ तक न सूझ पड़ा। दुर्गन्ध से नाक फटी जाती थी। लवेंडर से बसा हुआ रूमाल भी दुर्गन्ध की लहर न रोक सका।

बेचारे ऊबकर बाहर निकल आये। बहुत झुँझलाकर बोले—लालटेन जलाकर खानातलाशी लो। उफ्। बदबू के मारे सिर चकरा गया। छिः। न जाने किस पाप के फल से आज नरक झाँकना पड़ा। खैर, लालटेन जलाई गई। दारोगाजी लालटेन के साथ फिर उस घर में घुसे। एक कोने में उन्हें एक गढ़ा देख पड़ा। वह घास-पुआल से ढका हुआ था।

दारोगाजी की आज्ञा से कनस्तबलों ने गढ़े के अन्दर से घास-पुआल निकालकर संडास के मुँह पर डाल दिया।

संडास बन्द होने पर भी दुर्गन्ध विशेष कम न हुई; क्योंकि बरसों से उस घर की हवा तक में दुर्गन्ध भर गई थी। मारे बदबू के सबका सिर घूमने लगा।

लालटेन के सहारे खूब गौर से देखने पर उस गढ़े में एक छोटा-सा दरवाजा देख पड़ा; पर उसके अन्दर भी गाढ़ी अँधियारी के सिवा और कुछ नजर न आया। बड़ी हिम्मत करके चार सिपाही लालटेन के साथ उसके भीतर घुसे।

लालटेन की रोशनी अन्धकार के उस गहरे समुद्र में बिलकुल एक छोटी-सी किश्ती के समान थी। सोटाधारी सिपाही स्याही के समुद्र में उसी छोटी किश्ती के सहारे आगे बढ़ने लगे।

बड़ा लम्बा-चौड़ा तहखाना था। सिपाहियों ने चारों ओर टटोल डाला, कहीं कुछ न मिला। एक कोने में दीवार के अन्दर खोदकर एक आदमी के सोने-बैठने के के लिए थोड़ी-सी खोखली जगह बनाई हुई थी। उसी में सटककर बैठे हुए दो आदमियों को सिपाहियों ने अलग ही से देखा।

स्याही के उस अथाह समुद्र में बेचारी मछली की गरदन दबाये हुए डरावने घड़ीयाल को देखकर सिपाही चौंक पड़े। तब तक सुगिया को छोड़कर गुदरी राय सिपाहियों पर बड़े जोर से झपटा। उसके हाथ कटार थी। तहखाने की छत बहुत नीची होने के कारण सिपाही सोटे न चला सके।

रोशनी की वह छोटी किश्ती धक्का लगते ही स्याही के समुद्र में डूब गई। सिपाही बेचारे अथाह समुद्र में पड़ गये। सुगिया की घिग्घी बँध गई।

चारों सिपाहियों को घायल करता हुआ गुदरी राय तीर की तरह बाहर निकल गया। सिपाहियों की चिल्लाहट सुनकर बाहर के दरवाजे पर खड़े हुए दारोगाजी होशियार हो गये। वह कनस्तबलों और चौकीदारों के साथ हरवा-हथियार से लैस होकर बड़ी चौकसी से खड़े थे।

भीतर से लाठी और कटार लेकर निकलते ही गुदरी राय ने जोर से ललकार कर दारोगाजी पर वार किया। एक ही लाठी में बेचारे का सिर खुल गया! वह अचेत हो गिर पड़े।

गुदरी राय गोजी चलाने में बड़ा करकस था। वह इसलिए कभी लाठी लेकर नहीं चलता था कि क्रोध में अगर किसी पर लाठी चल गई, तो नाहक हत्या होगी! उसकी लाठी की मार बड़े-बड़े जबरदस्त साँड़-भैंसे भी नहीं सह सकते थे। चलीसा लग जाने पर एकबार उसने पेड़ की एक मोटी डाल को अपनी लाठी के ही वार से मार गिराया था! बड़े-बड़े लठैत उसको उस्ताद मानते थे। बुढ़ापे में भी वह बड़ा जबरजंग लठधर था।

जब वह छरक-छरककर गोजी भाँजने लगा, तब उसके हाथ की सफाई पर कनस्तबलों और चौकीदारों की आँखें न ठहर सकीं। पर दारोगाजी की खोपड़ी को छुतिहे घड़े की तरह फूटते देखकर वे गुदरी राय पर एक साथ ही टूट पड़े।

एक आदमी के लिए एक ही आदमी काफी होता है। बेचारे गुदरी पर एक साथ ही बीसियों आदमी टूट पड़े!

देहाती आँगन—काफी लम्बा-चौड़ा था। उसमें गुदरी कभी-कभी खलिहान लगा दँवरी भी कर लेता था। वहीं चकराबीह की लड़ाई ठन गई।

जब दारोगाजी ने देखा कि गुदरी ने कई खोपड़िया रंग डालीं और कितनी खोपड़ियों को रूई की तरह धुन डाला, तब उन्होंने उसे डराने के लिए अपने खरीते से तमंचा निकालकर आसमानी दाग दी। पर इससे भी जब उसकी आँच कम न हुई, तब उन्होंने घबराकर अपनी जान के डर से उसे गोली मर दी!

बेचारा वहीं ढेर हो गया। उसकी आँखें टँग गईं। बित्ते-भर का आग उगलनेवाला तमंचा इतने बड़े लठबाज को ले बीता! सुगिया का सुहाग मिट गया!

बड़ी बीरता दिखाने के बाद गुदरी राय खेत रहा। गिर जाने पर भी बेचारे की बड़ी दुर्गति हुई। जैसे बड़े भाग्य से मिली हुई टटकी लाश को गीध और कुत्ते नोच डालते हैं, वैसे ही कनस्तबलों और चौकीदारों ने उसकी दुर्दशा कर डाली! दारोगाजी ने अपमे बूट की ठोकर से उसके बचे-खुचे दो-चार दाँत भी तोड़ डाले!

परन्तु इन पीड़ाओं को सहने से पहले ही गुदरी राय के प्राण-पखेरू उड़ गये थे। वह बूढ़ा था सही; पर इस बुढ़ौती में भी गाँव-जवारवाले उसका लोहा मानते थे। अगर इस समय भी वह खुले मैदान में होता, तो उसकी पीठ में धूल न लगने पाती, बहुतेरों को खाट पर लदकर अस्पताल जाना पड़ता, कितनी माँगें धुल जातीं, कितनों का अंग-भंग हो जाता, फिर भी जिनपर उसकी भरपूर लाठी बैठी, वे उठकर पानी न पी सके, अस्पताल का मुँह न देख सके! यहाँ तक कि जिन्हें उसकी एक भी लाठी लगी थी, वे भर-मुँह मिट्टी ले उठे थे।

तहखाने से निकले हुए घायल सिपाहियों ने जब दारोगाजी से उसके अन्दर बैठी हुई एक स्त्री का पता बतलाया, तब उन्होंने फिर रोशनी जलाने की आज्ञा दी। इस बार दो लालटेनें जलाई गईं। आगे-आगे दारोगाजी तहखाने में पैठे। उनके पीछे-पीछे कई कनस्तबल भी चले। सबके हाथों में नंगी तलवारें थीं। पर वह भरा-भराया पिस्तौल लिए हुए थे।

सिपाहियों ने कोने में उन्हें उँगली के इशारे से उस स्त्री को दिखलाया। उन्होंने दोनों लालटेनों को कुछ ऊपर उठवाकर बड़े गौर से देखते हुए डपट के साथ कहा—यह औरत नहीं, मर्द है। इसको पकड़कर बाहर निकालो, अगर वार करेगा, तो फौरन गोली मार दूँगा।

'गोली' का नाम सुनते ही सुगिया चिल्ला उठी! दारोगाजी आवाज से पहचान गये कि यह औरत है। सोचा, शायद यही गुदरी की स्त्री सुगिया है, जिसको मनबहाल ने बेचकर बुधिया को धोखा दिया है। अगर यह सचमुच सुगिया ही है, तो अच्छा शिकार हाथ आया। सिर फूटने के दर्द की दवा मिल गई! बुधिया की दोनों छोटी लड़कियों की तरह यह भी खूबसूरत होगी।

सिपाहियों को अलग रहने की आज्ञा देकर क्रोध से दाँत पीसते हुए सुगिया के पास गये। लम्बी साँस खींचकर रोती हुई सुगिया का घूँघट उठाते हुए उन्होंने जोर से कहा—तू कौन है रे? सीधी तरह बाहर निकल, नहीं तो कोड़ों से मारते-मारते बेहोश कर दूँगा।

सुगिया ने बड़ी दीनता से सिसकते-सिसकते सिर नीचा कर लिया। उन्होंने उसका जूड़ा पकड़कर जोर से झकझोरते हुए उसका मुँह अपनी आँखों के सामने किया।

उस समय सुगिया की आँखें बंद थीं। उसके ओठ काँपते थे। लालटेनों की धीमी रोशनी में भी उसके गोरे मुँह पर पड़ी हुई पसीने की बूँदें नजर आती थीं।

लम्बी-लम्बी कजरारी आँखें, बाँकी-तिरछी भवें, पतली नाक, सुचुक ठुड्डी, गुलाबी गाल, ऊँचा लिलार, अनारदाने-से दाँत, बिखरे हुए चिकने बालों के घुँघराले गुच्छे, चेहरे पर गजब का पानी! मानों देह के रोम-रोम को शोभा चूम रही हो।

रात के मुँदे हुए सुन्दर कमल-सा मनोहर मुखड़ा देखकर दारोगाजी का मन हाथ से निकल गया! क्रोध काफूर हो गया!

सिपाहियों ने अलग ही से कहा—हुजूर, आपसे यह हरामजादी सीधा न होगी। हमलोगों को हुक्म दीजिए, झोंटा पकड़कर घिसियाते हुए आँगन में ले जायँगे, कसकर चार सोंटे जमायेंगे, सारा पाखंड घुस जायगा। अगर आँखें नहीं खोलती, तो खींचकर दो-चार थप्पड़ जमाइए, आप-से-आप आँखें खुल जायँगी। नखड़ा काछती है।

सिपाहियों की बातें सुनते ही सुगिया ने अपनी आँखें खोल दीं। अहा! उसकी शरबती आँखों में लाज, डर, संकोच और दीनता के बड़े चुटीले भाव भरे हुए थे!

दारोगाजी तसवीर बन गये! उनकी आँखें कामना के कुंड में तैरने लगीं—लालसा की लहरों के साथ खेलने लगीं। सिर के घाव का दर्द भूल गया! मंत्र से बँधे हुए विषधर की तरह वहीं-के-वहीं खड़े रहे। उसका जूड़ा उनके हाथ में था। उसकी सलोनी सूरत उनकी आँखों में खुबी थी।

सुगिया की आँखें मौन भाषा में उसके दहलते हुए दिल की बातों का पता बताती थीं, और दारोगाजी की आँखें उसकी आँखों की मुग्धता का प्रसाद ले रही थीं। दारोगाजी के हृदय में बैठी हुई लालसा राक्षसी सुगिया के सतीत्व के खून से अपना खप्पर भरना चाहती थी, और सुगिया की आँखें दया की भीख माँगने के लिए उनके सामने अपनी झोली का मुँह फैलाये हुई थीं!

पर भीख दे कौन? लाज का लम्पट लुटेरा क्या दया की भीख देता है? जान का गाहक क्या जीवन का दान देता है? खून का प्यासा क्या दया का शीतल जल पिलाता है? नहीं। जिसके घर में खेती नहीं होती, वह क्या अन्न से भिक्षुक की झोली भरता? जिसकी अंटी में दाम नहीं, वह क्या भिक्षुक के फैलाये हुए हाथ पर कुछ देने के लिए हाथ उठाता है? कभी नहीं!

दारोगाजी के किसी पुश्त में दया की खेती नहीं हुई थी! उनके पिता पटवारी थे। पटवारी भी कैसे? गरीबों की गरदन पर अपनी कलम टेनेवाले! उनकी कलम की मार ने कितनों की कमर तोड़ दी थी, कितने बिना नाधा-पैना के हो गये थे, कितनों का देस छूट गया था, कितनों के मुँह के टुकड़े छिन गये थे।

फिर दारोगाजी से और दया से क्या सरोकार? घोड़ा अगर घास से दोस्ती करे, तो खाय क्या? और भला भेड़िया कहीं भेड़ों पर दया करता है! कालीजी का पुजारी कभी बकरों पर दया दिखाता है?

जो हो, सुगिया ज्यों ही तहखाने से बाहर लाई गई, त्यों ही उसने गुदरी की लाश देखी! चिल्लाकर रोती हुई उस लाश की ओर दौड़ी, और उसपर लोट-लोटकर

रोने लगी—हाय राजा! मुझे अकेली छोड़ कहाँ चले गये! हाय! तनिक बोलो मेरे राजा!

दारोगाजी ने उसका हाथ पकड़ झटके से पास ही के एक घर में ढकेल दिया और डाँटकर कहा—चुप रह हरामजादी, नहीं तो अभी गोली मार दूँगा।

सुगिया ने रोते और गिड़गिड़ाते हुए कहा—मार दो गोली, ले लो जान, अब मुझे भी इन्हीं के साथ मरने दो। जीकर क्या करूँगी, जैसे मरूँ, वैसे मारो। पैर छूकर हाथ जोड़ती हूँ, जल्दी मार डालो।

बार-बार इसी तरह कहते-कहते सुगिया पगली-सी हो गई। उसके सिर से आँचल खिसक गया। देह की सुध-बुध न रही। एक सुर से रटने लगी—मुझे मार डालो, अब जीकर क्या करूँगी।

उसकी हालत देखकर दारोगा जी दंग हो गये। उन्होंने दाँत पीसकर डाँटते हुए कहा—मेरे सामने पतिबरता होने का ढकोसला मत कर। बूढ़े के लिए बेकार क्यों रोती है? चल, तुझे बड़े-बड़े जवान मिलेंगे। छिनाल की तरह नखरे मत दिखा। तुझ-जैसी छोकरियों की दवा मैं खूब जानता हूँ। तेरे रोने का मतलब मैं खूब समझता हूँ। घबराती क्यों है? थाने में चल तो सही। जितना खून मेरे सिर से निकला है, उतना ही तेरे कलेजे से निकालूँगा। यहाँ त्रियाचरित्र का पोथा मत पसार। वहीं चलकर यह प्रपंच दिखाना।

इतने पर भी सुगिया न डरी। उसने पगली की तरह अपना पेट दिखाते हुए कहा—लो, कलेजा काढ़ लो, खून चूस लो, सिर उतार लो, आँखें निकाल लो। अब देखा नहीं जाता। सोहाग-भाग ले ही चुके, प्रान भी ले लो। जल्दी मुझे मार डालो या मुझे ही सिर पटककर मर जाने दो। मत रोको, पैरों पड़ती हूँ। मौत की भीख माँगती हूँ, मेरा गला धरकर दबा दो। नहीं तो जैसे माँग में आग लगाया, वैसे ही मेरे कपड़े में भी आग लगा दो, जल मरूँगी मुझे मरने से क्यों रोकते हो? छोड़ो, बाहर निकलने दो, मैं कुएँ में डूब मरूँगी, पेड़ पर चढ़कर कूद पड़ूँगी। जैसे होगा, जान दूँगी। फाँसी लगाऊँगी। जहर खाऊँगी।

इसी तरह बिलपती और बकती हुई सुगिया उठकर घर से बाहर निकलने लगी। दारोगाजी ने फिर उसका हाथ पकड़कर जोर से झटका दिया। वह झोंका खाकर धड़ाम से गिर पड़ी। ज्यों ही वह फिर उठने लगी, त्यों ही दारोगाजी ने पिस्तौल तानकर दपट के साथ कहा—अच्छा मरना ही चाहती है, तो ले मर, मरने का मजा भी देख ले। गुदरी के साथ तू भी जा।

सुगिया ने हाथ जोड़कर बिलखते हुए कहा—एक बार और आँगन में जाकर उनका मुँह देख लेने दो, फिर मुझे पल-भर भी जीने मत देना, उसी दम मुझे गोली मार देना, मैं खुशी से मर जाऊँगी।

दारोगाजी ने तमंचे को अपने जेब में रखते हुए एक विचित्र खटमिठे सुर में कहा—अरे, अब उस बूढ़े की सूरत क्या देखेगी ? देखना ही है, तो मेरी तरफ देख। ठीक समझ, अब मेरे सिवा दुनिया में तेरा कोई नहीं। पाखंड करना छोड़। जहाँ कहूँ, वहाँ सीधी तरह चल। मेरे सिखलाने के मुताबिक इजहार दे। नहीं तो और अभी तेरी दुर्दशा होगी।

इतना सुनते ही सुगिया अपनी छाती में जोर से मुक्का मारकर धरती पर लोट गई। दारोगाजी ने उसे जबरदस्ती घर से बाहर निकालकर एक्कावान से दाँत पीसते हुए कहा—इस हरामजादी को सीधे थाने में ले जाओ। अगर रास्ते में पाखंड पसारे, दनादन चाबुक मारकर पीठ की खाल उधेड़ डालना।

सुगिया थाने में चलान कर दी गई। गाँव की लूट भी समाप्त हो गई। जिस तरह टिड्डी-दल खेत की फसल चौपट करके निकल जाता है, उसी तरह गाँव को तहस-नहस करके पुलिस का दल भी थाने की ओर चला।

दारोगाजी अपने घोड़े पर सवार होकर बड़ी उमंग से सोचते हुए जा रहे थे—

इसी स्त्री का नाम शायद सुगिया है। अब इसी को मुद्दई बनाकर मनबहाल को फँसाऊँगा। उसके फँसने से यह जरूर मेरे हाथ लग जायगी। वह बड़ा भारी मामलेगीर है, अपनी जान छुड़ाने के लिए बुधिया को भी फँसा सकता है, और बुधिया के फँस जाने पर तो मेरा काम ही बन जायगा। उसकी दो लड़कियाँ और तैयार हो रही हैं। लाग-लपट रखने से लाभ ही होगा।

—आज थाने पर चलकर रात में सुगिया को इतना प्यार करूँगा कि वह अपना सारा दुख भूल जायगी। उसे डराने-धमकाने से काम न चलेगा। स्त्री का हृदय प्रेम से जीतना सहल है! भय दिखाकर उसे मुट्ठी में करना मुश्किल है।

—देहाती स्त्रियों के लिए फाँसी लगाकर मर जाना, जहर खा लेना, कुएँ में गिरकर जान दे देना और दरिया में डूब मरना बहुत ही आसान काम है। सुगिया के लिए यह सब सहज है। वह इच्छा की मौत मर सकती है।

—स्त्री का दिल फूल से भी मुलायम और पत्थर से भी कड़ा होता है। वह पल-भर में देवी और दानवी बन सकती है। पुरुष अगर चाहे, तो स्त्री के चित्त को चैत की चाँदनी से भी मधुर और श्मशान से भी भयंकर बना सकता है। मैं चाहूँ; तो सुगिया के दिल में अपना दिल डाल सकता हूँ,। अगर मैं उसके दिल में जगह पा गया, तो मुझे नौकरी की जरा भी परवा नहीं है। काफी कमा चुका हूँ, कई पुश्त घर-बैठे मौज करेगा।

—मगर हाँ, सुगिया को घर में डाल लेने से घरवाली के दिल से धुआँ उठने लगेगा। खैर देखा जायगा। थाने के पास ही अलग मकान ले लूँगा। सुगिया

उसी में चैन से रहेगी। फिर कुछ दिन के लिए छुट्टी ले लूँगा। डाक्टर को सौ-पचास चटा दूँगा। वह कोई ऐसी बीमारी बतला देगा, जिसमें नैनीताल जाकर कुछ दिन रहना जरूरी हो! बस, घरवाली को घर भेज दूँगा। सुगिया को सैर कराऊँगा। फिर तो वह कभी किसी के बहकाने से भी मेरा साथ न छोड़ेगी।

—दिल का सौदा दिल देकर खरीदा जाता है। स्त्रियाँ दिल चाहती हैं, दौलत नहीं। मगर मैं तो सुगिया को दोनों सौंप दूँगा। दिल तो उसे देखते ही दे चुका, अब आज रात में थाती-पूँजी भी हवाले कर दूँगा। देहाती स्त्रियाँ बढ़िया कपड़ा-लत्ता, बढ़िया खाना-पीना, बढ़िया गहना-गुरिया और रुपये-पैसे की थाती से बहुत राजी रहती हैं।

सुगिया की शादी उसके मन के मुताबिक नहीं हुई थी। बेचारी कबूतरी बूढ़े गिद्ध के पल्ले पड़ गई थी। दुनिया में अभी उसका हौसला पूरा नहीं हुआ है। जब वह केवड़े के साबुन और केशरंजन-तेल का व्यवहार करेगी, सजे हुए कमरे की साफ-सुथरी सेज के पास रेशमी साड़ी में खिलकर खड़ी होगी, फूलों के गजरे और इत्र के फाहे उसे अपनी भीनी-भीनी गमक से मस्त बना देंगे, पके मगही पान की तबकदार गिलौरियाँ उसके मुँह में मक्खन की तरह घुल उठेंगी, हारमोनियम की सुरीली तान से कमरा गूँज उठेगा, तब क्या वह इतने मजबूत दिल की है, जो मेरे दिल की लगी न बुझायगी?

हाँ, इधर दो-चार रोज तक मेरे यहाँ सुगिया का दिल न जमेगा। पर जब वह मुकदमे के झमेले में पड़ेगी, तब तो आप-से-आप मेरे पैर पकड़ेगी। हथकड़ी और जेल का भय दिखलाने पर तो वह मेरे पैर की जूती बन जायगी।

—पिछले साल माघ की अमावस पर जो गंगा नहाने का मेला लगा था, और उसमें भटकती हुई जो देहाती स्त्री मेरे थाने में लाई गई थी, वह भी तो पहले बहुत रोती-सिसकती रही; मगर अपने खास कमरे में ले जाकर जब मैंने उसे मिठाई खिलाई—पान के बीड़े खिलाये—मीठी-मीठी बातें कीं—इत्र सुँघाया—कुछ रुपये थमाये, तब वह आप-से-आप अपने घर-द्वार की सुध भूल गई। लवेंडर की खुशबू ने उसको मतवाली बना दिया। पान और इत्र ने मानों उसके सोते हुए हौसले को जगा दिया। आधे ही घंटे में वह लालसा की उमड़ी हुई नदी बन गई। उसके नेत्रों में एक प्रकार का चमकता हुआ रस भर आया। उसके रोंगटे खड़े हो गये। अहा! उसकी वह शिथिल भुजाएँ, वह मद-भरी अलसाई आँखें क्या कभी चित्त से उतर सकती हैं?

—आज बहुत दिनों के बाद वैसा दिन देखने को मिला है! आज आबकारी के दारोगा को खत लिखकर एक नम्बर की मुहरदार बोतलें मँगाऊँगा। सिर के घाव

का दर्द भी कम होगा और सुगिया भी एक-दो प्याले पीकर रंग दिखलायेगी। जहाँ एक दिन रंग जमा कि फिर रंग-भंग होने का संदेह सदा के लिए मिट जायगा।

—अभी तो सुगिया डरी हुई है। जब वह अच्छी तरह यह समझ जायगी कि मैं नरक से निकलकर सचमुच स्वर्ग में चली आई हूँ, तब आप ही आप रोना-धोना भूल जायगी। आज-ही-कल में उसे अच्छी तरह जँचा दूँगा कि गुदरी के मरने से तुम्हारा भाग्य खुल गया!

बेचारी ज्यों ही बहार पर आई, बूढ़े बन्दर के पाले पड़ गई—मन-की-मन ही में रह गई! अब मैं उसकी सारी उमंगें उभार दूँगा। उसे दुनिया के ऐश-बाग की हवा खिलाने-भर की देर है। फिर तो ऐसा रंग कटेगा कि जिसका नाम!

ऐसी ही तरह-तरह की बातें सोचते और हवाई मन्सूबे बाँधते हुए दारोगाजी थाने में पहुँचे। घोड़े से उतरते ही पूछा—वह औरत कहाँ है?

पहरेदार ने सलाम करते हुए कहा—अन्दर बैठी है हजूर, हुक्म हो तो हाजिर करूँ।

दारोगाजी ने नाक-भौं चढ़ाकर कहा—हरामजादी को फौरन मेरे कमरे में हाजिर करो।

इतना कहकर कोट उतारते हुए वह अपने कमरे में चले गये। आरामकुर्सी पर लेट गये, नौकर बूट के फीते खोलने लगा। फिर मोजे उतारे, पेटी खोली और पतलून छोड़कर धोती पहनते-पहनते जोर से बोले—अभी तक हरामजादी मेरे सामने नहीं आई, कोई सिपाही है? घसीट लाओ यहाँ, सब छिनाल-छतीसी अभी झाड़ दूँगा।

एक सिपाही जबरदस्ती सुगिया को पकड़ लाया और धीरे से यह कहते हुए दारोगाजी के कमरे में ढकेल दिया कि गौने की आई नई बहू की तरह लजाती क्यों हो, जाओ रुपये में तीन अठन्नी बनाओ!

सुगिया गिरते-गिरते सम्हलकर खड़ी हुई। डर के मारे एक कोने में खड़ी होकर सिसकने लगी। लजाकर बेचारी काठ हो गई।

नौकर चिलम भर लाया। दारोगाजी ने कहा—पाखाने में पानी रख दे और किवाड़ बन्द करके बरामदे में बैठकर बाहर से पंखा खींच।

दो-चार कश तमाकू पीकर दारोगाजी ने चुटकी बजाकर इशारे से सुगिया को अपनी तरफ बुलाया। वह थर्रा उठी। बड़ी दीनता से उनकी ओर देखने लगी। सकपका गई। उसके पैर उससे सँभल न सके। पसीना हो आया। वहीं बैठ गई।

दारोगाजी धीरे-धीरे उठे और उसके पास आकर बैठ गये। बोले—कल तुझे कचहरी में चलना होगा। कठघरे में खड़ा होकर इजहार देना पड़ेगा। रात-भर हवालात में बन्द रहना होगा। अगर तू सच्ची बातें न बतायेगी, तो जेल जाना

पड़ेगा। जेल की चक्की पीसते-पीसते तू मर जायगी। वहाँ जौ और बाजरे की सूखी रोटियाँ मिलेंगी। तेरे ये लम्बे-लम्बे बाल काट लिये जायँगे। धोती की जगह सिर्फ जँघिया पहननी होगी। टाट का एक फटा टुकड़ा सोने के लिये मिलेगा। लोहे की थाली और टिन या जस्ते का लोटा खाने-पीने के लिए मिलेगा। एक ही तंग और अंधेरी कोठरी में दिन-रात बन्द रहेगी। उसी में पाखाना-पेशाब और सोना-बैठना। तू तो उस नरक में सड़कर मर जायगी। अगर मेरी बात मानकर तू मुझे अपना सच्चा बयान लिखा दे, तो तेरा बाल भी बाँका न होगा।

सुगिया कुछ न बोली। रोती ही रह गयी। दारोगाजी ने फिर बड़े ढंग से कहा—तुझे बचा लेने का जिम्मा मैं लेता हूँ। मगर एक बात मैं पहले ही कहवा लेना चाहता हूँ। इस मामले में अगर कहीं तेरी रिहाई हो गयी—और मेरे कहने के मुताबिक काम करती जायगी, तो रिहाई-ही-रिहाई है—तो तुझे मेरे ही साथ रहना होगा। तू जो खायगी, जो पहनेगी, जो खर्च करेगी, सब दूँगा। मेरी सारी कमाई की मालकिन तू होगी। देख, यह पलंग, यह सन्दूक, यह सारा असबाब, रुपये-पैसे, कपड़े-लत्ते, सब कुछ तेरे हाथ में रहेगा। तेरा ही दिया सब खायँगे और पहनेंगे। जो सिपाही आज तुझपर शेर हो रहे हैं, ये तेरे सामने सियार बने रहेंगे।

इतने पर भी सुगिया चुप ही रही। दारोगाजी ने सोचा, अब कौन-सा ढंग निकालूँ। कुछ देर तक उसके मुख की ओर लुभाई नजरों से देखकर बोले—अगर मेरे साथ तेरा मन राजी हो गया, तो सच मान, छुट्टी लेकर जल्दी ही तेरे साथ बनारस चलूँगा। वहाँ तुझे घुमा-फिराकर विन्ध्याचल ले चलूँगा। फिर प्रयागराज, चित्रकूट, अयोध्याजी, गयाजी, बैजनाथजी, ठाकुरद्वारा—सब तीर्थों की सैर करा दूँगा। रेलगाड़ी, हवागाड़ी और घोड़ा-गाड़ी के सिवा कहीं तुझे एक पग भी पैदल चलना नहीं पड़ेगा। मेरे साथ मौज से देश-देश की हवा खाना, देश-देश की मिठाइयाँ खाना, देश-देश की चीजें खरीदना—सब हौसले मिटा लेना। बनारस की साड़ी और विन्ध्याचल की चुनरी खरीद दूँगा। प्रयागराज का किला दिखाऊँगा, त्रिवेणी में नाव पर झिरझिरी खेलाऊँगा। चित्रकूट के पहाड़ पर सैर कराऊँगा। अयोध्याजी में सावन का झूला दिखाऊँगा। गयाजी का पेड़ा और बैजनाथजी का चूड़ा-दही बहुत ही बढ़िया होता है। अभी क्या, जब खिलाऊँगा तब कहना कि वाह क्या खिलाया! बैजनाथजी से कलकत्ते होते हुए ठाकुरद्वारा जाना पड़ेगा। कलकत्ते में बिजली की गाड़ी पर चढ़ाकर सारा शहर एक ही दिन में घुमा दूँगा! हवा-गाड़ी पर चढ़ाकर किले के मैदान की हवा खिलाऊँगा। बागबाजार का रसगुल्ला और मीठा सन्देश चखवाऊँगा। वहाँ का रसगुल्ला इतना बढ़िया होता है कि मुँह में डालते ही गल जाता है। बंगाली मिठाई तो तूने कभी खाई न होगी? खाकर देखना, मुँह से

न छूटेगी। बंगाले की पाढ़दार साड़ी बहुत ही अच्छी होती है। बढ़िया-से-बढ़िया देखकर तेरे लिए शान्तीपुरी साड़ी खरीद दूँगा। फिर ठाकुरद्वारे में समुन्दर की बहार दिखलाऊँगा। अगर तू कहेगी, तो बम्बई भी दिखला दूँगा। तेरे लिए सब करूँगा, मगर तू करने देगी तब न ?

जहाँ सुन्दरता और युवा अवस्था का सराहनीय संयोग होता है, वहाँ प्रायः भोग-विलास की इच्छा भी प्रबल होती है! सुगिया बड़ी सुन्दरी और नवयुवती थी। वह कभी बग्घी, फिटन, मोटर या रेलगाड़ी पर नहीं चढ़ी थी! कभी उसे एकान्त में किसी शौकीन नवयुवक से रस-भरी बातें करने का अवसर नहीं मिला था। उसकी लालसाएँ गुदरी के सूने अँधेरे घर में कई बार बुरी तरह तड़प चुकी थीं। उसका मन कई बार आँसुओं की बरसात में संसार की वासनाओं के साथ झूला झूल चुका था। उसके कितने मनोरथ कई बार कोरी कल्पना की हाट में खाली हाथ घूम चुके थे।

जबतक वह गुदरी राय के घर में रही, दिन-रात झँखते ही बीता। उसे देख-देखकर गुदरी राय की उमंगें भले ही तरंग मारती थीं—लालसाएँ खूब लहर लेती थीं; पर गुदरी को देखकर उसका दिल बैठ जाता था, उसके रोएँ गिर जाते थे, उसकी नाक सिकुड़ जाती—खोपड़ी के पिल्लू कुलबुला उठते थे।

दारोगाजी ने ऐसा चारा फेंका कि मछली का मन चंचल हो उठा। पर उसे चारे में लगी हुई अंकुसी की खबर न रही!

सुगिया के हृदय में सोई हुई वासनाएँ चौंककर जाग पड़ीं, जैसे हाहाकार सुनने से कच्ची नींद टूट जाती है। वह कहना चाहती थी—अब तो मैं बेबस हो गई हूँ, मेरा कुछ कहना-न-कहना बराबर है। पर यह कहने की इच्छा रहते हुए भी वह कुछ न कह सकी। तूफान आने से पहले सन्नाटा छा जाता है।

दारोगाजी—जाति के कायस्थ, घूसखोरी बपौती—सनातन धर्म, नई उम्र, सुन्दर डील-डौल, कसी हुई देह, ऐंठी हुई कड़ी नोकदार मूँछें, चमन की क्यारियों की तरह सँवारे हुए बाल, आँखों पर सुनहरी कमानी का चश्मा, नाजुक मिजाज, शौकीन तबीयत, बोतल ढालने का चस्का, शोहदेपन का शौक, नस-नस में शरारत भरी हुई, वासनाओं के पुतले और हरएक 'बाजी' के काजी!

सुगिया को चुप देखकर धीरे-धीरे उसके हाथों को अपने हाथों में लेते हुए दारोगाजी बोले—तू एकदम चुप क्यों हो गई ? चिन्ता की कोई बात नहीं। जितना भर मैं कहूँ, अगर तू उतना भी करती चल, तो तू जिन्दगी भर मौज से रहेगी। बोल, मेरे साथ-साथ रहना तुझे पसंद है ? पसंद है ? बस इसी बात में 'हाँ' और 'ना' कहने पर तेरे नसीब का फैसला है। अगर तू एक भलेमानस स्त्री की तरह

परदे के अंदर आराम से रहना पसंद करती है, तो तेरा बेड़ा पार है। नहीं, अगर तू अपना करम-रेख ही भोगना चाहती है, तो फिर मुझे तुझसे कोई मतलब नहीं—जा, बाजारू बनकर रह। थाने से कचहरी तक धक्के खायगी, कनस्तबलों की जमात में पड़कर आबरू गँवायेगी, जेल के पहरेदारों के हाथ में जाकर भूखे कुत्ते के पल्ले पड़ी हुई फटी जूती की दशा को पहुँचेगी ; फिर वहीं अंत में बाजार की सदर सड़क पर पेट के लिए 'रूपहटिया' में दूकान खोलनी पड़ेगी। पराये का आसरा, चार दिन की चाँदनी, लोक-परलोक का सत्यानाश, इज्जत और ईमान से खारिज—यही नतीजा होगा !

सुगिया ने लम्बी साँस खींचकर एक बार दारोगाजी की ओर देखा। कुछ कहना चाहा ; पर मुँह से बोल न निकला। फिर घुटने पर गाल देकर नहँ से जमीन खोदने लगी। दारोगाजी ने फिर अपने जादू की एक पुड़िया छोड़ी—अभी तक तेरा पत-पानी बचा हुआ है। इसलिए मैं इतना समझा रहा हूँ। अगर तू बिगड़ैल होती, तो मैं तेरी बात भी नहीं पूछता। मसल है—'जब बिगड़े तब सुघड़ नर, क्या बिगड़ेगा कोढ़'। और यह भी लोग कहते हैं कि 'मट्ठे का क्या बिगड़े, जब बिगड़े तब दूध'। तू सुघर है, दूध है—मट्ठा या कोढ़ नहीं। अगर तू कुरूपा होती, तो दुनिया की आँख तेरी ओर नहीं उठती। मगर तू रूपवती है, इसलिए दुनिया की आँखें तेरे पैरों में जंजीर डाल देंगी, एक पग भी चलना दूभर हो जायगा। यह नई उमर और ऐसी मनमोहनी सूरत अगर दुनिया की आँखें देख लेंगी, तो सच कहता हूँ—विश्वास कर, तेरी हालत ठीक वैसी ही हो जायगी, जैसी कटे या सटे हुए पंखोंवाली चिड़िया की होती है—तू उड़ न सकेगी। तेरी जान जायगी, लोगों का खिलवाड़ होगा। मतलब के यार बहुत मिलेंगे, अवसर पड़े के साथी कोई नहीं ! अब झटपट बोल, देर न कर, तेरी क्या राय है ? इस मामले को संगीन कर दूँ या तेरी जिन्दगी को रंगीन कर दूँ ?

सुगिया ने अपने सिर का अंचल सरकाते हुए रूँधे कंठ से कहा—अब तो पत्थर के नीचे मेरे हाथ दब चुके हैं। मैं कुछ कहकर ही क्या करूँगी। अगर मेरे नसीब में कुछ भी सुख लिखा होता, तो गूँगी गाय की तरह कसाई के खूँटे पर क्यों बाँधी जाती ? करम-हीन खेती करे, बैल मरे कि सूखा परे ? मैं हर तरह अभागिन हूँ। भगवान ने जैसे लकड़ी में आग बनाई है, वैसे ही मुझे सुघराई दी है। जैसे अपनी आग से लकड़ी जलती है, वैसे अपनी ही सुघराई से मैं जलती रहती हूँ; भगवान ने मोर के सब अंगों को अपने ही हाथों सँवारा है, मगर सब सुन्दर अंगों के आधार उसके पैरों को ऐसा खुरच दिया है कि अपने बेवाय फटे हुए पैरों को देखकर बेचारा दुःख के मारे बिखधर को लील जाता तब भी प्राण नहीं निकलते। जो

दुनिया के लिए जहर है, वही अभागे के लिए अमृत है। जहर खाने से भी मेरी जान नहीं गई! जहर भी ऐसा-वैसा नहीं, सोरह सौ रुपये में असली जहर खरीदकर मेरे दुश्मन ने मुझे खिलाया था! मुरछा तक नहीं आई, कपार भी न बथा, मरना तो लिलार में लिखा ही नहीं है।

एक ही सुर में सुगिया इतना कह गई। कह चुकने पर उसकी आँखों से ढर-ढर आँसू झर पड़े। दारोगाजी उसके हाथ पकड़े हुए उठकर खड़े हो गये। उसे भी उठाकर खड़ा किया। इत्र में बसे हुए रूमाल से उसके आँसुओं को पोंछा। बड़े प्रेम से पलंग पर बिठाया।

फिर कुछ देर तक सुगिया के मुख को ललचाई नजरों से देख दारोगाजी ने सन्दूक खोलकर धीरे से रुपये की थैली निकाली। थैली के साथ कुंजियों के तीन बड़े-बड़े गुच्छे उसके आगे रखकर बोले—आज से यह सब-कुछ तेरा है, घर तेरा है, मैं तेरा हूँ, और चाहिए क्या? जो कह, सो हाजिर करूं।

बेचारी भोली-भाली सुगिया बड़ी दुबिधा में पड़ गई। उससे कुछ कहते न बना। थैली की तरफ अच्छी तरह देखा भी नहीं। धीरे-धीरे सरकती हुई पलंग से उतर कर नीचे बैठ गई।

दारोगाजी झुंझला उठे। वह इतने अधीर हो गये कि एक पल भी सौ चौजुगी के समान बीतने लगा! उन्होंने उसकी बाँह पकड़कर फिर पलंग पर खींच लिया। सुगिया का चेहरा तमतमा उठा। दारोगाजी भी दाँत पीसने लगे। आँखें तरेरकर बोले—आखिर तेरी क्या राय है? सीधी तरह बात मानेगी या मैं कोई दूसरी तरकीब करूँ? बात मान, तुझे पछताना पड़ेगा। ऐसा हठ मत कर कि तेरी जान आ बीते।

सुगिया लम्बी साँस खींचकर रह गई। उसके गोरे मुख पर पसीने की बूँदें झलकने लगीं। सँभलकर बैठने पर भी देह थर-थरा उठी। छाती बड़े जोर से धड़कने लगी। आँखें भर आईं। बड़ी दीनता से बिलखकर बोली—अभी मेरी माँग में खली भी नहीं लगाई गई है, चूड़ियाँ भी नहीं फूटी हैं, आँसू भी नहीं सूखे हैं, आज ही का रँड़ापा है, हरा घाव है, कैसे क्या जवाब दूँ। मनबहाल का नाश देखकर छाती जुड़ाने की इच्छा न होती तो आज ही रास्ते में दौड़ते हुए एक्के से कूद कर जान दे देती।

मनबहाल का नाम लेते ही दारोगाजी को बड़ा अच्छा मौका मिल गया। एक नया ढंग सूझ पड़ा। उन्होंने छूटते ही कहा—मेरी बात मान लेने पर तेरे सारे मनोरथ पूरे हो जायंगे। जिस दिन कह, उसी दिन मनबहाल को पकड़ मँगाऊँ। तेरे सामने पेड़ में बाँधकर उसे कोड़े से पिटवाऊँ। पहले तू राजी भी तो हो मनबहाल की दुर्दशा कराना तो मेरे लिए बायें हाथ का खेल है। तेरे देखते-देखते

उससे त्राहि-त्राहि न करवा दूँ, तो असल बाप का बेटा नहीं। झूठ कहना दोगले का काम है। जनेऊ की शपथ खाकर कहता हूँ, उसे दिन-भर जलती धूप में एक टाँग पर खड़ा करके पानी बिना तरसाऊँगा। अगर जी चाहे, तो तू उसके मुँह में थूक सकती है, उसे पैरों से ठुकरा कर जली-कटी सुना सकती है। कोड़ों से पीटकर अपनी छाती ठंढी कर सकती है। मुझे कोई उज्र नहीं है। तेरे लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ। कह तो दिया कि मेरी बात मान जा; जिन्दगी-भर रानी बनी रह। बस तो अब पक्का हो गया। कल ही तड़के मनबहाल को पकड़ मगाऊँगा और नागफनी के काँटों पर सुलाकर मारे हंटरों के उसकी सारी देह तोड़ दूँगा। अच्छा अब तू कुछ जलपान कर।

दारोगाजी झट उठकर एक मुरादाबादी तश्तरी में भंग पड़ी हुई चार तबकदार बर्फियाँ और शीशे के गिलास में शराब मिलाया हुआ मीठा शरबत लाये। सुगिया के आगे तश्तरी रखकर अपने ही हाथ से उसे बरफी खिलाते हुए बोले—मनबहाल को पकड़ लाने के लिए आज ही रात को सिपाहियों से ताकीद किये देता हूँ।

सुगिया ने बर्फी खिलाने से उन्हें रोकते हुए कहा—आज मैं कुछ भी मुँह में न डालूँगी। उस जन्म में न जाने कौन ऐसा पाप किया था, जिसका फल भोग रही हूँ, इस जनम में भी तो कुछ सम्हालूँ।

दारोगाजी ने बड़े प्यार से कहा—यह तो फलहार है। इसमें कोई दोष नहीं है। मैं खुद तुझे अन्न-जल न दूँगा। क्या मुझे अपने ईमान का डर नहीं है?

भोली-भाली बेकस सुगिया किसी बहाने दारोगाजी का आग्रह टाल न सकी। बेचारी अपनी बेबसी पर मन-ही-मन कलप कर रह गई।

नाश्ता-पानी हो चुकने पर दारोगाजी का मन बढ़ा। सोचने लगे—क्या, ले लिया है। जरा नशे में चूर हो जाय, सब गहने उतार कर रख लूँ, आगे फिर देखा जायगा। अब तो चिड़िया के पंख में लासा लग गया, उड़ना मुश्किल है। भगवान जब देने लगते हैं, तब छप्पर फाड़कर देते हैं। कई सौ का माल भी मिला, हौसला भी पूरा हुआ।

दारोगाजी का पाखाना तो कंठस्थ हो गया। तम्बाकू जल चुका था। पाखाने में लोटे का पानी धरा ही रहा।

खिड़की के चिक से छन-छन कर कमरे में चाँदनी आने लगी। पलंग पर बिछी हुई नैनसुख की साफ चादर चितकबरी हो गई!

सुगिया का नशा खिल उठा। उसके गहनों ने दारोगाजी की पेटी में आराम किया। उनकी शरारतों की बोटी-बोटी फड़कने लगी। पनवट्टा और इत्र की शीशियाँ खाली हो चलीं। चोर-महल रंग-महल हो उठा!

५

गोवर्धन का कच्चा चिट्ठा

जाके घर में नौलख गाय
सो क्या छाँछ पराई खाय

हमारे नाना के कोई लड़का नहीं था। वह बाबू सरबजीत सिंह के बड़े पुराने विश्वासी दीवान थे।

बाबू साहब की जमींदारी की सालाना आमदनी आठ-दस हजार से ऊपर थी। उस सारी जमींदारी के करता-धरता हमारे नाना ही थे। बाबू साहब केवल नाम के मालिक थे।

हमारे नाना पर उनका इतना विश्वास था कि कभी बही-खाता नहीं जाँचते थे। वह नाना को भी अपने बड़े भाई के समान—बल्कि उससे भी चार अंगुल अधिक ही—मानते थे। मरने के समय वह अपने इकलौते बेटे बाबू रामटहल सिंह को नाना के ही हाथ सौंप गये।

पर बाबू रामटहल सिंह अपने पिता की तरह हमारे नाना के हाथों के खिलौना न रहे। हाँ, जमींदारी के मामले में अब भी नाना का ही सोलहो आना हाथ था। स्याह-सफेद—जो कर देते थे, कोई हाथ पकड़नेवाला नहीं था। जिसे चाहते—बसाते, जिसे चाहते—उजाड़ देते।

लेकिन भरसक उनकी जानकारी भर जल्दी किसी का कुछ बिगड़ने न पाता था। यहाँ तक कि उनकी जाने में जमींदारी का कोई मामला अदालत का मुँह नहीं देखने पाता था। वह आप ही दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करके दोनों पक्ष को समझा देते थे। और, हर मामले में बिलकुल बेलस और बेलाग रहने के कारण ही उनकी सिर्फ एक जबान हाईकोर्ट के हजार फैसलों से कम नहीं समझी जाती थी।

परन्तु, हजारों असामियों के भाग्य-विधाता और सारी जमींदारी के सर्वेसर्वा होने पर भी उनकी आँखों में चरबी नहीं छाई थी। हाँ, बाबू रामटहल सिंह के अत्याचार से वह एकदम नकिया गये थे! सैकड़ों उपाय करके भी वह उनको अपने हाथों की कठपुतली न बना सके।

इसका एक बड़ा भारी कारण था। बाबू रामटहल सिंह के पीछे गाँव के बड़े-बड़े काइयाँ लगे हुए थे। यदि नाना के रूठने से जमींदारी में तखड़-पखड़ हो जाने का भय न रहता, तो गाँववालों के कान भरने से नाना के साथ वह कभी के

उलझ पड़े होते। पर उन्हें अच्छी तरह यह मालूम हो गया था कि दीवानजी जिस दिन न रहेंगे, उस दिन मेरा लदा-लदाया जहाज मझदार में डूब जायगा।

नाना के गुजरते ही बाबू साहब का यह ख्याल बिलकुल सच निकला। शुरू में उनके कान फूकनेवालों ने बड़े प्रसन्न होकर कहा—लीजिए, अब अकंटक राज कीजिए।

पर जब सुबह-शाम में ही नाना के विना काम अटकने लगा तब बाबू रामटहल सिंह ने हमारी नानी से कहा—अपने दमाद को बुलवाइए। नहीं तो मेरी जमींदारी मिट्टी हो जायगी और आपका काम-धाम भी चौपट हो जायगा।

नानी की बुलाहट पर बाबूजी और मइयाँ के साथ हम भी रामसहर गये। बचपन में भी एक बार हम वहाँ गये थे। उस समय दुधमुँहे बच्चे थे। इस बार पहले से बड़े हो गये थे। लोटा भर जल उठाकर अँगने से बैठकखाने में बाबूजी को दे आ सकते थे!

पर भरे घड़े में से लोटा-भर भी जल ढाल लेना हमारे लिए कठिन था! यदि हम अभ्यास करने पाते, तो कोई कठिन न था। मगर जब कभी बाबूजी के पानी माँगने पर हम लोटा लेकर घड़े के पास पहुँचते, मइयाँ दौड़कर हमारे हाथ से लोटा छीन लेती और कहने लगती--पानी लेना हो तो माँग लिया करो, भरे घड़े को उझलने से कलेजे पर बहुत जोर पड़ेगा। एक तो आप ही गिरगिट की तरह हो, दूसरे कलेजे पर जोड़ पड़ने से सूखकर अंठई हो जाओगे।

इतना ही नहीं, लोटे में पानी ढालकर बाहर की देवढ़ी तक वह स्वयं हमें पहुँचा देती थी। फिर वहाँ से जल-भरा लोटा लेकर जबतक हम बैठकखाने के चबूतरे पर नहीं चढ़ जाते थे, तबतक किवाड़ की ओट से वह देखती ही रहती थी!

माँ-बाप के लाड़-प्यार ने हमें रूई का फाहा बना दिया था। हमारी ही उमर के लड़के जामुन के पेड़ पर चढ़ अपनी रुचि से बढ़िया-बढ़िया झोझ तोड़कर खाते थे और हम मुँह ताका करते थे--हमपर दया करके जो दो-चार अधपके फल वे नीचे डाल देते थे, हमें उन्हीं को खाकर रह जाना पड़ता था--जूठन पर ही सन्तोष करना पड़ता था!

हम मइयाँ की आँखों की ठंढक और बाबूजी की आँखों की पुतली तो थे ही, अब नानी की पुरानी आँखों की भी नई जोत बन गये! इसलिए न तो अंधेरे में अकेला रहने पाते थे और न कभी तिनका टालने-भर का कोई काम ही करने पाते थे!

बात असल यह कि आगे चलकर हमारे अहदी, डरपोक और कमजोर हो जाने की चिन्ता उनको नहीं थी। वे तो अपनी साध पूरी करने की धुन में मस्त रहा करते थे।

इसका नतीजा बुरा हुआ। सयाना होने पर भी हम बाबूजी के कन्धे पर ही चढ़े फिरते थे, मानों ईश्वर ने हमारे लिए उनको घोड़ा बनाकर भेजा हो!

मगर हाँ, ननिहाल जाने पर बाबूजी की गोद की जीन-सवारी बहुत कम हो गई। हम नानी के अंग लग गये। वह हमें इतना प्यार करने लगी कि कुछ दिनों के बाद ही हम मइयाँ और बाबूजी को एक तरह से भूल गये!

एक तो हम अपने नाने के रास पर आये थे, दूसरे अपनी नानी की एकलौती बेटी—मइयाँ—की इकलौती सन्तान थे। फिर हमारे 'कुँअर-कन्हैया' होने में क्या सन्देह था?

खैर, हमें देखकर बुढ़िया नानी अपने सारे दुख भूल गई। हम स्कूल में पढ़ने लगे। जब हम अपने गाँव की पाठशाला में पढ़ते थे, तब हर सनीचर को—धोये हुए चावल, पैसा भर गुड़ और एक गोरखपुरिये पैसे से पाठ पूजते थे। उसी दिन सब लड़के पहले पाठशाले में जाकर जमा होते थे। फिर गाय के टटके गोबर से पाठशाले को लीप-पोतकर गुरुजी के साथ गंगा नहाने चले जाते थे। गंगाजी का रास्ता हमारे घर के पास से जाता था। इसलिए गुरुजी हमें घर से पुकारकर अपने साथ ले लेते थे। नहा-धोकर कपड़े कचारकर, अपनी-अपनी स्लेट और पट्टी माँजकर, सब लड़के अपने-अपने घर से 'शिरनी' लाने चले जाते थे।

चावल और गुड़ की शिरनी बनती थी। साथ में एक गोरखपुरिया पैसा भी होता था। अपने-अपने घर की शिरनी और पैसा लेकर सब लड़कों के आ जाने पर गुरुजी पाठ पुजवाना शुरू करते थे। शिरनी चढ़ाकर, गंध-धूप देकर, अपनी-अपनी जगह पर घुटनों के बल झुककर, सब लड़के धरती में सिर टेकते थे। गुरुजी एक तरफ से शुरू करके लगातार सब लड़कों की पीठ पर मीठी-मीठी छड़ी लगा जाते थे। कैसी सुहावनी पूजा थी।

बहुत-से लड़के ऐसे थे, जो कभी चावल लाते थे तो गुड़ और पैसा नहीं, कभी पैसा—तो चावल और गुड़ नहीं, कभी गुड़—तो चावल और पैसा नहीं। उनके यहाँ गुरुजी का दरमाहा और सीधा भी बाकी पड़ा रहता था। कभी-कभी किसी लड़के का बाप आकर कहने लगता था—गुरुजी, इस साल पैदा बहुत नरम है। भदई और अगहनी ने कमर तोड़ दी। चैती का भरोसा है। खेत कमाते-कमाते तो पीठ की रीढ़ धनुही हो गई, मगर करम गवाही नहीं देता तो क्या करूँ? और कोई धंधा भी तो नहीं है! आप तो घर के आदमी हैं, हालत देखते ही हैं। आपसे क्या परदा है? आप तो सब रत्ती-रत्ती जानते हैं। मगर चैत में सब बाकी-बेकाम कर दूँगा। दाम-दाम जोड़कर ले लीजियेगा। भगवान की दया से क्या हरदम सूखा ही पड़ेगा? अपने ऊपर चाहे लाख बीते, मगर मैं किसी का

खटुक रहना नहीं चाहता। किसी का मेरे यहाँ कौड़ी का एक दाँत भी बाकी नहीं है। पेट काटकर तो मालिक की कौड़ी देता हूँ। आपकी दया से यह लड़का अगर कुछ पढ़ जायगा, तो मेरा दुख छूट जायगा। आपका नाम लेता रहूँगा। आपकी एक निसानी रह जायगी। मेरे यहाँ आपका नगद डेढ़ रुपया और साढ़े बारह सेर सीधा बाकी है। कहीं पुरजे पर टाँक लीजिए।

इसी प्रकार, कभी-कभी किसी लड़के की बेवा-बेकस माता भी आकर केवल अपना ही ओसाती थी, बेचारे गुरुजी कुछ कह नहीं पाते थे। कितनी-एक तो किसी-किसी पाठ-पूजा के दिन कौड़ी-भर गुड़ और एक लोहिया पैसा देकर अपने लड़के से कहला भेजती थी—आजकल घर में चाउर ऊपर नहीं है, गुरुजी कहें तो उसके बदले में जौ और चने का—आज ही का पिसा हुआ—सीधा सतुआ भेज दूँ।

गुरुजी भी सत्तू के बड़े प्रेमी थे। पूरी-मिठाई छोड़कर सत्तू खा लेते थे! सब लड़के जो बँधा हुआ सीधा देते थे, उसे घर भेजने के लिए वह बटोरते जाते थे और सनीचर के दिन पाठ-पूजा पर चढ़ाये हुए पैसों से सत्तू खरीदकर खाया करते थे! रात को—रोटी या बाटी—कुछ बना लेते थे।

गरमियों में तो वह छूटकर सत्तू खाते थे; बल्कि जाड़े में भी कड़ाके की धूप में बैठकर बड़े प्रेम से सत्तू खाया करते थे। उनकी एक विचित्र कहावत थी—तीन टनक्कै सतुआ मीठ—टनक भूख, टनक नून, टनक घाम—और अगर टनक मिर्चा भी हो, तो फिर 'सीतल-बुकनी प्रसाद' का क्या कहना!

रामसहर के हिन्दी-मिडिल स्कूल में नाम लिखाते ही सनीचर की पाठ-पूजा तो छूट गई! यहाँ किसी लड़के के माँ-बाप अपना दुखड़ा रोने नहीं आते थे। आते भी थे, तो हमारे गुरुजी की तरह कान लगाकर उनकी कोई सुनता न था। बेचारे रो-गाकर चले जाते थे। उनके लड़के का नाम कट जाता था। फीस का रुपया और पुस्तकों का दाम समय पर न दे सकने के कारण उनके लड़के अच्छर-कट्टू ही रह जाते थे!

वहाँ चटाई पर बैठना था, यहाँ बैठने को बेंच मिली, वहाँ 'गुरुजी' थे, यहाँ 'मास्टर साहब' मिले। वहाँ फूस की मँड़ई में पाठशाला थी, यहाँ टिपकारी की हुई लाल ईंटों से बनी पक्की छत वाली बंगलानुमा इमारत में स्कूल था। वहाँ और यहाँ में पूरब पच्छिम का भेद था! वहाँ के गुरुजी एक ऊँची बेदी पर बैठते थे। उनकी खोपड़ी में एक फटी टोपी धँसी रहती थी। सफेद बाल टोपी के छेद से झाँकते रहते थे। कंधे पर एक मैला अँगोछा पड़ा रहता था। ढाई आने में खरीदे हुए चालीस बरस के पुराने चश्मे को नाक की नोक पर सरका कर लड़कों को घूरा करते थे। चश्मे की बिचली रीढ़ पर लत्ता लपेट कर उसकी टूँठी कमानियों

में बंधे हुए मोटे सूतों को—घोड़े की अगाड़ी-पछाड़ी की तरह—अपने कानों में बाँधकर कंधे तक लटकाये रहते थे!

पर यहाँ के 'मास्टर साहब' तो कामदार चमरौधा जूता, कमीज-कोट और कंघी किये हुए बालों पर नीची दीवार की काली टोपी पहन कर कुर्सी पर बैठे हुए थे। इनकी बुलबुल का तेल टोपी की नीची दीवार से होता हुआ उसकी छत तक पहुँच गया था!

वहाँ, जब खेत से हलवाहे अपने कंधे पर हल और आगे-आगे बैल लिये आने लगते थे, गायों को चराकर चरवाहे बस्ती की ओर अपने गौओं के साथ लौट पड़ते थे, लंगूरी पूंछ उठाकर दौड़ती और हँकरती हुई गायें खूँटें में बँधे हुए अपने उत्सुक बछड़ों के पास पहुँचकर उन्हें सूंघने और चाटने लगती थीं, तब गुरुजी बरतावन करने की आज्ञा देते थे, जिसके समाप्त होते ही, सब लड़के एक साथ ही, गुरुजी को सलाम करके अपने-अपने घर की ओर दौड़ पड़ते थे।

और यहाँ? यहाँ तो घंटा बजने पर छुट्टी होती थी। घंटे का शब्द ही मुक्ति का मधुर मंत्र।

सब नयापन तो था; पर छड़ी निगोड़ी ने यहाँ भी जान न छोड़ी! वह उसी प्रकार मास्टर साहब के हाथ में विराजमान थी। उसे देखकर ईमान काँपता रहता था!

पर हमारे चचेरे मामा का छोटा लड़का केदारनाथ कभी छड़ी की परवा नहीं करता था। वह हमारे ही साथ पढ़ता था। उसी के साथ हम स्कूल जाते थे। छुट्टी होने पर फिर उसी के साथ घर लौटते थे। हम दोनों एक ही बेंच पर बैठते भी थे। यहाँ तक कि एक ही दावात और चाकू से हम दोनों का काम चलता था।

गोबरधन का छोटा भाई गोपाल भी हम लोगों के साथ पढ़ता था। पढ़ने में हम दोनों से बहुत तेज था। मालूम होता था, उसकी जीभ पर सरस्वती जी बसती हैं!

न जाने गोबरधन क्यों ऐसा गोबर गनेश था कि पसुपत पाँडे बरसों रटाते ही रह गये, वह एक श्लोक भी कंठ नहीं कर सका। और उसीके सगे छोटे भाई गोपाल का जिहन ऐसा खुल गया था कि जो चीज एक बार उसकी आँख तले पड़ जाती थी, वह उसी समय कंठ हो जाती थी!

हम और केदार बाबू रामटहल सिंह की ठाकुरवारी में, गोपाल के साथ बहुत जाया करते थे। हमलोग जब जाते थे, तब गोपाल हम लोगों को ठाकुरजी की प्रसादी देता—कभी मिसरी, कभी बताशे, कभी गुड़, कभी बेर, कभी अमरूद, कभी छुहारे-मुनक्के। प्रसादी के लोभ से हम लोग करीब-करीब रोज ही वहाँ एक बार जाते थे।

रामनौमी और जन्माष्टमी में वहाँ वृन्दावन की रासलीला होती थी। जब से बाबूजी के हाथ में बाबू साहब की जमींदारी का भार सौंपा गया, तब से ठाकुर जी के हर एक उत्सव में व्रजवासी रासमंडलवालों का नाच होने लगा। बाबूजी भी

घर की खेतीबारी दूसरे आदमियों के जिम्मे कर—जगह-जमींदारी ठीकेदारों के हाथ बन्दोबस्त कर--हमेशा रामसहर में ही रहने लगे।

बाबू रामटहल सिंह ने उनको अपने रंग में रंग लिया। नाना के समान उनका प्रभाव न रहा। वह बाबू साहब की इच्छा से सब काम करने लगे। पर वह कभी बाबू साहब की हानि की परवा नहीं करते, सदा अपनी ही स्वार्थ-सिद्धि पर नजर रखते थे!

हमारी नानी उन्हें हरदम सिखलाया करती थी—भर-पेट कमा लो, नहीं तो पछताओगे, कुछ हाथ न लगेगा। तहसीलदार और पटवारी जहाँ-कहीं जाते हैं, नोच-चोथकर खा-चबा जाते हैं, पर तुमको न जाने भगवान कब सुबुद्धि देंगे! कायथ देवान ऐसा गँवार नहीं होता। कितने ही दरबारों के देवान देखते-ही-देखते राजा हो जाते हैं। आखिर सब लूट-पाटकर खा जायँगे और तुम्हारे हाथ हत्या रहेगी। भोलानाथ के नाना को मैं लाख समझाती रह गई, मगर वह भी जिंदगी-भर अपनी दयानतदारी ही के पीछे फकीर होकर रह गये। मेरे जीते-जी अगर लड़की के पास कुछ जमा-जथा हो जाती, तो मुझे हमेशा के लिए संतोष हो जाता।

नानी की इन स्वार्थ-भरी शिक्षाओं के अलावा मइयाँ भी बाबूजी से कहा करती थी—अब भी न कमायगा, तो क्या बुढ़ापे में कमाई होगी? भोलानाथ इसी कमाई पर राज रजेगा? जिसके घर में आपके ऐसा कमासुत है, उसके घर में रोज सोना बरसता है। जब मैं अपने घर रहती थी, तब हरदम हाथ में कुछ-न-कुछ रहता ही था। यहाँ तो जब से आई हूँ, ऐसा हाथ खाली हो गया है कि अहिबात का सौदा करने के लिए भी एक चित्ती कौड़ी पास में नहीं है। अब वहाँ की आमदनी भी बाहर-ही-बाहर आपके पास आ जाती है, और यहाँ की आमदनी आप ऊपर-ही-ऊपर उड़ा डालते हैं। ऐसा छूँछा हाथ हो गया है कि कभी-कभी तो रुलाई आ जाती है। मैं यहाँ किस-किस से उधार लूँ? एक तो यहाँ अपना हलकापन समझकर किसी के सामने मेरा मुँह नहीं खुलता, दूसरे आपका भी पानी रखना पड़ता है। मैं अगर माँ से कहूँगी, तो हरगिज जबान खाली न जायगी, मगर अपने ऊपर जो सौ घड़े पानी पड़ जायगा। मैं कितना भी कहती हूँ, आप कुछ ख्याल ही नहीं करते!

नानी और मइयाँ के उसकाते रहने से बाबूजी अच्छी तरह पैसा पहचानने लगे। हमारे नाना गरीबों को सतानेवाले जबरदस्त जेठरैयतों को नाकों चने चबवाते थे। उनकी कलम के कोर के मारे हुए कितने चौधुरी लोग टूट गये थे। मगर जब से बाबूजी की दीवानी चमकी, चौधुरी लोग उनकी मुट्ठी गरमाकर अपना काम निकालने लगे।

बाबूजी को टेंट गरमाने का ऐसा चस्का लगा कि सारी जमींदारी के गरीब रोएँ गिराकर उन्हें बद-दुआ देने लगे। लेकिन उनको इसकी रत्ती-भर भी चिंता नहीं

थी। खूब कमाते और खूब खर्चते थे। बाबू साहब जहाँ एक रुपया खर्च करने को कहते, वहाँ दस रुपये खर्च कर डालते। बड़े भारी खरचिा थे।

इसलिए हर साल सावन के झूलन में रासमंडलवाले और रंडियों के कई गरोह तीन पखवारे तक डेरा डाले पड़े रहते। रासमंडलवाले सावन-बदी में आते और एक ही टिकाव में कन्हैयाजी का जन्म, छठी और बरही बिताकर भादो सुदी में जाते! फिर श्रीपंचमी के दिन आते तो बसंत की लहर लेकर ही जाते।

इसी तरह हर साल 'बारे के रसिया बृजबसिया' लोग बरसात और बसंत भर रामसहर में ही रहकर चाँदी काटा करते थे। जिस साल बाबू साहब के मन में लहर आ जाती थी, उस साल बनारस, आगरे और लखनऊ के नाच भी उतरते थे। नहीं तो गाजीपुर की घुड़चढ़ी कसबियाँ ही चहल-पहल मचाती थीं।

पर बनारस उतरे या सारा लखनऊ टूट पड़े, रामसहर के लोगों को उन टकाही रंडियों का नाच-गाना अच्छा लगता था! आसपास के गाँवों से भी हजारों तमाशबीन आते थे। रासमंडलवाले ज्यों ही एक चौकी पूरा करके साज-बाज उतारने लगते, त्योंहीं तमाशबीन चिल्ला उठते—अब बीबी जल्दी खड़ी क्यों नहीं होती? बिहान नजदीक है। भैरवी की बेला बीत जायगी। वाह! हमलोग पतुरिया का नाच देखने के लिए इतनी दूर से दौड़ आकर नींद भी गवाँ रहे हैं और पतुरिया का पता ही नहीं है! समाजी साले अलग टाँग पसार सो रहे हैं, बीबी अलग नाक बजा रही है। अजब हाल है! घोड़ी को गंगापार हेला दिया जायगा, बस सारी कजाकी घुस जायगी।

तमाशबीनों का गुलगपाड़ा सुन बेचारी तायफा झटपट उठकर झुँझलाती हुई पेशवाज पहनती और शफरदाई साज चढ़ाने लगते। जब नाच शुरू हो जाता तब—जैसे रासमंडल के छैल-छबीले छोकड़ों से लोग छेड़-छाड़ करते थे, वैसे ही—बीबी के साथ भी लोग जवानी छेड़खानियाँ करने लगते! तबला चाहे दिल्ली की ओर, सारंगी ढाके की ओर; और जोड़ी झाँसी की ओर और बीबी दार्जिलिंग की ओर जा रही हो तो जायँ भले ही, तमाशबीनों को तबला, सारंगी और मंजीरे से कुछ मतलब नहीं, सिर्फ चुहलबाजी से काम; क्योंकि उनके लिए तो वही घुड़चढ़ी टकाही लाख 'छपनछुरी' से बढ़कर! अंधे सियार को पीपर मिठाई।

उधर तमाशबीन मौज करते, इधर गोबरधन और बाबू रामटहल सिंह! बाबू साहब पहले ही से गाँव की स्त्रियों के लिए खास जगह तजवीज कर देते। खासकर तमाशे का असली आनन्द लूटनेवाली स्त्रियाँ वहीं बैठाई जातीं। वह जगह ऐसी थी, जहाँ बे-खटके बाबू साहब का घात लग सकता था।

फिर उसके पास ही एक कोठरी और थी—गोबरधन और महादेई का मिलन-मन्दिर! मजा यह कि उसीमें ठाकुरजी की हंडिका चढ़ती थी! इसीलिए वह

ठाकुरबारी से मिली हुई थी। उसका दरवाजा ठाकुरजी के सिंहासन की दाहिनी ओर ठीक सामने परिकरमा में पड़ता था!

परिकरमा के आगेवाले ओसार में एक तरफ बाबू साहब के घराने की स्त्रियाँ चिक के अन्दर बैठती थीं। उनके आगे पसुपत पांड़े आसन जमाये बैठ रहते और माला का गोंज अपने आगे रखकर उसे धीरे-धीरे खटखटाते जाते थे।

गोबरधन और महादेई की पहली मुलाकात बड़ी हवेली के घर में हुई थी। उसी दिन दोनों का मन मिला था। उसी दिन गोबरधन ने उसपर अपना जादू डाला था। उसी दिन बाबू साहब की खाट भी कटी थी।

बाबू रामटहल सिंह ब्रह्मपिचास के फेर में पड़कर महीनों खाट से लगे रहे। कई बार खाट से उतारे भी गये। पर महादेई को इसकी कुछ चिन्ता न थी। वह घरवालों की आँखें बचाकर चुराई हुई चीजें अपने पीहर भेजा करती। सब लोग टोटका और दवा-दारू करने में फँस रहते और वह किसी घर में अकेली बैठी झँखा करती।

बाबू रामटहल सिंह उसे बहुत चाहते, पर वह उनकी कुछ भी परवा न करती। जब से वह आई, उसका रंग-ढंग कुछ और ही तरह का जान पड़ा। कई बार बाबू साहब की बूढ़ी माता ने उसका चटोरपन देखा, कई बार उसे गोबरधन के सामने बिना आँचल सँभाले बे-धड़क हँसते-बोलते देखा; पर सब पेट में डाल लिया।

पूजा-पाठ करने के लिए गोबरधन को रोज ही बड़ी हवेली में जाना पड़ता था। वह जब तक हवेली में रहता, उसके आस-पास महादेई मधुमक्खी की तरह मँड़राया करती। वह उसको भौजी कहता, वह उसे अपना लहुरा देवर समझती। पर यह नाता गुपचुप नहीं था!

गोबरधन कभी-कभी सबके सामने ही महादेई से गहरी चुटकी ले बैठता था। यहाँ तक कि बाबू साहब के सामने भी कई बार वह ऐसी चुटकी भर देता था कि वह हँस पड़ते थे। महादेई सिर्फ औरों को दिखाने के लिए झल्ला उठती थी।

बात यह थी कि बाबू साहब महादेई के चोंचले ठीक समझ नहीं सकते थे। हाँ, उनकी बुढ़िया माता कुछ भाँपती थीं; किन्तु बड़े भाग्य से घर बसा हुआ समझकर नई बहू को वह कुछ कह नहीं सकती थीं। पसुपत पांड़े की लिहाज-मुरौवत से गोबरधन को भी कुछ कहते न बनता था। इसलिए वह दगे साँड़ की तरह हरी फसल चरने लगा—उँगली पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया! ऊपर राम-राम, भीतर सिद्ध काम।

गोबरधन से जिस दिन पहले-पहल सामना हुआ था, उस दिन महादेई अपने घर में मचिया पर बैठकर नखों से जमीन खोद रही थी। मन-ही-मन सोचती जाती थी—हत्यारे बाप ने जान-बूझकर मुझे भांड़ में झोंक दिया। अब जिंदगी

का एक भी सुख मुझे नसीब न होगा। दुख-ही-दुख मेरे लिलार में बदा है। जब काम निकालना होता है, तब कोई भतार बन जाता है, कोई सास बन बैठती है; पर जब बुधिया से पाला पड़ा, तब कोई बीच में न आया। वह सबके देखते पानी पी-पीकर गालियाँ देती हुई मेरे साथ झोंटाझोंटी करके चली गई। घर-भर खाली मुँह ताकता रह गया। किसी से कुछ करते-धरते न बना। मेरा पानी उतारकर वह यों ही चली गई। रहता कोई मेरी ओर का आदमी, तो उतने ही पर न जाने क्या-क्या कर देता। लेकिन जिसको मेरे लिए कुछ करना चाहिए था, उसकी तो मति ही मारी गई थी। यह उसीका करमभोग है, जो अब खाट पर पड़े-पड़े भोग रहे हैं। अपनी घरनी का रोना परतच्छ ही पड़ता है।

उधर वह घर में बैठी झँख रही थी, इधर पूजा पर से उठकर गोबरधन हवन-कुंड का थोड़ा-सा भस्म मुट्ठी में लिये हुए बाबू साहब के पास चला गया। बाबू साहब के मुँह में चुटकी भर भस्म डालकर उनके सब अंगों में थोड़ा-थोड़ा भस्म लगा दिया। फिर उनकी बूढ़ी माता से कहा—आप यहाँ से हट जातीं, तो भौजी को बुलाकर मैं एक तंत्र साधता।

बेचारी बुढ़िया को तो अपने लाड़ले की जान के लाले पड़े थे। वह तंत्र साधने का भेद समझ न सकी। पहले उसने कभी इस बात का सपना भी नहीं देखा था कि पसुपत पाँड़े का बेटा, जो जन्म से ही बराबर हवेली में आता-जाता है, ऐसी खोटी नीयत का हो गया है।

बुढ़िया को पहले-पहल आज ही आस्तीन का साँप दिखाई पड़ा। आज से पहले उसने कभी महादेई के दोषों को न परखा था। अभी तक तो बेचारी अनायास घर बस जाने के कारण अपना अहोभाग्य ही मना रही थी।

गोबरधन के कहने से बुढ़िया उठकर बाहर चली आई। आँगन में आकर महादेई से बोली—जाओ बहुरिया, भभूत करा लो। अरे, तनिक इस बहाने से भी तो उस घर में कभी-कभी जाया करो। न जाने तुमसे कैसे विना देखे रहा जाता है। भूले-भटके भी तुम उस घर की ओर नहीं जाती। कैसा तुम्हारा कलेजा है?

घर के अन्दर से ही महादेई झुँझलाकर बोली—क्या करने जाऊँ? मेरे साथ उन्होंने जैसी करनी की है, वह क्या आज ही भूल गई, जो मैं उनको देखे विना बेचैन हो जाऊँ?

बुढ़िया ने खीजकर अनादर से कहा—अच्छा, मत जाओ, मत देखो। चूल्हे में पड़े तुम्हारा जाना और देखना। तुम्हारे न जाने और न देखने से क्या होगा? तुम्हारे ही पैर में सुदरसन चक्र का चिह्न है जो वहाँ जाते ही उसकी रोग-व्याधि हर लेगी? तुम्हारी नजर में क्या अमृत का कुंड भरा है जो उसे पिलाकर जिला दोगी?

न जाओ, कहीं सुघर पैर के तलवे घिस जायँगे ! भला यह तो बताओ, तुम्हारे साथ उसने कौन-सी ऐसी बुरी करनी की है, जो तुम्हें आज तक नहीं भूलती ? अरे अपना अहोभाग मनाओ कि मेरे बेटे-जैसा सूधा आदमी मिल गया, नहीं तो तुम्हारे ऐसे कुलच्छन का कहीं विवाह भी न होता।

महादेई झल्लाकर बोली—अच्छा तो अब एक सुर से बड़बड़ाती ही मत रह जाओ। मालूम तो हुआ कि तुम्हारे दिल में बेटे की आग बहुत है, तो आपही जाकर भभूत करा लो। मुझे क्यों बुला रही हो ? इतना जहर क्यों उगल रही हो ? मैं कुलच्छन हूँ और तुम बड़ी सुलच्छन हो !

गोबरधन ने बाबू साहबवाले घर से बाहर निकलकर महादेई के घर की ओर बढ़ते हुए कहा—अच्छा जाने दो चाची, तुम चुप रहो। मैं ही जाकर भौजी को मना लाता हूँ। अब इस समय उस घर में उनके जाने की कुछ जरूरत नहीं है। सिर्फ भैरोनाथ की भभूत देनी थी, सो मैं वहीं जाकर दिये देता हूँ। फिर कल से तो उनको हवन-कुंड में से आप ही भभूत निकालकर लानी पड़ेगी। आज मैं काम चला देता हूँ।

यह कहते और मुस्कुराते हुए गोबरधन झटपट महादेई के घर में घुस गया। उसको घर में यकायक आया देख वह झट मुँह फेरकर बैठ गई। थोड़ा घूँघट भी सरका लिया।

गोबरधन उसके आगे बैठकर हँसते-हँसते बोला—मैं तो छोटा देवर हूँ। मुझसे लजाने का क्या दरकार है ? इस हवेली में और जितनी भौजाइयाँ हैं, सब मुझसे खुल्लमखुल्ला बतियाती हैं, तरह-तरह की चीजें खिलाती हैं, और तुमको तो इतने दिन यहाँ आये हो गये, न जाने क्यों मुझे देखते ही डेढ़ हाथ का घूँघट काढ़ लेती हो ?

यह कहकर गोबरधन ने महादेई का घूँघट उठा दिया ! देह से गोबरधन का हाथ लगते ही महादेई के हृदय में सन-से एक बिजली दौड़ गई ! उसने झट फिर घूँघट काढ़ लिया। वह अपने दिल की कँपकँपी को धड़कन से भरी हुई छाती के अन्दर दबाकर और घुटनों में सिर देकर, मुस्कुराती हुई, धीमे सुर से बोली—देह छुना ठीक नहीं।

पहले-पहल आँखें चार होते ही ये चार शब्द सुन पड़े ! इससे गोबरधन बड़ा निराश हुआ। उसका कलेजा धक-धक करने लगा। डबडबाकर बोला—भौजी ! यह भस्म लो, थोड़ा लिलार में लगा लेना और थोड़ा-सा मुँह में डाल लेना, मैं जाता हूँ।

गोबरधन धीरे-धीरे उठकर चला। उसे आशा थी कि कम-से-कम घर के अन्दर से निकलते समय भी महादेई उसकी ओर अवश्य देखेगी। इसीलिए वह घर के दरवाजे से निकलते समय तक पीछे की ओर बराबर देखता ही चला गया।

पर महादेई टस-से-मस न हुई। उसी तरह मचिया पर सहमकर बैठी रही। गालों पर ललाई छा गई, देह में पसीना हो आया, रोएँ खड़े हो गये; पर आँगन में गोबरधन के चले जाने पर भी उसकी ओर आँख न उठा सकी।

गोबरधन की दी हुई भस्म की पुड़िया उसके पैरों के पास पड़ी थी। काँपते हुए हाथों से उठाकर देखा, तो उसमें थोड़ी-सी भभूत और थोड़ा अच्छत था! फिर काँपते हुए हाथों से ही उसे नीचे रख दिया।

बड़ी देर तक वहीं बैठी हुई मन-ही-मन कह रही थी—मैंने बड़ा बुरा किया। बेचारे का जी छोटा हो गया होगा। तनिक घूँघट ही उठा दिया तो क्या हुआ, देवर तो एक-से-एक दिल्लगी करता है। बड़े भाग से मसखरा देवर मिलता है। छोटे चाचा तो मेरी मैया से ऐसी बढ़-बढ़कर हँसी करते थे कि वह नाकों आ जाती थी। इसने तो बड़े प्यार से मुझे 'भौजी' कहकर भभूत दी है। बेचारा मेरे ही सोहाग के लिए तो दिन-रात पूजा-पाठ में लगा हुआ है। दुनिया में कौन किसके लिए इतना करता है। अब मैं उसके सामने होने में संकोच न करूँगी। आज उसका जी खट्टा हो गया होगा।

—पर क्या वह समझता न होगा कि आज पहला दिन होने से ऐसा हुआ। अच्छा, कल ठाकुरजी के दरसन को जाऊँगी, तो आप ही पता लग जायगा कि मैं उसके दिल से उतर गई हूँ या नहीं। अगर दिल खोलकर बोलेगा, तो उसका दिल न तोड़ूँगी। नहीं एक बार जी टूट जाने से अगर कुछ सम्हल गया भी होगा, तो दूसरी बार फिर जी छोटा हो जाने से कभी मेरी ओर आँख उठाकर देखेगा भी नहीं। कभी-कभी सबको सुनाकर जो मुझसे हँसता-बोलता है, वह भी छोड़ देगा। वही तो एक है, जो आँगन में जब कभी आता है, सबसे पहले बुढ़िया से मेरी ही बात पूछता है। देखा-देखी न होने पर भी, हरदम मुझे ही ढूँढ़ता हुआ आँगन में आता है। मेरे सिवा और किसी से बहुत हँस्सी-ठट्ठा भी नहीं करता। जब मेरे लिए उसके दिल में प्रेम है, तभी तो इतनी खोज-पूछ करता है। उसके मन में मैल नहीं है। जो कुछ मन में रहता है, झट सबके मुँह पर ही कह देता है। मेरे साथ उसकी हँसी किसी को तनिक भी नहीं रुचती, मगर तब भी वह नहीं मानता। जो कोई अच्छी चीज पाता है, बड़े प्रेम से लाकर सबके आगे ही मुझे भेज देता है। देखकर घर-भर की गोतनी-दयादिनें कट जाती हैं, ताना मारने लगती हैं, लेकिन वह किसी की बोली-ठठोली को तिनका-बराबर भी नहीं गिनता। सुभाव ही से वह भीतर का भला आदमी जान पड़ता है। इतना सयाना होने पर भी उसका लड़कों के ऐसा सुभाव है। लल्लो-पत्तो करना तो जानता ही नहीं।

और उसके ऐसा मिठबोलिया भी कोई नजर नहीं आता। जी करता है कि वह जब तक आँगन में रहता, तब तक बोलता ही रहता।

—रूप भी भगवान ने वैसा ही दिया है, मुँह पर पानी कितना है। गेहुँआँ रंग, आम की फाँक-सी बड़ी-बड़ी आँखें, इंगुर के ऐसे लाल-लाल ओंठ, नग-जड़े हुए-से दाँत! और बड़ी कौड़ी-सी आँखें देखकर तो मन करता है कि दिन-रात देखा ही करूँ। जिस सोहागिन ने उसके ऐसा वर पाया है, न जाने उसने कितने जनम तक तप किया था। उसको देखकर वह फूली-फूली फिरती होगी। एक मेरा भी नसीब ही है कि दिन-रात अपनी किस्मत को रो रही हूँ।

इधर अपने घर में बैठकर महादेई खीझती थी, उधर गोवरधन ठाकुरबारी में जाकर कभी उदास मन से, कभी अनखाकर, कभी नाक चढ़ाकर चिन्ता कर रहा था—दिन-रात 'भौजी-भौजी' कहते-कहते ओंठ पपड़ा गये, और भौजी मुझे देखकर नौ हाथ का घूँघट काढ़ लेती है। उसके लिए आज कई महीने से न मैं दिन को दिन समझता हूँ—न रात को रात। हवन और जप करते-करते जान निकल गई, इसका तो कुछ ख्याल ही नहीं है। इतना अगर किसी और को मानता, तो उससे जो चाहता सो करा लेता। अपने मन को क्या कहूँ, समझाये भी नहीं समझता। अच्छा, आज पहला दिन है। कल-परसों और देख लूँ। अगर ऐसा ही रंग-ढंग रहा, तो चौथे दिन इसी ठाकुरबारी में उससे खोलकर कह दूँगा कि किसी तरह ब्रह्मपिसाच नहीं मानता, कहता है कि अब अगर बहुत दिक करोगे तो मैं तुम्हें और तुम्हारे बाप को भी ले बैठूँगा। जब इतने पर भी न मानेगी, तब ऐसा पुराचरन करूँगा कि भैयाराम टन हो जायँगे। चाहे इसके लिए पिताजी घर में रहने दें या घर से निकाल दें। पड़े नौ या छः, जो बात मन में ठन गई है, उसे करके ही छोड़ूँगा। जिस भौजी की भलाई के लिए इतना जान लड़ा रहा हूँ, वही जरा-सा सिर का आँचर छू जाने पर, हाथ झटकाकर कहती है कि देह छूना ठीक नहीं!

—वाह री देह! जिसके लिए नाक कटाई, वही कहे नकटा! ऐसा अन्धेर? क्या मेरी स्त्री से अधिक सुन्दर देह है? उसके पैरों का धोवन भी तो नहीं है। न जाने मेरा यह हत्यारा मन क्यों बहक-बहककर उसी की ओर खिंचा चला जा रहा है। इसे न जाने कैसी सनक सवार है। अगर मेरी स्त्री भी उसीकी तरह निश्चिन्त होकर खाने-पहनने और घर में चुपचाप बैठी-बैठी नाइन से पैर दबवाने लगे, तो ऐसी सुघर हो जाय कि देखनेवाले को भी धरनेवाला चाहिए। उसको रोज अगर ढेंकी-चक्की चलाकर कूटना-पीसना और रसोई-पानी के साथ-साथ चौका-बरतन करना न पड़े, तो उसका रूप भी ऐसा हो जाय कि देख पड़ोसिन झख मारे। साल में कभी तीज-बहुरा के दिन मैया के बहुत कहने-सुनने पर जो साधारण रीति से बन-ठन

जाती है, वह रूप देखकर न जाने मेरे मन में कितनी उमंग भर जाती है; लेकिन आफत तो यह है कि वह अपने सिंगार-पटार की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देती। नहीं तो उसके आगे ऐसी-ऐसी भौजी में क्या रखा है!

पर यह भी हो सकता है कि भौजी ने पहले-पहल अपनी लाज निबाहने के लिए ही ऐसा बर्ताव किया हो। अगर ऐसा न होता, तो फिर मुस्कुराती क्यों? मसल है, हँसी सो फँसी। कुछ-न-कुछ दाल में काला जरूर है। ऐसा तो हो ही नहीं सकता कि तिलों में तेल न हो। विना आग के धुँआ नहीं होता। मन में इच्छा तो जरूर रही होगी; पर यकायक खुलकर कैसे कहे। धीरे-धीरे परक जायगी, तो आप ही चहकने लगेगी। खैर, पहले-पहल का दरस-परस है-- दुधैल गाय की लात ही भली!

६

चारो धाम

जो जाय बद्री, सो न आवे ओद्री
जो आवे ओद्री तो न हो दरिद्री

पशुपत पाँडे बाबू रामटहल सिंह की बुढ़िया माता से एक हजार रुपये लेकर कमरू-कमच्छा चले गये। हजार रुपये तो घर में डाल दिये, और खाकी साधू का वेष बनाकर चारो धाम की यात्रा के लिए निकल पड़े!

बाल पहले ही से बढ़ा रक्खे थे। दाढ़ी लम्बी थी ही, बल्कि पेट में भी बड़ी लम्बी दाढ़ी थी! भभूत रमाकर मूँज की करधनी पहने, कमंडल और मृगछाला के साथ घर से बाहर हो गये।

फिर तो दगे साँढ़ बन गये। सारी दुनिया उनकी अपनी ही जागीर बन गई। मुट्ठी भर राख देह में मलते ही अकंटक राज्य मिल गया, जैसे पियक्कड़ चार पैसे की ताड़ी पीकर बादशाह का बाप बन जाता है!

बिना टिकट के ही रेल का सफर शुरू हो गया। गाड़ी में जब कोई टिकट की जाँच करने आता, तब पूरे मौनी बाबा बनकर माला ढूढ़ने लगते। टिकट माँगने पर लंगोटी, माला, मृगछाला और कमंडल दिखला देते!

गाड़ी से जहाँ उतरते, मैदान में धूनी रमा देते। धूनी की राख में सौ-पचास लोग गाड़कर रख लेते। चारों ओर लोग हाथ जोड़े घेरे रहते; आप चुपचाप आँखें बंद किये माला सरकाते चले जाते। लोगों के सामने अपने हाथ से कभी पैसे न छूते। ऊपर पक्के परमहंस, भीतर कालनेमी के काका!

साथ में एक चेला भी था—खेदू कहार का छोटा बेटा सजीवन। वह अपने बड़े भाई बहोरन के साथ कलकत्ते में रहता था। वह तो विना टिकट के सफर करने में पक्का उस्ताद था।

बहोरन एक अंगरेज का बेहरा था और सजीवन एक सेठ का नौकर। दोनों भाई खूब कमाते थे। बहोरन को मेम साहब और सजीवन को सेठानी बहुत मानती थी! दरमाहा तो पाई-पाई बच जाता था। खाने-पीने में भी बहुत किफायत खर्च था।

बहोरन बढ़िया चाय, बिस्कुट, शराब और सिगरेट मुफ्त ही लाता था, और सजीवन भी आटा, घी, चीनी, चावल और पापड़ से घर भरे रहता था। साहब-मेम और सेठ-सेठानी के छाड़न-उतारन से ही मजे में कपड़े-लत्ते का काम चल जाता था।

दोनों की स्त्रियाँ परदे में रहती थीं। कभी सेठानी और कभी मेम साहब की मोटर पर कालीघाट जाकर दोनों कालीजी के दर्शन कर आती थीं। दोनों मोटरों के हाँकनेवाले हँसी-खेल में ही परखते-परखते बहोरन-बहू और सजीवन-बहू से बड़ी और छोटी भौजी का नाता जोड़े हुए थे।

दोनों गोतिनी जब मोटर पर चढ़कर चौरंगी सड़क के बहुरंगी दृश्य देखते किले के मैदान की हवा खाते चली जाती थीं, तब उन्हें भूलकर भी उस दिन की कभी सुधि नहीं आती थी, जिस दिन बाबू रामटहल सिंह के नौकरों ने उनको बे-पानी किया था। पर बहोरन और सजीवन को वह दिन फाँसी की तारीख की तरह याद रहता था।

सेठ-सेठानी के साथ सजीवन बैजनाथजी गया हुआ था। वहीं मंदिर में पसुपत पाँड़े से भेंट हो गई। पाँड़ेजी घर से सीधे बैजनाथजी ही आये थे। सजीवन क्या पहचाने? ठाठ-बाट ही निराला था! मगर पाँड़ेजी ने सजीवन को पहचान लिया। सजीवन तो उन्हें खाकी नागा के भेष में देखकर अकचका गया।

पाँड़ेजी उसको अलग ले जाकर बड़े ढंग से बोले—तू मेरे साथ चल। दूध-मलाई, खोवा, रबड़ी, मालपुआ-मलीदा, हलवा-पूरी—जो खायेगा, खिलाऊँगा। मगर याद रहे, मेरा चेला बनकर रहना पड़ेगा। मैं जो कुछ सिखलाऊँगा, वही बोलना और करना होगा। उससे बालभर भी इधर-उधर होगा, तो खेल बिगड़ जायगा। तुझे ऐसे-ऐसे तंत्र-मंत्र सिखलाऊँगा कि सब ओझों का मेठ तेरा बाप भी तेरा हुनर देखकर चकरा जायगा। अपने मालिक से एक साल की छुट्टी लेकर चल। रुपये-पैसे की चिन्ता मत कर। पहले चल तो सही, हमलोग जहाँ जम जायँगे, वहीं तोड़े बरसने लगेंगे। मगर देर न कर पट्ठा। बहोरन को चिट्ठी लिखकर आज ही डाकघर में छोड़ दे।

सजीवन बड़ी दुविधा में पड़ गया। इधर सेठानी की चिंता, उधर तंत्र-मंत्र सीखने की चोखी चाह! सोचा—तंत्र-मंत्र सीखे बिना बाबू साहब से उस दिन के अन्याय का बदला नहीं लिया जा सकता। बाबूजी नामी ओझा हैं तो क्या, उनसे कसर निकालना नहीं सपरेगा। हमलोग दोनों भाई अगर लाखों रुपये कमाकर घर में डाल देंगे, तो भी अपने गाँव में बाबू साहब के सामने सिर न उठा सकेंगे। इस जन्म में हमलोग उनसे आँख बराबर नहीं कर सकते। मगर तंत्र-मंत्र करके बदला चुकाना बहुत आसान है। बात भी जाहिर न होगी और काम भी सिद्ध हो जायगा। पाँड़ेजी अपनी देहात में दस कोस के बीच एक ही तान्त्रिक हैं। एक साल के संग में तो मुझे पलीता बना देंगे। जरूर इनके साथ चलना चाहिए। सेठानी अगर जल्दी छुट्टी न देंगी, तो भाग जाऊँगा। लौट आने पर फिर तंत्र साधकर सेठानी को भी मुट्ठी में कर सकता हूँ। तंत्र साधने से भूत भागता है, दुश्मन डरता है, बड़े-बड़े अदालती मामलों में डिगरी होती है। स्त्री अपने काबू की हो जाती है, राजा

प्रसन्न होता है, देवता कृपा करते हैं, सभी काम फतह हो जाते हैं, मनचाही चीज भी मिल सकती है! अगर निष्ठा से सीख लूँगा तो सिद्ध ही हो जाऊँगा।

सजीवन नौजवान छोकरा था। पाँड़े जी की धूर्तता को समझ न सका। अनायास आ गया पंजे में। बेचारे को ऊँचा-नीचा कुछ न सूझा।

तान्त्रिक होने की लालसा ने तो सजीवन को और अधिक बेचैन कर दिया। उसने सेठानी की बेचैनी न देखी। उनके समझाने-बुझाने को ताक पर रखकर चल पड़ा पाँड़ेजी के संग!

पाँड़ेजी ने ऐसा चेला मूँड़ा कि यात्रा बन गई! जहाँ-कहीं लक्कड़ जलाकर बाबा का आसन जमा देते, वहीं चेला रंग बाँध देता। घटाटोप भूमिका बाँधकर कहता—बाबा अपने हाथ से रुपया-पैसा नहीं छूते! जिसका नसीब तेज होता है, उसीको अपने हाथ से भभूत उठाकर देते हैं। अगर कोई नेह लगाकर आवे और बाबा उसके सिर पर अपना हाथ फेर दें, तो उसका भाग जग जाय। परिच्छा ले लो। हाथ कंगन को आरसी क्या?

चेला बड़ा चलता-पुर्जा निकला! जहाँ-जहाँ गया, हर जगह बाबा का डंका पीट दिया। बाबा तो सिर्फ 'कोईरी के देवता' बने रहते, और चेला अपनी कथक्कड़ी से लोगों पर धाक जमाये रहता! गुरु सेर भर, चेला सवा सेर!

पाँड़ेजी और सजीवन उसी दिन बैजनाथजी के दर्शन करके जगन्नाथ पुरी जाने के लिए कलकत्ते की गाड़ी पर सवार हुए। गाड़ी में बहुत-से तीर्थ-यात्री साथी मिले। सब-के-सब अपनी आसपास की देहात के ही थे—कोई आजमगढ़, कोई मिरजापुर, कोई गोरखपुर, कोई बनारस, कोई बलिया। एक सूरदास भी था। गाड़ी खुलते ही वह खँजड़ी पर गाने लगा—

श्री जानकी-जीवन बिना जीना निकाम है
खटरस प्रकार अन्न का खाना हराम है
दस-आठ चारि छव सभी बकना बेकाम है
करिके करार क्या कियो मन में न स्याम है
आखिर गुलामी चाम की बिधि कर्म बाम है
जीवन जगत इस जीव का बस राम नाम है
ज्ञानी अली छन पल सदा भजु आठो जाम है

भजन गाने के समय बीच में भक्ति-भाव के कवित्त भी एक निराली लय से कहता गया—

कैसे सूझि परै वह साँवरो सलोना स्याम
पर-धन-दारा तेरी आँखिन समायी है

चाहे सुख सबदा पै बोवत बिथा को बीज
बुरो फल पाइ देवै राम की दुहाई है
'गोपीचंद' सपनेहू सुमति की न मानी बात
कुमति-कसाइनि ने नटी-सी नचाई है
अजौं मतिमन्द भवसिंधु तरिबो जो चहे
भजो रघुराई बस एक ही उपाई है
ए रे मन मूरख तू भूल्यो क्यों जगत माँहि
उमिरि वृथा ही माया-मोह में गँवाई है
सुत-बित धन-धाम दारा-परिवारा छल—
छदम को अगारा तेरा न कोऊ सहाई है
अजहूँ बिचारा निज धर्म का प्रचार करु
भवसिंधु अगम अगाध दुखदाई है
'सोभाराम' राम-राम जपो आठो जाम धाम
मानुस के देह बड़े भागन सो पाई है

चारों ओर से लोग बोल उठे—वाह सूरदास! तुमने तो अमृत बरसा दिया। भगवान ने तुम्हारी बाहर की आँखें बन्द करके भीतर की आँखें खोल दी हैं। तुम्हारा गला तो इतना मीठा है कि बाँसुरी ससुरी क्या होगी। कैसी सुन्दर चीज गाई है कि वाह जी वाह! धन्य सूरदास!

एक यात्री—कहाँ तक चलोगे सूरदास?

सूरदास—राम-इच्छा से जगदीश-धाम की डोरी लगी है।

सब लोग आनंद से गदगदाकर बोल उठे—ओहोहो! खूब साथी मिले भाई! यात्रा सुफल हो गई। अच्छा, चलो, हमलोग तुम्हारी सेवा करते चलेंगे, और तुम कभी-कभी भजन गा-गाकर सुनाते रहना। रास्ता भी कटेगा, भगवान का भजन भी होगा। बोलो भाइयो, जगदीस सामी की जै जै!!

रेल का डब्बा जैजैकार से गूँज उठा। बगल के डब्बेवाले झाँकने लगे। तब तक एक यात्री ने आप-ही-आप कहा—हमने तो भाई आजतक जितने सूरदास देखे हैं, सब-के-सब भजनानंदी। मालूम होता है, ईश्वर ही के यहाँ से सूर लोग गाने-बजाने में उस्ताद होकर आते हैं। उनके बाहर अँधेरा और भीतर उजेला रहता है। सुनते हैं, बृजमंडलवाले भक्त सूरदास वेदव्यासजी के अवतार थे, जैसे बालमीकजी के अवतार गोसाईं तुलसीदास। एक दफे वही सूरदास एक बहुत गहरे कुँए में गिर पड़े। बस उसी में मगन हो कर भजन गाने लगे—

हम भक्तन के भक्त हमारे
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे
भक्त काज लाज हिय धरि के, पाँव पियादे धाऊँ
जहँ-जहँ भीर परै भक्तन पै, तहँ-तहँ जाइ छुड़ाऊँ

—कुँए में जब आदमी की आहट मिली, तब लोग निकालने दौड़े। मगर सूरदास ने बाहर निकलने से इनकार किया। कहने लगे कि नाग-नथैया की बड़ी लम्बी बाँह है, वही निकालेगा तो निकलूँगा, डोरी पकड़कर ऊपर आना बेकार है; क्योंकि जो भगवान भवकूप से उबारता है, वह क्या इस जलकूप से न उबारेगा?

—बस इसी पर सब लोग झुंझलाकर यह कहते हुए चले गये कि मरने दो इस हठी अंधे को इसी अन्धकूप में। बड़ा दिमागी है।

—मगर भगवान से भक्त का कष्ट न देखा गया, दौड़े हुए पहुँचे। झट कुँए में हाथ डालकर सूरदास से बोले—निकलो बाहर, मैं खुद तुम्हें निकालने आया हूँ।

सूरदास ने दीनानाथ की यह मधुर बानी सुनते ही कुँए में टटोलकर उनका हाथ पकड़ लिया—दबाकर, सहलाकर देखा, बड़ा कोमल और चिकना हाथ था। उसमें से ऐसी सुगन्ध निकलती थी कि सूरदास मस्त हो गये। उनके रोएँ खड़े हो गये। खूब जोर से हाथ पकड़ लिया। सूर लोग भी 'बानरमूठ' की तरह कोई चीज पकड़ते हैं। लेकिन त्रिलोकीनाथ के सामने बानरमूठ क्या और ऊँट की पकड़ क्या! बाहर निकलने पर ज्यों ही सूरदास ने भगवान को भर-अँकवार पकड़ना चाहा, त्यों ही लीलाधारी अन्तरीछ हो गये। यह छू-मन्तर देखकर सूरदास बहुत बिगड़े। ललकार कर बोले—

कर छुटकाए जात हौ निबल जानि के मोहि
हिरदै से जब जाहुगे, मर्द बखानौं तोहि

इसी समय एक दूसरा यात्री बीच ही में बोल उठा—इस कथा में आपने जो यह कहा है कि सूरदासजी के कुँए में गिर जाने पर जब लोग उन्हें निकालने दौड़े, तब वह डोरी के सहारे बाहर निकालने पर राजी नहीं हुए, सो झूठी बात है, सूरदास खुद लिख गये हैं—

परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार
सातवें दिन आइ जदुपति कियो आप उधार

—सो सात दिन तक तो किसी ने खबर ही नहीं ली थी। आपने यह कथा कहाँ सुनी कि लोग निकालने दौड़े और सूरदास निकले ही नहीं? ऐसा किस ग्रंथ में लिखा है? कोई प्रमान दे सकते हैं? मैंने तो प्रमान दे दिया।

बीच ही में छेड़े जाने से पहले यात्री को बड़ा रंज हुआ। अक्खड़ ठेठ देहाती था, तनकर बोला—तुम किस देश के जंगली आदमी हो जी, बीच में छेड़नेवाले तुम होते कौन हो? तुम्हीं कथा के बड़े जानकार बने फिरते हो? अगर एक छोटी-मोटी बात पूछ दूँ, तो बोल बन्द हो जाय।

दूसरा यात्री भी दोआबा का था। अपनी जगह पर उठ खड़ा हो गया। अकड़कर बोला—तुम्हें अपने गुरु की कसम, पूछकर देख लो, झट जवाब न दे सो असल बाप का जना नहीं। मगर याद रहे, फिर एक ही सवाल में दिमाग झाड़ दूँगा।

इसपर सब यात्री दोनों बुद्धुओं को बढ़ावा देते हुए बोल उठे—अच्छा तो अब इसी बात पर फैसला ही हो जाय! देखा जाय, कौन कितने पानी में है। पहले कौन पूछेगा?

दूसरा यात्री हाथ फटकारता हुआ बोला—पहले मैं ही पूछूँगा!

सब यात्री एक सुर से पूछ बैठे—क्या पूछोगे?

दूसरे यात्री ने तमककर कहा—जो जी में आवेगा सो पूछूँगा। यह पहले ही क्यों बतलाऊँ कि क्या? बृजविलास, भक्तमाल, बिस्रामसागर, दसासुमेध, बालमीकी, भागवत, गीता—सब देखे हैं। जहाँ से इच्छा होगी, बस वहीं से सवाल करूँगा। मगर एक बात पंचों के बीच में पहले ही कह देता हूँ—अगर बच्चू जवाब न देंगे, तो 'जंगली' कहने का मजा चखा दूँगा।

पहला यात्री नाक फुलाकर और भवें जुटाकर अपना सिर झोरते हुए बोला—चलो जी, मजा चखानेवाले की सूरत बहुत देखी है! तुम किस खेत की मूली हो? कसकर एक घूँसा जमा दूँ, तो उठकर पानी न पी सको।

दूसरे यात्री का चेहरा तमतमा उठा। उसने आँखें तरेरकर आस्तीन चढ़ाते हुए कहा—ऐसा? मजा चखानेवाले की सूरत अभी तुमने कहाँ देखी? देखोगे? है गुर्दा? अगर बारह बरस तक तुमने अपनी माँ का दूध पिया हो, तो बस आओ, इसी जगह दो-दो हाथ हो जाय।

पहला यात्री गरजकर बोला—बस खबरदार! चिताये देता हूँ, आँख दिखाओगे, तो इसी जगह पटककर दोनों आँखें निकाल लूँगा। मुँह सम्हालकर बोलो, नहीं तो राख लगाकर सट-से जीभ खींच लूँगा। भले आदमी की तरह वहीं बैठ जाओ, नहीं तो गेंद की तरह उठाकर चलती गाड़ी से नीचे फेंक दूँगा, पुर्जे-पुर्जे उड़ जाओगे। हड्डियों का भी कहीं पता न लगेगा।

हाँ, हाँ, हाँ, यह क्या, जाने दो, बैठ जाओ, मान जाओ—चारों ओर से लोग कहते ही रह गये, मगर कौन किसकी मानता है! दोनों कटकटाकर आपस में भिड़ गये; बीच-बचाव करने पर भी दोनों गुर्राते, हाँपते और नीचे-ऊपर होते रहे।

घुटने, केहुनी और सिर लहू-लुहान हो गये ! तीतर-बटेर लड़ाकर मन बहलानेवालों ने बड़ी-बड़ी मुश्किल से उन्हें धर-पकड़ कर अलग किया !

सूरदास ने अपनी बैठी हुई आँखों को फैलाते हुए कहा—राम-राम ! दाल-भात में ऊँट की टाँग पड़ गई ! कहाँ भजन-भाव हो रहा था, कहाँ यह मार-पीट की नौबत आ गई। हरे नारायण !

एक यात्री—हाँ सूरदास, तो भजन-भाव होता चले, यह सब तो होता ही रहता है ! यह भी एक लहर थी, आई और चली गयी। मर्दों का तो यही काम है, लड़ना और कटना-मरना। यह कोई नामूसी की बात नहीं है। दोनों के बल-विद्या की जाँच भी हो गई, कुछ देर गुलजार भी रहा ! यही क्या कम है ! सच पूछो तो कसूर दोनों का है—जैसे उदई तैसे भान, न इनके चुटिया न उनके कान !

बस इतना कहना था कि सूरदास की सधी हुई उँगलियाँ खँजड़ी पर थिरकने लगीं। इस बार सूरदास ने बड़े पक्के सुर से भजन उठाया—

हरि भजु रे मन मूढ़ गँवारा
धरि जग जन्म भज्यो नहीं रामहिं
लादि लियो सिर पाप पहारा
चौदह लच्छ छियालिस जोजन
बिखम पंथ यम दक्खिन द्वारा
दस हजार योजन कंटक मग
ग्रीखम बरखा दसम हजारा
'दूल्हमदास' अजहुँ हरिपद भजु
हरि बिनु कोउ नहिं करत उबारा

इस लयदार भजन के साथ भी सूरदास ने बड़े अनुराग से एक कवित्त गाया—

दुइ बेर द्वारिका त्रिवेनी जाइ तीन बेर
चार बेर कासी गंग अंग हूँ नहायते
पाँच बेर गया जाइ छव बेर नैमिख बन
सात बेर पुस्कर में मंजन कराय ते
रामनाथ जगनाथ बद्री केदारनाथ
दसासुमेध दस बेर पग धाये ते
जेते फल होत कोटि तीरथ असनान किये
तेते फल होत एक राम-नाम गाये ते

यह भजन पहले से भी अधिक जम गया। सब लोग गद्गद हो गये। वाहवाह की आवाज से डब्बा गूँज उठा ; पर किसी ने सूरदास से यह नहीं पूछा कि अभी तक कुछ चना-चबेना हुआ है या नहीं !

सजीवन ने वाहवाही का तार टूटने पर पूछा—कहो सूरदास, कुछ खाओगे ? दम लगाते हो या नहीं ? इच्छा हो तो साफ बोलो। सब सामान अपने पास है।

सूरदास ने अपनी फूटी आँखों में आनंद छलकाते हुए कहा—अगर इच्छा होगी, तो आगे के किसी टेसन पर थोड़ा-सा कुछ खा लूँगा। बैजनाथ-धाम में थोड़ा चिउरा-दही भोग लगाया था। राम-इच्छा से कोई हर्ज नहीं है, अच्छी तरह से पा लिया है। हबड़े तक के लिए निचिंत हो गया हूँ। गयाजी का एक जजमान चेत गया, आध सेर के करीब चिउरा दे दिया। वह इतना बारीक था कि हाथ में लेने पर नाक की हवा लगते ही उड़ जाता था ! और फिर बूढ़े बैलवाले बाबा के धाम का दही पड़ने से ऐसा खिल उठा कि मोहन-भोग बन गया। एक पंडाजी ने ऊपर से मुट्ठी-भर चिनी भी डाल दी, बस समझिए कि चार ही गफ्फे में मन भर गया ! दम मारने की इच्छा तो है, मगर कोई दाता चेते तब न ? अगर इस घड़ी दम लगाने का सामान हो जाता, तब तो पेट भी हलका होता, और भजन-भाव में भी मौज रहती।

सजीवन ने गाँजा मलकर चिलम चढ़ाई, सूरदास को गाँजा पिलाया, सेठानी का दिया हुआ उमदा लड्डू खिलाया और अपने पास बैठाकर बाबा का गुण-गान सुनाना शुरू किया।

बाबा की बड़ाई सुनकर सूरदास ने सिर झुकाया। बाबा ने भी चुपचाप आशीर्वाद का हाथ उठाया। सजीवन मन-ही-मन मुस्कुराया।

सूरदास ने पूछा—बाबा हमको अपना चेला बनावेंगे ?

सजीवन—सच्ची लगन हो, तो क्यों नहीं बनावेंगे ? यही तो दिन-रात की खेती-बारी है। संसार के जीवों का उधार करने के लिए ही तो बाबा हमारे-तुम्हारे बीच में नजर आते हैं, नहीं तो कहीं पहाड़ की खोह में पड़े होते। बाबा का तो यही काम है—

मूँड़ लिया चेला, और छोड़ दिया अकेला
न पास में रखें धेला, न झंझट न झमेला

सूरदास—बाबा बोलते नहीं ?

सजीवन—बारह बरस से मौन हैं ?

सूरदास ने अचरज के साथ कहा—बारह बरस से ?

सजीवन—और क्या ? पहले बारह बरस खाली फरहार पर रहे। उसके बाद मौन रहने लगे। आजकल खाली गोरस पीकर रहते हैं। अबकी बार ठाकुरद्वारे

से लौटने के बाद गंगा-तट पर खाली गंगा-जल पीकर बारह बरस तप करेंगे। उसके बाद हिमालय पर चले जायँगे। फिर इन्हें कोई न देख सकेगा।

सूरदास—अहोभाग कि आज एक ऐसे महात्मा के दरसन हो गये। रामजी की बड़ी कृपा हुई, क्योंकि 'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता' और 'संत-मिलन सम सुख जग नाहीं।' फिर कबीरदास ने भी कहा है—'ते दिन गये अकारथे, संगति भई न संत।'

एक मुसाफिर—क्यों सूरदास, मौनी साधू माला भी जपते हैं? सुना है, वह तो कहीं आते-जाते भी नहीं।

सूरदास—भाई, भगवान का सुमिरन करना तो हर हालत में अच्छा ही है। मौन रहने का मतलब यह है कि राम-नाम के सिवा मुँह से फजूल बात न निकले। सुमिरन के सिवा हमलोग जो कुछ बोलते हैं, सब माया का परपंच है। राम-नाम का सुमिरन ही मूल पदारथ है, और सब मिथ्या है। विधाता ने जीभ दी है—राम-नाम जपने के लिए, कान दिये हैं—राम-कथा सुनने के लिए, आँखें दी हैं—भगवान के दरसन के लिए, मुँह दिया है—महाप्रसाद खाने और राम-गुन गाने के लिए, नाक दी है—भगवान का प्रसाद-फूल सूँघने के लिए, हाथ दिये हैं—संतों की सेवा करने के लिए, और पैर दिये हैं—तीरथ करने के लिए। गोसाईं जी ने साफ कह दिया है—

देह धरे कर यहि फल भाई, भजिय राम सब काम बिहाई

कागभसुण्डजी ने भी गरुड़जी से कहा है—

स्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी, राम भजिय सब काम बिसारी।

एक मुसाफिर—सूरदास, तुम तो पूरे सतसंगी जीव हो। कहाँ इतना ज्ञान सीखा है? रामायण तुमने पढ़ी है?

एक दूसरा मुसाफिर—वाह! 'सारी रामायन हो गई, सीता किसकी जोय'! इतना भी नहीं समझे? 'सतसंगति महिमा नहिं गोई'।

एक तीसरा मुसाफिर—और क्या विना सतसंग के इतना उजियार कहाँ से हो सकता है? 'बिनु सतसंग विवेक न होई'।

एक चौथा मुसाफिर—यह भी तो रामायन में ही लिखा है कि 'तबहिं होइ सब संसय भंगा, जब कछु काल करिय सतसंगा'।

सूर—बस सतसंग ही ज्ञान, भजन, भक्ति और मुक्ति की जड़ है। सबरी से खुद बड़े सरकार ने कहा है—'प्रथम भगति संतन कर संगा'।

पहला मुसाफिर—इसीलिए तो गोसाईंजी ने यहाँ तक कह दिया है कि—'सतसंगति दुर्लभ संसारा, निमिख दंड भरि एकउ बारा'।

सूरदास—आपलोगों के सतसंग से आज बड़ा आनन्द आया—'धन्य घरी सोइ जब सतसंगा'।

दूसरा मुसाफिर—भला यह तो बताओ सूरदास, तुम्हारा अस्थान कहाँ है ? अयोध्याजी ?

तीसरा—अजी रमता जोगी के अस्थान का क्या ठिकाना ? सूरदास तरंगी जीव ठहरे—'जहाँ साँझ, वहीं बिहान।

चौथा—चाहिए भी ऐसा ही—'बहता पानी निर्मला, बंधा गंदा होइ, साधू जन रमते भला, दाग न लागे कोइ'।

दूसरा—ऐसा क्योंकर हो सकता है ? कोई-न-कोई अस्थान तो जरूर होगा। चिड़िया भी अपना एक ठिकाना रखती है।

सूरदास—अस्थान तो असल में रामजी की सरन में है, मगर इधर कुछ दिनों से पटने के पास गंगा-तट पर फूस-फास की एक राममड़ैया बन गई। चारों ओर घूम-फिरकर वहीं जाता हूँ। भजन के भरोसे ही जीता हूँ। भजन ही खोराक-पोसाक और भजन ही धंधा-पेसा है। पेट से अधिक जो मिल जाता है सो संचता जाता हूँ, पटने में अंधों के लिए एक स्कूल बनवाऊँगा।

एक मुसाफिर—बड़ी हिम्मत बाँधी है, सूरदास !

सूरदास—मेरी हिम्मत इसमें क्या है, भगवान का भरोसा-भर दम है। अपना कुछ बल-बूता तो है नहीं। उन्हीं की दया से माँग-चाहकर एक-दो हजार बटोर लिया है। 'राम भरोसे जो रहे, परबत पर हरिआय'।

सजीवन—वाह, पैसा-पैसा बटोरकर हजार-हजार से बेसी फंदा दिया है। चन्दा क्यों नहीं उगाहते ? अच्छा, स्कूल बनेगा कितने में ?

सूरदास—जितने में बने, बनेगा जरूर। रामजी की ऐसी ही इच्छा है। आप चन्दे की बात पूछते हैं, तो भला भिखमंगे अन्धे को चन्दा कौन देगा ? रामजी का ही आसरा ठीक है—'जब खुश रहेगा मौला, तो क्यों न देगा मुराजुद्दौला'।

सजीवन—बाबा के साथ चलो, तुम्हें स्कूल के लिए बहुत रुपये दिलवायेंगे ! बाबा खुद रुपये नहीं छूते, जो पूजा चढ़ती है, गरीब-गुरबा को बाँट देते हैं। और-और साधुओं की तरह बाबा कभी भण्डारा नहीं करते। आज जो हजार रुपया पूजा चढ़े, तो आज ही सब लुटा देंगे ! असल कोई खाते ही नहीं और खर्च ही क्या है ? साथ रहोगे तो बाबा के प्रसाद से बढ़िया-बढ़िया माल चाभोगे, देस-देसान्तर देखोगे, टके सीधे करोगे, सतसंग से लाभ उठाओगे और निचिन्त रहकर भगवत-भजन में भी मस्त रहोगे।

मौनी बाबा के चेले की बात सुनकर सब लोग सूरदास से कहने लगे—चले जाओ सूरदास, बड़ा अच्छा मौका है। अपना अहोभाग मनाओ कि ऐसे महात्मा से भेंट हो गई। सतसंग भी भगवत-भजन से कम नहीं है। भगवान के भक्त का

साथ मिल जाना परम-पद से क्या कम है ? तुम तो जानते ही हो—'राम ते अधिक राम के दासा'। बस पकड़ो मौनी बाबा का सहारा। आनन्द से भजन भी करोगे, तिरथाटन भी हो जायगा, स्कूल भी बनवा लोगे। परलोक तो सुधर ही जायगा, इस लोक में भी तुम्हारी एक कीर्ति रह जायगी ! 'गोरस बेचत हरि मिले, एक पंथ दो काज'।

सूरदास ने मुस्कुराते-ही-मुस्कुराते बेधड़क कहा—रामजी का सहारा पकड़ ही लिया है, तो अब इधर-उधर कहाँ भटकता फिरूँ। देखा जायगा। देगा वही, आज दे या कल, खुद दे या किसी से दिलवा दे। बड़ा भारी दाता है। खलक को रोजी पहुँचाता है। जो उसका आसरा छोड़कर किसी आदमी का पल्ला पकड़ता है, वह ऐसे अथाह में पड़ जाता है कि किनारा नहीं पाता। उसी के दरबार में पड़ा रहूँगा, कभी कनखी से भी ताकेगा, तो बेड़ा पार हो जायगा। मैं उसको दिन-रात भजता हूँ, वह क्या इतना भी न करेगा कि मेरा हौसला पूरा हो ? मैं तो बेटा-बेटी, राज-पाट, महल-अटारी, हाथी-घोड़ा, मोहर-असरफी—कुछ नहीं चाहता। अपने लिए मुझे चुटकी-भर चून की भी चिन्ता नहीं है। परलोक के लिए परजटन कर रहा हूँ। पेट के धंधे की जरूरत क्या है ? मैं अपनी कुटिया में बैठे-बैठे दो-चार अभागत को रोज खिला सकता हूँ। इस्कूल तो सिरिफ इसलिए बनवाना चाहता हूँ कि धनी लोग मुझ-जैसे अंधे भिखमंगे की हिम्मत देखकर लजायँ और कंगाल लोग भीख माँगकर भी अच्छे काम में पैसे लगाना सीखें। कितने भिखमंगे बीड़ी-सिगरेट, गाँजा-भाँग, चरस-अफीम और दारू-ताड़ी पीकर दाता के पैसे पानी में फेंकते हैं। कई भिखारियों के पास सैकड़ों रुपये जमा हैं। मैंने तो कुछ भिखारी ऐसे देखे हैं, जिन्हें गरमी-सुजाक की बीमारी है ! कुछ लोग झूठ-मूठ लड़की का ब्याह करने के लिए भीख माँगते फिरते हैं। भिखमंगी करके कोई इनारा-पोखरा खुदवाता है, कोई मंदिर-मठ बनवाता है, कोई घाट बँधवाता है, कोई गौसाला खोलता है, कोई भंडारा करता है। अजब अन्धेर है—"मुफ्त की गंगा, हराम का गोता'। मैं तो और कुछ न करके इस्कूल ही बनवाऊँगा। विद्या-दान सबसे बड़ा दान है। सेठ लोग सूद की कमाई से जो लाखों रुपये लुटा देते हैं, वह दान क्या मेरे इस भजन की कमाई से दिए हुए कुछ ही हजार के दान से बढ़कर होगा ?

एक यात्री—नहीं, बढ़कर कैसे होगा ? प्रेम और सरधा का एक पैसा भी धन-मद के करोड़ों तोड़े से बढ़कर है। धरमसास्तर भी तो यही कहता है कि 'जथा सक्ति तथा भक्ति' होनी चाहिए।

सजीवन ने उदास होकर कहा—बाबा को कुछ गरज नहीं है, चाहे कोई साथ चले या न चले। यह तो खुद लहँड़ा बटोरना नहीं चाहते। अगर अपने सब चेलों की जमात साथ लिए फिरें, तो पूरी फौज ही बन जाय। इन्हें किसी से क्या

मतलब! इनके साथ जो रहेगा, अपने फायदे के लिए। इनसे कुछ लेगा ही, देगा नहीं। मैं भी अपने ही गरज से पीछे लगा फिरता हूँ। सूरदास अगर साथ चलेंगे, तो अपना काम बनावेंगे, इसमें बाबा का कुछ नफा-नुकसान नहीं है।

सूरदास—अच्छा, गंगा-सागर से ठाकुरद्वारा तक अब सतसंग रहेगा ही, आगे की बात रामजी की इच्छा पर छोड़ दीजिए।

एक यात्री—बस, सूरदास ने सौ बात की एक बात कह दी। अच्छा तो अब जिससे जो बन पड़े सो इसको दे। मैं तो इसी समय बस सोलह आना नगद देता हूँ—'नौ नगद न तेरह उधार'।

यह कहते हुए उसने सूरदास के हाथ में एक रुपया रख दिया। फिर क्या, और लोगों ने भी देना शुरू किया।

लोग जो कहते हैं कि 'रुपये को देखकर रुपया आता है' और 'रुपया ही रुपये को बुलाता है' सो बहुत ठीक है। अधेली-सूका सबने दिया। बाबा का इशारा पाकर सजीवन ने भी जोड़ा रुपया निकालकर दिया। एक खासी मोटी रकम हो गई—'दस की लाठी एक का बोझ'।

हवड़ा स्टेशन पर गाड़ी लगते ही सब मुसाफिर ताबड़तोड़ उतरने की धुन में लग गये। सूरदास की खोज किसी ने नहीं की। पर सजीवन सदा सूरदास की सेवा में लगा रहा।

सूरदास मन-ही-मन अनुभव करने लगा कि मौनी बाबा न होते, तो यहाँ के धक्के में पिसकर मैं मर ही जाता। उसने हवड़े का हाहाकार सुनकर सजीवन से पूछा—मालूम होता है कि हमलोग एक नये मुलुक में पहुँच गये। यहाँ तो बड़ा हल्ला हो रहा है। कहीं आग तो नहीं लगी है? मुझे तो जान पड़ता है कि 'बुढ़िया आँधी' आ रही है। जोर-जोर से पानी पड़ रहा है क्या? समुन्दर नगीच है?

सजीवन ने हँसते-हँसते कहा—चुपचाप चलो। अभी तो हवड़ा है, पुल पार करके जब कलकत्ते में चलोगे, तब कहोगे कि बापरे बाप—यह कलकत्ता तो हरिहर-छतर के मेले का लकड़दादा है! यहाँ से लौटकर अपनी कुटिया पर जाओगे, तो मालूम होगा कि सिर का बोझ उतर गया, देह हलकी हो गई, भीतर से एक हाहाकार निकल गया।

मौनी बाबा ने गंगा-तीर पर एक अच्छी जगह तजबीज करके चिमटा गाड़ दिया। धूनी रम गई। भीड़ जम गई, आडम्बर फैल गया। फिर सूरदास ने उस आडम्बर पर और भी गाढ़ा रंग चढ़ा दिया!

दो दिन बीत गये। तीसरे दिन मौका पाकर सूरदास ने सजीवन से पूछा—बाबा का आसन कब उठेगा? आज तीसरा दिन है, अब तो चिमटा उखड़ना चाहिए। एक ही जगह जम जाने से मरजाद घटती है।

बाबा ने सूरदास को प्रसन्न रखने के लिए उसी दिन अपना डेरा-डंडा उखाड़ दिया। गंगा-सागर का टिकट कटा लिया गया।

रात को जहाज खुलनेवाला था। शाम होते-होते खा-पकाकर सूरदास के साथ गुरु-चेले चढ़ चले। जहाज पर भी सूरदास की चाँदी रही। कुल खर्चा निकल आया!

गुरु-चेले ने मेले में बड़ा रंग बाँधा। इतनी पूजा चढ़ी कि रुपया ठीकरा हो गया! पाव-भर लौंग और अच्छत से बाबा ने पोठिया की तरह रुपया बिछा दिया!

गंगा-सागर नहाकर तीनों एक साथ ठाकुर द्वारा चले। फिर वहाँ का अटका लेकर गुरु-चेले ने कामरू-कमच्छा की तैयारी की। सूरदास चला घर को। उसने गुरु-चेले से यह भी नहीं कहा कि आप लोग उधर जाते हैं, तो मैं अंधा इधर अकेला कैसे जाऊँगा।

परन्तु संग छोड़ने से पहले उसने बाबा से बड़ा आग्रह किया कि लौटती बेर मेरी कुटिया को जरूर पवित्र कीजिएगा। एक साँझ भी मेरे यहाँ जूठन गिराइएगा।

जब वह बाबा को दंडवत् करके बिदा होने लगा, तब सजीवन ने कहा—सूरदास, तुम घबराओ मत। ठहरो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।

सूरदास ने बड़े हर्ष से पूछा—तो क्या बाबा वहाँ अकेले जायँगे? आप मेरे साथ कैसे चलिएगा? बाबा को एक टहलुआ चाहिए न?

सजीवन—वहाँ बाबा के कई चेले हैं।

सूरदास—रास्ते में कैसे काम चलेगा?

सजीवन—मैं तो कहता ही हूँ कि मुझे साथ ले चलिए, मगर बाबा मानते ही नहीं। बार-बार यही कहते हैं कि सूरदास के साथ जाओ, उसको कष्ट होगा।

सूरदास—ना बाबा, आपका असिरबाद चाहिए, मैं बड़े मजे में चला जाऊँगा। कुछ कष्ट न होगा। मेरी तो दिन-रात की यही आदत है—घूमता ही फिरता हूँ।

सजीवन—लो, अब क्या, बाबा भी हमलोगों के साथ ही चलेंगे, वहाँ न जायँगे। तुम्हारी कुटिया का भाग जग गया!

सूरदास मारे खुशी के उछल पड़ा। हँसकर बोला—वाह! तब तो सोने में सुगन्ध! 'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करे सब कोई!'

'धनि धनि भाग हमारो' गाकर खँजड़ी बजाने लगा! क्रूर भावों का नचाया हुआ नाच नाचने लगा!

बाबा अपने चेले के साथ सूरदास की कुटिया पहुँचे। सूरदास ने बड़ी आवभगत की। स्थान रमणीक था। बाबा का मन रम गया। मगर डीठ सूरदास की थाती पर ही गड़ी थी!

आसपास के गाँवों में बाबा के नाम का नगाड़ा पिट गया। स्त्रियाँ झुंड-के-झुंड आने लगीं। किसी को प्रेत लगा था, किसी के लड़का नहीं होता था, किसी के दूध नहीं उतरता था, किसी को डायन सता रही थी! रोग-बला का कुछ ठिकाना न था।

बाबा चुपचाप बैठे-बैठे माला के मनके गिनते रहते थे। चेले को ही भभूत के साथ लौंग और अच्छत बाँटना पड़ता था। एक पसेरी चावल और सौ फूल लौंग से बाबा ने ठीकरों की तरह रुपये बुहार लिये। और चेले ने चुन-चुनकर भगतिनियों को भरमाया।

स्त्रियों के सिवा अनेक पुरुष भी पैदावार का हाल और अदालती लड़ाइयों का फल पूछने के लिए पहुँचते थे। अहीर दूध-दही लाते, कोइरी साग-भाजी लाते, बढ़ई खड़ाऊँ लाते, ब्राह्मण जनेऊ लाते, बाबू और बनिये नगद लाते। रात-दिन भंडार भरा रहता!

सजीवन आप भी खूब तर माल चाभता और आधी रात के बाद बाबा को भी तर माल चभाता। सूरदास से तो उसकी ऐसी पटरी बैठ गई कि 'दो चोला एक प्राण' की तरह दोनों में कोई भेद-भाव ही न रहा। किसी-किसी दिन तो रात-रात भर दोनों अपना सुख-दुख बतियाते रह जाते!

पंद्रहवें दिन बाबा की आज्ञा से पूजा पर चढ़ा हुआ अन्न-वस्त्र बेचकर चेले ने रात में स्थान छोड़ देने की ठानी। सूरदास को या और किसी को भी इस बात की कुछ खबर न थी! और खबर हो भी कैसे? कालनेमि काका ने माया जो फैला रक्खी थी!

रात को जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, तब बाबा अपने चेले के साथ सूरदास की थाती-पूँजी लेकर चम्पत हो गये!

इस यात्रा में दो-तीन हजार से कम पाँड़ेजी के हाथ न लगा। पर बेचारे सजीवन को दो-ढाई सौ ही देकर फुसला दिया। वह गाँव के मालिक के गुरु-पुरोहित से कुछ कहने की हिम्मत न कर सका—लहू का घूँट पीकर रह गया!

पाँड़ेजी के चले जाने पर वह सोचने लगा—बाबाजी ने तो मुझे खूब सब्ज बाग दिखाया! इसी दो सौ रुपल्ली पर सेठानी से नाहक साल-भर की छुट्टी मँगवाई! तंत्र-मंत्र सिखाने की बात भी झाँसा-पट्टी ही रही! मैं न होता, तो कोई धेला न देता। मैं जानता कि ऐसी चाल चलेंगे, तो साथ ही न देता। अच्छा, गरीब के रोएँ दुखाने का फल भगवान देंगे। बेचारे सूरदास के कलेजे की सूई इनके कलेजे से फार होकर निकलेगी। अन्धे की आह कभी बेईमानी का धन भोगने न देगी। एक-एक पैसा रोओं फोड़कर निकलेगा--नून की हँड़िया की तरह गलाकर छोड़ेगा। हराम का माल पचाना ठट्ठा नहीं है।

इसी तरह की बातें सोचता और मन-ही-मन कुढ़ता हुआ सजीवन कलकत्ते चला गया। रास्ते में कभी-कभी उसकी इच्छा होती थी कि रामसहर लौटकर पाँडेजी की धूर्तता का भंडा-फोड़ करना चाहिए; पर रह-रहकर उसकी आँखों के आगे वही दिन नाच उठता था, जिस दिन एक अदना-सी बात के लिए उसके घर-भर पर बे-भाव की पड़ने लगी थी—सौ जूते पड़ने पर भी एक ही गिना गया था।

७
रंग में भंग

रोग की जड़ खाँसी, झगड़े की जड़ हाँसी

चैत का महीना था। गोधूली बेला थी। गोपाल, केदार और हम रामसहर के 'पंचमंदिल' के ऊँचे चौतरे पर बैठे हुए थे।

रसे-रसे हवा डोलती थी। आम के मंजराने, नीम के फूलने और महुए के गदराने से दसो दिशाएँ गमगमाती थीं। पास ही की घनी अमराई में कोयल कुहुकती थी—हमलोग जितना ही चिढ़ाते थे, वह उतना ही उभड़ती जाती थी। दिन-भर खेतों में दाना चुगकर अपने बसेरे पर आई हुई चिड़िया अपने अँखफोड़ बच्चों को पंखों के आँचर में छिपाकर चहचहाती थी। बस्ती के इर्द-गिर्द बाँसों के झुरमुट में गोरैया और छोटी मैना चहक रही थीं। खेत-खलिहानों में बूढ़े-जवान किसान अपनी मौज से चैत का तान अलापते थे!

बड़े हुलास का समय था। ऐसा सुहाता था कि—इतना भाता था कि—चैती बहार की मस्ती से मन नाच उठता था!

पीपल, पाकड़ और नीम के लहलहे टूसे बड़े सुहावने देख पड़ते थे। लहालोट फूले हुए टेसू की ललाई अपने चारों ओर की हलकी हरियाली पर अजब रंग बरसा रही थी!

गाँव के रेख-उठान छोकड़े घर लौटती हुई गौओं के पीछे-पीछे, कंधे लाठी लिए, कान पर अँगुली दिये, पिहकते चले आते थे! एक तरफ कोई तान लड़ाता था—

अहो राम—टूटी रे पर्कोड़या
सीतल जुड़ि छाँहियाँ—ए रामा!

दूसरी तरफ कोई दूसरा अलापता था—

सुगना बोले हो, पिया की अटरिया—ए रामा।

तीसरी तरफ कोई तीसरा लहर लेता था—

सइयाँ निरमोहिया रे, अजहुँ ना आये—हो रामा!

इसी तरह धीरे-धीरे पागुर करती और बस्ती की ओर मधुरी चाल से आती हुई भैंसों की पीठ पर बैठे हुए अहीरों के लंगोटबंद लड़के भी कानों में उंगलियाँ डालकर पंचम सुर से बिरहा गाते चले आते थे—

बार-बार तोंके हम बरजी बलमुआँ
पुरुब मुँह के जनि खोलु दुआर

इहै पुरवइया जनमवाँ के बैरी
बाँधल आँचल खुलि जाइ !

मालूम होता था—कान, नाक और आँख की राह से कोई रस की छाक पिला रहा हो। पल-पल मन उमगता था। बाग-बगीचे में, खेत-खलिहान में, बस्ती में, बहरी तरफ—चारों ओर बसन्ती लहर हिलोरे ले रही थी !

'पंचमंदिल' के चौतरे पर गाँव के और भी बहुत-से आदमी बैठे हुए थे। जगह-जगह तरह-तरह की बातें हो रही थीं। कहीं रामायन-महाभारत और कहीं सुखसागर-प्रेमसागर की कथा का बखान हो रहा था और कहीं गोसाईंजी की चौपाइयों के अर्थ पर विचित्र तर्क-वितर्क हो रहे थे। नाना भाँति की चर्चा छिड़ी हुई थी !

हमलोग हर जगह घूम-घूमकर बत-रस का मजा लेते थे। एक जगह कुश-लव की बड़ाई-छोटाई पर हुज्जत हो रही थी।

एक आदमी ने कहा—जानकीजी के दोनों बेटों में कुश बड़े थे और लव छोटे।

यह सुनते ही दूसरा बोल उठा—नहीं, लव बड़े थे, और कुश छोटे। पहिले लव ही जन्मे थे। एक दिन ऐसा हुआ कि पलने में लव रोने लगे। सीताजी काम से खाली नहीं थीं—बालमीकजी की कुटी को लीप-पोतकर ठीक करना था—फ़ूल और तुलसीदल चुनकर रखना था। मगर इससे बच्चे को क्या, वह तो—पत्थर पड़े या वज्र गिरे—दूध पिये विना मान नहीं सकता, लव हाथ-पैर उछाल-उछालकर रोते ही रहे। आखिर महतारी का कलेजा कैसे माने ? सीताजी ने उनको गोद में उठाकर, हलराते हुए, उनके मुँह में छाती लगा दी। लव चुप होकर घुटुर-घुटुर दूध पीने लगे। सीताजी उनको छाती से लगाये ही कुटी लीपने चली गईं। महतारी बड़े-बड़े कष्ट झेलकर बच्चे को पालती है !

—इतने में मुनिजी नहा-धोकर, जटा फटकारे, कमण्डल लिए, खड़ाऊँ चट-चटाते हुए पहुँचे। देखा कि पलना सूना पड़ा है ! नीचे से ऊपर तक सूख गये। ऐसा हाल हो गया कि मुँह में धान डालो, तो लावा फूट जाय ! सोचा—बेटी सीता कुटी लीपती होगी ; जब आकर पलना देखेगी, तब तो कटे रूख की तरह गिर पड़ेगी ! जान पड़ता है, कोई जंगली जीव बच्चे को उठा ले गया।

—यह सोचकर मुनिजी ने कुश उखाड़कर पलने में रक्खा और मंत्र पढ़कर उसपर जल छोड़ दिया। बस, उसी दम एक बच्चा पलने में 'किहाँ-किहाँ' कर रोने लगा। जब कुटी को लीप-पोतकर सीताजी पलने के पास आयीं, तब लव के समतूल ही सुघर-सुभेख एक दूसरा बालक देखकर अचंभे में पड़ गईं।

—फिर मुनिजी ने जब सच बात बता दी, तब उनके मन को विश्राम मिला। इसीलिए कुश से लव बड़े हैं।

कुश के जन्म की कथा सुनकर हमलोग दूसरी जमात में जा बैठे। वहाँ लोग रामायन और महाभारत की लड़ाई पर माथापच्ची कर रहे थे।

एक ने कहा—राम-रावन की लड़ाई के जोड़ की दूसरी लड़ाई कभी नहीं हुई—'भयउ न अहई न अब होनिहारा'।

इतना सुनते ही एक दूसरा आदमी बोला—चाहे जो कहो, लेकिन महाभारथ-जैसी गठी हुई लड़ाई मेरे ध्यान में तो कोई नहीं आती। खूब ठाट से, मोर्चेबन्दी के साथ, डटकर वह लड़ाई हुई थी। और सबसे बड़ी बात यह है कि उसमें दोनों तरफ बराबर बलवाले वीर थे। लंका की लड़ाई उसके आगे क्या है? 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगु तेली'। राई-पहाड़ का बीच है। लंका की लड़ाई तो खाली 'हुलेलेले' है—बानर-भालु हूह देकर दौड़े, कुम्भकरन ने चुटकी में चीलर की तरह मींज डाला। बस चलो, खतम हो गई लड़ाई।

यह सुन पहले आदमी ने जोर से खँखारकर चौतरे के नीचे थूक फेंकते हुए कहा—वाह! तुम्हारे कहने से खतम हो गई लड़ाई। था कोई कुम्भकरन-ऐसा वीर महाभारथ में? महाभारथ के नामी वीर भीम गये तो थे एक बार लंका में—कुम्भकरन की आधी खोपड़ी को पोखरा जानकर ज्यों ही नहाने के लिए पैठे, त्यों ही गचका खाने लगे—डूबते-डूबते जान बची। अरे! वह ऐसा-वैसा वीर था? दैत था दैत! भला जिसकी 'योजन एक मोंछ रह ठाढ़ी'— उसके बल का कोई पारावार है। तभी तो दुआपर में भभीखन के पास जब महाभारथ का न्योता पहुँचा, तब पहले उसने दूत से लस्कर की गिनती ही पूछी! दूत ने अठारह छोहिनी बताई। उसने ठठाकर हँसते हुए कहा—ऐसी छोटी-मोटी लड़ाई देखकर हम क्या करेंगे! हमारे भैया की फौज में तो इससे कहीं अधिक बाजेवाले थे।

दूसरे आदमी ने अपने सिर में बँधा हुआ अँगोछा खोलकर पीछे की ओर फेंकते और बैठकर उसके घेरे में घुटनों को कसते हुए कहा—इससे क्या, भीम और कुम्भकरन में बड़ा भेद है। कुम्भकरन बड़ा भारी सराबी था। सड़क की मिट्टी बराबर करनेवाले रोलर की तरह लुढ़कता और बानर-भालुओं को चपेटता फिरता था; मगर भीम सब तरह के हथियार चलाना जानते थे। पट्ठा जब गदा लेकर मैदान में उतर जाता, तब कौरवों के दल में हैजा फैल जाता था—लोगों को मारते-मारते खलिहान लगा देता था। सकुनी को तो भीम खटमल के बराबर भी नहीं गुनते थे। अदबदा कर उसीको सताने के लिए औढर-दानी महादेवजी को खुस करके उन्होंने एक विचित्र बरदान पाया था। वह जो कुछ खाते, सकुनी बेचारा उसे दिसा की राह से निकालता। एक बार जवान समूचा चरखा ही लील गया। अब तो सकुनी की नानी मरने लगी।

काँखते-काँखते गाभिन गाय की दशा हो गई। मामा की सारी जुआचोरी घुस गई। बताओ न, लंका में भी कोई चरखा छीलनेवाला वीर था?

भीम की कथा सुनकर हँसते-हँसते हमलोग तीसरी जमात में गये। वहाँ गोसाईं जी की रामायन पर दलील चल रही थी।

एक कहता था—'मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह नीति अनूपा'—यह चौपाई गोसाईं जी की इस चौपाई से बे-लाग कट जाती है—'रंगभूमि जब सिय पगु धारी, देखि रूप मोहे नर-नारी'। ऐसी विपरीत बात गुसाईं जी ने क्यों लिखी? वहाँ 'मोह न नारि नारि के रूपा' और यहाँ 'देखि रूप मोहे नर नारी' यह कैसा झमेला? नारी को देखकर नर मोहित हो गया, यहाँ तक तो ठीक है; मगर नारी को देखकर नारी कैसे मोहेगी!

तब एक दूसरा आदमी भी बोल उठा—और भी तो है। लखनलाल को जब मेघनाद का सक्ति-बान लगा तब भगवान रोने लगे। उसी समय की एक चौपाई है—'निज जननी के एक कुमारा'! मगर लखनलाल तो अपनी जननी के एक ही कुमार नहीं थे! वह तो दो भाई थे—लखनजी और सत्रुघनजी! फिर वहीं ऊपर की चौपाई में भगवान ने लखनजी को सगा भाई बतलाया है—'मिलत न जगत सहोदर भ्राता!' क्या गोसाईंजी को मालूम नहीं था कि कौसिल्याजी के पेट से अकेले भगवान ही हुए थे!

इसपर एक तीसरा बूढ़ा, जो बड़ा भारी रामायनी समझा जाता था, हँसकर बोला—गोसाईं जी ने सब सही लिखा है। नारी को देखकर नारी के मोहने की बात भी ठीक है। हाँ, दोनों चौपाइयों के भाव में भेद है। गरुड़जी से कागभसुंडीजी के कहने का मतलब यह है कि स्त्री को देखकर स्त्री कभी पुरुष की तरह मोहित नहीं होती, और जनकपुरवाली चौपाई का अभिप्राय यह है कि सीताजी को देखकर स्त्रियों के मन में यह लालच पैदा हुई कि हमारे घर में भी ऐसी ही सुघर-सुसील बहू उतरती।

—फिर 'निज जननी के एक कुमारा' का भाव गोसाईं जी ने अगले पद में साफ खोल दिया है—'तात तासु तुम प्रान अधारा'। पहिला पद भगवान अपने आप पर कह रहे हैं कि निज जननी के हम एक ही कुमार हैं, और हे तात! उसके तुम प्रान के आधार हो—तात्पर्य यह कि तुम्हारे न जीने से मैं न जीऊँगा, और मेरे मरने से मेरी माता निपूती हो जायगी, उसकी कोख का चिराग ही बुझ जायगा।

—इस प्रकार भगवान की 'सहोदर भ्राता' वाली बात भी कुछ अटपट नहीं है। अगिन-देवता की दी हुई खीर से ही तो चारों भैया अवतरे थे? फिर खीर बाँटने के समय की यह चौपाई क्या कहती है—'कौसिल्या केकई हाथ धरि, दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि'। कैसा दरपन की तरह भाव झलका दिया है? जो अब भी न बूझे, वह क्यों न जूझे।

इतने में एक चौथा आदमी पूछ बैठा—बाबा, इस चौपाई में क्या अक़ल लड़ाओगे—'जो जनतेऊँ बन बंधु बिछोहू, पिता बचन मनतेऊँ नहिं ओहू' ? कौन पिता-वचन ? पिता ने कब मुँह खोलकर बनवास का हुकुम दिया था ? दसरथ जी ने तो केकई की दूसरी थाती को दुहराया भी नहीं था। सिरिफ इतना ही कहा था कि 'एकहि बात मोहिं दुख लागा, वर दूसर असमंजस माँगा'।

इसपर बूढ़े रामायनी ने बड़ी शांति से कहा—अरे भाई इसपर एक कथा कही गई है। मेघनाद को पता लगा कि लछमनजी के हाथ हमारा काल बदा है। वह मगर बनकर सरजू के घाट पर चला गया। चारों भैया वहीं नहाते थे। मगर ने लछुमनजी की टाँग पकड़ ली। बस चारों भैया उसे टाँग-टूँगकर रेत पर ले आये। हल्ला हुआ कि राजकुमारों ने एक मगर पकड़ा है। दसरथजी धावते हुए पहुँचे। रामचन्द्रजी धनुही चढ़ाकर तीर तान चुके थे। बेचारे मगर को हाँफते-काँपते देखकर राजा का कलेजा पसीज गया—'दया लागि नृप दीन्ह छुड़ाई'।

—वही बात भगवान कह रहे हैं कि उस समय अगर मेघनाद की यह करनी मालूम होती, तो पिताजी की बात न मानकर हम वहीं इसका काम तमाम कर दिये होते।

—फिर एक कथा है। यह किसी दूसरे जुग की बात है—'कलप भेद हरि चरित सुहाये, भाँति अनेक मुनी सन गाये'। एक दफे रावन के पेट में बड़े जोर का सूल उठा। वह बीसों हाथ से पेट पकड़कर छटपटाने लगा। कोटि उपाय करने पर भी कुछ फायदा नहीं हुआ। एक बैद ने बताया कि छीर-सागर में सेसनाग पर सोये हुए विश्नु भगवान की नाभी में जो कँवल का फूल है, उसकी जड़ अगर कोई उखाड़ लाये, तो उसे घिसकर पेट पर चढ़ाने से दरद नरम हो जायगा—बस मेघनाद उसी दम चल पड़ा। जाकर देखा कि भगवान सोये हैं, लछिमीजी पैर दबाती हैं। निडर तो वह एक ही था, आव देखा न ताव, झट हाथ लगा दिया उखाड़ने में! उसी समय नाभी पिराने से भगवान की आँख खुल गई। अब कहाँ जाते हैं बच्चू, धर दबाया साले को जाँघों के बीच में। जैसे जाड़े में पिल्ले किंकियाते हैं, वैसे ही किंकियाने लगा। बूढ़े ब्रह्मा बाबा ने बहुत कह-सुनकर जान छुड़ा दी।

वही पिछले जुग की बात भगवान त्रेता में कह रहे हैं कि उस समय अगर आज की यह नौबत पहुँचने की सुधि होती, तो उसी जगह इसको जाँघों में जाँतकर जान ले लेता। पिता—सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा—की बात न मानता!

'पंचमंदिल' का लंबा-चौड़ा चौतरा इसी तरह की चर्चा का अखाड़ा था! रोज गाँव-भर के रामायनी और सतसंगी जुटते और सतसंग के बहाने दन्त-कटाकट किया

करते थे। तुलसीदास को तो चन्दन की तरह रगड़ डालते थे। कभी-कभी विचित्र-विचित्र चौपाइयाँ सुनने में आती थीं। एक कोई कह उठता—

राम नाम सुन्दर करतारी
संसय बिहँग उड़ावनहारी

दूसरा इसको यों दुहराता—

राम नाम सुन्दर तरकारी
पूरी संग उड़ावनहारी

तबतक कोई तीसरा बोल उठता—

आवत जानि भानुकुल-केतू
सरितन्ह जनक बँधाये सेतू

इसी को चौथा यों दुहराता—

आवत जानि भानुकुल-केतुआ
सरितन्ह जनक घोराए सतुआ

आज इसी सतुआवाली चौपाई पर लाठी चल गई! एक बूढ़े बाबू साहब इमली के अचार का नाम सुनकर बहुत चिढ़ते थे! लोगों के उकसाने से एक शोख लड़के ने उनसे कह दिया—ए बाबा, इधर ताकिए, आज कल नये मटर के सतुए पर इमली का अचार खूब मजा देता है!

बस, बाबा तो आग-बबूला हो गये। बगल में पड़ा हुआ एक सोटा उठाकर दौड़ते हुए बोले—खड़ा रह बदमास, मारते-मारते सतुआ झाड़ दूँगा!

लड़का भाग चला। बाबा पीछे पड़ गये। ढीली धोती में पैर फँस जाने से लड़का गिर पड़ा! बाबा ने कसकर सोटा जमा दिया। पीठ पर सोटे की साट उखड़ आई! फिर क्या, उसका बड़ा भाई, जो बड़ा उपटा जवान और अखड़िया था, लट्ठ लेकर घर से गाली देता हुआ निकला।

बाबू साहब के घरवाले भी बड़े लठबन्द थे। गाली सुनकर निकल आये मोरचे पर! लगीं लाठियाँ हरहराने। जमकर थोड़ी ही देर लाठी चली होगी कि बाबू साहब के एक भतीजे की खोपड़ी खुल गई! धन्य है—इमली का अचार!

उस समय तक चैती चाँदनी खिलकर धरती पर नैनसुख की चादर बिछा चुकी थी। गाँव में कहीं कोई अपनी गाय-भैंसों को दूहता था, कोई खा-पीकर सुरती चूना मलते हुए अपने खलिहान की ओर जा रहा था, कोई अपने दालान के ओसारे में बैठे-बैठे चैत गाकर ढोलकी घुड़काता था—किसी को इस झगड़े की खबर नहीं थीं।

जब तड़ातड़ लाठी बजने लगी, तब चारों ओर से दौड़े हुए लोग पहुँचे। मगर लोगों के जमा होने से पहले ही बाबू साहब के भतीजे का कपार फूट जाने पर लठैत

लोग तितर-बितर हो चुके थे। खींच-खराव करने से पहले ही फैसला हो चुका था! अब फौजदारी के फैसले के लिए तैयारी हो रही थी।

किन्तु वह अखड़िया जवान बाबू साहब के भतीजे का कपार फोड़कर पहले ही थाने की ओर दौड़ गया। तबतक इधर बाबू साहब के बेटे ने उसी रात को उसका खलिहान फूँक दिया!

आधी रात से कुछ अधिक रात ढल चुकी थी। सारा गाँव इस झगड़े की चर्चा करते-करते सो गया था। चाँदनी रात में गाँव के कुत्ते भी सुख की नींद ले रहे थे। ऐसा सन्नाटा छा रहा था कि कहीं तिनका खिसकने का भी शब्द नहीं सुन पड़ता था। हाँ, कहीं-कहीं कुछ लोगों की नाक बजने से मालूम होता था कि कहीं किनारे में गेहुँअन साँप फुफुकार छोड़ रहा है या भैंस की पड़िया हँकर रही है!

इसी समय पूरब के खलिहान से अचानक बड़े जोर का हल्ला उठा। एकाएक सैकड़ों आदमी एक साथ ही जग पड़े। सबने उठते ही झट अपनी-अपनी लाठी सम्हाली। एकबार कान लगाकर सुना—खलिहान में आग लगी है! सब अपने-अपने खलिहान की ओर दौड़ पड़े।

बस्ती से बाहर होते ही जब पूरब ओर के खलिहान में आकाश की ओर उठती हुई आग की लहर देख पड़ी, तब हूह देकर सब लोग चारों ओर से उसी तरफ दौड़ पड़े। मगर लोगों के पहुँचते-पहुँचते गेहूँ और चने के बोझों की टाल स्वाहा हो चुकी थी! चना पड़ापड़ उड़ रहा था, मानों भरभूजे के भार में मकई के दाने भुने जा रहे रहे हों।

खलिहानवाले अगर अपना-अपना गल्ला बचाने के धुन में न लग जाते, तो मैदान मारकर थाने में गये हुए उस अखड़िया जवान के बाल-बच्चों के सामने से परसी हुई थाली न छिन जाती! पर यह निगोड़ी दुनिया अपनी दाढ़ी की आग पहले बुझाती है।

वह बेचारा भोर होते ही थाने में इत्तला लिखाकर दूसरे रास्ते से घर लौटा, इसलिए कि बाबू साहब के घरवालों से कहीं राह में देखा-देखी न हो जाय। रास्ते भर मन-ही-मन फूलता आया—कपार भी मारा और फौजदारी भी दाग दी। अब जायँ सब लोग सात-सात साल जेहल का तसला माँजें। बड़े सहसबाहु बने हैं। मेरे घर में भी दो-चार लठबन्द होते, तो अच्छी तरह आटा-दाल का भाव मालूम हो जाता। अच्छा, अब अगर फिर लोग बमकेंगे, तो मँझले चाचा का लोहबन्ना निकालूँगा, चूल्हे के दुआर तक खदेड़-खदेड़ कर खबर लूँगा। अभी उनलोगों को किसी ढेढ़े से काम ही नहीं पड़ा है। समझते हैं कि दुनिया में हमलोग सिकन्दर बादसाह हैं! यह नहीं जानते कि दुनिया में हाथी के पैर से दबने पर चींटी भी

जोर-भर काटे बिना नहीं मानती। बला से खाने को कुछ न बचेगा, इस साल की सारी चैती बेचकर खेल खेला दूँगा।

यह आखिरी बात सोच रहा था कि किसी राही ने बड़े जोर से छींका। बेचारा अचानक चौंक उठा ; पर भावी की तो कुछ खबर थी ही नहीं, घर की ओर ताबड़तोड़ पैर बढ़ाता चला गया।

थोड़ा दिन चढ़ते-चढ़ते घर पहुँचा। गाँववालों की आँखें बचाकर चमरटोली की गली से अपने घर में घुसा। स्त्रियाँ रो रही थीं। उसे आँगन में खड़ा देख और भी छाती पीटने लगीं। पूछने लगीं। जब उसे खलिहान के जलकर खाक हो जाने की बात मालूम हुई, तब ढाड़ मारकर आँगन के बीच में धस-से बैठ गया!

—*—

८

पाँड़ेजी का प्रपंच

झूठे लेना झूठे देना
झूठे भोजन झूठ चबेना

कामरू-कमच्छा के बहाने से चारों धाम की यात्रा के लिए निकले हुए पाँड़ेजी अपना असल मतलब गाँठकर घर आ गये।

तीर्थयात्रा से लौट जाने पर बाबू रामटहल सिंह की बुढ़िया माता से पाँड़ेजी कहने लगे—कामरू-कमच्छा जाकर पूजा-पाठ और तंत्र-मंत्र कराने के लिए जो हजार रुपये मिले थे, वह तो जाने-आने, खाने-पीने और पूजा-पाठ में कौड़ी-कौड़ी खर्च हो गये। बैजनाथजी पहुँचने पर एक अपने चेले को भी साथ ले लिया। उसके साथ रहने से बड़ा आराम रहा। सेवा-टहल के लिए वह काफी था।

बुढ़िया ने पूछा—आपको तो चूल्हा फूँकना सुहाता नहीं, खाते क्या थे? परदेस में पेट ही के सिर बीतती है।

पाँड़ेजी ने हँसकर कहा—एक और दूसरा चेला भी तो था। उसने बड़ा सुख पहुँचाया। वह पाँच पीढ़ी का चेला भी तो है। सबसे बड़ी बात यह कि अपनी जाति का था, इसलिए बनी-बनाई रसोई मिल जाती थी। आपको तो मालूम ही है कि हमारी जाति में चूल्हे-चौके का कितना बखेड़ा है—'तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा'। वहाँ—कामरू-कमच्छा में—आचार-विचार बहुत कम है। इससे खाने-पीने की पवित्र चीजें बहुत महँगी मिलती थीं और तो जाने दीजिए, तंत्र साधने के लिए सामग्री जुटाने में बड़ा दाम लगा। समझिए कि तेली की खोपड़ी खोजने में पचासों रुपये लग गये। बानर की हड्डी और स्यार की खाल के लिए बड़ी झंझट उठानी पड़ी। बाम्हन के लड़के का टटका मुर्दा मंगाने में एक मूठ दो-सौ रुपया देना पड़ा। आधी रात को अकेले नदी-तीर जाकर धोबी के पाट की लकड़ी काट लानी थी। सिर्फ इतने ही काम के लिए वहाँ पचीस रुपये एक आदमी को दिये गये। मेरी तो छाती फट गई। यहाँ अगर चाहूँ, तो धोबी के पाट की तो बात ही क्या, आधी-रात को गंगा-पार से धरन मँगवा लूँ। मगर असल बात है कि देस में जो चीज कौड़ी के मोल की भी नहीं होती, परदेस में उसी के लिए रुपया खर्चना पड़ता है। अब अधिक आपसे क्या कहूँ, घर आते-आते कौड़ी का एक दाँत भी नहीं बचा। वहाँ के एक सिद्ध औघड़ को पाँच सौ रुपये और भेजने पड़ेंगे। मैं वचन दे आया हूँ कि घर

पहुँचते ही दच्छिना भेज दूँगा। पुरनाहुति मेरे सामने ही हुई। उसने मेरे आने के समय साफ कह दिया कि दच्छिना भेजने में देर करोगे, तो पुरनाहुति से एक पखवारे के भीतर ही पाँच-सौ के बदले पाँच-दूना दस सौ का कोई माल नुकसान हो जायगा!

बुढ़िया ने डर से चौंकते हुए कहा—बाप रे बाप, दच्छिना बाकी रखने से क्या फायदा! उसका परतवाय कौन लेगा। दच्छिना एक तरह का पराछित है। उसको जहाँ तक जल्दी हो सके—अपने सिर से उतार देना चाहिए। आज ही पाँच-सौ लेकर भेज दीजिए। इस मौके पर रुपये का मुँह देखने से काम न चलेगा। मेरा लड़का सुख से रहेगा, तो वही मेरे लिए असरफियों का गगरा है। आज मालिक होते तो थैली की पेंदी काट देते। अपने लड़के की जान के आगे मुझे रुपये का तनिक भी मोह नहीं है। दुनिया में बेटा-बेटी से बढ़कर और दूसरा धन ही क्या है? कोख भरी-पूरी रहेगी, तो आँखों में रुपये का भी मोल बना रहेगा। नहीं तो क्या रुपये ही देखकर जुड़ाऊँगी? 'मोहर लुटाय कोयले पर छाप'।

पाँड़ेजी ने बड़े ढब से पूछा—तो दीवानजी से लेकर आज पाँच सौ भेज दूँगा? पर आप उनसे पहले कहवा दीजिए। नहीं तो देने में हुज्जत करेंगे।

बुढ़िया ने अपने हाथ के सुनहले कड़े को घुमाते हुए कहा—हुज्जत क्यों करेंगे। क्या वह अपने घर से देंगे? और उनसे कहने या माँगने की जरूरत क्या है? मैं अपने पास से दूँगी। फिर हिसाब करके मैं उनसे लेती रहूँगी। हाँ, एक बात मैं पूछना चाहती थी, भूल ही गई। भला व   ग्रण के पाँच बरस के लड़के का टटका मुर्दा किस काम आया?

पाँड़ेजी ने अपनी नसदानी से दो चुटकी नस निकालकर अपने नथनों में झोंकते हुए कहा—उसी मुर्दे में यहाँ के इस ब्रह्म-पिसाच को बुलाकर बातचीत की गई, बिन्ती की गई, समझाया गया, मनाया गया, पूजा हुई, आरती हुई, चौरा बनवाने और पुस्त-दर-पुस्त पूजा देते रहने का संकल्प हुआ।

बुढ़िया—फिर वह मुर्दा क्या हुआ?

पाँड़ेजी—जहाँ से जिस तरह उखाड़कर आया था, वहीं, उसी तरह, फिर गड़वा दिया गया, उसी रात को। जो उखाड़ लाया था, वही गाड़ आया। दो दफे उसे अकेले आना-जाना पड़ा। समझिए कि वह भी एक महाप्रेत ही था। दो सौ रुपये लेकर उखाड़ लाने गया था, और गाड़कर लौटा तो फिर एक-सौ लेकर ही उठा!

बुढ़िया ने प्रसन्नता और विश्वास के सुर में कहा—बार-बार रुपये-पैसे का जमा-खर्च आप क्यों चुकाते हैं? मैं आपसे हिसाब माँगती हूँ? आपके हाथ से कई बार कई हजार रुपये खर्च हुए हैं, मैंने कभी लेखा-जोखा लिया है?

पाँडेजी सन्तोष से फूलकर बोले—कभी नहीं, कभी नहीं! आपको तो याद होगा, इसी बबुआजी के जन्म में मैंने अँजुरियों रुपये लुटाये थे, इसी छोटी चौकी पर, जिसपर बैठा हुआ हूँ, तोड़े-के-तोड़े रुपये लेकर, मैं इसी आँगन में बैठा था। लेनेवाले निहाल हो गये। ओह! बड़े बाबू साहब का क्या जमाना था! गाँव-जवार में कोई वैसा दरियादिल और एकबाली नहीं है। उनके पेसाब से चिराग जलता था। रुपये खर्च करने में तो राजा भोज थे। मिट्टी भी छूते थे, तो सोना हो जाता था।

बुढ़िया ने लम्बी साँस खींचकर कहा—महाराज, अब उस जमाने की बात मत चलाइए। याद आता है, तो कलेजे में बर्छी चुभ जाती है। जो आँखों देखी बात थी, वह कहानी हो गई! अब तो आपके करते मेरे बबुआ का संकट टल जाता, बस मैं नीरोग हो जाती। मन में खुटका लगा रहता है। रोग उनकी देह में है, रोगी असल में मैं हूँ। खाना-पीना, सोना-बैठना, चलना-फिरना, हँसना-बोलना, कुछ अच्छा नहीं लगता। मालिक बड़े भगवान थे, सुख से चले गये। मैं भी जाती, तो दिन-रात इस कुढ़न से बच जाती। न जाने जमदूत कहाँ रास्ते में सोये हुए हैं।

आज लड़का अगर हँसता-खेलता रहता, तो देखकर मन भरा रहता। उसका कलेस देखकर रोते-रोते छाती पक गई। किसी तरह दिन भर रही हूँ। बेटा-भतार का दुख देखा नहीं जाता, मगर क्या करूँ? जो उसके नसीब का भुगतान है, उसमें अपना कुछ हाथ नहीं। अब तो राम का भरोसा है—

बार बराबर बार है, तापर बहुत बयार
झाँझर नैया डोलती, कान्हा खेवनहार

पाँडेजी ने अपने बटुए से सुरती निकालकर टेंट में रखी हुई चुनौटी की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—यह तो ठीक ही है। भगवान छोड़ किसी और का भरोसा करना भी नहीं चाहिए। अगर ऐसा विश्वास है, तो समझ लीजिए कि उन्हीं के करते बेड़ा पार भी होगा। गोसाईंजी ने तो साफ लिख दिया है—

राम बिना दुख कौन हरे
बरखा बिन सागर कौन भरे
गैया बिनु भव निधि कौन तरे
मैया बिनु आदर कौन करे

बुढ़िया ने पूछा—तो चौरा बनवाने की सायत कब है? महाराज, हाथ जोड़ती हूँ, ऐसी अच्छी सायत में बनवाइए कि घर में अब उत्पात न मचने पावे। एक तो लड़के के रोगी रहने से नींद-भूख बिला गई है, दूसरे पतोहू को भी मति-भरम हो गया है। मालूम होता है कि वह सनक जायगी। पहले-पहल आई तो बबुआ के बहुत मन भाती थी। दोनों का मेल-जोल देखकर मैं अपने भाग को सराहा करती

थी। सपूत बेटा-पतोहू भगवान की बड़ी भारी देन है। मगर डायन-चबायन बुधिया ने मेरा सोने का घर माटी कर दिया। उससे और इससे ऐसा रँड़हो-पुतहो हुआ कि मेरा आँगन भठियारिन का घर हो गया ? मेरी बड़ी हेठी हुई। मैं तो कीच में गड़ गई। लाज के मारे मुझे किसी से मुँह दिखाते न बना। बबुआ कुछ बोले ही नहीं। बुधिया बाघिन बन गई। दोनों झोंटा-झोंटी कर बैठी। हवेली-भर के लोग-लुगाई के देखते-देखते यह तमासा हुआ। कोई बीच-बिचाव करने नहीं आया। उसी दिन से इसको इरखा का करखा हो आया, बबुआ को देखकर जलने लगी। अब तो यहाँ तक नौबत पहुँच गई है कि जिस घर में बबुआ हैं, उसकी चौखट पर लात तक नहीं देती ! न जाने इसका मन ही क्या-से-क्या हो गया है। कभी-कभी बोली ऐसी बोलती है कि सुननेवाले के कलेजे में छेद हो जाता है। इसका भी कोई उपाय कीजिए। नहीं तो बंस बूड़ जायगा।

पाँड़ेजी ने हथेली पर सुरती-चूना मलते हुए कहा—अच्छा, घबराइए मत,—'एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।' जब चौरा बन जायगा, पूजा होने लगेगी; तब कोई उपद्रव न रहेगा। बेटे-पतोहू का मन भी मिल जायगा, बंस भी बढ़ेगा, जान-माल की भी खैरियत होगी, और देह भी भली-चंगी कायम रहेगी। ब्रह्मपिसाच तभी तक सताता है, जबतक अस्थावर होकर पूजा नहीं पाता। जब देवघर में उसको अस्थावर करके उसकी पूजा होने लगेगी, तब वह हर-तरह से कल्यान करने लग जायगा। फिर तो आपका गृह-देवता बनकर ब्याह-सादी में भी पुजावेगा। पुस्त-दर-पुस्त का कुल-देवता बन जायगा।

बुढ़िया—कब और क्या पूजा देनी होगी ?

पाँड़ेजी—सावन की पूरनमासी को, राखी के दिन, नहा-धोकर, पीताम्बर पहनकर, घर ही का कोई आदमी गाय के दूध में अरवा चाउर की बढ़िया खीर बनायेगा। वह खीर चौरा पर चढ़ाकर फिर अलबाँती गाय को खिला दी जायगी ! उसके साथ-साथ एक जोड़ी फीताकोर की धोती, एक जोड़ा लँगोटा, एक जोड़ा कोरा चदरा, एक जोड़ी खड़ाऊँ और चार जोड़े जनेऊ भी चढ़ाये जायँगे। अन्त में पहलौंठी ब्याई हुई गाय के घी से आम की लकड़ी की आग में होम किया जायगा। सब के बाद ब्रह्मभोज होगा।

बुढ़िया गिड़गिड़ाकर बोली—तो महाराज, यह सब जल्दी करवाइए। सुभ सायत कब होगी ? पत्रा देखकर अभी ठीक कर दीजिए।

पाँड़ेजी ने बाँई हथेली पर मली हुई सुरती को दाहिने हाथ से पीटते हुए कहा—जैसे इतने दिन बीत गये, वैसे अब खरमास को भी बीत जाने दीजिए। खरमास में अच्छी सायत नहीं मिलती।

दया—अच्छा, यही सही। मगर यह तो बतलाइए, देवघर बनेगा कहाँ? पहले ही से कोई जगह तजबीज करके रखिए।

पाँडेजी—इसी हवेली के अन्दर, अगिन-कोन में, पूरब मुँहवाले घर में, चौरा बनेगा। वही देवघर होगा।

बुढ़िया—पोखरे के किनारे अपनी ठाकुरबाड़ी के पास बनाया जायगा, तो क्या कुछ नुकसान होगा? ब्रह्म का चौरा तो गाँव से बाहर बर या पीपर के पेड़ के नीचे बनवाया जाता है। घर में भूत बैठाना ठीक नहीं।

पाँडेजी ने अपना नीचला ओठ बीदोरकर नीचे के सामनेवाले काले-पीले दाँतों के पास चुटकी-भर सुरती ठूसते हुए कहा—बाप रे बाप, यह आपने क्या कह दिया? खबरदार, सपने में भी ऐसी बात मुँह से न निकालिएगा! नहीं तो आँगन में हाड़ बरसने लगेगा।

बुढ़िया डरकर हाथ जोड़ती और ब्रह्मपिसाच के ध्यान में सिर नवाती हुई बोली—अच्छा, जैसे बने वैसे ही बनाइए। कुछ भी हो, मेरा लड़का उठ बैठे, देवघर चाहे हवेली में रहे या बन में।

पाँडेजी—सब बना-बनाया है। कुछ नहीं बिगड़ेगा। धीरज धरिए। ब्रह्म ने वचन दिया है कि पूजा देते रहने पर घर दूध-पूत से भरा रहेगा। ब्राह्मन का अगर पेट भरता रहे तो वह सदा जजमान का जै-जैकार मनाता रहेगा।

बुढ़िया—हाँ, बात भली याद पड़ी, मैं पूछना ही चाहती थी, बातों ही में रह गई। बड़ा भुलक्कड़ मन हो गया है। कोई बात याद नहीं रहती, एक चीज कहीं रख देती हूँ, तो फिर काम पड़ने पर याद नहीं आती कि कहाँ क्या रक्खा था। हाँ, यह बताइए कि ब्रह्म बाबा ने और क्या-क्या कहा?

पाँडेजी—और जो कुछ कहा, सो सब आप को मालूम है। कोई नई बात नहीं है। जैसे भूत बकता है, वैसे ही बकता था। अपने मारे जाने का हाल सुनाता था। रोता था। धमकाता भी था। कटकटाता बहुत था।

बुढ़िया ने रुलासी-सी होकर पूछा—रोता और धमकाता क्यों था?

पाँडेजी ने पीछे की दीवार के एक कोने में सुरती की पीक फेंकते हुए कहा—मरने के समय उसको जो पीड़ा हुई थी, उसी की याद करके रोता था। पूजा न देने पर संघार कर देने की धमकी देता था। सबसे अचम्भे की बात तो यह है कि अपनी माता और स्त्री को वह भूला नहीं है! उनके दुखों को याद करके तो वह ऐसा रोता था कि सुनकर पत्थर का कलेजा भी पिघल गया। अगर उसकी पूजा न होगी, तो वह बड़ा प्रचंड ब्रह्मपिसाच होगा। बहुत तंग करेगा। कुल में कोई पितरों को चुल्लू भर पानी देनेवाला भी न बचेगा!

बुढ़िया—मैं इतना ही भर जानती हूँ कि एक बिगहा खेत के लिए मालिक ने उसको जान से मरवाया था। यह नहीं जानती कि वह कब, कहाँ और कैसे मारा गया। न मैंने उनसे कभी पूछा और न उन्होंने मुझसे कभी कहा। वह अपनी जिस माता और स्त्री के लिए रोता था, उन्हें बुलाते-बुलाते मैं हार गई, आती ही नहीं। अगर वे आ जातीं तो अब मैं कुश-गंगा-जल लेकर वह एक बिगहा खेत उन्हें दे देती, बल्कि उसके साथ-साथ पाँच बिगहा और देती, कुछ महीना बाँध देती, सीधा और जझावर दिया करती। कोई आवे भी तो।

पाँड़ेजी ने बुढ़िया को समझाते हुए कहा—जिसका बेटा-भतार जबरदस्ती से मारा जाता है, उसी का दिल जानता है। दूसरा कोई उस भीतरी घाव के दर्द का अन्दाज भी नहीं लगा सकता। अगर वह कुछ दिन खाट पर पड़कर मरा होता, बेचारी स्त्री और माता को उसकी सेवा करने से कुछ संतोष हुआ होता, तो किसी तरह से 'भगवान की मर्जी' कहकर धीरज धरतीं। मगर वह तो खसी-भेंड़ की तरह मारा गया था। भला महतारी का कलेजा उसको कैसे भूले! आपको मालूम नहीं है, मैं सब जानता हूँ।

बुढ़िया के मन में यह जानने की बड़ी इच्छा हुई कि वह कैसे मारा गया था। उसके बार-बार पूछने पर पाँड़ेजी ने सुरती की सीठी फेंकते हुए कहा—फागुन का महीना था। बड़े जोर से फगुनहट बहती थी। वह ब्राह्मन मामले की तारीख पर इजहार देकर उधर से लौटा आ रहा था। इधर बाबू साहब के आदमी बीच रास्ते में छिपकर बैठे हुए थे। साँझ हो गई थी। अँधेरा होता आ रहा था। चारों ओर से घेरकर लोगों ने उसको पकड़ लिया। हाथ जोड़ता, पैर पड़ता, दाँत दिखाता और गिड़गिड़ाता ही रह गया; लेकिन महतारी ने तो खर-जिउतिया की नहीं थी, जान बचे सो कैसे? मुँह में कपड़े ठूसकर लोग एक बगीचे के पगार की खाल में ले गये। फिर पटककर तले-ऊपर दो लाठियों के बीच में गरदन दबा दी! बस फटाक-फटाक जीभ और आँखें निकल आईं। ऊपर से लोगों ने गँड़ासे की भी चोट दी, मगर वह तो पहले ही टन हो गया था!

बुढ़िया का कोमल कलेजा काँप उठा! कलपकर बोली—हाय-हाय, कसाई भी ऐसे निठुर नहीं होते। अगर मारना ही था, तो जहर दे देते। क्या वह संखिया पचा जाता? जब वह इस तरह तड़प-तड़प कर मरा है, तब तो इतना उत्पात कर रहा है। राम-राम, मरद बड़े कठकरेज होते हैं!

पाँड़ेजी ने नसदानी की ठेपी निकालते हुए कहा—आपको मालूम नहीं है कि वह कितना बड़ा फरफंदी था। सन् संतावन के गदरवाले बाबू कुँवर सिंह की तरह वह भी कहा करता था कि मामले कि मुक्ति हाईकोर्ट में होती है। उसका बाप सैकड़ों

बिगहा खेत छोड़ गया था। मगर उसने अदालती मामले लड़ते-लड़ते सब बेच डाला। बड़ा भारी मुँहफट भी था। जबान में लगाम थी ही नहीं। एकदम बेहया मँगता था। उसने किससे दो-चार-दस लेकर न खाया-पचाया होगा! 'ल' अच्छर के सिवा वह 'द' अच्छर तो पढ़ा ही नहीं था। पाजी तो ऐसा था कि एक दिन 'बड़ी डेवढ़ी' के चौतरे पर चढ़कर पचासो आदमी के सामने बाबू साहब को गएडों गालियाँ दे गया! उसी दिन की गाली तो उसकी जान की गाहक हो गई।

बुढ़िया की आँखें डबडबा गईं। रुँधे कंठ से बोली—राह चलते ब्राह्मन को कोई नहीं मारता। जब वह छप्पर पर चढ़कर ऊधम मचावे, तभी तो उसे बचाना चाहिए। लुच्चे-लफंगे के गाली देने से किसी भलेमानस की बेइज्जती नहीं होती। जो भलामानस है, वह हमेशा भलामानस ही रहेगा; और जो नंगा-लूचा है, वह हरदम नंगा ही रहेगा। महादेवजी पर कौआ बीट कर देता है, तो क्या इससे इनका महातम कम हो जाता है? बड़े आदमी को अपनी इज्जत अपने हाथ में रखनी चाहिए।

पाँड़ेजी ने लगातार दो-चार बार नस सुड़कते हुए कहा—जाने दीजिए, जो होना था सो हो गया। 'बीती ताहि बिसारि के, आगे की सुधि लेहु'। सनीचर के दिन अच्छी सायत है। महावीरजी का दिन है। भूत-प्रेत की बाधा महावीरजी की कृपा से जल्दी दूर होती है। उसी दिन देवघर में ब्रह्म-स्थान बने तो अच्छा है।

बुढ़िया बेचारी लम्बी साँस खींचकर तलमलाती हुई उठ खड़ी हुई। पाँड़ेजी लाठी टेकते और खाँसते बाहर चले गये।

९

महँगे चने

करघा छोड़ि तमासे जाय
नाहक चोट जुलाहे खाय

रामसहर में आज दारोगाजी आये हुए हैं। बाबू रामटहल सिंह की बड़ी डेवढ़ी पर उतरे हैं। खलिहान की आग-लगीवाले मामले की जाँच हो रही है। गाँव के लोगों के बयान लिये जा रहे हैं।

दारोगाजी की खातिरदारी में सब लोग बड़े परेशान हैं। कहीं खसी कटता है, कहीं गरम मसाले पिसते हैं, कहीं कड़ाही छन-छनाती है, कहीं छौंक-बघार की सोंधी सुगंध उड़ती है और कहीं प्याज का अर्क चुवाया जाता है।

रसोई की गमक सूँघकर कनस्तबल बेचारे बैठे-बैठे अपने ओठों पर जीभ टेते हैं। बयान लेने में देर करने से दारोगाजी पर मन-ही मन कुढ़ते भी हैं!

देहात में दारोगा को जो दावत दी जाती है, वह, दुनिया में दामाद को भी दुर्लभ है! भगवान अगर किसी पढ़े-लिखे को पेट दें तो कहीं मुफस्सिल की थानेदारी भी किस्मत में लिख दें।

गाँव-भर के अहीर अपने-अपने घर से दही के मटके लेकर पहुँच रहे हैं। चिथरू अहीर हर-एक दहेड़ी के दही का माथ मारकर सबसे बड़ी दहेड़ी में खाली छाली बटोरता चला जाता है।

जब पिलुआ अहीर दही की एक छोटी मटकी लेकर आया, तब दारोगाजी उसको गाली देते हुए गरजकर बोले—काहे को सुतुई-भर दही लाया है रे? क्या दामाद को परछने के लिए दही-अच्छत का टीका लगाने आया है? चला जा सामने से, नहीं तो एक जूता भी नीचे नहीं पड़ेगा—चाँद के बाल उड़ा दूँगा! अबकी बार खेत-चराई की फौजदारी में फंसाकर तेरा सब माल-मवेशी नीलाम करा दूँगा।

पिलुआ ने अपनी गरदन में अँगौछा डालकर हाथ जोड़ते हुए कहा—सरकार! आज-कल एक भी माल-मवेशी नहीं है। बाल-बच्चे तो मट्ठे के धोवन के लिए तरसते हैं! खेसारी की लिट्टी भी दुलम्भ हो रही है। दिन-भर खेत कोड़ने पर भी उनके मुँह में दाना नहीं पड़ता। यह तो आपके डर के मारे टोल-पड़ोस से माँगकर ले आया हूँ। आपने मारने के लिए कहा, तो मैं हाजिर ही हूँ। कहाँ भागकर जाऊँगा? ढाका से मुलतान तक तो आपही का राज्य है। जूते से पीटिए या दुलारिए, आप ही का सब अखतियार है।

दारोगाजी ने झुँझलाकर नूरू मियाँ चपरासी से कड़कते हुए कहा—हटाओ इसको सामने से। इसकी मटकी को पटक दो चौतरे के नीचे। आया है दुखड़ा सुनाकर जान छुड़ाने! इससे इक्के के घोड़े के लिए एक पसेरी चना वसूल करो। अगर न दे, तो इसके घर में घुसकर बरतन-बासन निकाल लाओ।

नूरू मियाँ ने पिलुआ को गरदनियाँ देकर चौतरे से नीचे उतार दिया। दहेड़ी पटक दी! गली के कुत्ते चुल्लू भर दही पर जूझने लगे! पिलुआ को दही से बढ़कर मटकी के फूटने का दुख हुआ। बेचारा तलमलाता हुआ घर चला।

पीछे से सोटा लेकर नूरू मियाँ भी चला। पिलुआ ज्यों ही अपने घर पहुँचा, त्यों ही नूरू एक पसेरी चने के लिए उसकी खोपड़ी पर सवार हो गया!

घर में तो बेचारे के भूँजी भाँग भी नहीं थी—कहीं एक मटर का दाना भी नहीं डगरता था कि उठाकर लड़के मुँह में डालें—एक हाथ से कमाना, दूसरे हाथ से खाना था—गरीबी के मारे पड़ोसियों से भी उधार मिलने की आस नहीं थी—एक लोटा-थाली के सिवा कोई ऐसी धरोहर की चीज भी नहीं, जिसको रखकर चपरासी के ऊधम से जान बचावे!

पिलुआ की स्त्री अपने रोते हुए बच्चे को संग लेकर लोटा-थाली बन्धक रखने चली। मगर काँसे का फूटा बरतन ले कौन? गाँव में बेचारी गली-गली की धूल फाँकती फिरी, किसी के मन में ईश्वर न बसा!

अन्त में पचासों घर का चक्कर काटकर बेचारी एक बुढ़िया तेलिन के घर गई! उसके पास बैठकर बहुत रोई-कलपी। बुढ़िया के मन में भगवान जागे—उसने बिना धरोहर लिए ही एक चँगेली में पसेरी भर चना दे दिया! बड़े आदमियों के इतने बड़े गाँव में बस यह एक ही भलामानस निकली!

पिलुआ की स्त्री ने रुँधे कंठ से कहा—बहिन, जबतक जीऊँगी, यह उपकार न भूलूँगी। भगवान चाहेंगे तो यह एक-एक रहिला इसी साल तुम्हारे घर में एक-एक कोठी भरेगा। तुमने जैसे मेरा रोआँ जुड़वाया, वैसे ही भगवान तुम्हारा रोआँ जुड़वावेंगे। एक बात कहते बड़ी लाज लगती है—आँचर एकदम फट गया है—सूई-तागा बिना गाँठ जोड़-जोड़कर देह पर परदा डाला है—फाँड़ में लेने से सब रहिला गिर जायगा—तुम कहती तो मैं यह चँगेली ही उठा ले जाती, फिर साँझ को अपने लड़के से भेज देती।

तेलिन के मन में ईश्वर बस गया था, खुशी से बोली—ले जाओ, मगर बहिन हाथ जोड़ती हूँ, दारोगा के यहाँ इसको मत जाने देना! बीस बरस की बेंत की चँगेली है, तेल लगते-लगते रीठ गई है।

पिलुआ की स्त्री ने चने से भरी चँगेली को उठाकर सिर पर रखते हुए कहा—नहीं बहिन, भला मैं चँगेली वहाँ जाने दूँगी ? अभी तो दही की एक रीठी हुई मटकी लेकर मालिक गये थे, दाढ़ीजार ने फोड़ दिया है, अब उसके लिए भी गंडों गाली सुनूँगी।

यह कहते हुए बेचारी अपने घर चलने के लिए एक पग भी आगे न बढ़ी होगी कि उसके लड़के—उसके घुटनों और जंघों से लिपटकर, उसके सिर पर रक्खी हुई चँगेली की ओर देखते हुए—ठिनकने लगे! बेचारी ने अपने छलछलाये हुए आँसुओं को रोककर लड़कों की ठुड्डी सहलाते और उन्हें फुसलाते हुए धीरे से कहा—बाप रे बाप! इसमें एक दाना भी कम होगा, तो हत्यारा हाड़ तोड़ देगा! घर चलो, जोखने पर एक पसेरी से बेसी होगा, तो थोड़ा-थोड़ा तुम सब को दूँगी।

फुसलाने से लड़के समझ तो गये, पर बेचारी के आगे बढ़ते ही वे जल्दी-जल्दी घर में बिखरे हुए अनाज के दाने चुगने लगे! यह देख बुढ़िया तेलिन के मन में बड़ी दया आई। उसने सबको एक-एक मुट्ठी चना देकर बिदा किया।

लड़के कूदते-फाँदते और चना चबाते माँ के पीछे दौड़े। उन्हें आशा थी कि घर पहुँचने पर आज भर पेट चना मिलेगा ; किन्तु यहाँ तो पहले ही से नूरू मियाँ दरवाजे की टाटी पीट रहा था। दूर ही से बेचारी को देखकर आगे बढ़ता हुआ बोला—इधर कहाँ लिए चली आती है ? वहाँ क्या मैं पहुँचाऊँगा ?

यह सुन घर के दरवाजे का ठट्टर लगाते हुए बाहर आकर पिलुआ ने कहा—मैं अपने सिर पर ले चलकर पहुँचाऊँगा मियाँजी, वह पचासों आदमी में वहाँ कैसे जायगी ?

पिलुआ की बात सुनकर नूरू मियाँ हँसता हुआ बोला—यह कहीं की महारानी है कि वहाँ जाने से छोटी हो जायगी।

पिलुआ ने अपनी स्त्री के सिर से चँगेली को अपने सिर पर लेकर आगे बढ़ते हुए कहा—मियाँजी, मैं आपके मुँह लगकर पार पाऊँगा ? नहीं सुना है कि 'कमजोर की स्त्री गाँव-भर की भौजाई ?' वह स्त्री है, मैं पुरुख हूँ। मुझे कोई दो बात कह देगा, तो सह लूँगा और उसे कह देगा तो न मैं सहूँगा—न वह सहेगी।

आगे-आगे जाता हुआ नूरू मियाँ फिर हँसकर बोला—स्त्री जवान भी तो नहीं है कि वहाँ कोई उससे हँसी-मसखरी करेगा ? बुढ़िया पर इतना दिमाग ? खेत-खेत मारी फिरती है, तब इज्जत नहीं जाती ?

यह बात पिलुआ के कलेजे में तीर की तरह चुभ गई! सारी देह का खून खौल उठा। उसने सिर से उतारकर चँगेली वहीं रख दी। आगे बढ़े हुए नूरू मियाँ को बड़े क्रोध से पुकारकर कहा—हे, मियाँ-टियाँ होकर बहुत ठसके मत दिखाओ।

घर में सनहक और बधना भी न होगा, यहाँ सिर पर लाल पगड़ी बाँधने से नवाब मत बनो। दस ठो चानी की टिकुली पाते हो, बस समझते हो कि दुनिया में और कोई इज्जतदार है ही नहीं। मेरी स्त्री तुम्हारी मियाँइन की तरह उड़ाई-फँसाई नहीं है। गरीब होने से मैं अपनी स्त्री की बेइज्जती न सहूँगा। ले जाओ अपना रहिला!

पिलुआ को गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए देखकर नूरू मियाँ दंग रह गया! थोड़ी देर तक अपनी ही जगह पर ठिठककर खड़ा रहा। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ।

पर जब उसने पिलुआ को अपने घर की ओर मुड़ा हुआ देखा, तब मारे क्रोध के उसकी दाढ़ी हिलने लगी। सोटा सम्हालकर दौड़ा बेतहाशा।

तब तक पिलुआ की स्त्री, जो चँगेली के मोह में पड़कर रास्ते से ही खड़ी-खड़ी पछता रही थी और उसके लड़के, जो चने के लोभ से रो रहे थे, नूरू मियाँ को दौड़े आते देखकर एकाएक बड़े जोर से चिल्ला उठे।

पिलुआ ने झट पीछे मुड़कर देखा। इतने में नूरू मियाँ दौड़ा हुआ आ पहुँचा। पिलुआ कज होकर बगल में हट गया, मियाँजी धड़ाम से वहाँ मुँह के बल गिर पड़े—मुँह और दाढ़ी में धूल भर गई—सोटा हाथ से छूटकर अलग जा पड़ा। गाँव के लड़के ताली पीट उठे!

बेचारे के पेट और छाती में गहरी चोट लगी। घुटने फूट गये; कराहता हुआ उठा और चँगेली लेकर लँगड़ाते-लँगड़ाते 'बड़ी देवढ़ी' की ओर चला गया। लाज के मारे सोटा तक न उठा सका!

वहाँ दारोगाजी खा-पीकर आराम कर रहे थे। चपरासी भी लेटे-लेटे थकावट मिटा रहे थे। बेचारा चुपके-से जाकर एक तरफ लेट रहा। अपनी हार और मेहर की मार किसी से कहते नहीं बनती!

कुछ देर आराम करके दारोगाजी थाने में जाने के लिए तैयार होकर बाहर आये तो इक्केवान से चने के बारे में पूछा। उसने कहा—सरकार, घोड़ा दाना खाकर तैयार है, हुक्म हो तो एक्का कसूँ, बेर बहुत ढल गया।

दर-असल चने के बारे में दारोगाजी को बेचारे नूरू मियाँ से पूछना चाहिए था। भला इक्केवान को क्या पता था कि चने महँगे पड़े हैं।

१०

ब्रह्मपिसाच का देवघर

भूत भरम से होत है, डर से होत बिनास।
फैलत दम्भ-विडम्बना, जगत करत उपहास ।।

सनीचर के दिन ब्रह्मस्थान बननेवाला था और बुध के दिन गोबरधन पर भी ब्रह्मपिसाच ने सवारी कस दी! पहले-ही-पहल इतने जोर की चढ़ाई हुई कि गोबरधन साँड़-भैंस की तरह हँकड़ने लगा!

पाँड़ेजी का तंत्र-मंत्र तो हवा हो गया। ओझैतों के मेठ खेदू की बुलाहट हुई। ओझाई शुरू हो गई।

खेदू से पाँड़ेजी ने बहुत घबड़ाकर पूछा—गोबरधन को एकाएक यह क्या हो गया खेदू!

खेदू ने थोड़ी देर तक हाथ से माथा पकड़कर सोचते हुए कहा—बाबा, यह रकतमढ़ी है। जल्दी नहीं छोड़ेगी। तपावन लेगी।

पाँड़ेजी ने शंका और निराशा के साथ कहा—नहीं खेदू, यह न कोई रकतमढ़ी है, न कोई चुड़ैल; हो न हो यह वही ब्रह्मपिसाच है, जो बाबू साहब के घर में उपद्रव मचा रहा है!

ब्रह्मपिसाच का नाम सुनते ही खेदूराम का कलेजा दहल गया। वह बड़े भय के साथ चौंककर बोला—एँ! यह वही ब्रह्मपिसाच है? तब तो बाबा, यह मेरा दाब न मानेगा। यह बड़ा जबर ब्रह्म है। आप ही इसको मनाइए। भला यह ब्रह्म आपके घर कैसे आया? इससे तो बड़े-बड़े तांतरिक हार मानकर चले गये हैं। इसके सामने मेरी कोई कला न लहेगी।

यह कहते-कहते खेदू धीरे-धीरे घर के अन्दर से बाहर निकल आया। पाँड़ेजी कमर पर हाथ रक्खे लम्बी साँस खींचकर चुपचाप वहीं खड़े रह गये!

पँड़ाइन ने गाँव-भर के ओझों को बुला भेजा। मगर वे खेदू-जैसे दबंग ओझैत का भागना सुनते ही अपने-अपने घर के कोने में मुँह छिपाकर बैठ रहे। बाबू साहब के घरवाले ब्रह्मपिसाच का नाम सुनकर ही सबकी धोती ढीली हो गई!

बेचारे पसुपत पाँड़े छ-सात में पड़ गये। ओझों पर मन-ही-मन दाँत कटकटाने लगे। रोती हुई पँड़ाइन को चुप करते हुए बोले—ओझों के न आने से इतना घबराती क्यों हो? जिंदगी रह गई और यह लड़का हँसता-खेलता उठ खड़ा हुआ, तो इन दगाबाज ओझों के छप्पर पर एक खपड़ा न रहने दूँगा।

क्रोध से काँपते हुए पाँड़ेजी घर से बाहर निकले। झटपट धोती बदलकर एक हाथ से कुँए का एक लोटा पानी खींच लाये। उसीसे गोबरधन की खाट के पास क्वाँरी बछिया के ताजे गोबर का चौका लगाया। फिर गुग्गुल जलाकर बारी-बारी से 'हनुमान-चालीसा' और 'संकट-मोचन' का संपुट पाठ शुरू कर दिया।

पांड़ेजी रात-भर गोबरधन की खाट के सिरहाने के पास पाठ करते ही रह गये। खाट की दाहिनी पाटी के पास--सामने—गोबरधन के मामा जुरजोधन तिवारी पीताबंर और तुलसीमाला पहनकर गोसाईंजी की रामायन का पाठ करते रहे।

पैताने की ओर गोबरधन की माँ बैठी हुई थी। वह रात-भर देवता-पितर मनाती रही। सैकड़ों मन्नतें मानीं। पहले गंगोटी से जमीन लीप-पोतकर लुहबान जलाया। फिर घुटने के बल झुककर, दोनों हाथ पीछे की ओर जोड़कर, नाक रगड़ती हुई बोली—हे ब्रह्मबाबा, मेरे लड़के को मत सताओ। तुम जिसके हो, उसी के घर जाओ। मेरी कोख बकसो। मुझे यही भीख दो। दुहाई ब्रह्मचारी की, मैं गाय के घी से हूम कराऊँगी, अबकी बार कैलान करो, ब्राह्मन होकर ब्राह्मन को मत पेरो।

इसके बाद एक जगह से नाक उठाकर वहीं दूसरी जगह रखते हुए कहा—हे बिन्धाचल की देवीजी, जोड़ा खसी और चुनरी चढ़ाऊँगी, मेरे लड़के को चंगा करो।

फिर तीसरी जगह नाक रगड़ती हुई बोली—हे बाबा बिसेसरनाथ, तुम्हारी सरन आई हूँ। लाज रखना ए बाबा, अच्छा होते ही यह आपको जल चढ़ाने काशीजी जायगा।

काशी विश्वनाथ का पिंड छोड़कर गंगाजी के पीछे पड़ी—हे गंगामाई, पियरी चुनरी का तनाव तनवाऊँगी, दोनों पार चँदवा से छवा दूँगी। अबकी बेर मेरा लड़का उठ बैठा, तो गरहन-नहान में 'भुँइपरी' लेटकर जायगा!

बाहर के देवताओं से बिनती कर चुकने पर ग्राम-देवता को सुमिरने लगी—हे गाँव की सती-देई, बाजे-गाजे के साथ तुम्हारे सती-स्थान पर चुनरी चढ़ाने आऊँगी, मेरी गोद जुड़ाओ।

अंत में अपनी इष्टदेवी से बोली—हे काली-भवानी, इस लड़के के बदले में एक खसी और एक भेड़ा चढ़ाऊँगी, इसको जल्दी अच्छा करो।

यदि विश्वास पक्का हो, तो इसमें सन्देह नहीं कि तत्काल फल मिलता है। गोबरधन की माता-जैसी करकसा स्त्री के मन में पहले कभी देवताओं पर ऐसा विश्वास उपजा था या नहीं, यह ईश्वर जाने; पर आज पुत्र के प्रेम से निकले हुए आँसुओं ने उसके ऊसर मन में विश्वास की हरी-हरी दूब उगा दी।

स्त्रियाँ स्वभाव से ही श्रद्धा और विश्वास की मूर्ति होती हैं। पर गोबरधन की माता ऐसी स्त्रियों में नहीं थी। आज से पहले कभी उसने देवता-पितर का नाम न

लिया होगा। कभी सपने में भी उसे ईश्वर याद नहीं पड़ा होगा। वह तो घर-भर में बढ़ी-चढ़ी करकसा थी। गाँव-भर में 'पताल की डाइन' कहलाती थी !

एक ही आँगन में उसके और कई हिस्सेदार थे। रोज ही किसी एक से झगड़ा कर बैठती। झगड़ा किये बिना उसके पेट का पानी ही न पचता। आँगन-भर की स्त्रियाँ उससे डरती रहतीं; क्योंकि गाली देने का सुर उठाती, तो एक ही साँस में कोख-माँग चबाकर पार कर देती। रँड़हो-पुतहो करने में कोई पार न पाता।

गालियाँ बकने लगती, तो मालूम होता कि तरह-तरह की गालियों की कई पोथियाँ घोख गई है और कुलंजन खाकर गला साफ कर लिया है। अगर बीच में कोई मर्द दखल देता, तो करिखाही हाँड़ी लेकर सिर फोड़ने को तैयार हो जाती।

पाँड़ेजी की मजाल नहीं कि जीभ हिलावें ! उनको तो जब चाहती—मदारी के बंदर की तरह नाच नचाती।

बेचारी भोली-भाली पतोहू को भी किसी-न-किसी काम में नाधे ही रहती—आधी रात तक तेल लगवाती, देह दबवाती, पंखा झलवाती, बरतन मंजवाती, भनसा-घर लिपवाती, चक्की पिसवाती, बेचारी को हरदम फिरिहिरी की तरह नचाती रहती !

अजी, वह जिसके पीछे पड़ जाती, उसे रात-रात भर सरापती ! टोले-मुहल्ले के लोग नाकदम आते—बेचारों की नींद हराम हो जाती।

सूरज बाबा के सामने आँचल पसारकर पराये का संहार मनाते रहना तो उसका नित्य कर्म था।

शुरू में जब उसके कई लड़के मर चुके, तब सोनिया को मारकीन की एक धोती और छींट की एक कुर्ती देने का करार करके एक बच्चेवाली पड़ोसिन का आँचल फाड़ मँगाया। साथ एक चमारिन को एक पसेरी चावल देकर एक दूसरी पड़ोसिन के लड़के का नाल भी कटवा मँगाया था। आँचल का टुकड़ा जलाकर नाल के टुकड़े के साथ खाने के लिए ही उसने अपनी जिंदगी में पहले-पहल पान का बीड़ा खाया था !

उस दिन तो भूले-भटके भी ईश्वर की याद न आई ! पान के बीड़े के साथ दो-दो कोख चबाते समय यह समझ में न आया कि सबके दिल में अपनी औलाद की आग एक-सी होती है ! उस समय तो अपना घर बसाने के लिए दूसरे का घर उजाड़ने में तनिक भी आगा-पीछा न हुआ !

जबतक अपने ऊपर नहीं बीतता, तब तक कान खड़े नहीं होते। जब एकाएक अपने ऊपर पड़ जाता है, तब आप-से-आप आँखें खुल जाती हैं। घोर संकट में नास्तिक भी ईश्वर का सहारा ढूँढ़ने लगता है ! शायद संसार में अगर दुख न होता, तो लोग ईश्वर को एकदम भूल ही जाते।

पंडाइन की पुकार अन्दर से उठी थी, बिनती आँसुओं से भींगी थी, मन्नतें विश्वास से उपजी थीं, नाक श्रद्धा से घिसी थी, सिर आदर से झुका था ; इसलिए मनोरथ छूछा न रहा।

इधर पाँड़ेजी ने भी आज खूब बक-ध्यान लगाया ! बाबू साहब की ठाकुरबारी में वह रोज ही पूजा-पाठ और आरती-स्तुति किया करते थे ; पर आज अपने घर में उन्होंने जैसी लगन से संपुट पाठ किया, वैसी निष्ठा से अबतक कभी कोई काम नहीं किया था।

ठाकुरबारी में पूजा-आरती करते, माला जपते और भोग लगाते समय भी उनका मन केवल धन कमाने की ही धुन में मस्त रहा करता था और आज तो ऐसा ध्यान लगाया कि पहरों आँखें न खुलीं ! पर जब आँखें खुलीं, तब देखा कि गोबरधन उसकी ओर टकटक ताक रहा है !

जिस गोबरधन की आँखें कुछ ही देर पहले भयानक रूप से चढ़ी हुई थीं, जो चार-चार आदमियों के दबाकर पकड़ने पर भी ऐसा उछलता था कि चारपाई चरमराने लगती थी, जिसकी डाँट-डपट और चीख-चिल्लाहट सुनकर अड़ोस-पड़ोस के लोग भी अपने कानों पर हाथ रक्खे ब्रह्म बाबा की दुहाई दे रहे थे, उसी गोबरधन को चुपचाप अपनी ओर ताकते देखकर पाँड़ेजी ने बड़े उछाह से पूछा—बेटा, कहो अब कैसी तबीयत है ? कुछ तो अच्छी मालूम होती है ?

गोबरधन ने पहले ही की तरह टकटक ताकते हुए चुपचाप सिर हिलाकर कहा—हाँ, कुछ अच्छी है !

सुमिरनी और गोमुखी के साथ अपना हाथ उठाकर जुरजोधन तिवारी ने भी मुस्कुराते हुए आशीर्वाद दिया। पंडाइन ताबड़तोड़ राई-नोन उतारने लगीं !

दिन-भर का पूजा-पाठ और रात-भर का जागरन सफल हो गया। पाँड़ेजी अपने आसन से उठे, तो गोबरधन की खाट पर बैठकर उसकी देह सहलाने लगे।

तिवारीजी अपनी आसनी में रामायन लपेटते हुए पाँड़ेजी से बोले--कल तो रात-भर सोरहो डण्ड एकादसी रही, आज अंतरी कुलकुला रही है, आत्माराम को कुछ कलेवा कराना चाहिए।

पाँड़ेजी ने हँसकर पंडाइन की ओर देखा। भाई को भूखा समझ उन्होंने झट बाटियाँ बनवाईं। मसालेदार खिचड़ी पकी, आलू और बैगन का भुरता बना, हरा चना घी में तला गया, कई तरह के खट्टे-मीठे अचार भी निकाले गये। बहिन को अपने भाई का प्यारा भोजन खूब मालूम था !

तिवारीजी पीढ़े पर पलथी मारकर खाने बैठे। बहिन पंखा लेकर खिलाने बैठी। पाँड़ेजी गोबरधन के घर की देहरी पर बैठ गये।

खाने के लिए बैठते समय तिवारीजी ने पाँड़जी से मुँह-छुआई की—तुम भी आओ न; पर उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि रोगी को घर में अकेला नहीं छोड़ना चाहिए।

तिवारीजी ने चुपचाप हथेली पर पानी लेकर अपने आगे परसी हुई थाली के चारों ओर गिरा दिया। फिर आँखें बन्द कर, हाथ जोड़कर, सिर नवाया। उसके बाद ऊँगली से ठोककर लोटा बजाते हुए कहा—

विश्व भरन पोखन कर जोई
ताकर नाम भरत अस होई

जैसे बिनौले की खली और नमक मिलाकर गोती हुई नये भूसे की सानी पर दिन-भर हल में जुता बरद चोट करता है, वैसे ही तिवारीजी थाली पर हाथ साफ करने लगे।

तिवारीजी के लगभग आधा समान चट कर जाने पर पंखा झलते-झलते पँड़ाइन ने पूछा—भैया, खिचड़ी कैसी बनी है?

तिवारीजी ने बायें हाथ से लिलार का पसीना पोंछते हुए कहा—क्या बखान करूँ बहिन, मुँह से नहीं छूटती!

पँड़ाइन—खूब छौंक-बघारकर बनी है।

तिवारीजी ने मुँह बाकर ऊपर ही से भर-लोटा जल ढरकाने के बाद अपनी तोंद निहारते और सुहराते हुए कहा—सब सरंजाम भी तो है—

घी पापड़ अरु दही अचार
ये खिचड़ी के चार भतार

पँ०—बाटियाँ कैसी बनी हैं?

ति०—ओह! पूछो मत! एक तो खस्ता बनी हैं, दूसरे घी में चभोरी हुई हैं! पककर फट जाने से नस-नस में घी पैवस्त हो गया है।

पँ०—ऊपर से चीनी भी पड़ी है।

ति०—तभी तो मालपूए का मजा दे रही हैं! छूते ही टूक-टूक हो जाती हैं—मोहनभोग की तरह थाली भर में बिखर जाती हैं। इसी को मियाँ लोग मलीदा कहते हैं। घी-चीनी में चभोरी हुई बाटी बालमकुन्द कृश्न भगवान को बहुत प्रिय है। इसीलिए इसको 'मकुन्दी' भी कहते हैं।

पँ०—और आलू-बैंगन के चोखे में अन्दाज से रामरस पड़ा है न?

तिवारीजी ने दाँतों से आम के अचार की रीढ़ खखोरते हुए कहा—चोखे तो बस चोखे ही बने हैं! कड़ुआ तेल तो ऐसे अन्दाज से पड़ा है कि वाह-रे-वाह! रामरस भी बड़े हिसाब से पड़ा है। संसार में बैंगन के भरते से बढ़कर किसी चीज का भरता अच्छा नहीं बनता। अगर बढ़िया बन जाता है, तो सब तरकारियाँ मात हो जाती हैं।

देखने में बसौंधी का-सा मालूम होता है। इसके आगे लच्छेदार मलाई भी मात है!

पँ०—तनिक धनिया-पुदीने की चटनी भी चीखो।

तिवारीजी ने एक उँगली से उठाकर चटनी को जीभ के छोर पर रखते हुए कहा—चीखा तो था। आला दरजे की बनी है। जीभ-रूपी घोड़ी के लिए भगवान ने यह कोड़ा बनाया है!

पँ०—आलू का चोखा तुमको बहुत रुचता है। थोड़ा और देती हूँ।

ति०—हाँ, आलू का चोखा बेसक दुबारा लेने लायक है। दे दो थोड़ा-सा। आलू तो सब तरकारियों का राजा है। बकला छील देने पर मोतीचूर बन जाता है। मालूम होता है कि सोने का लड्डू है। अरे आलू-बैंगन तो भगवान को इतना रुचा कि खाते-खाते वह खुद आलू-बैंगन-मय हो गये। देख लो सालिग्रामजी को!

पँड़ाइन ने बाँस की मरदानी कंघी के आकारवाले अपने बुलाक में मुस्कुराहट को छिपाते हुए कहा—ऐसी बड़ाई मत करो कि पतोहू अकास पर चढ़ जाय।

ति०—मैं झूठ बड़ाई नहीं करता। सचमुच बड़ी लायक पतोहू है। रसोई में खूब हाथ साफ है। तुम्हारे इस रामसहर के कनौजिया-परिवार में किसी के यहाँ ऐसी पतोहू न उतरी होगी।

पँ०—जितना सराहा उतना खाया नहीं।

तिवारीजी डकारते हुए बोले—अब क्या चाहती हो कि लोटा-थाली भी खा जाऊँ? कितना खाऊँ, खूब अघा गया।

पँ०—अच्छा, चने की घुघनी सब खा जाओ। फसली चीज है। फायदा करेगी। पेट खुलासा हो जायगा।

ति०—अच्छा, तुम्हारा कहना भी मान लूँ। नहीं तो कहोगी कि भैया ने मेरी बात उठा दी। चना भी खूब चटपटा बना है।

पाँड़ेजी घर की देहरी पर बैठे हुए ही बोले—थोड़ा और ले लो। बड़ा पुष्ट पदार्थ है। लोग इसको हिन्दुस्तान का बदाम कहते हैं।

ति०—अजी इसका तो नाम ही हिन्दुस्तानी मेवा है। बनानेवाला हो तो इससे छप्पनों प्रकार बनाकर रख दे। दिल्ली के बादसाह नारंगसाह ने अपने बूढ़े बाप साहजहाँ को जब कैद किया, तब उसे खाने के लिए कोई एक ही अनाज देने का हुकुम दिया। साहजहाँ खाने-पीने में बड़ा अमीर था। आगरे में उसका बनवाया ताज-बीबी का रौजा देखने ही लायक है। मथुरा, बृन्दाबन की यात्रा में मैंने भी देखा था। सुना कि विलायत से लोग उसको देखने आते हैं। अँजोरिया रात में निरखने पर जान पड़ता है कि कपूर या फिटकिरी के ढोकों का बना हुआ राजमहल है! उसके सामने, जमुना के पार, साहजहाँ के बजीर का रौजा है। वह छोटा होने पर

भी बड़ा सुन्दर है। लोग कहते थे कि ताजमहल के पत्थरों की कतरन से वह बना था। सचमुच उसमें रंग-बिरंगे पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े जड़े हैं। अलग से देखने पर मालूम होता है कि भाँति-भाँति के रँगदार फूल तले-ऊपर गँजे हैं।

पाँड़ेजी सुरती बना रहे थे। हथेली पर सुरती पीटते हुए बोले—तुम क्या कह रहे थे, और क्या कहने लग गये! नौरंगसाह ने अपने बाप से खाने के लिए एक ही अनाज माँगने को कहा, तो साहजहाँ ने फिर क्या तजबीज किया?

ति०—हाँ, तो साहजहाँ बादसाह ने अपने बबरची की सलाह से इसी चने को पसंद किया। सच पूछो तो दुनिया में मर्द के खाने लायक अनाज यही है। गेहूँ और जौ का दरजा इससे नीचे है। उनको बिना कूटे-पीसे कोई खा नहीं सकता। और इसको कच्चा-पक्का, जैसे चाहो, चबा जाओ, मजा ही देगा। नहीं सुना है?

यहि रहिला कि पूरी कचौरी, यहि रहिला की दाल।
यहि रहिला के खाइ खिरौरा, खूब मोटैहें गाल।

पाँड़ेजी सुरती फाँकते हुए बोले—इसीलिए तो इसपर भगवान का भी मन डिग गया था। यह कथा तुमने सुनी है या नहीं?

तिवारीजी ने चौके से उठकर आँगन में हाथ धोते-धोते कहा—सो कब?

पाँड़ेजी—अहा! यह किस्सा नहीं जानते? सतजुग की बात है। चना गया छीर-सागर में सिकायत करने कि हे भगवान, मेरी जान की खैर नहीं है, बड़ी आफत में हूँ—हलवाहा खेत बोने के समय फंका-पर-फंका मारकर मुझे चबा जाता है। खेत में ढेले से ऊपर सिर उठाते ही लोग साग खोंटकर मेरी गरदन उतार लेते हैं! छीमी लगते ही लोग हरी कचरी उड़ाने लगते हैं। फिर ज्यों ही फली पकने लगती है, त्यों ही आग में झुलसकर मेरा सरबस जला देते हैं। कटनी के समय बनिहार भी मेरी सूखी फलियों को अपनी हथेलियों से मलकर फंका मारते हैं। खलिहान में दौंरी हाँकने के समय भी बनिहार मेरी जान नहीं छोड़ते। खलिहान से मालिक की बखरी में जब जाने लगता हूँ, तब भी ढोनेवाले से जान नहीं बचती। बखार में रखते समय 'बया' भी अपनी तौलाई वसूल कर लेता है! फिर गाड़ से निकालते समय भी वही हालत होती है। भड़-भूजे के भाड़ और जाँता-चक्की में जो दुर्गती होती है, वह कहने से तो कभी पार न पाऊँगा। मेरी जान को एक दिन भी चैन नहीं। दया करके कोई उपाय कीजिए, नहीं तो मेरा संघार हो जायगा।

—भगवान ठठाकर हँसे और बोले—हटो भागो मेरे सामने से, नहीं तो तुम्हारा स्वाद लेने के लिए मेरे मुँह में भी पानी भरा आता है!

—बेचारा वहाँ से मुँह टेढ़ा करके भागा, सो आज तक मुँह टेढ़ा ही रह गया। देख लो ससुरे का मुँह कितना टेढ़ा है!

तिवारीजी ने अपनी बनात की मिरजई के बंद बाँधकर गंजी खोपड़ी में कनटोप धँसाते हुए कहा—हर राम, हर राम ! अन्नदेव को ससुरा न कहो। असल देवता तो यही हैं। कलजुग में अन्न ही प्रतच्छ देवता हैं। अन्न में भगवान बसते हैं। आज-कल अन्न ही में तो प्रान है। अन्न बिना सारी बुद्धि और चतुराई हवा खाने चली जाती है। भगवान का भजन भी नहीं सँपरता—

भूखे भजन न होइ गोपाला, ले लो अपनी कंठी माला।

पाँ०—तुमने तो चने को आकाश पर चढ़ा दिया !

ति०—वह चीज ही ऐसा है। नहीं सुना है—

सब देवों में महादेव बड़े, सब अन्नों में चक्कबरत चना।
लम्भी दाढ़ी-सी डार गुलाब-सा फूल, खूँटत-खोंटत होत घना।
कहें बीरबल सुनो साह अकब्बर, नून और मिर्च से अजब बना।

पाँ०—चाहे जो कहो, चना-राम को भगवान ने छकाया खूब !

ति०—सब गढ़न्त दंत-कथा है। चना तो ब्रह्मा का बनाया ही नहीं है। वह छीर-सागर में क्यों फरियाद करने जायगा ? उसे तो विश्वामित्रजी ने बनाया है। उसको जाना होता, तो मुनि के पास जाता। कथा गढ़नेवाले ने इतनी भूल की है।

पाँडेजी झपाटे से उठकर सुरती की पीक के कुल्ले से आँगन को सींचते हुए बोले—बड़े-बड़े बेदुआ पंडित कहते हैं कि ब्रह्मा ने यह संसार सिरजा और तुम न जाने कहाँ से यह लबेद उठा लाये कि विश्वामित्रजी ने चना बनाया था ! बाह रे गपोड़बाजी !

तिवारीजी—आहाहा ! तुम जानते ही नहीं। विश्वामित्रजी राजा त्रिसंकु को सदेह स्वर्ग भेज रहे थे, सो देवताओं के राजा इन्द्र ने त्रिसंकु को ऊपर से ढकेल दिया। विश्वामित्रजी ने इसको अपना अनादर समझा। उन्होंने अपने तपोबल से त्रिसंकु को बीच ही में रोक दिया। नीचे की ओर मुँह और ऊपर की ओर पैर हो जाने से त्रिसंकु अधर में लटक गया। उसकी लार से नदी बह चली। वही अब 'करमनासा' नदी कहलाती है, जो गाजीपुर जिले की दक्खिनी-पुरबी चौहदी पर पड़ती है। गाजीपुर में ही विश्वामित्रजी का घर था। वह गाधि-राज के लड़के थे। गोसाईंजी ने रामायण में लिखा है—'गाधि तनय मन चिंता ब्यापी, हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।' असल में गाजीपुर का पुराना नाम गाँधीपुर है। वहीं से त्रिसंकु को सदेह स्वर्ग भेजा था। जब वहाँ जगह न मिली, तब मुनिजी की कृपा से उसने नक्षत्रों में जगह पा ली। वही अब त्रिसंकु-तारा उगता है। उसी त्रिसंकु के पीछे इन्द्र से और मुनिजी से खटक गई। बस खिसियाकर नया इन्द्रासन बनाने लगे। इस पर ब्रह्मा से भी अनबन हो गई। तब डाह के मारे नई सृष्टि करने लगे। ललकार कर कह दिया कि ब्रह्मा अगर आदमी पैदा करते हैं, तो हम पेड़ में

आदमी फरावेंगे। इसी नीयत से नारियल बनाया। देख लो, ठीक खोपड़ी की तरह उसका फल होता है। दो आँखें होती हैं। बाल होते हैं। भीतर मगज में गुदा भी होता है। इतना ही नहीं, अब आदमी का सीस होने ही से सुभ कामों में बरता जाता है। बड़ा मंगलदायक है। उसके बनते ही ब्रह्मा घबड़ा उठे। बहुत कोसिस-पैरवी से सृष्टि रुकवाई! यही तो खटकने की असल बात है।

पाँड़ेजी—नहीं-नहीं, खटकी थी एक दूसरी बात पर। ब्रह्माजी विश्वामित्र को ब्रह्मरिषी नहीं मानते थे। इसीसे बिगड़कर मुनिजी ने नई सृष्टि की।

ति०—अच्छा, यही सही, मगर विश्वामित्रजी ने अपने तेजबल से ऐसा घटा-टोप घन घमंड बाँधा कि बाबा चतुरानन चकरा गये। उन्होंने जो कुछ रचा था, सबका ऐसा उलटा जवाब बनाया कि सारी चतुराई कूच कर गई। उन्होंने बनाई थी गाय, इन्होंने बना डाली भैंस। वह दो सेर दूध देने वाली, तो यह पाँच सेर की मटकी भरनेवाली! वह पाव भर गोबर करनेवाली, तो यह एक ही बार में एक टोकरी भरने वाली। उसके सींग छोटे, इसके इतने बड़े-बड़े कि एक-एक में दरजनों कंघियाँ बनें। उन्होंने बनाया था आम, इन्होंने बनाया कटहल! वह फूलकर फलता है, यह बिना फूले ही फलों से लद जाता है। उसके सिर पर फल, इसके सरबांग में—रोम-रोम में! वह आकास में फलता है, यह आकास-पाताल दोनों में। उसके फल में एक ही गुठली, इसके फल में सैकड़ों गुठलियाँ। उसके कच्चे फल का आचार बनता है, तो इसके कच्चे फल से तरकारी और अचार दोनों! उसका छिलका दाँत से छिला जाय; इसका बसूले से। उसकी लकड़ी उकठनेवाली, इसकी चीमड़। उसकी लकड़ी से घर की चौखट बने, इसकी लकड़ी से मृदंग। इसी तरह बाबा ने हाथी बनाया, तो बाबाजी ने ऊँट बनाकर रख दिया! उसकी सूँड़ नीचे लटकी हुई, इसकी गरदन ऊपर उठी हुई! उसकी पीठ जितनी ऊँची, इसकी पीठ उससे एक रद्दा और बेसी! वह जंगल-झाड़ में बसे, यह खुले मैदान रेत में। वह आगे से मूते, यह पीछे से! वह लकड़ी चबाय और यह अगर काँटे को भी सूँघे, तो वह फूल की तरह नरम हो जाय! लड़ाई में उसपर सिपाही चढ़े और इसपर चले आगे-आगे नगाड़ा! अब जाते कहाँ हो, लो बात-में-बात! चचाजी ने बाबा की अक़ल गुम कर दी!

पाँ०—अच्छा, इन ओझों को किसने बनाया?

ति०—सब विश्वामित्रजी की बरन-संकरी सृष्टि के हैं। मुनिजी ने तांत्रिकों के जवाब में इन्हें बनाया। तांत्रिक अपना मंत्र चुपचाप जपते हैं, ओझा अपने पचरे गला फाड़कर गाते हैं। वे काली या भैरव को इष्ट मानते हैं, ये डाकिनी-पिसाचिनी या भूत-मलेछ को।

पाँ०—इसलिए ओझों से भूत-प्रेत भागते हैं।

ति०—खाक भूत भागते हैं। रात ही तो देख चुके हो कि ओझों से कैसे भूत भागते हैं ; फिर भी तुम्हारा संदेह दूर नहीं हुआ ?

पाँ०—सच मानो, खेदू बड़ा जबरजंग ओझा है। वह चाहता, तो भूत को हटा देता। मगर यह तो ऐसा अगड़धत्त ब्रह्मपिसाच है भाई कि इसने कितने ओझों को दोनों राह से खून निकालकर मार डाला है ! ब्रह्मपिसाच की आँच खेदू से सही न गई, इसलिए वह फिर सामने नहीं आया। बस उसे पछाड़ खाते देख सब ओझा भड़क गये।

ति०—तुम इन्हें क्या पहचानोगे, सब एक ही साँचे के ढले हैं—ये जीते-जागते प्रेत हैं। मैं इनकी नस-नस पहचानता हूँ। कई बार काम पड़ चुका है।

पाँ०—मेरे साथ तो इसी बार काम पड़ा है। मगर मैं एक ही दफा में अच्छी तरह सीख गया। देखना, कल 'बड़ी देवढ़ी' पर बुलाकर अगर सबसे पाँच-पाँच रुपये डंड न ले लूँ, तो मेरे नाम पर कुत्ता पोस देना।

ति०—डंड-फण्ड वसूल करने की बात जाने दो। मेरी बात मानो। बस एक ही दवा है—

कायथ खुस कुछ दिये-दिलाये, बाह्मन खूब खिआये।
धान-पान-पौधे पनिआये, राड़ जाति लतिआये॥

पाँ०—तुम नहीं जानते, गरीबों को लात-मुक्के से बढ़कर रुपये की मार अखरती है। कल देख लेना।

ति०—तो फिर मेरे दिल की कसक कैसे कढ़ेगी ?

पाँ०—क्या चाहते हो ?

ति०—गोबरधन की बीमारी में ओझों ने दगा दिया है। मैं उसी की कसक निकालने के लिए इन ओझों की ओझाई करना चाहता हूँ। ये अधमाधम हैं, बिना धमाधम के नहीं बूझेंगे। परसों बाबू साहब के घर में ब्रह्म-स्थान बनेगा। उस दिन देवघर में ही मैं अपनी करामात दिखाऊँगा। गाँव के नामी ओझों को उस दिन जरूर बुलवाओ।

—हाँ, एक बात और। मैं अगर उछल-कूद करूँ तो तुम मेठों से घबराकर कहना—इनकी देह पर एक राकस आता है।

पाँ०—यह कौन-सी बड़ी बात है। बहुत-कुछ कह दूँगा। मेठ ओझों को नेवता दे दूँगा। दौड़े हुए आवेंगे। सब भुक्खड़ तो हैं।

ति०—आज कौन दिन है ?

पाँ०—आज गुरुवार है। कल बीच देकर परसों सनीचर पड़ेगा। बस एक दिन की कसर है।

ति०—तो बस देख लेना परसों।

सचमुच सनीचर के दिन तिवारीजी ने विचित्र लीला की। देवघर में रामसहर के मेठ-ओझैत जुटे! वह कूदने-फाँदने लगे।

उनका ताल ठोंकना और छरकना देखकर पाँड़ेजी बहुत घबराये। मेठों से बोले--यह क्या हुआ, इनकी देह पर कभी-कभी एक राकस आता है! वह इस समय कैसे उपट गया?

मेठों ने कहा—कुछ हरज नहीं बाबा, राकस को तो हमलोग गाजर की तरह चबा जायँगे।

तिवारीजी एक तो खुद ही हट्टे-कट्टे और ऊँचे-पूरे मर्द, दूसरे पुरोहिती करते-करते भोजन-भट भी हो गये थे--सुख का शरीर कसरत से और भी चुस्त-दुरुस्त हो गया था। मेठों की हेंकड़ी सुनकर और भी तूफान मचाने लगे। उनके पैरों की धमक से देवघर दलक उठा।

मेठ एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। पाँड़ेजी ब्रह्म-स्थान के पास बैठकर हवन-कुंड में शाकल्य डालते हुए बोले—भाई, तुमलोग चारो आदमी मेठ-ओझैत हो। मेरे इस नातेदार को किसी तरह राकस से उबारो।

गोबरीराम बड़ा शोख ओझा था। अपनी जटाएँ हिलाते हुए तिवारीजी को डाँट-कर बोला—तू कौन है? कहाँ से आया? यहाँ तेरा क्या काम? इस बेचारे ब्राह्मन की देह पर आने से क्या लाभ? कहीं और जाकर कोई दूसरी देह धर, इन्हें छोड़ दे।

तिवारीजी ने उसी तरह उछलते और हाथ भाँजते हुए चौगुने जोर से कहा--मैं इसी की देह पर रहूँगा। मैं जाति का नट हूँ! मसान-घाट के पीपर पर रहता हूँ। यह रोज उसी तरफ डोल-डाल करने जाता है। क्या दिशा-जंगल फिरने के लिए इसको दूसरी जगह नहीं मिलती? इसका परकना छुड़ाऊँगा!

अब तक तिवारीजी का गरजना सुनकर ओझा मन-ही-मन डरकर भीगी बिल्ली हो रहे थे, वे मसान-घाट के नट का नाम सुनते ही बाघ हो गये!

एक दूसरा ओझा बड़े घमंड से बोल उठा—भलेमानुस की तरह बात मान जाओ, नहीं तो जलाकर भसम कर दूँगा!

करामाती तिवारीजी की देह पर आया हुआ नकली नट गरज कर बोला—तुम क्या, तुम्हारे परदादा अगर नरक से निकलकर आवें, तो भी मेरा एक रोआँ टेढ़ा नहीं कर सकते। मैं कई-एक देवघर से हुकुम लेकर आया हूँ। हरसू-ब्रह्म और सुरीठ ब्रह्म मेरी पीठ ठोक चुके हैं। आज इस देवघर के ब्रह्मबाबा ने भी मेरे सीर पर हाथ फेर दिया है। अब कौन माई का लाल मेरे सामने टिकेगा?

इतना कहकर तिवारीजी दाँत पीसते और जोर से गुर्राते हुए बोले--खसी लूँगा, भेड़ा लूँगा, सुअर-छौना लूँगा, मुर्गा लूँगा!

फिर हाँफते और कटकटाते हुए गरजकर बोले--जल्दी दे, न मानूँगा, सात लबनी ताड़ी, पाँच-भर गाँजा, दो बोतल तपावन, फौरन लूँगा रे दहा !

बड़े-बड़े ब्रह्म के पीठ ठोकने की बात सुनते ही मेठ-ओझों के देवता कूच कर गये। सब के पैरों के नीचे से धरती सरक गई। चौकन्ने होकर डरी निगाहों से एक दूसरे को देखने लगे।

गोबरी के लिलार में सिकुड़न पड़ गई। उसने खेदू की ओर झँपी नजरों से देखा। बहुत जोर लगाने पर बेचारे खेदू के मुँह से इतना ही निकला--बड़े विकट से काम पड़ा !

पेड़ हाँकनेवाला डकैत-ओझैत लुगरी भगत अभी चुप बैठा रंग-ढंग देख रहा था। वह अपनी जान की बाजी लगाकर बोला--ब्राह्मन कभी नट को पूजा नहीं दे सकता !

लुगरी की हिम्मत देखकर भुलोटन राउत ने भी हाथ फटकारते हुए कहा--ब्राह्मन की दी हुई पूजा इसके बाप के बाप से भी नहीं पचेगी, इसकी कौन गिनती ?

तिवारीजी ने दाँत कटकटाते और आँख तरेरते हुए कहा--खबरदार, तुमलोगों की सारी भगताई और रौताई नीचे की राह से निकाल दूँगा। मुझे ऐसा-वैसा नट मत जानो।

चारों मेठ, नट की धमकी सुनकर, फिर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। पर गोबरीराम मुँह-ही-मुँह में ताबड़तोड़ कुछ बुदबुदाने लगा।

तब तक थोड़ी ही देर में लुगरी भगत एक मुट्ठी राख लेकर खड़ा हो गया। नाक-भौं चढ़ाकर नट को डपटते हुए बोला--अच्छा तो अब तू सम्हाल, मैं तुझे गलीज के गड्ढे में गिराता हूँ।

बस, इतना कहना था कि तिवारीजी बेतरह चिल्ला उठे ! झट लुगरी भगत को उठाकर जमीन पर दे मारा ! फिर लुगरी पर गोबरी को, गोबरी पर भुलोटन को और भुलोटन पर खेदू को। तले-ऊपर रद्दा जमाकर लगे आटा गूँधने !

चारों मेठों की ऐसी कुन्दी की कि बेचारे बड़े जोर-जोर से चिल्लाने लगे--आह रे बाप ! जान गई रे माई !!

अगर पाँड़ेजी वहाँ न होते, तो तिवारीजी चारों मेठों का मलीदा कर देते, जैसे भीम ने कीचक का किया था !

११

नमक का बदला

जो पर-नारिहिं लावे डीठ
लोह लाल करि दागो पीठ

जेठ का महीना था। भूखे गरीब के पेट की तरह धरती जल रही थी। लू की लपट से ऐसी आँच निकलती थी, मानों नवयुवती विधवा गरम साँस छोड़ रही हो। लम्बी जीभ निकाले कुत्ते हलप-हलपकर हाँफते थे, जैसे जाड़े में कोई दमा का पुराना रोगी।

हम बाबूजी के साथ पालकी पर मूसन तिवारी के एक भतीजे की बारात में जा रहे थे। साथ में एक लदुआ टट्टू पर बाबू रामटहल सिंह के दरबान घूरन सिंह भी थे। उनके पीछे-पीछे खेदू बहँगीदार।

पालकी के कहार 'हुंः हाँः' करते अपनी बोली बोलते चले जाते थे। बबूल के काँटे देखने पर कहते थे—रुपहला है! भँटकँटैया और नागफनी देखने पर कहते थे—सुनहला है! कहीं बहुत ऊँच-खाल देखने पर कहते—कमरतोड़ है!

पालकी की पिछली खिड़की से बाबूजी ने कहारों से कहा—रास्ते में जहाँ कहीं प्याऊ मिले; ठहर जाना, मारे प्यास के तालू चटक रहा है।

हाँफते हुए कहार बोले—वह आगे ताड़ के पेड़ोंवाला गाँव दिखाई देता है। बस वहीं हमलोगों को एक-एक लबनी ताड़ी पिलाइए और आप भी दुपहरी गँवाइए। तब देखिए रास्ते का मजा! फिर ऊपरी बेला में ठंढे-ठंढे निकल चलेंगे। साँझ ही से अँजोरिया रात पड़ेगी, लूक की तरह पालकी लेकर उड़ जायँगे। गरमाये कंधे से ही बारात दरवाजे लगाते हुए जनमासे में जाकर ठंढायेंगे।

पालकी के पीछे-पीछे टट्टू ढुलकाते हुए घूरनसिंह ने कहा—जबतक तुमलोग ताड़ीखाने में जाकर ताड़ी घटोरोगे, तब तक हमलोग घड़ी-भर घाम निवारेंगे। मगर बिना ताड़ी पिये तो तुमलोग मेरे टट्टू को अपने पाँवों नहीं लगने देते, फिर ताड़ी पीने पर तो तुमलोग और आँधी हो जाओगे—दौड़ते-दौड़ते टट्टू की लीद निकल जायगी।

पीछेवाले कहारों ने हाँफ भरी हँसी हँसते हुए कहा—लीद तो बेचारे की यों ही निकल रही है—सखुआ की सिल्ली ऐसी देह लादकर आप उसकी रीढ़ तोड़ रहे हैं! सचमुच हमलोगों के ताड़ी पी लेने पर इस ढुटुरूँ-टूँ चाल से आप पिछड़

जाइएगा। लेकिन एक उपाय है। हमलोग में जो कंध-छूट रहेगा, वह थोड़ी-थोड़ी दूर पर उसके पीछे से सोटा जमाता चलेगा। तब साथ न छूटेगा। इस आगेवाले गाँव में चलकर पहले उसको भर-पेट दाना खिलाइए।

यह सुनकर आगेवाले कहार बोले—वाह भाई वाह! टट्टुए बेचारे की जान लोगे क्या? ऐसी दवा मत बताओ कि बेचारा इसी गाँव में छेरने लगे और घूरन सिंह को टाँग घिसियाना पड़े। अभी आधा रास्ता बाकी है।

इसपर खेदू ने काँवर का कंधा बदलते हुए कहा—दाना के बिना और खायेगा क्या? सतुआ हमलोग के पेट से बेसी है नहीं—घास-भूसा इस गाँव में मिलने का नहीं—चारों ओर तो उसर रेहचट है।

घूरनसिंह—मैं जानता हूँ, इस गाँव के पूरब एक छोटी-सी नदी है। जब तक कहीं बैठकर हमलोग जुड़ाएँगे, तब तक छान लगाकर इसको नदी के कछार पर चरने के लिए छोड़ देंगे। वहाँ चरी होगी।

एक कंध-छूट कहार ने दुलककर आगे बढ़ते हुए कहा—भैयाजी, ऐसा काम भी न कीजिएगा। बेचारे की ठठरी तो यों ही डोल रही है। नदी-तीर निराले में पाकर कहीं गीध न नोच डालें।

उसकी बात सुनते ही घूरनसिंह चिढ़कर गाली बकने लगे! वह हँसते-हँसते पालकी के आगे-आगे दौड़ने लगा। कहार और बँहगीदार भी हँस पड़े। बाबूजी और हम पालकी में कुछ-कुछ ऊँघ रहे थे, सो इस हँसी के कारण ऊँघाई जाती रही!

इसी तरह के गँवारू विनोद में लहर लेते हुए कहार बस्ती के पास पहुँचे। रास्ते पर ही एक प्याऊ थी। वहीं अपना-अपना सोटा पटक कर कहारों ने पालकी रख दी। पालकी रखते हुए जोर से चिल्लाकर बोले।

जय बजरंग-बली धजाधारी
कसो लँगोट, उठाओ गदा भारी
खबर लो हमारी, सरन तिहारी
लँगोट का पक्का मर्द औ सत की पक्की नारी
बात का कच्चा भड़ुआ नेद की कच्ची छिनारी

पालकी रखते ही हमलोग बाहर निकले। देखा, हरसंकरी का बड़ा ही छतनार पेड़ था। घनी पाकड़ के साथ गलबहियाँ डालकर मानों बर और पीपर सुख-छहियाँ लूट रहे हों! मालूम होता था, चारों ओर धू-धू करती हुई लू के डर से भागकर दसो दिसा की छाया यहीं आ सिमटी है।

खेदू ने एक कम्बल बिछा दिया। हम और बाबूजी उसी पर बैठ गये। वहीं पड़ी हुई एक चटाई पर लेटते हुए घूरनसिंह बोले—आजकल रास्ता चलने लायक

दिन नहीं होता। कहीं बिना पेड़-रूख के टप्पे में पड़ने पर लू लग जाय, तो अन्त-काल में तुलसी-गंगाजल भी नसीब न हो। एक कहावत है—

सावन साग अरु भादो दही
क्वार करैला कातिक मही
अगहन जीरा पूसे धना
माघे मिसरी फागुन चना
चैत गुड़ बैसाखे तेल
'जेठ पंथ' असाढ़े बेल
इन बारह से बचे जो भाई
ता घर बैद न सपनेहु जाई

यह सुन खेदू ने पेड़ की जड़ में घूरनसिंह के टट्टू का पघा अटकाते हुए कहा—जेठ-बैसाखी का रास्ता इस तरह डाक नाघने से नहीं कटता। लोग कहते हैं—

कोस-कोस पर पैर धोना
चार कोस पर खाना
जहाँ जहाँ मन में आवे
तहाँ तहाँ जाना

घूरनसिंह ने खेदू को डाँटते हुए कहा—अरे तू कथनी कथेगा कि भोलानाथ को जल्दी पानी पिलायेगा? लड़का कभी का प्यासा है। मुन्सीजी तेरा मुँह देखने के लिए तुझे साथ लाये हैं? रामसहर-भर में तू ही बड़ा सुघर था? बड़े आदमी की खिदमतगारी ठट्ठा नहीं है।

उसे डाँटकर फिर बाबूजी से बोले—मुन्सीजी, बारात में खेदू की बाग कड़ी राखिएगा, नहीं तो यह ओझों का मेठ है, अपनी ही ठकुराई में भूला रहेगा। ब्राह्मन की बारात है, सब लोग कहने लग जायँगे—

कायथ का गुलाम, चलनी का चाम
घोड़े की लगाम, तीनों बेकाम

बेचारे खेदू ने कंधे से काँवर उतार कर अभी तनिक कमर भी सीधी नहीं की थी और ऊपर से यह डाँट-फटकार पड़ने लगी! मन-ही-मन बेचारा कलपकर रह गया! हमलोगों को खिलाने-पिलाने के बाद ही उसे सुस्ताने का मौका मिला।

इसी समय एक बूढ़ा आदमी, जो वहीं अँगोछा बिछाकर रास्ते की थकावट मिटाने के लिए एक तरफ साये में लेटा हुआ था, बाबूजी के हाथ में एक तार देता हुआ बोला—लालाजी, तनिक इसको बाँचकर सुना दीजिए कि इसमें क्या लिखा है। इसके पीछे आज बड़ा हैरान हुआ हूँ। अपने जवार के तीन-चार गाँवों में घूम आया, कहीं

कोई रंगरेजी जाननेवाला नहीं मिला। डाक-मुन्सी से भी इसका कुछ मतलब नहीं खुला। अब थाने पर जा रहा था। भले ईश्वर के भेजे आप मिल गये। कहाँ का तार है?

तार को पढ़कर बाबूजी ने पूछा—नवाब किसका नाम है?

बूढ़ा—हमी को लोग नवाब कहते हैं।

बाबूजी—गंगिया तुम्हारी कौन है?

बूढ़ा चौंककर बोला—हमारी लड़की है। पहले सब बाँचिए, तब हम पूरा हाल बतायेंगे। किसने भेजा है?

बा०—नथुनीराम। वह तुम्हारा कौन है?

बू०—हमारा साला है। चट-कल में काम करता है। हबड़े से भेजा होगा। क्या लिखता है?

बा०—हाँ, हबड़े से भेजा है। लिखता है कि गंगिया मिल गई, हड़बड़ाना मत, चिट्ठी देखो।

बू०—कहाँ है चीठी?

बाबूजी ने हँसकर कहा—इसमें कहाँ है? डाक से आती होगी। डाकघर में गये थे, पूछा क्यों नहीं?

बूढ़े ने रुलासे मन से कहा—हमको क्या मालूम था कि डाक-मुन्सी तार दे देंगे और चीठी रख लेंगे? अब फिर तीन कोस टाँग घसीटते हुए जाना पड़ेगा।

बाबूजी तार को उसके हाथ में देते हुए बोले—चिट्ठी को डाक-मुन्सी क्यों रख लेंगे? अभी आई ही न होगी! तार की तरह चिट्ठी नहीं चलती। यह जल्दी आता है, उसके आने में देर लगती है। दो-चार दिन में वह भी आ जायगी।

बू०—नथुनी ने तो दोनों को एक साथ ही 'चिट्ठी के बम्बे' में छोड़ा होगा, फिर यह कैसे पहले चला आया और वह उधर ही रह गई?

बाबूजी ठठाकर हँसते हुए बोले—अरे गँवार कहीं का! तार भी कहीं लेटर बक्स में छोड़ा जाता है? रेल की लाइन पर जो तारबर्की लगी है—सो देखा है?—उसी से यह तार आता है।

बू०—ऊपर-ही-ऊपर कि नीचे-नीचे?

बाबूजी अब पेट फूलानेवाली हँसी को किसी तरह रोक न सके। बूढ़ा उनका मुँह ताकते हुए फिर पहले ही की-सी सरलता से बोला—हमको निपट गँवार समझकर हँसिए मत लालाजी, सब हम जानते हैं—तार जमीन के भीतर-ही-भीतर आता है और चिट्ठी मालगाड़ी पर। तार बरखी को कई बार देखा है। एक दफे रेल पर ठाकुरदुआरा भी हो आये हैं। पैदल तो चारों धाम कर आये हैं। तब रेल नहीं थी। वह तो हाल में आई है। उसकी सड़क बनाने के लिए हम अपनी जवानी

में कौड़िया खेप:माटी.ढो चुके हैं। अब न सब लोग रेल-रेल बौआने लगे हैं, पहिले के लोगों का तो पैर ही रेल था—किरिन फूटते-फूटते घर से निकलते और चक्का डूबते-डूबते तीस-तीस कोस पैदल ही धुन देते थे। वे लोग जितनी दूर झाड़ा फिरने जाते थे, अब के लोग उतनी दूर के लिए भी रेल खोजते हैं, तो भला कोढ़ियों के दुआरे-दुआरे दौड़ाने के लिए सरकार बहादुर रेल कहाँ पावे ?

नवाब के इस रेल-प्रसंग में टाँग अड़ाते हुए घूरन सिंह बोले—आज जब कि परगने-परगने रेल है, तब तो बैल-बछरू और घी-अनाज देसावर चला जाता है और जिस दिन दुआरे-दुआरे रेल हो जायगी, उस दिन तो घर-घर के कोठिले में चुहिया डंड पेलेगी। छेरी-सुअरी का दूध भी ढूँढ़े न मिलेगा—गदहे का हल चलाना पड़ेगा—

घूरनसिंह की बात अभी पूरी नहीं हुई थी तब तक गले में सत्तू का पिंड अटकने से खेदू ओकने लगा ! उन्होंने झट उठकर उसकी गरदन पर ऐसा घिस्सा जमाया कि गले के भीतर से छटककर सत्तू का पिंड तीन गज आगे ढुलक गया !

घूरनसिंह का घिस्सा सह लेना खेदू का काम नहीं था। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं ! घूरनसिंह ने नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—अधिरजी कहीं का ! सतुआ कहीं भागा जाता था ? धीरे-धीरे खाता, तो क्या पेट में न जाता ? सोनिया बेचारी आज नाहक राँड़ हो जाती !

बाबूजी उस पर नाराज होकर कहने लगे—जब रास्ते में यह सत्तू पर इस कदर टूटता है तब बारात में तो खुरमा-बुन्दिया पर जान दे देगा !

नवाब ने इसी बीच में बाबूजी को अपनी ओर ध्यान दिलाते हुए कहा—इस तार का खुलासा हाल एक बार और हमको समझा दीजिए लालाजी, हमको अभी बड़ी दूर जाना है।

बाबूजी झुँझला कर बोले—अब क्या समझावें भाई ? दो-चार दिन के बाद जाकर डाकघर में चिट्ठी तलाश करना।

नवाब—आठ दिन से तो डाकघर में यह तार आया हुआ था, चिट्ठी अब तक आने से बाकी होगी ? मगर न जाने डाक-मुन्सी ने कब की अदावत का बदला लिया है। आज अगर हम अपने गाँव के एक महाजन का रुपया पारसल करने नहीं जाते, तो यह तार अभी कई दिन तक 'चाम के थैले' में सड़ता रहता !

बाबूजी ने पनवट्टा खोलकर पान पर कत्था लगाते हुए पूछा—तुमने पूछा नहीं कि आठ दिन तार क्यों रोक रक्खा ? चिट्ठी तुम्हारे गाँव में कितने दिन पर मिलती है ?

न०—सुक और सोमार बिट है; मगर चार-चार बिट की चिट्ठी एक साथ ही मिलती है ! गाँव-जवार का कोई आदमी कभी हाट-बजार करने उधर चला जाता है, तो डाक-मुन्सी उसी के हाथ सबकी चिट्ठी भेज देते हैं। जब कोई भारी रकम

का मनिआडर होता है, तब फी दहाई एक दुअन्नी लेने के लिए खुद आते हैं और उसी दिन अपनी बही पर कई जगह एक साथ ही गाँव के किसी आदमी के अँगूठे का ठाप ले लेते हैं। देखिए न, अपने गाँव-जवार की एक दरजन चीठी तो हम ही लिये जा रहे हैं।

बाबूजी ने पान का बीड़ा अपने मुँह में डालते हुए तार को लेकर देखा—उसपर एक हफ्ता पीछे की मुहर पड़ी थी! फिर एक चुटकी जर्दा मुँह में डालते हुए चिट्ठियों को भी लेकर देखा—उनपर भी दस-पन्द्रह दिन तक के ठापे पड़े थे!

तारीफ यह कि उन्हीं में से एक चिट्ठी नवाब के नाम की भी निकल आई। उसे अलग निकालकर नवाब के सामने फेंकते और पनबट्टे को बन्द करते हुए बाबूजी बोले—यह क्या है तुम्हारी चिट्ठी! बेकार डाक-मुन्सी बेचारे पर तुम इतना दोष थोप गये।

नवाब का चेहरा खिल उठा। उसने चिट्ठी को अपने हाथ में लेकर उलटते-पलटते हुए कहा—कहिए न, इतनी दूर से हम अपने अँगौछे के खूँट में इसको गठियाए हुए आ रहे हैं, और हमको पता ही नहीं है कि इसमें हमारी भी चीठी है। सचमुच बे-पढ़ा-लिखा आदमी अन्धे के बराबर है। अच्छा, अब आप ही इसको भी बाँचकर सुना दीजिए। नहीं तो आज साँझ तक हम गाँव-गाँव मारे फिरेंगे, गँवई के लोगों से हबड़े की चीठी सुद्ध चलती भी नहीं—आपसे साफ उचरेगी।

बाबूजी ने मन-ही-मन चिट्ठी पढ़कर उसका खुलासा कर दिया। इसपर नवाब ने गिड़गिड़ाकर कहा—एक दफे सोसती सिरी से बाँचकर हमको सुना दीजिए।

बाबूजी झुँझलाकर बोले—सोसती सिरी से सुनने पर क्या कुछ अधिक मतलब निकल आवेगा? सिर्फ इतनी ही तो बात है—जो फकीर यहाँ से गँगिया को फुसलाकर वहाँ ले गया था, वह पकड़ा गया है, उसपर मुकदमा चल रहा है, गँगिया आराम से नथुनी के पास है।

नवाब—यह तो ठीक है न कि वह ठग फकीर पकड़ा गया है—उसपर मामला चल रहा है?

बाबूजी—हाँ, ठीक लिखा है। मैं झूठ कहूँगा?

नवाब—साइत नजर बिचलने से—

बाबूजी कुछ रोष में आकर बोले—तू तो अजब आदमी मालूम होता है! नजर कैसे बिचलेगी?

नवाब ने हाथ जोड़कर दाँत दिखाते हुए कहा—अच्छा, एक दफे फिर बाँचकर आप ही देख लीजिए कि उस चोर फकीर के पकड़े जाने का पक्का हाल लिखा है न?

बाबूजी मारे क्रोध के आपे से बाहर होकर बोले—हाँ, हाँ, लिखा है, लिखा है! कै दफे रटाओगे?

नवाब का चेहरा उतर गया। बहुत डरकर बोला—कसूर माफ कीजिए, अब नहीं रुठावेंगे। हमको तो खाली इतना ही पक्का जानना था कि वह ठग फकीर पकड़ा गया या नहीं, सो आप कहते हैं कि पकड़ा गया है, और उसपर मामला भी चल रहा है, तो बस यही चाहिए। हम तो गोसैयाँ से रोज मनाते हैं कि वह सात बरस जेहल काटे। हमारे मुँह में तो कारिख लग ही गया, अब क्या—मर्द की मूँछ एक बार नीची होकर फिर ऊँची नहीं होती।

घूरनसिंह ने उठकर बैठते हुए पूछा—तुम्हारी लड़की उस फकीर के फंदे में फँसी कैसे?

नवाब अपने घुटनों पर केहुनियाँ रखकर हाथों से सिर थामे हुए बैठा था। रुँधे कण्ठ से भींखता हुआ बोला—कैसे बतावें कि कैसे फँसी? संजोग की बात, और सबसे बढ़कर हमारा अभाग!

घू०—लड़की की उमर क्या है? ब्याही है?

नवाब ने लम्बी साँस खींचकर कहा—उमर बीस की हुई होगी। ब्याही थी, बेवा हो गई!

बाबूजी ने उठकर पेड़ के साये से बाहर पान की पीक फेंकते हुए पूछा—बेवा कब हुई?

नवाब एक छोटे ठीकरे से जमीन में धीरे-धीरे रेखाएँ बनाता हुआ बोला—चौदह-पंद्रह बरस हो गये।

घू०—तुमलोगों में सगाई भी तो होती है?

न०—हाँ, होती है। हुई भी थी; मगर उसका दूसरा आदमी भी जाता रहा। जब बिधाता वाम होता है, तब कितना भी सँवारिए, बात बिगड़ती ही चली जाती है।

ताड़ी पीकर आये हुए कहारों से चलने की तैयारी करने के लिए कहते हुए बाबूजी ने नवाब से पूछा—अच्छा, वह दूसरी बार कब बेवा हुई?

नवाब की डबडबाई आँखों से झर-झर आँसू ढरने लगे। बिलखकर बोला—उस समय दस बरस की थी!

घूरनसिंह ने भी खेदू से अपना टट्टुआ कसने के लिए कहते हुए नवाब से फिर पूछा—तो वह इतनी सयानी होकर फकीर के हाथ कैसे लगी?

न०—वह डकौतिया बनकर गाँव में आया था। घर-घर बेटी-बहुओं का हाथ देखता फिरता था। कितने घरों से रुपये-पैसे ठगकर ले गया। हमको तो इस लोक से ही बिदा कर गया।

इतना कहने के बाद नवाब अपने मुँह पर अँगोछा देकर रोने लगा। बाबूजी ने उसे बहुत तोष-बोध देकर चुप किया। बेचारा अपनी कमर पकड़कर आह भरता हुआ उठा और चुपचाप बस्ती की ओर चला गया।

कहारों ने डीहवार को गुहराकर पालकी उठाई। घूरनसिंह एक ऊँचे दूह पर खड़े होकर टट्टुए पर चढ़ने लगे; क्योंकि दबीज बलगमी देह होने से उचककर चढ़ना कठिन था; पर बेचारे ज्यों ही उसकी पीठ पर जाने के लिए उचके, त्यों ही वह तनिक बगल में हटकर मूतने लगा, सो पैर के भूठा पड़ जाने से कुम्हड़े की तरह लुढ़ककर नीचे आ रहे—चोट भी लगी, देह भी अशुद्ध हुई!

कहार और बहँगीदार उनके चिढ़ने के डर से मुँह में अँगौछा देकर मन-ही-मन हँसते हुए आगे बढ़े। बाबूजी जब अपनी हँसी को ओठों के भीतर जबरदस्ती दबाने लगे, तब वह आँखों की राह आँसू बनकर निकल आई! हम तो हँसते-हँसते लोट गये। कोई चिढ़े या रूठे, हमें तो हँसने का मसाला मिलना चाहिए!

पालकी के दरवाजे से पीछे की ओर देखने पर बाबूजी की हँसी और भी उभड़ी; क्योंकि घूरनसिंह अपने सोटे से बेचारे टट्टुए की खबर ले रहे थे।

थोड़ी ही दूर आगे बढ़कर बाबूजी के कहने से कहारों ने पालकी रख दी। जब घूरनसिंह का टट्टू पहुँचा, तब पालकी उठी। इस बार कहारों ने हवा-गाड़ी का मजा दिखाया। हमलोग सूरज डूबने से पहले ही बारात में पहुँच गये। पर घूरनसिंह और खेदू का कहीं पता नहीं!

बस्ती के बाहर एक घने बाग में पड़ाव पड़ा हुआ था। हमें देखते ही मूसन तिवारी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। हमारी ही धुन में बाबूजी के पा-लागन के बदले में असीस भी न दे सके। रोएँ-रोएँ से हँसकर बोले—आओ जी भोलानाथ, तुम तो ननिऔरे क्या गये, ननिऔरे के ही हो रहे! कभी गंगा नहाने के बहाने भी नहीं आये। तुम्हारी नानी क्या खिलाती है कि अपने गाँव की भी याद नहीं आती?

हमको अपने साथ लेकर तिवारीजी के पास बैठते हुए बाबूजी ने पूछा—अब दरवाजे बारात लगने में क्या देरी है?

तिवारीजी हँसते-हँसते हमको अपनी गोद में बैठाते हुए बोले—बस आप की ही देर थी। देखिए, सब लोग बन-सँवर के बैठे हैं। भोलानाथ को यहाँ से वर की पालकी में चलने दीजिए। आप घोड़े पर चलिए। आपके लिए दुबेजी का घोड़ा तैयार है। पहिले आप कुछ पानी पी लीजिए—चार कौर भीतर, तब देवता-पीतर।

तिवारीजी की बात पर कहार बड़े प्रसन्न होकर बोले—हाँ देवानजी, आप घोड़े पर ही बारात दरवाजे लगाइए, तब तक घूरनसिंह का अरबी घोड़ा भी पहुँच आता है। उसके ऐसा तो एक भी घोड़ा इस बारात में नजर नहीं आता। वह घोड़ा है कि राजा बिकरम का 'उड़न-खटोला' है।

कहारों की बात पर हँसते-हँसते बाबूजी घोड़े के पास गये। उन्हें देखते ही आम के पत्तों की तरह उसकी कनौतियाँ खड़ी हो गईं। हिनहिना कर मोर की तरह

ठुमुक-ठुमुक नाचने लगा। उसके पैरों में पड़े हुए छड़े उसकी थिरक पर छमछम का ताल देने लगे।

तब तक तासे-तम्बूरे और सिंगे एक साथ ही तड़तड़-गड़गड़ और धुँ-धु-पुँ-पुँ करके बज उठे। बाजे-गाजे की आवाज से घना बगीचा गूँज उठा। बारात चल पड़ी। आगे-आगे बाबूजी का घोड़ा एक-एक पुचकार पर आठ-आठ उड़ान भरता हुआ चला। बारातियों की अगवानी के लिए इधर से सरातियों का भी एक सजीला दल बस्ती से बाहर निकला।

दो इतराई हुई नदियों की तरह मिलकर बाराती और सराती गाँव में घुसे। बस्ती में घुसते समय उसके किनारे-किनारे आस-पास घूर और गोबर-गलीज का गाँज देख नाक पर अँगौछा देकर कहार कहने लगे—सुना जाता है कि रामजी की बारात के जनकपुर पहुँचने पर राजा जनक ने खोरी-खोरी चोवा-चन्दन छिड़कवा दिया था, तो यहाँ भी बेटीवाले ने पहले ही से बिलायती चोवा-चन्दन छिड़कवा रक्खा है। बढ़िया-से-बढ़िया चीज खाकर भी अगर कोई इस रास्ते निकले, तो उल्टी हुए बिना न रहे—रामदुहाई, समूची अंतड़ी उफल जाय!

जब गाँव के अन्दर बारात पहुँची, तब देखा कि दरवाजे-दरवाजे स्त्रियों का झुण्ड खड़ा है। जो नई-नवेली थीं, वे अपने-अपने मुँह पर आँचर दिये वर की पालकी की ओर निहुरकर झाँकतीं और मुस्कुराती हुई कहने लगीं—हाय रे राम! ताड़ बराबर कनिया का वर यही है! इसको तो वह अपने लहँगे में छिपा लेगी! यह उसका दूध पियेगा कि माँग भरेगा! धिया का अभाग है कि इस उमर में वर भी मिला तो ऐसा कि अपने हाथ से धोती भी न पहिर सके। अब तक बेचारी ब्याही होती, तो इतने बड़े लड़के की महतारी कहलाती। छिः छिः! बाप जीता होता, तो आज इतने पर कुँए में ठाढ़े गिर पड़ता। बेचारी पुरनिया महतारी क्या करे! पितिया ने बिना मोह-माया के सूखे कुँए में भठा दिया। जस-जस यह जवान होगा, तस-तस वह बुढ़ायेगी!

इस तरह की बोलियाँ सुनकर भला कहार कब चुप रहनेवाले थे! आवाज कसते हुए बोले—वर को छोटा मत जानो, साल भर के भीतर ही पेट फुलायेगा। कलजुग है—अब इतने ही बड़े टावर अंडा देने लगे। ब्याह हुआ होता, तो यह भी अबतक एक चुहिया निकाले होता। देखने ही भर को छोटा जानो—बन्दूक की टोपी है, घोड़ा पड़ते ही फैर दागेगा!

इसी तरह की गँवारू मसखरी कहते हुए हँसोड़ कहार धीरे-धीरे गाँव की साँकरी गलियों में पालकी लिए चले जा रहे थे। कहीं-कहीं जब मोरी-पनाली की सड़ी कीच में घुटने तक उनके पैर धँस जाते थे, तब वे हाँफ-भरी हँसी हँसते हुए कहते थे—

यह देसावर का चालानी चोवा-चन्दन है। राम-राम ! यह गाँव है कि नरक है ! जान पड़ता है, यहाँ आदमी नहीं बसते, खाली केंचुआ ही रहते हैं !

इतने में बारात दरवाजे लग गई। दोनों ओर के शास्त्रार्थी पंडित 'द्वारस्य पूजा द्वार पूजा किमर्थम्' और 'अशुद्ध' किं वक्तव्यं' कह-कहकर जूझने लगे। आखिर विना बीच-बिचाव किये वे न हटे — न हटे—न हटे !

उनके हटने पर द्वार-पूजा होने लगी। उस समय गौरी-गनेस की पूजा में 'उहाँ गच्छ, इहाँ तिष्ठ' का अच्छा रंग रहा ! उसपर ऊपर से संकल्प का और भी गाढ़ा रंग चढ़ गया—'कलजुगे कली प्रथम चरने जम्बू दीपे भारत खंडे मांसानां मांसोत्तमे मांसे जेठे मांसे' इत्यादि !

द्वार-पूजा होते ही जनवासे की ओर बारात चली। स्त्रियाँ झूम-झूमकर गाली गाने लगीं। लहरी बाराती उस रसीली गाली के जवाब में लाल-हरी दियासलाई जलाकर दिखाने लगे—रंगीन फुलझड़ियाँ छोड़ने लगे !

जनवासे पर पहुँचकर सब लोगों के जलखावा कर चुकने के बाद मजलिस बैठी ! हमने देखा कि एक तरफ शामियाने में घूरनसिंह भी कत्ती पगड़ी पहने बैठे मूँछें ऐंठ रहे हैं—खेदू भी एक कोने में शामियाने के एक बाँस के सहारे उठँगकर एक टक से नाच देख रहा है। नाचवाली गा रही थी—

पिराय मोरी अँखियाँ, हमसे न बोलो।

शामियाने को घेरकर खड़े हुए तमाशबीनों में से एक बूढ़ा बोल उठा—तनिक बताती चलो बीबी, कैसे 'पिराय मोरी अँखिया।'

सब लोग एक साथ ही बूढ़े की ओर देखकर हँस उठे। एक नौजवान बोला—वाह बाबा, कितनाहू तो आखिर पुराना हाड़ है, रहा न गया !

बूढ़ा बेचारा लजाकर भीड़ में छिप गया। नाचवाली भी एक बार तबलची की ओर मुँह मोड़कर फिर हँसती हुई भाव बताने लगी।

इसी समय शामियाने में आकर दसौंधी ने ज्यों ही लय के साथ उठाया—'खेलत गेंद गिरी जमुना जल कूदि परे बृजराज कन्हैया'—त्यों ही उधर 'हर-बोलवा' का हुड़क बज उठा ! बस फिर क्या, देखते-ही-देखते तमाशबीनों की भीड़ हूह करके उधर ही को टूट पड़ी। हम भी उधर जाने के लिए बाबूजी से हठ करने लगे। लाचार होकर उन्होंने हमें खेदू के सिपुर्द किया।

वहाँ चारों ओर से भीड़ जमा हो गई थी। इसलिए खेदू हमें अपने कन्धे पर चढ़ाकर भीड़ में घुस गया। भीड़ के बीच में एक साधू बना बैठा था। उसके हाथों में अनेक गाँठोंवाली एक मोटी रस्सी थी। उसीको ताबड़तोड़ सरका-सरकाकर वह माला

जप रहा था! बगल में एक कनकटा कमण्डल रक्खा था। एक ने आकर उससे पूछा—ए बाबा, आपका अस्थान कहाँ है?

बाबा अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले—हमारा अस्थान? हमारा अस्थान तो बच्चा, यहाँ से बहुत दूर है—बहुत दूर—पहाड़ की तराई में!

उस पहाड़ का नाम क्या है?

कंचनजंघा!

कंचनजंघा-पहाड़ कहाँ है?

मानसरोवर के पास। गंगोतरी जानते हो?

हाँ-हाँ, जहाँ नहाकर लोग तर जाते हैं।

बस-बस, वहीं-वहीं!

भला उतनी दूर से आप यहाँ कैसे आये?

चेला ढूँढ़ते-ढूँढ़ते!

चेला क्या कीजिएगा?

रात को लंगोट खराब होने पर खुद कचारना पड़ता है।

हुँ; लंगोट कचारने के लिए कौन चेला बनेगा!

बनेगा जिसको जिन्दगी की लहर लेने की गरज होगी।

चेला होने से हम क्या लहर लेंगे?

सो बिना चेला बने कैसे जानोगे?

मूँड़ मुड़ाये तीन गुन, मिटे सीस की खाज
खाने को लड्डू मिले लोग कहें महराज

ऐसा? तब तो हम जरूर बनेंगे! अच्छा, सिखाइए मंत्र!

हमारी जाँघ पर बैठकर घोखो—

चेला साला कभी न मूँड़ों, जब मूँड़ों तब चेली
चेला कभी न देवे धेला, चेली खोले थैली।
चेला साला निगुड़ा होता, चेली करती सेवा
चेला आकर बात न पूछे, चेली लावे मेवा।

हमको गाली क्यों देते हैं बाबा?

यह गाली नहीं है बच्चा, गुरु का आसिरबाद है।

'साला' आसिरबाद है?

हाँ बच्चा, 'साला' साधू का आसिरबाद है।

रखिए अपना आसिरबाद, बाज आये ऐसे गोरू से।

यह कहकर चेला एक फटे बाँस से गुरु-दच्छिना देने लगा। भीड़ के बीच में साधू आगे-आगे भागता, चेला खदेड़े फिरता, पीछे-पीछे हुड़क और झाल बजाकर गरोहवाले गाते चलते—

सइयाँ भइले जोगिया, बजवले गाजर-संख
फुर उड़ि चलु जोगिनियाँ, न लासा लगे पंख

खेदू के कंधे पर बैठे-बैठे हँसते हुए हम नाच देख ही रहे थे कि घूरनसिंह ने जोर से खेदू को पुकारकर कहा—भोलानाथ को ले चल, मुन्शीजी बुलाते हैं, मोहफिल में घराती आ गये।

बाबूजी की बुलाहट सुनकर खेदू का रुकना बड़ा कठिन था। फिर खेदू के बिना देहाती तमाशबीनों के रेले में हमारा गुजर कहाँ था! लाचार हमको मुहफिल में आना ही पड़ा।

मुहफिल में आकर देखा, दोनों ओर के पंडितों में यहाँ भी 'बहुबचने-झल्लेट' का झमेला चल रहा है। एक तरफ इत्र-पान भी हो रहा था। पान-मसाले पर घराती टूटे पड़ते थे, जैसे सराध के कंक!

जबतक इधर ये रस्में पूरी हो रही थीं, तबतक उधर दुलहे के बाप—सुक्खू तिवारी—बिगड़ खड़े हुए—घोड़ों के वास्ते एक मन चना लिए बिना हम मड़वे में लात नहीं धरेंगे!

उनके जवाब में एक घराती भी गरमाये सुर से बोल उठा—दाना के लायक बस एक घोड़ा है। दो पसेरी उसके वास्ते काफी है। गदहों के वास्ते हमारे यहाँ दाना नहीं है। भूसा चाहे गाड़ी लदवा लीजिए।

गदहों की बात सुनकर सुक्खू तिवारी और भी भवक उठे—जब हम गदहे लाये हैं, तब तो हम धोबी हुए। अब तो हम हरगिज ब्याह नहीं करेंगे। कोई है रे, बुलाओ कहारों को! इसी रात को दुलहे को घर पहुँचा दें। हो चुका यहाँ ब्याह। रक्खें अपनी लड़की अपने घर—अचार डालें! हमारे लड़का है, तो बहुत कनिया मिलेगी। दुनिया में कनिया का अकाल थोड़े है।

घरातियों में से एक आदमी आगे बढ़कर बोला—किसका ऐसा कलेजा है कि दुलहे को इस गाँव के सिवाने से बाहर ले जायगा? उसके धड़ पर हमलोग सिर रहने देंगे? लड़का तो अब हमारा हो चुका, ब्याह किसी के बाप के रोके नहीं रुक सकता। लड़की के अचार डालने की चाल आप ही के गाँव में होगी! हमारे यहाँ आपके गाँव-जैसी छुटखेली नहीं होती!

इसी तरह बात-ही-बात में बहुत बढ़ गई। मूसन तिवारी अपने छोटे भाई को मना करते ही रह गये, बाबूजी बीच-बराव करते-करते थक गये, मगर कोई समझदार न निकला!

तबतक गाँववाले लठ लेकर आ जुटे। बाबूजी झगड़े को तूल पकड़ते देखकर सुक्खू तिवारी की बाँह पकड़े हुए छोलदारी के अन्दर खींच ले गये।

एक घराती ने कहारों को डाँटकर कहा—लगन की घड़ी बीत रही है। भले आदमी की तरह तुमलोग वर को मँड़वे में ले चलो, नहीं तो मूंज की तरह यहीं थूरेंगे।

दुलहे को ले जाने की बात सुनते ही सुक्खू तिवारी को घूरनसिंह के जिम्मे कर बाबूजी झटपट रावटी से बाहर आ गये। किसी-किसी तरह उजड्डों को समझाया। वह उनकी दाढ़ी धरकर निहोरा करते-करते झुँझला उठे। मूसन तिवारी के पास जाकर बोले—सुक्खू तिवारी ने सब गुड़ गोबर कर दिया!

बेचारे बूढ़े ने कलप कर जवाब दिया—मैं क्या करूँ बबुआजी! मेरी बात का यहाँ कुछ मोल-तोल नहीं है। लड़के-लड़कियों के ब्याह करते-करते बाल पक गये; मगर ऐसी थूका-फजीती कभी नहीं हुई थी। जाने दीजिए, जो लिखन्त था सो हुआ। चुपचाप उन्हें वर को ले जाने दीजिए, नहीं तो अभी और टंटा बढ़ेगा। अच्छा तो होता अगर आप भी दुलहे के साथ चले जाते, मैं भोलानाथ को खिला-पिलाकर अपने साथ सुलाऊँगा।

बाबूजी हमें समझा-बुझाकर, दुलहे की पालकी के साथ, ब्याह कराने के लिए चले गये। तिवारीजी हमको अपने डेरे पर ले जाकर बोले—पहिले सोहारी और दही-चीनी खा लो, तब तुम्हें कहानी सुनाऊँगा।

कहानी सुनने के लोभ से हम ताबड़तोड़ दही-पूरी भकोसने लगे। चटपट खाकर उनके पास जाकर लेट गये और कहानी कहने के लिए उन्हें बार-बार उकसाने लगे। वह हमारी देह को सहलाते-सहलाते बोले—कहानी तो कहवाते हो; मगर हुँकारी भरते चलना।

हमने कहा—अच्छा। मगर बढ़िया कहिएगा।

ति०—बस तुम्हारे ही लायक है, सुनो—एक गड़ेरिया था। वह जंगल में अपनी भेड़ों को चरा रहा था। एक कंधे पर कम्बल और दूसरे पर एक लाठी में पीछे की ओर भर मटका पानी लटकाये हुए था। हाथ में बाँस की एक छिकुनी लेकर भेड़ों को हाँकता चला जाता था। इतने में आगे से एक राजा घोड़े पर आ पहुँचे। बेचारे शिकार खेलते-खेलते मारे प्यास के बेहाल हो रहे थे। गड़ेरिये के पास जल देखकर और भी व्याकुल हो गये।

बीच ही में हमने टोका—प्यासे थे, तो जल देखकर व्याकुल क्यों हुए?

ति०—प्यासा आदमी जल के पास पहुँच कर और भी अधीर हो जाता है।

तब हमने पूछा—फिर क्या हुआ?

तिवारीजी कहने लगे—गड़ेरिये ने राजा को बहुत प्यासा जानकर बड़े आदर से जल पिला दिया। राजा का रोआँ-रोआँ जुड़ा गया। उन्होंने उसपर खुश होकर उसके नाम साठ गाँव माफी लिखकर दे दी।

फिर हमने टोका—वहाँ कलम-कागज कहाँ मिला?

तिवारीजी हँसकर बोले—पीपर के पत्ते पर बबूर के काँटे से लिख दिया।

हमने आकाश की ओर ताकते हुए पूछा—अच्छा, तब?

ति०—गड़ेरिये ने उस पत्ते को एक झाड़ी के पास माटी के ढेले से दबाकर रख दिया।

हम—जंगल में माटी का ढेला कहाँ से आया? वहाँ तो धरती जोती नहीं जाती?

ति०—तुम्हारे ही ऐसा कोई बन्दर कहीं से उठा लाया होगा।

हमने खिल-खिलाकर हँसते हुए पूछा—अच्छा, फिर?

ति०—भेड़ चराते-चराते बेचारा उस पत्ते की सुध भूल गया। उसकी भेड़ों में कई बकरियाँ भी थीं।

हम—यह आपने पहिले क्यों नहीं बताया? पहिले तो आपने खाली भेड़ ही का नाम लिया।

ति०—पहिले बकरी का प्रसंग कहाँ आया था? कहानी में जब जिस चीज का प्रसंग पड़ता है, तब तिसका नाम लिया जाता है। चुपचाप सुनते जाओ। कहानी के बीच में टोकटाक नहीं करना चाहिए।

हम—अच्छा, आगे कहिए। अब न टोकेंगे।

ति०—हाँ, तो मैं क्या कह रहा था?

हम—भेड़ों में कई बकरियाँ भी थीं।

ति०—हाँ, एक बकरी उस पत्ते को खा गई! बेचारा अफसोस करता हुआ साँझ को घर पहुँचा। गड़ेरिन ने उसके हाथ-पैर धोने के लिए भर लोटा जल देते हुए उसे उदास देखकर पूछा—आज मन मलिन क्यों है? सब भेड़ें तो घर आ गईं न? कोई जंगल में तो नहीं छूटी? बेचारा कपार पीटता हुआ बोला—

कहा कहों कुछ कहा न जाय
कहे बिना अब रहा न जाय
एक बात जंगल में भई
साठ गाँव बकरी चर गई

अभी शायद तिवारीजी की कहानी का सिलसिला खतम नहीं हुआ था कि नाच-वाली की घोड़ी के खुलकर पास आ जाने से दुबेजी के घोड़े ने बड़े जोर से हिनहिना-कर अगाड़ी-पीछाड़ी के खूँटे उखाड़ डाले—मचा हल्ला! दौड़े लोग लाठी-सोटा लेकर! आगे-आगे घोड़ी, पीछे-पीछे घोड़ा, उसके पीछे बाराती, सब के पीछे समाजी!

पर खेदू हमें छोड़कर कहाँ जाय—हमारे पास ही बैठकर कहारों से बतियाता था। बेचारी नाचवाली की बुढ़िया महतारी को छाती पीटते देखकर एक कहार बोला—बिहान खेदू से अपनी घोड़ी की ओझाई कराओ बीबी, नहीं तो ऐसी चसकेगी कि लगाम न लेगी!

सुक्खू तिवारी भी, जो इतनी देर से रावटी में उदास बैठे थे, बाहर निकलकर बुढ़िया पर लाल-पीले होते हुए बोले—अपनी दमरी की घोड़ी के लिए तो इतना गला फाड़ रही है, और हमारा जो पाँच सौ का बँधुआ घोड़ा खराब हो गया सो कुछ नहीं? हम सट्टे का एक पैसा नहीं देंगे!

मूसन तिवारी भी अपने छोटे भाई के सुर में सुर मिलाने लगे।

बेचारी दबककर चुप बैठ गई। उस समय आधी रात के धुँधले अँधेरे में बड़ी दूर से आती हुई बारातियों की डरावनी ललकार सुनकर माँ-बेटी ने घोड़ी के लौटने की आशा ही छोड़ दी!

फिर हमने भी दूसरी कहानी की आशा छोड़ दी! क्या करें, निगोड़ी घोड़ी ने दूसरी ही कहानी छेड़ दी!

सुबह सोकर उठे, तो देखा कि अभी तक बाबूजी घराती के यहाँ से नहीं लौटे हैं। हम उनके पास जाने के लिए मचलने लगे। तिवारीजी के कहने से खेदू उनको बुलाने के लिए गया।

उनके आते ही तिवारीजी ने वहाँ का हाल पूछा। वह घबराये हुए-से बोले—पहले मुझे पान खा लेने दीजिए। रात-भर पान बिना जान निकल गई। पहुँचने पर अपने पानदान की याद आई। एक भले आदमी से वहाँ माँगा, पैसे भी देने लगा, तो जवाब मिला—

ई ह दरिंदर गाँव बाम्हन की बस्ती
खान पान की बात नहीं नमस्कार की सस्ती

तिवारीजी बोले—रात की मोहफिल का बचा पान तो है—मगाऊँ, खाइएगा?

बाबूजी—वह भी कोई पान में पान है, उससे तो घास अच्छी! और बासी पान खाना भी न चाहिए। तमोली आया है न?

तिवारी—यह कायथ की बारात थोड़े है कि तमोली आवे? महफिल के लिए रास्ते के एक गाँव में दो-चार आने का पान बनवा लिया था।

बाबूजी हँसकर रह गये। खेदू ने पानदान लाकर रख दिया। ज्यों ही वह पान लगाने लगे, अलहैत ने शामियाने में आकर अपनी ढोलकी पर थप्पे देते हुए कहा—ठनन्न! ठनन्न! जोड़ा रुपैया। गादी बनी रहे!

बाबूजी ने हाथ उठाकर कहा—ठहरो।

वह फर्शी सलाम करके बैठ गया। बारातियों ने उसे घेरकर बढ़ावा देना शुरू किया। अब भला कड़खैत से कैसे रहा जाय, घुटनें के नीचे दबाकर ढोलकी ठोकता हुआ गाने लगा—

दगी सलामी दोऊ ओर ते, दल में रही अन्हरिया छाय
गोला ओला के सम छूटें, गोली मघा बूँद अरराय
झुरमुट होइगा दूनो दल का, ज्वानन खेंचि लई तलवार
खट खट खट खट तेगा बाजे, बोले छपकि छपकि तरवार
चले कटरिया मानासाही, औ तरवारि पिहानी क्यार
तेगा चटकें बर्दमान के कटि कटि गिरें सुघरुआ ज्वान
ऐसी फौज कटी छत्रिन की, गिरि गई डेढ़ लाख मैदान

हाथ के इशारे से भीड़ हटाते हुए बाबूजी ने अल्हैत के आगे एक रुपया फेंककर कहा—बसकर, यहाँ तो आप ही दोनों समधियों में तलवार खिंच गई है, आल्हा गाकर आग में घी मत डाल। तू नेगी है, अपना नेग लेकर राह देख। उठती बारात है। जो कुछ मिल गया, उसी को लाख समझ। दान-दहेज मिला नहीं, जाचकों को घर से कहाँ तक दिया जाय?

अल्हैत ने सोलह आने पर ही संतोष किया। बाबूजी ने तिवारीजी से सलाह करके बारातियों को बुलाकर कहा—समधी-समधी में लड़ाई हो गई है। दाना-पानी का यहाँ जुगाड़ नहीं लग सकता। सबको अपना-अपना रास्ता पकड़ना चाहिए। तिवारीजी भी दूसरे ही के भरोसे हाथ हिलाते हुए आये हैं। बेटीवाले ने भी गाँव के कुम्हार और बनिये को बरज दिया है कि बारातियों को एक पतुली और एक खिल्ली तमाकू तक न देना। ऐसी हालत में किसी तरह यहाँ रसोई-पानी का टंट-घंट नहीं हो सकता। चलिए घर पर। एक बेला न खाने से जान थोड़े निकल जायगी?

बारातियों ने एक स्वर से कहा—नहीं देवानजी, हमलोगों की जान क्या चिड़िया की जान है? ओस की बूँद है कि ढरक जायगी? काम पड़े तो हमलोग एक अठवारा उपास कर सकते हैं। चलो भाइयो घर, यह गाँव ससुरा साल के भीतर ही डीह पड़ जायगा। इतने ब्राह्मन रास्ते-भर डहकते हुए जायँगे, तो आप ही भगवान का कपार ठनकेगा, खोर-खोरकर गाँव-भर को डाहेंगे।

घरातियों को सरापते हुए बारातियों ने अपनी-अपनी राह ली। खेदू ने अपनी बहंगी उठाई और कहारों ने पालकी। घूरनसिंह भी साथ चले।

हमलोग चिराग-बत्ती होते-होते गाँव पर पहुँच गये। बरसों बाद अपने गाँव के लँगोटिया यारों से भेंट हुई। पर गुरुजी नहीं मिले! पाठशाला उठ गई थी! गाँव वालों के यहाँ बहुत दरमाहा और सीधा बाकी पड़ जाने से बेचारे ऊबकर चले गये थे!

बाबूजी के बहुत दिनों पर आने के कारण गाँव के लोग रोज ही कुछ दिन और रहने के लिए आग्रह करने लगे। आज-कल करते-करते चार दिन बीत गये। आज भरनी है, कल भद्रा है, परसों दिशा-शूल है—इसी तरह टाल-टूल होने लगा! पाँचवाँ दिन भी कट गया। छठा दिन आ धमका!

आज बाबूजी ने चलने का निश्चय कर लिया। पर गाँव के लोगों ने बाबाजी के पत्रा देखने का अड़ंगा लगा दिया। उसी समय बाबाजी बुलाये गये। बेचारे काँख में पत्रा दबाये उस जलती हुई दुपहरिया में ही पहुँचे। बैठकर अँगौछे से हवा करते हुए बोले - इतनी दूर आते-आते मालूम हुआ है कि देह को किसी ने पुराने खुरपे की तरह बिना मोह-माया के लोहार की भट्ठी में घुसेड़ दिया! अब इसी पर रहता एक लोटा ठंढा जल और एक भेली गुड़, तब न कलेजे पर तरावट पहुँचने से जोतिष उचरता! कलेजे पर तो बत्ती जल रही है, पत्रा का कोठा कैसे सूझेगा? और जहाँ कोठा बिचला कि जात्रा बिगड़ी!

बाबाजी की बात सुनते ही कई जजमान उठ खड़े हुए। 'कोई पानी लाया, कोई भेली, कोई खड़ाऊं! दो लोटा भरपूर खींचने के बाद बाबाजी ने साँस ली!

चारों ओर से प्रश्न और इशारे होने लगे। बाबाजी बोले—पत्रा को अभी किनारे रहने दीजिए। पहिले लोकाचार को देखिए। जात्रा-विचार की पोथी में लिखा है—

न माने भरनी दगशूल, कहे ब्यास सब चकनाचूर।

—फिर जात्रा में असुभ-दरसन पर भी लिखा है। यह सब निखेद माना गया है—

रवि के जटा, सोम के जोगी
मंगल बनिया, बुध के रोगी
गुरु के तेली, शुक्र कुम्हार
बार सनीचर मिले सियार
इतना बात न माने जोई
घर को लौट न आवे सोई

—अगर जाना बहुत ही जरूरी हो, तो उसके लिए भी निकास कर दिया है। जात्रा बनाने की विधि बता दी है—

रवि के पान सोम के दरपन
मंगर के गुड़ करिये अरपन
बुध के धनिया गुरु के जीरा
सुक्र कहे मोहि दधि की पीरा
कहे सनीचर अदरख पाऊँ
कुसल-छेम से घर पहुँचाऊँ

जो परदेश चहो कुसलाई
तो यह बाँचि चलो चौपाई
रथ चढ़ि सिया सहित दोउ भाई
चले बनहिं अवधहिं सिर नाई

बाबूजी ने हाथ उठाकर बाबाजी को रोकते हुए कहा——जरा थम जाइए। वह रामसहर का हजाम आता है। शायद कोई चिट्ठी हो। मैं बाबू साहब को बीमार छोड़कर आया था। समाचार के लिए कई दिन से चित्त अटका हुआ है।

हजाम ने सलाम करके चिट्ठी दी। वह पढ़ते ही यकायक चौंक उठे। लोगों ने कुशल-मंगल पूछा, तो और-का-और बता दिया। बस उसी समय चलने की तैयारी हुई। पन्ना और यात्रा की सुध जाती रही!

शाम होते-होते हमलोग रामसहर पहुँच गये। बाबूजी अपने घर पर न उतरकर पहले 'बड़ी देवढ़ी' पर ही उतरे, और हमारा हाथ पकड़े हुए सीधे चले गये बाबू रामटहल सिंह के पास। बाबूजी को देखते ही वह पुक्का फाड़कर रो उठे!

बहुत समझाने-बुझाने पर चुप होकर सिसकते-सिसकते बोले—अब मैं न जीऊँगा दीवानजी! इस शोक से मेरा बचना कठिन है! स्त्री तो गई ही, जान भी गई! मैं नहीं जानता था कि गोबरधन ऐसा दगा करेगा। उलटी छुरी का घाव मार गया। इस समय वह मिल जाता, तो मैं बिना गोली मारे नहीं छोड़ता। जैसे एक ब्रह्म पूजता हूँ, वैसे एक और सही, मगर मार ही डालता। क्या कहूँ, दिल की यह कसक मेरे साथ ही चार आदमियों के कंधे पर लदी चली जायगी! जिस पत्तल में वह जिन्दगी भर खाता रहा, उसी में छेद कर गया! नमक का बदला बुरी तरह चुकाया। अच्छा, उसके रोम-रोम में मेरा नमक पैठ गया है, जहाँ कहीं रहेगा, मेरे आँसुओं की धार में वह नमक का पुतला गल जायगा!

बाबूजी कुछ कह न सके। लम्बी साँस खींचकर हाथ पकड़े बाहर चले आये। फाटक पर घूरनसिंह बोले——मेरे चले जाने से ही यह गोलमाल हुआ है। रात को चट्टान-सा फाटक कोई अच्छी तरह बन्द न कर सका होगा, बस गोबरधन को घात लग गई!

यहाँ भी बाबूजी कुछ न बोले। चुपचाप अपने घर की ओर चले। रास्ते में सिर्फ एक बार जोर से साँस लेकर कहा——हरे राम! हरे राम!!

परिशिष्ट—१

['विभूति' की कहानियों का रचना-काल]

	कहानी	विक्रम-संवत्	ईसवी सन्
१.	हठ भगतजी	१९६८	(१९११ ई०)
२.	अनूठी अँगूठी	१९६८	(१९११ ")
३.	तूती-मैना	१९७१	(१९१४ ")
४.	वीणा	१९७१	(१९१४ ")
५.	विचार-चित्र	१९७१	(१९१४ ")
६.	मुंडमाल	१९७३	(१९१६ ")
७.	सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा	१९७३	(१९१६ ")
८.	विष-पान	१९७३	(१९१६ ")
९.	हतभागिनी चन्द्रतारा	१९७४	(१९१७ ")
१०.	प्रायश्चित्त	१९७४	(१९१७ ")
११.	खोपड़ी के अक्षर	१९७६	(१९१९ ")
१२.	कुंजी	१९७६	(१९१९ ")
१३.	शरणागत-रक्षा	१९८०	(१९२३ ")
१४.	मान-मोचन	१९८१	(१९२४ ")
१५.	कहानी का प्लाट	१९८५	(१९२८ ")
१६.	बुलबुल और गुलाब	१९८८	(१९३१ ")

परिशिष्ट—२

भूमिका

['विभूति' का प्रथम संस्करण]

१

अयोध्याधिपतिर्मेऽस्तु हृदये राघवः सदा।
यद्वामांके स्थिता सीता मेघस्येव तडिल्लता ॥

एक मसल मशहूर है कि 'बिच्छू का मंत्र न जाने, साँप के बिल में हाथ डाले'। यह पुस्तक लिखकर मैंने उक्त कहावत को चरितार्थ कर दिया है। आख्यायिका लिखना कठिन काम है, और अत्यन्त कठिन काम है। मेरे-जैसे नौसिखुवे लेखक के लिए तो यह कठिन ही नहीं, असंभव भी है। किन्तु अपनी अयोग्यता का ध्यान रखते हुए भी मैंने अनधिकार चेष्टा करने का जो निन्दनीय दुस्साहस किया है, यह यद्यपि अमार्जनीय है; तथापि कृपालु पाठकों से सविनय क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। जान-बूझकर अपराध करनेवाले की निर्लज्जतापूर्ण क्षमा-प्रार्थना, घृणा की हँसी हँसकर, उदारता के साथ, सहृदय सज्जन स्वीकार कर लेते हैं।

"एतहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अँचई घोरि।
निलजता पर रीझि रघुवर देहु 'तुलसिहिं' छोरि ॥

२

जो दस आख्यायिकाएँ इस पुस्तक में संग्रह की गयी हैं, वे आज से कई वर्ष पहले **साहित्य पत्रिका, भास्कर, लक्ष्मी, कायस्थ-महिला-हितैषी** और **आर्य्य-महिला** में प्रकाशित हो चुकी हैं। किन्तु जिस रूप में वे प्रकाशित हुई थीं, वह रूप अब नहीं रहा। संग्रह करने से पूर्व मैंने यथाशक्ति उनका सम्पादन कर दिया है। मैंने भावों में भी भव्यता और नव्यता लाने की चेष्टा की है तथा भाषा को भी परिमार्जित एवं परिष्कृत बनाने का प्रयत्न किया है। हाँ, सम्पादन करते समय मैंने एक अक्षम्य अपराध अवश्य किया है। वह यह है कि अपनी आरम्भिक या स्वाभाविक रचना-शैली को मैंने विशेष छिन्न-भिन्न नहीं किया है। उसपर कुठार-प्रहार करने के लिए मेरा हृदय उद्यत नहीं हुआ। यदि कोई सुयोग्य विद्वान् इस पुस्तक का सम्पादन करता तो इसके अनेक दोष दूर हो गये होते ; पर मेरे सम्पादन से पूर्व यह पुस्तक इस योग्य नहीं थी कि मैं किसी मर्मज्ञ विज्ञ व्यक्ति के पास, व्यर्थ ही उसका अमूल्य समय नष्ट करने के लिए, भेजकर संशोधनार्थ प्रार्थना करता।

सम्पादित होकर जब यह पुस्तक मुद्रित हो गयी, तब मेरा विचार हुआ था कि इसकी भूमिका किसी विद्वान् से लिखवाऊँ ; पर मुझसे वैसी प्रगल्भता भी न हो सकी। हाँ, अब यह पुस्तक जब किसी-न-किसी रूप में प्रकाशित हो गयी, तब संभव है, कभी सौभाग्यवश विद्वानों की दृष्टि इसपर पड़ जाय। उस समय मुझपर असीम दया करके यदि अकारण कृपालु विद्वान् मुझे पुस्तक-गत दोषों की सूचना के साथ-ही-साथ संशोधन-सम्बन्धी सत्परामर्श भी देने की उदारता प्रकट करेंगे, तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।

बड़ी सावधानता से प्रूफ-संशोधन करने पर भी दृष्टिदोष से इस पुस्तक में यत्र-तत्र छापे की एक दो जगह बड़ी भ्रमात्मक—भूलें रह गयी हैं। उन भूलों के लिए तो मैं ही दोषी हूँ। उनके अतिरिक्त जो भाषा-सम्बन्धी अशुद्धियाँ या भाव-सम्बन्धी अप्राकृतिक बातें हैं, उनके लिए भी मैं ही दंडार्ह हूँ।

यद्यपि मैंने इस पुस्तक का सविधि सम्पादन करने में घोर परिश्रम किया है, तथापि अपने ही दोषों का आप ही सुधार कर लेना मेरे जैसे अल्पज्ञों का काम नहीं है। जो भूल करने का आदी है, वह भूल का समुचित सुधार नहीं कर सकता। इसलिए मैं कदापि यह कहने की धृष्टता नहीं कर सकता कि मेरे सविधि सम्पादन कर देने से यह पुस्तक सर्वथा निर्दोष हो गयी है।

"मल किमि छूट मलहिं के धोये ?
घृत कि पाव कोउ बारि बिलोये ?"

अस्तु। इस पुस्तक से पहले मेरी लिखी हुई और मेरे द्वारा सम्पादित होकर चार-पाँच पुस्तकें—बिहार का विहार, हिन्दी ट्रांसलेशन, प्रेमकली, त्रिवेणी, सेवाधर्म, प्रेमपुष्पाञ्जलि—आदि प्रकाशित हो चुकी हैं ; पर उनसे कहीं अधिक मेरी ममता इसी पुस्तक पर है ; क्योंकि इसमें मेरी उन आरम्भिक रचनाओं का संग्रह है, जिन्हें आज से कई वर्ष पहले मैंने लिखा था और बड़े शौक से लिखा था। **दसों आख्यायिकाएँ सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी गयी थीं।** आरम्भ में जो तीन आख्यायिकाएँ हैं, उनके लिए 'टाड साहब के राजस्थान-इतिहास' से मसाला लिया था, और शेष सात सामाजिक। परन्तु चौथी, नवीं और अन्तिम (दसवीं) आख्यायिका को मैंने कानों-सुनी घटना के अनुरूप ही, लिख मारा है। मालूम नहीं, उन्हें कहाँ तक स्वाभाविक या शिक्षाप्रद या मनोरंजक बना सका हूँ।

यद्यपि यह पुस्तक मेरी मौलिक रचना है, तथापि इसकी मौलिकता मेरी अपनी सम्पत्ति नहीं। सच पूछिए तो थोड़ा-बहुत अध्ययन और मनन करके मैंने जो कुछ सीखा है और मकरन्द-संग्रहकारिणी मधुमक्षिका की तरह जो कुछ संचय किया है, उसे ही साहित्य-रसिकों के रसास्वादन—मनोरंजन—के लिए, इसमें रख दिया है।

'रखने का ढंग मात्र' मेरा है। अब आप मेरी मौलिकता कहिए या साहित्यिक डाका कह डालिए—आपको सब-कुछ कहने का अधिकार है।

सहृदय समालोचक महाशयों से मैं कुछ भी कहने योग्य नहीं हूँ। विश्वास है कि वे इसे आद्यन्त पढ़ लेने के बाद अपना स्वतंत्र विचार प्रकट करेंगे।

"उसे जानते हैं बड़ा अपना दुश्मन।
हमारे करे ऐब जो हम पर रौशन॥
नसीहत से नफरत है नासिह से अनबन।
समझते हैं हम रहनुमाओं को रहजन॥
यही ऐब है सबको खोया है जिसने।
हमें नाव भरकर डुबोया है जिसने॥"

यदि इस पुस्तक को हिन्दी-प्रेमियों ने पसन्द किया तो मैं अपने अन्य सभी लेखों का संग्रह पुन: सम्पादित कर प्रकाशित करूँगा। यदि यह पुस्तक किसी मर्ज की दवा न हुई, तो फिर जैसा विचार होगा, वैसा किया जायगा। ऐतिहासिक और सामाजिक गल्पों की एक दूसरी पुस्तक मैं फिर लिख रहा हूँ। यदि इस तुच्छ रचना को अपनाकर हिन्दी-संसार ने मुझे उत्साहित किया, तो वह पुस्तक भी शीघ्र ही प्रकाशित करूँगा।

इस पुस्तक में, मैंने जिन कवियों की कविताएँ उद्धृत की हैं, उनका मैं चिर-ऋणी रहूँगा, क्योंकि उनकी कविताएँ यदि न मिलतीं, तो मेरी दुर्बल भाषा एवं अपरिपक्व रचना-शैली उनके द्वारा प्रकट किये गये प्रसंगानुकूल भावों को व्यक्त ही नहीं कर सकतीं। अतएव, उनको कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ।

"तुम्हरी कृपा सुलभ सब मोरे।
सिर्यानि सुहावनि टाट पटोरे॥"

बालकृष्ण प्रेस
१३ शंकर घोष लेन, कलकत्ता
संवत् १९७९ वि०

विनीत
शिवपूजन सहाय
('मारवाड़ी-सुधार'-सम्पादक)

दो शब्द

['विभूति' के चतुर्थ संस्करण का वक्तव्य]

इस कहानी-संग्रह के पिछले संस्करणों में जो 'भूमिका' और 'वक्तव्य' छपा था, उसे इस नये संस्करण से हटा दिया है। अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं, यद्यपि उसमें इस पुस्तक का संक्षिप्त इतिहास भी था। कहानियों की सूची में उनका रचना-काल पूर्ववत् रहने दिया गया है। उसीसे इतिहास का कुछ आभास मिल जायगा।

इसकी पन्द्रह कहानियाँ मौलिक हैं और अन्तिम कहानी अँगरेजी से अनुवादित है, जो 'आस्कर वाइल्ड' की है। मौलिक कहानियाँ सच्ची घटनाओं के आधार पर ही लिखी गयी हैं। कोई कहानी कल्पित नहीं है। सबका ऐतिहासिक और सामाजिक आधार सत्य है।

रचना-काल की विभिन्नता के कारण शैली में कुछ विभिन्नता पाई जा सकती है। किन्तु आज की कहानियों की शैली से शायद कुछ भेद दीख पड़ेगा, जो अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

इधर कई साल से इसकी छपाई रुकी पड़ी थी। कृपालु पाठक मेरे पास भी पत्र लिखा करते थे। पिछले प्रकाशक की उपेक्षा और उदासीनता देख मैंने 'ग्रंथ-माला-कार्यालय' को प्रकाशन का भार सौंपा। आर्थिक कारणों से भी ऐसा करना पड़ा। नये प्रकाशक का मैं बहुत कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इसे सुन्दरता से शीघ्र प्रकाशित कर दिया।

इस प्रगतिशील युग के पाठकों में अधिकांश सज्जन इन कहानियों को पढ़कर शायद झिझकेंगे। किन्तु कहानी-कला के क्रम-विकास पर ध्यान रखनेवाले साहित्य-समीक्षक इनकी उपयोगिता समझ सकते हैं। और, साहित्यिक अभिरुचि के पाठक तो इन्हें पहले ही की तरह अपनावेंगे, इसी आशा से इन्हें पुनः हिन्दी-संसार के सामने रखने का साहस किया है। विश्वास है, वह आशा पूरी होगी।

साहित्य-सम्मेलन-भवन
पटना, आषाढ़ २००७ वि०

शिवपूजन सहाय

परिशिष्ट—३

['देहाती दुनिया' के प्रथम संस्करण की भूमिका]

आवश्यक वक्तव्य

नहि किंचिदपूर्वमत्र वाच्यं
न च संग्रंथन-कौशलं ममास्ति
अतएव न मे परार्थ-यत्नः
स्वमनो भावयितुं कृतं मयेदम्

इस पुस्तक के जीवन के साथ एक छोटा-सा इतिहास लगा हुआ है। आज से चार वर्ष पहले मेरी लिखी दस कहानियों का एक संग्रह 'महिला-महत्त्व' नाम से निकला था। उसे कलकत्ते के एक नौसिख प्रकाशक ने बड़ी सुन्दरता से छपाया था। पर उनसे उसके यथेष्ट प्रचार का प्रबन्ध न हो सका। साहित्य-प्रेमियों के बदले उसका रस कीड़ों ने खूब चूसा! ईश्वर की कृपा से गत वर्ष इस पुस्तक के प्रकाशक ने बड़े उत्साह से उसके प्रकाशन का अधिकार और उसकी बची-खुची दो-चार सौ अच्छी प्रतियाँ खरीद लेने की उदारता दिखाई। अब शीघ्र ही उसका दूसरा संस्करण 'वीणा' नाम से प्रकाशित होनेवाला है। कारण, मैंने उसके लिए पहले 'वीणा' ही नाम चुना था; पर एक साहित्यिक मित्र के आग्रह से मेरा वह चुनाव कायम न रहा, और 'महिला-महत्त्व' नाम से ही पुस्तक प्रकाशित हुई।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में भी ठीक वैसी ही बात हुई। मैं इसका नाम रखना चाहता था केवल 'देहाती'; पर उन्हीं मित्र महाशय ने पुनः आग्रह करके 'अखबारी दुनिया' के तर्ज पर इसका नाम 'देहाती दुनिया' रखवाया। पुस्तक छपने के पहले ही इसी नाम से विज्ञापनबाजी भी होने लगी। यही कारण है कि नापसन्द होते हुए भी मैंने नाम में कोई हेरफेर नहीं किया। दो-तीन वर्ष की लगातार विज्ञापनबाजी की उपेक्षा करना उतना कठिन काम नहीं, जितना एक मित्र के आग्रह का अनादर।

- किन्तु पुस्तक के नाम से कुछ होता-जाता नहीं। असल चीज है, पुस्तक में व्यक्त किया हुआ भाव। यदि उसमें कुछ सार है, तो नाम का भद्दापन कोई

चीज नहीं। हाँ, पुस्तक के निस्सार होने पर भड़कीला नाम किसी सहृदय को नहीं भाता, भले ही आज-कल की विज्ञापनबाजी में वह मैदान मार ले।

पर मैंने यह पुस्तक जिन लोगों के लिए लिखी है, वे बेचारे यह नहीं समझते कि साहित्यिक सहृदयता क्या चीज है। वे उपन्यास पढ़ते खूब हैं, पर उसका लक्षण या गुण-दोष नहीं जानते। इसीलिए मैंने पहले-पहल इस रूप में उन्हीं लोगों के लिए कुछ लिखना पसन्द किया—सो भी अपने मन से नहीं, उन्हीं लोगों की प्रेरणा से।

बात ऐसी हुई कि मैंने आज तक जितनी पुस्तकें लिखीं, उनकी भाषा अत्यन्त कृत्रिम, जटिल, आडम्बरपूर्ण, अस्वाभाविक और अलंकारयुक्त हो गई। उनसे मेरे शिक्षित मित्रों को तो सन्तोष हुआ, पर मेरे देहाती मित्रों का मनोरंजन कुछ भी न हुआ। मेरी कहानियों का संग्रह जब उपर्युक्त नाम से प्रकाशित हुआ, तब देहाती मित्रों ने यह उलाहना दिया कि तुम्हारी एक भी पुस्तक हमलोगों की समझ में नहीं आती—क्या तुम कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिख सकते, जिसके पढ़ने में हमलोगों का दिल लगे?

मैंने उसी समय अपने मन में यह बात ठान ली कि ठेठ देहाती मित्रों के लिए एक पुस्तक अवश्य लिखूँगा। यह पुस्तक उसी का परिणाम है! किन्तु इसे लिखकर भी मेरे मन को अभी पूरा सन्तोष नहीं हुआ है, क्योंकि बहुत सावधान रहने पर भी मैं जैसा चाहता था, वैसा सरल और सुबोध इसको न बना सका। इसलिए अब मैं 'हमारा गाँव' नामक उपन्यास लिखने का इरादा कर रहा हूँ, जिसकी भाषा को मैं इससे भी सरल बनाने की चेष्टा करूँगा; ताकि ठेठ-से-ठेठ देहात का एकदम अपढ़ गँवार भी बिना किसी की सहायता के उसका एक-एक शब्द समझ ले, निरक्षर हलवाहे और मजदूर भी बड़ी आसानी से उसकी हर-एक बात को अच्छी तरह से समझ जायँ। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि मुझ-जैसे अयोग्य व्यक्ति के लिए यह काम अत्यन्त कठिन है, पर जैसे कहानियाँ लिखने में अपनी असमर्थता का यथार्थ ज्ञान रखते हुए भी मैं कहानियाँ लिख ही गया, और उपन्यास के लक्षणों की कुछ जानकारी न होने पर भी इस पुस्तक को उपन्यास कहने का दुस्साहस कर बैठा, वैसे ही कम-से-कम अपनी बेवकूफी का इजहार करने के लिए इसको भी कर डालूँगा—यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो।

मुझे यह स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उपन्यास लिखने की शैली से मैं बिलकुल अनभिज्ञ हूँ। फिर भी मैंने जान-बूझकर इतना बड़ा अपराध कर ही डाला; इसलिए क्षमा-प्रार्थना करने का साहस तो बिल्कुल न रहा—जो दण्ड मिलेगा, सिर चढ़ाऊँगा; क्योंकि इस पुस्तक के लिखते समय मैंने

साहित्य-हितैषी सहृदय समालोचकों के आतंक को जबरदस्ती ताक पर रख दिया था। यदि मैं ऐसा न करता, तो अपनी ही अयोग्यता के आतंक से इतना त्रस्त हो जाता कि इस रूप में यह पुस्तक कभी नहीं लिख सकता। अपने एकमात्र पूर्वोक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिए ही मुझे विवश होकर अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करना पड़ा, और अभी आगे चलकर इससे भी अधिक करना पड़ेगा; नहीं तो 'हमारा गाँव' नामक प्रस्तावित उपन्यास मेरी अनाड़ी लेखनी से सात जन्म में भी वैसा तैयार न हो सकेगा, जैसा मैं चाहता हूँ।

जो सज्जन इस पुस्तक में किसी प्रकार का आदर्श चरित्र-चित्रण अथवा गम्भीर विचार ढूँढ़ेंगे, वे सर्वथा हताश होंगे, और मेरी अनधिकार चेष्टा पर तिरस्कार की हँसी भी हँसेंगे; पर मैं इस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य पहले ही बता चुका हूँ—अब चाहे कोई मेरी मूर्खता पर हँसे या रोये!

मैं ऐसी ठेठ देहात का रहनेवाला हूँ, जहाँ इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुँधला प्रकाश पहुँचा है। वहाँ केवल दो ही चीजें प्रत्यक्ष देखने में आती हैं—अज्ञानता का घोर अन्धकार और दरिद्रता का ताण्डव नृत्य! वहीं पर मैंने स्वयं जो कुछ देखा-सुना है, उसे यथाशक्ति ज्यों-का-त्यों इसमें अंकित कर दिया है। इसका एक शब्द भी मेरे दिमाग की खास उपज या मेरी मौलिक कल्पना नहीं है। यहाँ तक कि भाषा का प्रवाह भी मैंने ठीक वैसा ही रखा है, जैसा ठेठ देहातियों के मुख से सुना है। अपने व्यक्तिगत अनुभव के बल पर मैं इतना निस्संकोच कह सकता हूँ कि देहाती लोग आपस की बातचीत में जितने मुहावरों और कहावतों का प्रयोग करते हैं, उतने तो क्या, उसका चतुर्थांश भी हम पढ़े-लिखे लोग नहीं करते। इस पुस्तक के किसी-किसी प्रकरण से यह बात स्पष्ट मालूम हो जायगी।

इसकी भाषा पर विचार करते समय कृपापूर्वक इस पुस्तक के नाम और मेरे उद्देश्य के साथ-साथ मेरी अयोग्यता पर भी ध्यान रखिएगा। और अगर बन पड़े तो यह भी स्मरण रखिएगा कि एक तो मैं ठेठ भोजपुरिया हूँ, दूसरे बिहारी—कोढ़ में खाज!

इस उपन्यास के जीवन के साथ लगे हुए उपर्युक्त इतिहास का उत्तरार्द्ध अभी बाकी है। वह यह है कि आज से लगभग चार वर्ष पहले इसका कुछ अंश कलकत्ते के एक विद्वान् प्रकाशक के यहाँ छप चुका था। उसके बाद ही सुप्रसिद्ध 'मतवाला' निकलने लगा। फिर मुझे अवकाश ही नहीं मिला कि आगे लिखूँ। जब मैं वहाँ से लखनऊ के 'माधुरी'-कार्यालय में गया, तब अवकाश के समय लिखने लगा। पर वहाँ जो कुछ लिखा, सब वहीं के दंगे में खो दिया। इस प्रकार आधा से अधिक और इसका सबसे अच्छा अंश हाथ से निकल गया। यदि वह अंश भी

छप गया होता तो इससे दुगुने आकार की पुस्तक होती, और पाठकों को भी कुछ मजा मिलता। खैर, लखनऊ के दंगे के बाद जब मैं कलकत्ते गया, तब फिर 'मतवाले' के नशे में चूर हो गया, और इसी बीच में उक्त प्रकाशक ने भी अपना काम-धाम बन्द कर दिया! मैं हताश और हतोत्साह हो गया। तब तक ईश्वर की शुभ प्रेरणा से उसी निराशा के समय में अनायास मेरे प्रिय मित्र पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी (बालक-सम्पादक) कलकत्ते पहुँच गये। उन्होंने ही वर्तमान प्रकाशक से अनुरोध करके मेरी कहानियों की उक्त पुस्तक के साथ-साथ इसका भी उद्धार करा दिया। फलतः मैं काशीश्वर विश्वनाथ की शरण में आकर पहले के छपे हुए अंश के बाद का हिस्सा लिखने लगा, और शुरू से पुस्तक छपने लगी। पर दुबारा लिखते समय, न वह उत्साह रहा, न वह साहस, न वह धैर्य्य—और सच पूछिए तो प्रतिभा निगोड़ी भी ठेल-गाड़ी बन गई। किसी तरह संक्षेप में ही रस्म को पूरा करना पड़ा। जो कुछ बन पड़ा—भला या बुरा—आपके सामने है—अपनाइए या ठुकराइए। मैंने यश या प्रोत्साहन प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक नहीं लिखी है, लिखी है केवल 'स्वान्तः सुखाय'।

अन्त में अपने उक्त मित्र बेनीपुरीजी और इस पुस्तक के उत्साही प्रकाशक को इसकी सुन्दर छपाई आदि के लिए धन्यवाद देते हुए मैं महाकवि भवभूति के 'मालती-माधव' से यही एक उपयुक्त श्लोक उद्धृत करके अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

ये नाम केचिदिह न प्रथयंत्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान्प्रतिनैष यत्नः
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी

उनवाँस, इटाढ़ी, शाहाबाद (बिहार)
श्री रामनवमी, वि० सं० १९८३

शिवपूजन सहाय

वक्तव्य

['देहाती दुनिया' का चतुर्थ संस्करण]

आज से लगभग पचीस साल पहले यह उपन्यास देहाती भाइयों के मनबहलाव के लिए निकाला था। गाँव-गँवई में यह खूब पसन्द किया गया। पुस्तक-भण्डार से इसके चार संस्करण निकल चुके थे। पर कुछ कठिन परिस्थितियों और कई अनिवार्य कारणों से विवश होकर 'ग्रन्थमाला-कार्यालय' से प्रस्तुत नवीन संस्करण निकलवाना पड़ा। इसमें कोई नया हेर-फेर नहीं किया गया है। हाँ, पिछले संस्करणों में लगी लम्बी भूमिका निकाल दी गई है। मैंने उस भूमिका में 'हमारा गाँव' नामक एक ऐसी ही पुस्तक लिखने का वादा और इरादा जाहिर किया था। यदि पाठकों की इच्छा और कृपा होगी तो उसे पूरा करने की कोशिश करूँगा।

यह पुस्तक, भाषा की दृष्टि से, कई साहित्यिक परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में कई साल तक रह चुकी है। आरम्भ में सभी भाषा-पारखियों ने इसे सराहा और असीसा था। अब इस युग में इसकी कोई उपयोगिता है या नहीं, यह कहना मेरा काम नहीं। मैं तो ग्रन्थमाला-कार्यालय के अध्यक्ष श्री पण्डित देवकुमार मिश्रजी का बहुत कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इस प्रगतिशील युग में भी मुझ-जैसे अप्रगतिशील लेखक का एक ऐसा उपन्यास प्रकाशित करने की कृपा की है, जो आधुनिक कला की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता। फिर भी आशा है कि कला की दुनिया से दूर रहनेवाले ग्रामीण हिन्दी पाठकों के लिए पहले की ही भाँति यह नितनूतन बना रहेगा।

ईश्वर की इच्छा और कृपा हुई तो 'हमारा गाँव' भी दुनिया के सामने आवेगा ही। वह भी इसीकी तरह सरल भाषा में लिखा गया है, पर अभी अधूरा है—पूरा कब होगा, राम जानें।

साहित्य-सम्मेलन-भवन,
कदमकुँआ, पटना ३
ज्येष्ठ, संवत् २००७
मई, सन् १९५० ई०

शिवपूजन सहाय